॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

४१

महाकविश्रीबाणभट्टविरचिता

कादम्बरी

(कथामुखपर्यन्तम्)

'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

व्याख्याकार:—

आचार्य शेषराजशर्मा 'रेग्मी:'

भूतपूर्व-प्राध्यापक:

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,

वाल्मीकिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य च

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

मूल्य १०-००

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
४१

महाकविश्रीबाणभट्टविरचिता

कादम्बरी

(पूर्वार्द्धम्)

'चन्द्रकला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

व्याख्याकारः—
आचार्य शेषराजशर्मा 'रेग्मीः'
भूतपूर्व-प्राध्यापकः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,
वाल्मीकिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य च

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक-विक्रेता)
के० ३७/११७, गोपाल मन्दिर लेन
पोस्ट बाक्स नं० १२९
वाराणसी २२१००१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण
१९७९

मूल्य { कथामुखपर्यन्त ८–००
पूर्वार्द्ध ३५–००

अन्य प्राप्तिस्थान—
चौखम्बा विद्याभवन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक-विक्रेता)
चौक , बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे),
पोस्ट बाक्स नं० ६९
वाराणसी २२१००१

मुद्रक—
श्रीजी मुद्रणालय
वाराणसी

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

41

KĀDAMBARI

(PŪRVĀRDHA.)

OF

BĀNABHATTA

Edited with the

'Chandrakala' Sanskrit & Hindi Commentaries

By

Acharya Sheshraja Sharma Regmi

CHAUKHAMBA SURABHARATI PRAKASHAN

VĀRĀNASI

© CHAUKHAMBA SURABHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Booksellers & Publishers*)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 129
VARANASI 221001

First Edition
1979

Price Rs. { Kathamukha 8-00
Purvardha 35-00

Also can be had of
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(*Oriental Booksellers & Publishers*)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 69
VARANASI 221001

उपोद्घात

हृदयमें उठे हुए भावको व्यक्त रूपसे प्रकाशित करनेके साधनको "भाषा" कहते हैं। यद्यपि सङ्केत आदिसे भी भाव प्रकाशित हो सकता है पर उससे व्यक्त तथा विस्तीर्ण रूपसे अभिप्राय प्रकाशित नहीं हो सकता है। अतः भाषाके वाक्यसमूहसे भाव प्रकाशित किया जाता है। वर्णसमूहसे पद, पदसमूहसे वाक्य बनता है। भाषाके लिखित रूपमें दो विधाओंसे भाव प्रकाशित होता है; उनमें पहला है गद्य और दूसरा पद्य। भाषामें भाष धातु और गद्यमें गद धातु व्यक्त वचन करनेके अर्थमें हैं। ऐसा प्रतीत होता है व्यक्त और अकृत्रिम रूपसे गद्यके द्वारा भाव प्रकाशित होता है। "पदम् (चरणम्) अर्हति" इस व्युत्पत्तिसे पद शब्दसे अर्हाऽर्थमें यत् प्रत्यय होकर "पद्य" पद निष्पन्न होता है। फलतः छन्दोबद्ध रूपसे पद्यके द्वारा भाव प्रकाशित होता है। गद्य सहज और सरल है तो पद्य कृत्रिम और दुरूह हो सकता है। गद्य सहज रूपसे प्रकट होनेसे प्रायः अनलङ्कृत होता है तो पद्य अनुप्रास और लय आदिसे अलङ्कृत और मनोहर होता है, अतः पद्य गाया भी जा सकता है, आसानीसे कण्ठस्थ भी किया जा सकता है अतः हमें संस्कृत वाङ्मयमें पद्यकी ही अधिक उपलब्धि होती है। विश्वसाहित्यमें लिखित रूपमें जिस किसी भी भाषामें हमें पहले पहल पद्यका ही दर्शन होता है, अतएव आधुनिक विद्वानोंसे सर्वप्रथम माने गये "ऋग्वेद" में हमें पद्योंका ही दर्शन मिलता है। जैमिनि मुनि मीमांसादर्शन में ऋक्‌का लक्षण करते हैं—"यत्राऽर्थवशेन पादव्यवस्थितिः सा ऋक्" (२-१, १०-३५) अर्थात् जिस मन्त्रमें छन्दोविशेषके वशसे चरणकी व्यवस्था होती है, उसे "ऋक्" कहते हैं। इस प्रकार ऋक्-मन्त्रोंसे युक्त वेदको "ऋग्वेद" कहते हैं। सामका लक्षण करते हैं—"ताः सगीतयः सामानि" अर्थात् वे ही ऋक् मन्त्र, गानसे युक्त हों तो उन्हें "साम" कहते हैं। अर्थात् षड्ज आदि स्वरोंका विशेष रूपसे विन्यास होकर गानात्मक होनेसे वे ही ऋचाएं "साम" के रूपमें परिणत होती हैं। इस प्रकार साममन्त्रोंसे युक्त वेदको "सामवेद" कहते हैं।

इसी प्रकार "यजु" का लक्षण है—"शेषे यजुःशब्दः" अर्थात् जो "ऋक्" के समान छन्दोबद्ध नहीं है और न "साम" के समान गीतिबद्ध है उसे "यजु" कहते हैं। यजुर्मन्त्रोंसे युक्त वेदको "यजुर्वेद" कहते हैं। यद्यपि यजुर्वेदमें कतिपय ऋक् मन्त्र भी हैं तथाऽपि "प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति" इस न्यायसे उसे यजुर्वेद ही कहते हैं। अथर्ववेदमें भी पद्य भाग अधिक हैं और गद्य भाग कम "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (आपस्तम्ब) इस उक्तिके अनुसार सामान्यतः वेदके मन्त्र और ब्राह्मणमें दो विभाग हैं। उनमें संहितारूप ऋक् आदि चारों वेद मन्त्ररूप हैं, और ऋग्वेदमें ऐतरेय आदि, यजुर्वेदमें शतपथ आदि, सामवेदमें आर्षेय आदि और अथर्ववेदमें गोपथ आदि ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणमें मन्त्रोंका निर्वचन, विनियोग, प्रयोजन, प्रतिष्ठान और विधिका वर्णन रहता है। ब्राह्मण सबके सब गद्यमय हैं। ब्राह्मणके परिशिष्ट भागको "आरण्यक" कहते हैं। वे भी गद्यमें ही हैं। वेदके अन्तिम भाग उपनिषत् कुछ तो पद्यमय हैं और कुछ गद्यमय, कतिपय उपनिषदोंमें गद्य और पद्य दोनों उपलब्ध होते हैं।

वेदाङ्गोंमें शिक्षाग्रन्थ पाणिनिशिक्षा आदिमें पद्य हैं, कुछमें गद्य पद्य दोनों हैं। कल्पोंके तीन भेद हैं श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। सूत्रग्रन्थोंमें हमें संक्षिप्त गद्यका स्वरूप मिलता है। धर्मसूत्रमें गद्य और पद्य दोनोंका संमिश्रण मिलता है। व्याकरण, और छन्द दोनों गद्यमें हैं। व्याकरणमें सूत्र और वार्तिक गद्यमय हैं। पतञ्जलिमुनिके महाभाष्यमें प्रश्नोत्तर रूपमें हमें उत्कृष्ट गद्यका स्वरूप मिलता है। निरुक्त भी गद्यमय है, ज्यौतिष पद्यमय है। वेदके उपाङ्गोंमें आयुर्वेद—

चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता दोनोंमें गद्य पद्य दोनों उपलब्ध होते हैं। आधुनिक वाग्भटसंहिता, शार्ङ्गधर संहिता भावप्रकाश, माधवनिदान केवल पद्यमय हैं। अर्थशास्त्रमें बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, कौटलीय अर्थशास्त्र गद्यमय हैं, उनमें भी कहीं-कहीं पद्य उपलब्ध हैं। तन्त्रग्रन्थ भी अधिकतर पद्यमय ही हैं।

लौकिक साहित्यमें पद्यका आविर्भाव सबसे पहले वाल्मीकिरामायणसे हुआ। निषादके बाणसे क्रौञ्चपक्षीकी हत्या होनेसे वाल्मीकि मुनिके हृदयमें करुणा और शोककी तीव्रतासे—

"मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

इस प्रकार जो वाक्य प्रादुर्भूत हुआ वह छन्दोबद्ध होनेसे पद्यात्मक हुआ। अनन्तर शापरूप वाक्यके मुखसे निकल जानेसे मुनिको अपने अनौचित्यकी प्रतीति हुई और पश्चात्ताप भी हुआ, तब ब्रह्मदेवने अवतीर्ण होकर उनको रामायण बनानेकी अनुमति दी। उसके फलस्वरूप लोकमें "वाल्मीकि-रामायण" नामका पद्यात्मक प्रबन्ध आदिकाव्यके रूपमें अवतीर्ण हुआ।

तदनन्तर पञ्चमवेदके रूपमें संमत "महाभारत" भी पद्यमय है, उसमें अपवाद रूपमें कहीं-कहीं गद्यका भी दर्शन होता है। ब्रह्मपुराण आदि अठारह पुराण कल्किपुराण आदि उपपुराण भी पद्यमय ही हैं। श्रीमद्भागवतमें पञ्चमस्कन्धमें कुछ गद्यात्मक वाक्य भी उपलब्ध होते हैं। पीछेसे पद्यमें अतिप्रचलनसे साधारणता होनेसे छन्दके वशमें होनेसे भावविस्तरकी न्यूनतासे तथा विषयवस्तुकी सरलता होनेसे भी "गद्य" का प्रचलन चल पड़ा। न्याय आदि दर्शनग्रन्थ सबके सब गद्यमय हैं। इसी तरह वात्स्यायनमुनिकृत कामसूत्र भी गद्यात्मक है, कहीं कहीं उसमें विशेष वक्तव्य विषय पद्यमें भी दृष्टिगोचर होते हैं। यह तो हुआ संस्कृत वाङ्मयमें गद्य और पद्यकी स्थितिका सामान्य वर्णन।

अब काव्यमें उसमें भी गद्यकाव्यका वर्णन करनेके लिए उपक्रम करते हैं। विश्वनाथ कविराजने दृश्य और श्रव्य इस प्रकार काव्यके दो भेदोंको लिखा है। दृश्य = अभिनेय अर्थात् नाटक आदि माने गये हैं। श्रव्य काव्यके दो भेद हैं गद्य और पद्य। छन्दोबद्ध पदको "पद्य" कहते हैं। पद्यकाव्यके भेद खण्डकाव्य और महाकाव्य आदि हैं। उनके विषयमें हमें कुछ कहना नहीं है। छन्दके बन्धनसे रहित वाक्यको "गद्य" कहते हैं। गद्यके चार भेद माने गये हैं, मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिका-प्राय और चूर्णक। समासरहित गद्यको मुक्तक, छन्दके अंशसे युक्तको "वृत्तगन्धि" दीर्घ समासवालेको "उत्कलिकाप्राय" और अल्प समासवाले गद्यको "चूर्णक" कहते हैं। ये हुए गद्यके भेद और लक्षण। गद्यकाव्यके दो भेद हैं, कथा और आख्यायिका। विश्वनाथ कविराज साहित्यदर्पणमें कथाका लक्षण लिखते हैं—

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ॥ ६–३३२ ॥
क्वचिदत्र भवेदार्या, क्वचिद्वक्त्राऽपवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः, खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ॥ ६–३३३ ॥

अर्थात् कथामें गद्योंसे ही रचा गया सरस इतिवृत्त होता है। इसमें कहीं आर्या, और कहीं वक्त्र और अपवक्त्रक छन्द होते हैं। इसमें आरम्भमें पद्योंसे देवताओंका नमस्कार किया जाता है और सज्जन और दुर्जन आदिके चरित्रका वर्णन होता है। कथाके उदाहरण दण्डी कविका दशकुमारचरित, महाकवि बाणभट्टकी कादम्बरी और धनपालकृत तिलकमञ्जरी आदि हैं।

इसी तरह विश्वनाथ कविराज आख्यायिकाका लक्षण करते हैं—

"आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशाऽनुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित् ॥ ६–३३४ ॥

कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बद्ध्यते ।
आर्यावक्त्राऽपवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् ।। ६–३३५ ।।

अर्थात् आख्यायिका कथाकी सदृश होती है, भेद ये हैं कि इसमें कविके कुलका वर्णन रहता है, और अन्य कवियोंका भी चरित्र वर्णित होता है तथा कहीं-कहीं पद्य भी रहता है । कथाके अंशोंका परिच्छेद "आश्वास" नामसे निबद्ध होता है । आर्या, वक्त्र और अपवक्त्र इन छन्दोंके मध्यमें जिस किसी भी छन्दसे भिन्न विषयके वर्णनके बहानेसे आश्वासके आदि भागमें आनेवाले विषयकी सूचना होती है । इसका उदाहरण है हर्षचरित । इसी तरह पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, पुरुषपरीक्षा आदि ग्रन्थोंका आख्यायिकामें अन्तर्भाव करना चाहिए ।

अब प्रकृत विषयमें कुछ कहना चाहते हैं । संस्कृतके गद्यकाव्योंमें तीन कवि 'अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, वे हैं दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट । यद्यपि इनके समयमें विद्वानोंका पर्याप्त मतभेद है तथाऽपि हम बहुमतके आधारपर कुछ लिखते हैं ।

दण्डी

बहुतसे विद्वानोंके मतमें सबसे प्राचीन गद्यकाव्यके कवि दण्डी हैं । संभवतः उन्होंने पद्यकाव्यकी भी रचना की होगी । "कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः ।" इत्यादि उक्तियां दण्डीके कवित्वका प्रतिपादन करती हैं । इसी तरह—

"जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत् ।
कवी इति ततो व्यासे, कवयस्त्वयि दण्डिनि ।।"

अर्थात् कोई सहृदय विद्वान् कहते हैं कि जगत्में वाल्मीकिके प्रादुर्भूत होनेपर उनके लिए "कवि" ऐसी संज्ञा हुई, अनन्तर व्यासके प्रादुर्भूत होनेपर उन्हें भी यह संज्ञा उपलब्ध हुई । हे कविराज दण्डिन् ! आपके प्रादुर्भूत होनेपर वह संज्ञा आपको भी प्राप्त हो गई, इस प्रकार लोकमें तीन कवि हो गये हैं । इसी तरह दण्डीकी रचनाओंके विषयमें "बृहच्छार्ङ्गधर-पद्धति" में कविराज राजशेखरके नामसे यह पद्य है—

"त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ।।"

अर्थात् दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय ये तीन अग्निदेव, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीन देव, ऋक्, यजुः और साम ये तीन वेद, सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण इसी प्रकार दण्डी कविके तीन प्रबन्ध स्वर्ग, मर्त्य (लोक) और पाताल तीन लोकोंमें विख्यात हैं । इनमें एक तो गद्यकाव्य कथाके रूपमें प्रसिद्ध दशकुमारचरित है, और दूसरा काव्यका लक्षण-ग्रन्थ काव्यादर्श माना जाता है । परन्तु तीसरे प्रबन्धके विषयमें पर्याप्त मतभेद है । कोई "छन्दोविचिति" नामका ग्रन्थ जो संभवतः छन्दोंका लक्षण होगा उसे मानते हैं, कोई "अवन्तिसुन्दरी कथा" जो अपूर्ण है, उसे मानते हैं तो कोई "मुकुटताडितक" नामक ग्रन्थको मानते हैं जो संभवतः नाटक है । दण्डीने आन्ध्र, और चोल देशोंका, काबेरी नदीका और काञ्चीके पल्लवगणोंका उल्लेख किया है तथा वैदर्भी रीतिकी प्रशंसा भी की है इससे अनुमान होता है कि वे दाक्षिणात्य थे । इसी तरह—

"लक्ष्म लक्ष्मीं तनोतीति प्रतीतं सुभगं वचः ।" काव्या० १–४५ ।

अर्थात् लक्ष्म (चिह्न) लक्ष्मी (शोभा) का विस्तार करता है यह मनोहर वचन प्रतीत होता है । कहना नहीं पड़ेगा कि यह वचन महाकवि कालिदासके—

"मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।" (१–१७)

अभिज्ञानशाकुन्तलकी इस उक्तिको लक्ष्य कर कहा गया है। इस प्रकार दण्डी कालिदासके परवर्ती प्रतीत होते हैं।

इसी तरह दण्डीने काव्यादर्श में—

"सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्।" (१–३४)

इस प्रकार प्रवरसेनकी प्रशंसा की है। कल्हणकी राजतरङ्गिणीकी उक्तिके अनुसार प्रवरसेन खृष्टकी छठी शताब्दीमें थे, अतः दण्डी कवि छठी शताब्दीसे परवर्ती हैं। इसी प्रकार दण्डी और सुबन्धुकी भाषा और रीतिकी तुलना करनेपर दण्डी सुबन्धुसे पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। अब दण्डीके दशकुमारचरितके विषयमें कुछ लिखते हैं—दशकुमारचरित अपूर्ण ग्रन्थ है, उसकी पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिकाको संयुक्तकर परवर्ती किसी लेखकने उसे पूर्ण कर दिया है। संस्कृत साहित्यमें जैसे शूद्रककृत मृच्छकटिक प्रकरण राज्यविप्लवकी घटनासे संयुक्त होकर अपूर्व स्थान रखता है, उसी तरह दशकुमारचरित भी यथार्थवादका अवलम्बन कर अनोखी प्रणालीका प्रदर्शन करता है। आरम्भमें मगध देशके राजा राजहंसके पराक्रमका और उनकी रानी वसुमतीके रूपका गौडी रीति और ओज गुणसे मनोरम वर्णन किया गया है। राजहंसका मालव देशके राजा मानसारसे युद्ध होता है पहले वे जीतते हैं, पीछे हारकर विन्ध्यगिरिका आश्रय लेते हैं। वहींपर उनके पुत्र राजवाहनका जन्म होता है। शिक्षा प्राप्त कर मन्त्री आदिके नौ पुत्रोंके साथ उनकी मैत्री होती है और वे सब विजयके लिए पृथक-पृथक् अभियान करते हैं, पीछे संकेत स्थानमें सब जुट जाते हैं और अपनी-अपनी विक्रम-कथाका वर्णन करते हैं। सबलोग राजा राजहंसके पास जाते हैं और मानसारको परास्त कर मगध-देशके शासनमें लग जाते हैं, कथाका मूल भाग इतना है। इस काव्यमें अद्भुतरस प्रधान है, इसमें चरित्र और पात्रोंका बाहुल्य है, एवम् चौर्यविद्या, रमणीहरण, गुप्तप्रणय, दूतीप्रेषण आदि अनेक-अनेक विचित्र वर्णन हैं। इन सबको देखनेसे उस समयका सामाजिक चित्र जघन्यरूप होनेपर भी यथार्थतासे उतारा गया है। जो हो, इसमें वर्णनशक्ति अतिशय चमत्कारपूर्ण है वसन्तवर्णन, सन्ध्यावर्णन, यमलोकवर्णन, नायक राजवाहनके साथ अवन्तिसुन्दरीका मनोरम प्रणय इत्यादि विषय दण्डीके अपूर्व कवित्व-शक्तिका परिचय दे रहे हैं। इसमें भाषा अत्यन्त मनोरम, अनुप्रासगर्भित होकर अतिशय आकर्षक है। यद्यपि दण्डीने अपने लक्षणग्रन्थमें वैदर्भी रीतिकी प्रशंसा की है तथाऽपि दशकुमारचरितमें हमें वैदर्भी रीतिके साथ गौडी रीतिका भी स्थान-स्थान पर उपलब्धि होती है दीर्घसमास आदि भी बहुत जगह दृष्टिगोचर होते हैं। उपमा और रूपक आदि अलङ्कार भी ग्रन्थको अलङ्कृत कर रहे हैं। "दण्डिनः पदलालित्यम्" यह कथन नितान्त सत्य प्रतीत होता है।

सुबन्धु

संस्कृतके गद्यकाव्यमें दण्डीके अनन्तर सुबन्धुका स्थान उपलब्ध है। "राघवपाण्डवेय" काव्यके कर्ता बारहवीं शताब्दीके कविराज कवि—"सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः। वक्रोक्तिमार्ग-निपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा॥" ऐसा लिखकर वक्रोक्तिमें सबसे पहले "सुबन्धु" का उल्लेख करते हैं। सुबन्धुके भी समयके विषयमें विद्वानोंका पर्याप्त मतभेद है। खृष्टकी आठवीं शताब्दीके वामन आचार्यने अपनी काव्याऽलङ्कार-सूत्रवृत्तिमें सुबन्धुकी वासवदत्ता तथा बाणभट्टकी कादम्बरीसे उदाहरणोंका प्रदर्शन किया है, इसलिए इन दोनोंका समय ७५० ई० के पूर्व होना चाहिए। ७००–७२५-के मध्य भागमें रचित प्राकृतकाव्य "गउडवहो" में सुबन्धुका उल्लेख उपलब्ध होता है। बाणभट्टने अपनी कादम्बरीमें अपनी रचनाके विषयमें "अतिद्वयी कथा"। अर्थात् दो कथाओंको अतिक्रमण करनेवाली कथा ऐसा लिखा। इसमें एक कथाका तात्पर्य है गुणाढ्यसे पैशाची भाषामें निर्मित बृहत्कथामें, तथा दूसरी कथाका तात्पर्य है सुबन्धुकृत वासवदत्तामें, अतः सुबन्धु बाणभट्टसे पूर्ववर्ती हैं।

इसी तरह बाणभट्टने हर्षचरित आख्यायिकामें—

"कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥" ११॥

इस पद्यमें जो "वासवदत्ता" का उल्लेख किया है, उसका तात्पर्य सुबन्धु-कृत वासवदत्ता नामकी कथामें है यह बहुतसे विद्वानोंका अभिमत है। इस प्रकार बाणभट्टने अपने दो गद्यकाव्योंमें अर्थात् कादम्बरी कथामें और हर्षचरित आख्यायिकामें जो 'वासवदत्ताका उल्लेख किया है वह सुबन्धुकृत वासवदत्ता ही है इसमें सन्देह नहीं। बाणभट्ट सप्तम शताब्दीके मध्यभागमें थे ऐसा माना जाता है।

सुबन्धुकी वासवदत्ता नामकी एक ही आख्यायिका वा कथा उपलब्ध है। उन्होंने उसे स्वयम् ही—

"प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपञ्चविन्यासवैदग्ध्यनिधिप्रबन्धम्।
सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः॥"

ऐसा लिखकर "प्रत्यक्षरश्लेषमय" बताया है। वास्तवमें यह कथन यथार्थ है। श्लेषमें उनका मुकाबला कोई भी कवि नहीं कर सकता है। उन्होंने वासवदत्तामें एक स्थानमें "न्यायस्थिति-मिवोद्योतकरस्वरूपाम्" और दूसरे स्थानपर "बौद्धसङ्गतिमिवाऽलङ्कारभूषिताम्" ऐसा लिखा है। न्यायवार्तिककार न्यायाचार्य उद्योतकर मुनि और बौद्धसङ्गत्यलङ्कारकार धर्मकीर्ति खृष्टकी छठीं शताब्दीमें हुए थे ऐसी ऐतिहासिक विद्वानोंकी सम्मति है। इसी तरह सुबन्धुने दण्डीकी छन्दोविचितिका भी उल्लेख किया है। फलतः सुबन्धुको छठी शताब्दीके अन्त्यभाग और सातवीं शताब्दीके प्रारम्भ भागमें रखा जा सकता है। वासवदत्ताका कथानक "बृहत्कथा" से लिया गया है। सुबन्धुने उसे आलङ्कारिक ढङ्गसे सजाकर परिष्कृत स्वरूपसे प्रकाशित किया है। इसकी कथा इस प्रकारसे है—राजपुत्र कन्दर्पकेतु स्वप्नमें एक लावण्यमयी राजकुमारीको देखता है। वह उसका अन्वेषण करनेके लिए अपने मित्र मकरन्दके साथ बाहर जाता है। उसी तरह पाटलीपुत्रकी राजकुमारी वासवदत्ता भी स्वप्नमें एक राजपुत्रको देखती है, और उसका अन्वेषण करनेके लिए अपनी दूतीको बाहर भेजती है। कन्दर्पकेतु विन्ध्यपर्वतके वनमें एक पक्षिदम्पतिकी बातचीतमें इस घटनाको सुन लेता है। अनन्तर कन्दर्पकेतु और वासवदत्ताका साक्षात्कार होता है, परन्तु पाटलीपुत्रराज वासवदत्ताका विवाह दूसरेसे कराना चाहता है, इस बातको जानकर वे दोनों भाग जाते हैं। वासवदत्ताके पिताकी सेना उन दोनोंका पीछा करती है। वे दोनों एक निषिद्ध उपवनमें पहुँचते हैं। वहाँपर वासवदत्ता पाषाणके रूपमें परिणत हो जाती है। तब कन्दर्पकेतु आत्महत्या करनेपर तत्पर होता है, "तुम्हारी अपनी प्रियासे संमेलन होगा आत्महत्या मत करो" ऐसी आकाशवाणी सुननेपर कन्दर्पकेतुने दुःखके साथ प्रतीक्षा की। एक दिन कन्दर्पकेतुने संयोगवश उस पत्थरका स्पर्श किया वासवदत्ता अपने पूर्व शरीरमें लौट आई उन दोनोंका समागम हुआ और आनन्दपूर्वक समय बीतने लगा। इतनी छोटी कथाके आधारपर सुबन्धुने अपनी कल्पनाका विस्तार किया, श्लेषके रूपमें अनेक शास्त्रीय-पदार्थोंका प्रदर्शन कर अपनी संस्कृतभाषामें असाधारण शक्ति दिखलाई है। उनके वाक्य भी छोटे-छोटे हैं, पर कविके प्रत्यक्षर श्लेषप्रदर्शन करनेकी धुनमें तत्पर होनेसे रचना अत्यन्त दुरूह हो गई है। तथाऽपि यह रचना सरस मनोहर वर्णनसे परिपूर्ण और विद्वानोंका मनोरञ्जन करनेवाली है इसमें सन्देह नहीं। सुबन्धु काश्मीरके वा उज्जयिनीके रहनेवाले हैं इसमें मतभेद है। ये कवि वैदिक आचार-सम्पन्न थे। इस काव्यकी श्रीकृष्णसूरि, जगद्धर, त्रिविक्रम, तिम्मय्यसूरि और शिवराम आदि विद्वानों-ने टीका की है। कुछ अंशमें बाणभट्टने इसकी शैलीका अनुहरण किया है, यह अनुमान होता है।

बाणभट्ट

सुबन्धुके अनन्तर बाणभट्टका प्रसङ्ग आता है। अन्य कवियोंके समान इनका समय और चरित्र तिरोहित नहीं है। बाणभट्ट कान्यकुब्जाऽधिपति शिलादित्य हर्षवर्द्धनके सभाकवि थे। हर्षवर्द्धनका समय खृष्ट ६०६ से ६४७ तक माना जाता है, बाणभट्टका भी वही समय है। बाणभट्टकी रचनाएँ— हर्षचरित (आख्यायिका), कादम्बरी (कथा), पार्वतीपरिणय (नाटक) और मुकुटताडितक (नाटक) मानी जाती हैं। हर्षचरितके प्रथम उच्छ्वासके कथनके अनुसार बाणभट्टके वंशके मूलपुरुष वत्स नामके विद्वान् ब्राह्मण थे। विन्ध्यप्रदेशके हिरण्यवाह (शोण) नामक महानदके तीरस्थित प्रीतिकूट नामके ग्राममें उनका निवास था। बाणभट्ट वात्स्यायन गोत्रमें उत्पन्न कुबेरके प्रपौत्र थे। ये कुबेर गुप्त उपपदवाले राजाओंसे पूजित थे। वे अर्थपतिके पौत्र और चित्रभानुके पुत्र थे। उनकी माता राजदेवी नामकी थी "भत्सु" नामके विद्वान् उनके गुरु थे, और पुत्र भूषणभट्ट नामके थे। चन्द्रसेन और मातृषेण उनके असवर्ण भाई थे। भाषाकवि ईशान बाणभट्टके परम मित्र थे। उनके शैशवकालमें ही माताका स्वर्गवास हुआ, और उनकी चौदह वर्षकी उम्रमें पिताजीका परलोकवास हुआ। अनन्तर वेदशास्त्रके विद्वान् बाणभट्टने बाल-सुलभ चपलतासे देशान्तर देखनेकी इच्छासे पितृपितामहोंसे उपार्जित वैभवको भूलकर विद्याव्यासङ्गकी परवाह न कर मित्रोंके साथ घरसे निकल कर पर्यटन करते हुए अनेक राजकुलोंकी सेवा कर बहुत समय बिताया। पीछे वे फिर अपनी जन्मभूमिमें लौटे। तब विवाह कर गृहस्थाश्रममें उन्होंने प्रवेश किया। बाणभट्टकी प्रसिद्धि सुनकर श्रीहर्षके सहोदर श्रीकृष्णने उन्हें बुलाया। तब उन्होंने कान्यकुब्जमें जाकर श्रीहर्षके सभाभवनमें महाकविपद प्राप्त किया। बाणभट्टने श्रीहर्षके चरित्रका आलम्बन कर आठ उच्छ्वासोंवाली हर्षचरित नामक आख्यायिकाकी रचना की। उसमें प्रथम उच्छ्वासमें स्थित महाकविके वंशवर्णनके अनुसार कुछ विषयोंका यहां गुम्फन किया गया है।

हर्षचरितमें हर्षवर्द्धनके पिता राज्यवर्द्धनकी मृत्यु, हर्षके ज्येष्ठभ्राता प्रभाकरवर्द्धनकी हत्या, उनकी भगिनी राज्यश्रीके पति ग्रहवर्माकी हत्या और गौडराजके विरुद्ध अभियान और राज्यश्रीका उद्धार आदि अनेक घटनाओंका वर्णन है। हर्षचरित ऐतिहासिक तत्त्वको निरूपण करनेके उद्देश्यसे रचित नहीं, हर्षवर्द्धनके जीवनको कतिपय घटनाओंका अवलम्बन कर रचा गया है। इसमें आलङ्कारिक रूपसे वर्णन-बाहुल्य ही कविका अभीष्ट है। श्लेष आदि अलङ्कारोंका प्रदर्शन, समासबाहुल्य और गौडी रीतिका अवलम्बन कविका उद्दिष्ट विषय है। श्रीहर्षकी प्रथम रचना होनेसे यह कादम्बरीकी तरह मनोरम नहीं है, परन्तु दशकुमारचरित और वासवदत्ताकी अपेक्षा इसकी रचना आकर्षक है, क्लिष्टपदोंकी अधिकता होनेपर भी यह वासवदत्ताकी सदृश दुरूह नहीं है। इसका विशेषत: प्रथम उच्छ्वास तो अतिशय मनोहर है। यह ग्रन्थ भी अपूर्ण ही प्रतीत होता है। यह ग्रन्थ पहलेके कवियोंका समय दिखलानेके लिए अतिशय उपयोगी है। इसके आरम्भिक श्लोकोंमें निम्नस्थ कवियोंकी और ग्रन्थोंकी चर्चा है—वासवदत्ता, भट्टार हरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा और आढ्यराज। बाणभट्टने आत्मकथामें अपने सहवासमें रहे हुए निम्नसे निम्न व्यक्तियोंका भी उल्लेख किया है अत: ये अतिशय सहृदय प्रतीत होते हैं। कादम्बरी बाणभट्टकी दूसरी और मुख्यरचना है। यह गद्यकाव्यमें कथाके रूपमें परिगणित है। अतिशय खेदसे कहना पड़ता है कि यह भी हर्षचरितकी ही सदृश अपूर्ण है। कहा जाता है कि बाणके चार पुत्र थे, वैयाकरण, साहित्यिक, ज्यौतिषी और वैद्य। जब उनका अन्तकाल निकटवर्ती प्रतीत हुआ तब उन्होंने "मेरे ग्रन्थका अवशिष्ट भाग कौन पूर्ण करेगा ?" ऐसा पूछा। तब ज्यौतिषी और वैद्य तो चुप रहे। बाणभट्टने निकटस्थित वृक्षको दिखाकर पूछा—"यह क्या है"। तब वैयाकरण पुत्रने उत्तर दिया—

"शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे" अर्थात् "यह सूखा पेड़ आगे खड़ा है"। तब उन्होंने वही प्रश्न साहित्यिक पुत्रसे किया तो उन्होंने उत्तर दिया—"नीरसतरुरिह विलसति पुरतः" अर्थात् यह नीरस वृक्ष आगे शोभित हो रहा है"। वर्णनशैलीसे प्रभावित होकर बाणभट्टने उन्हीं पुत्रको अवशिष्ट कथांशको सुनाकर कादम्बरीको पूर्ण करनेके लिए आज्ञा दी। बाणभट्टके पूर्वोक्त पुत्रका नाम कुछ लोग भूषण-भट्ट और कुछ लोग पुलिन्दभट्ट वा पुलिनभट्ट कहते हैं। परन्तु दशम शताब्दीके तिलकमञ्जरीकार धनपालने बाणभट्टकी प्रशंसाके प्रसङ्गमें—

"केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान्कवीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्दकृतसन्निधिः॥"

ऐसा लिखकर बाणपुत्रका नाम "पुलिन्द" ऐसा सङ्केत किया है। यद्यपि बाणभट्टकी प्रतिभा-प्रसूत कादम्बरीके पूर्वार्द्धका जो वर्णनसौष्ठव और विशेषता है वह उत्तरभागमें कहाँ। पर उसमें भी वर्णनकी विचित्रता और कमनीयता है, इसका अपलाप करना अन्याय होगा। कादम्बरीके उत्तरार्द्ध-कार बाणभट्टपुत्र कितने निरभिमान और पितृभक्त थे, यह बात उनके इस पद्यसे जानी जाती है—

"याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव च मया न कवित्वदर्पात्॥

वे ही भूषणभट्ट कादम्बरीको प्रशंसाके साथ-साथ उसकी पूर्तिके लिए अपनी अयोग्यता समझकर किस प्रकार सङ्कोच जताते हैं—

"कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाऽप्यनुसन्दधानः॥ ७॥

कादम्बरीका कथानक गुणाढ्यकी पैशाची भाषामें संगृहीत बृहत्कथासे लिया गया है। बाण-भट्टने उसे अपने कल्पनाकौशलसे पात्रोंके नाम आदिमें और तत्तत्स्थलमें परिवर्तन कर अतिशय मनोहर रूपमें परिष्कृत किया है। इसमें गौडो रीतिका उत्कृष्ट प्रदर्शन है। "शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।" सूक्तिमुक्तावलीस्थ कह्लणकी इस उक्तिके अनुसार पाञ्चाली रीतिका भी इसमें अच्छी तरह परिपाक देखा जाता है। "ओजःसमासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम् (१-८०)" दण्डीके काव्यादर्शमें स्थित इस उक्तिके अनुसार गद्यकाव्यके जीवन स्वरूप ओज गुण और समासबाहुल्य इसमें अनुपम रूपमें परिलक्षित होते हैं। यह दशकुमारचरितकी तरह पात्रोंकी बहुलतासे कथानक न अव्यक्तप्राय है, न वासवदत्ताके समान प्रत्यक्षर श्लेषसे उद्वेगकारक है, न तो हर्षचरितके समान क्लिष्ट पदोंकी भरमारसे अर्थबोधमें क्लेशकारक है, प्रत्युत उत्तरोत्तर कथाभागके ज्ञानकी उत्सुकता और वर्णनकी प्रचुरतासे मनोरञ्जन होनेसे लम्बे-लम्बे अवतरणोंके होनेपर भी इसमें धैर्यके बांधका भङ्ग नहीं होता है।

हर्षचरित और कादम्बरी ये दोनों ग्रन्थ भारतवर्षकी सातवीं शताब्दीके राष्ट्रिय और सामाजिक चरित्रको सजीवरूपसे चित्रित करते हैं। इन दोनों ग्रन्थोंके सिवाय बाणभट्टके मुकुटताडितक, शारदचन्द्रिका और पार्वतीपरिणय इन तीन रूपकोंका उल्लेख पाया जाता है। उनमें पहलेके दो रूपक उपलब्ध नहीं हैं, तीसरा उपलब्ध तो है परन्तु उसमें बाणभट्टकी शैली नहीं पाई जाती है। इनके अतिरिक्त, शिवाऽष्टक और चण्डीशतक नामके दो स्तोत्र-ग्रन्थ भी बाणभट्टके बतलाये जाते हैं।

संस्कृत साहित्यमें पद्यकाव्योंकी अपेक्षा गद्यकाव्यकी विरलता है। इसका कारण उसके वर्णनके निर्वाहमें काठिन्य प्रतीत होता है। पद्यकाव्यमें कुछ न्यूनता प्रतीत होनेपर छन्द आदिकी

परतन्त्रताका बहाना किया जासकता है, परन्तु गद्यकाव्यमें यह बात नहीं है। उसकी रचनामें अत्यन्त निपुणताको आवश्यकता है। इसी कारण "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" गद्य कवियोंकी योग्यता जांचनेकी कसौटी मानी जाती है।

कादम्बरीमें कथानककी दृष्टिसे, अलङ्कारोंकी दृष्टिसे, वर्णनीय विषयोंकी व्यापकताकी दृष्टिसे, शास्त्रीय पाण्डित्यकी दृष्टिसे और भी अन्य किसी भी दृष्टिसे निरीक्षण करनेपर उसकी लोकोत्तरता सर्वजनसम्मत है। उसका स्थान विश्वके गद्यकाव्योंमें असाधारण है। क्या भावपक्ष, क्या कलापक्ष क्या लोकचरित्र क्या शास्त्रीयतत्त्व, क्या अन्तर्जगत् और क्या बाह्य जगत् कविने अपनी सूक्ष्म दृष्टिसे समस्त विषयोंका आकलन कर अपनी लेखनीसे कादम्बरीको उद्भासित किया है। इसकी भाषा, शैली और वर्णनकी मधुरता और व्यापकताके कारण ही "बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्" अर्थात् समस्त जगत् बाणका उच्छिष्ट है, बाणने वर्णनीय किसी भी विषयको नहीं छोड़ा है अतएव यह उक्ति निर्भ्रान्ति सत्य है। इसकी निरतिशय आकर्षकतासे "कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते" अर्थात् कादम्बरीके रसके आस्वादकोंको आहार भी रुचिकर नहीं है, यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। इसमें उपमा, श्लेष, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास और समासोक्ति आदि अलङ्कार यथास्थान संनिविष्ट होकर इसकी सुषमा बढ़ा रहे हैं। इसमें राजा शूद्रक, उनकी सभा, चाण्डालकन्या, शुक, विन्ध्याटवी, अगस्त्याश्रम, हारीत, जाबालिका आश्रम, जाबालि, प्रभात, मृगया, सन्ध्या, रात्रि, प्रभात, उज्जयिनी, राजा तारापीड, उनकी महारानी विलासवती, राजाके मन्त्री शुकनास, राजा और रानीको सन्तान न होनेसे दुःख, राजाको विलासवतीको सान्त्वना, अनुष्ठान-विशेषसे चन्द्रापीडनामक पुत्रकी प्राप्ति, शुकनासको पुण्डरीकनामक पुत्रकी प्राप्ति इत्यादि अनेकाऽनेक वृत्तान्त भरे गये हैं। महाश्वेताका पातिव्रत्य, कादम्बरी और चन्द्रापीडका प्रणयवर्णन, कपिञ्जलका निःस्वार्थ मित्रप्रेम इसमें आदर्श रूपमें दृष्टिगोचर होता है। इसमें वर्णनकी ऐसी झड़ी है पन्नेके पन्ने कहीं पर्वत कहीं वन कहीं मुन्याश्रम कहीं अच्छोदसरोवर आदि अगणित विषय नेत्रोंके सम्मुख नाचते-से प्रतीत होते हैं। इसमें राजकुमार चन्द्रापीडके प्रति शुकनासका राजनीतिका उपदेश कैसा विस्तीर्ण और हृदयङ्गम है। पत्रलेखा नामकी परिचारिकाकी आदर्श स्वामिभक्ति किसके हृदयको आकृष्ट नहीं करती है? अतएव यह बात अतिशय सत्य है कि—"**कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।**" अर्थात् कादम्बरीके रसके आस्वादकोंको आहार भी रुचिकर नहीं है। इसके साथ साथ कादम्बरीमें समास आदिकी और वर्णनको जटिलता और श्लेष आदि अलङ्कारोंकी प्रचुरता पाठकोंको कहीं कहीं धैर्य भङ्गका भी प्रसङ्ग आ सकता है, जिससे किसीने इसके गद्यभागकी हिंस्रजन्तुओंसे भरे जङ्गलसे तुलना का है।

वास्तवमें विचारपूर्वक निरीक्षण करनेसे यह कथन ग्रन्थके अनधिकारी और श्रमभीरु जनोंको भले ही ठीक लगे, परन्तु अधिकारी और श्रमपरायण सहृदयोंको इसके अनुभवसे वर्णनातीत आनन्दकी अनुभूति होती है। किसी भी विषयके आनन्दकी प्राप्तिके लिए परिश्रम अपेक्षित हैं "**न हि सुखं दुःखैर्विना लभ्यते।**" दुःख किये विना सुख नहीं पाया जाता है, इस बातको कौन नहीं जानता है? इसकी लोकोत्तर मनोहरता और वर्णनसौष्ठवके लिए विश्वकी एकमात्र वैज्ञानिक एवम् लचीली भाषा संस्कृतका प्रभाव, संस्कृतमें बाणभट्टका असाधारण अधिकार, उनकी सूक्ष्म प्रतिभा; लोकवृत्त तथा शास्त्रोंकी पारदर्शिता और देशाटन आदिसे उत्पन्न उनका अनुभव ये सब विशेष कारण हैं, इसमें सन्देह नहीं। कादम्बरीके यथार्थ वर्णनके लिए एक स्वतन्त्र ग्रन्थ अपेक्षित है इसलिए इस विषयका यहीं अवसान करते हैं।

जयन्तभट्टके पुत्र विद्वद्वर अभिनन्दने कादम्बरी-कथासारनामक बहुत ही मनोहर पद्यात्मक प्रबन्धकी रचना की है। कादम्बरीमें सम्प्रति चार टीकाएँ उपलब्ध हैं पहली—अकबर बादशाहके

आश्रित महोपाध्याय भानुचन्द्र और सिद्धचन्द्रकी टीका, दूसरी म० म० हरिदास सिद्धान्तवागीशकी टीका, तीसरी मोरेश्वर रामचन्द्र कालेकी टीका (अंग्रेजी टिप्पणीसे युक्त), चौथी—आचार्य श्रीकृष्ण-मोहनशास्त्रीकी टीका (हिन्दी अनुवादसे युक्त) ।

पठन पाठनमें छात्रोंको सौकर्यकी दृष्टिसे मैंने पहली, तीसरी और चौथी टीकाका आपाततः निरीक्षण कर सरलतासे बोध करानेके लिए अपने अन्यग्रन्थोंकी टीका चन्द्रकलाके समान अभिनव चन्द्रकलाको परिष्कृत रूपसे अनुवादके साथ उद्भासित किया है । इसमें मैं कहां तक कृतकार्य हूँगा इसमें गुणग्राहक, कृतवेदी विद्वद्गण और छात्रगण प्रमाण हैं ।

माता हेमकुमारिका सुकृतिनी, श्रीदेवचन्द्रः पिता—
सूरिर्यस्य सहोदरौ कृतिवरौ श्रीकृष्णपूर्णाऽभिधौ ।
भारद्वाजकुलाऽब्धिकौस्तुभनिभो गङ्गाधरोद्गुरुः
शेषाख्यः स धरासुरः समकरोद्व्याख्यामिमां प्राञ्जलाम् ॥ १ ॥

सौजन्यधन्यकृतिवल्लभदासगुप्त-स्नेहाऽनुबद्धहृदयेन मया सयत्नम् ।
छात्रोपकारपरतामभिलक्ष्य चैषा श्रीबाणभट्टकृतिसद्विवृतिर्व्यधायि ॥ २ ॥

कार्यान्तरापतनजातमहाऽन्तराय-जातेन दोषनिचयेन भवेत्प्रमादः ।
हंसोपमाः सुमनसः प्रगुणाऽनुरागात् क्षाम्यन्तु निर्भरतरं विनिवेदनं मे ॥ ३ ॥

सं० २०३६
रामनवमी
ब्रह्माघाट, वाराणसी

शेषराजशर्मा

कथासार

कथामुख

विदिशा नामकी राजधानीमें शूद्रक नामके प्रसिद्ध राजा थे । एक दिन उनके दरबारमें एक चाण्डालकन्याने आकर वैशम्पायन नामके तोतेको राजाको सौंपा । राजाके पूछनेपर तोता अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाने लगा—हे राजन् ! मुझे जनकर जब मेरी माताकी मृत्यु हुई उसी समयसे मेरे पिता मेरा पालन करने लगे । एक दिन एक शिकारीने मेरे पिताको मार डाला, उसकी नजर बचाकर मैंने किसी प्रकार अपनेको बचाया । पंखोंके नहीं उगनेसे मैं रेंगकर जब पानीकी खोजमें किसी तरह चलने लगा तब जाबालिमुनिके पुत्र हारीत मुझे अपने पिताके आश्रममें ले आये । मुझे देखकर जाबालिमुनि मेरा वृत्तान्त इस प्रकार सुनानेलगे ।

कथाऽऽरम्भ

उज्जयिनीमें तारापीड नामके प्रतापी राजा रहते थे । उनकी पत्नी विलासवती नामकी थीं । शुकनासनामक एक विद्वान् ब्राह्मण उनके मन्त्री थे । राजदम्पतिको सन्तान न होनेसे बहुत खेद था । महाकालकी उपासनासे राजाका चन्द्रापीड-नामक और मन्त्रीका वैशम्पायन नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । राजाने उन दोनोंको नगरसे बाहर एक विद्यामन्दिरमें रखकर तत्तद्विषयोंके विद्वानोंसे विद्याओं और कलाओंमें शिक्षित बनाया । बारह सालके अनन्तर स्नातक होकर, परस्पर परम मित्रता रखकर वे दोनों नगरमें रहने लगे । वहींपर मन्त्री शुकनासने राजकुमार चन्द्रापीडको राजनीतिका अत्यन्त उपयोगी उपदेश दिया । तारापीडने राजकुमारको युवराज पदमें अभिषेक कर इन्द्रायुध नामक एक अद्भुत घोड़ा दिया । उनकी सेवाके लिए पत्त्रलेखा नामकी एक बन्दिनी राजकुमारी ताम्बूलकरङ्क-वाहिनीके रूपमें सौंपी गई । तब राजकुमार अपने मित्र वैशम्पायनके साथ दिग्विजय करनेके लिए निकले । तीन वर्षों तक विजयलाभ करते हुए चन्द्रापीड आगे बढ़ते गये । एक बार मृगयाके प्रसङ्गमें राजकुमार दो किन्नरोंका पीछा करते हुए अपने शिबिरसे बहुत दूर चले गये, किन्नरयुगल अदृश्य हुए । चन्द्रापीडने अच्छोद सरोवरके तटपर तपस्या करती हुई एक अतिसुन्दरी गौरकाया महाश्वेता नामकी गन्धर्वराजकुमारीको देखा । राजपुत्रके पूछनेपर महाश्वेताने आत्मकथाके प्रसङ्गमें कपिञ्जल-के मित्र ऋषिपुत्र पुण्डरीकके साथ हुए अपने पूर्वरागको बतलाया । मिलनेके पहले ही विरह सहन न कर सकनेसे पुण्डरीकका मरण होनेसे जब मैंने सती होनेकी इच्छा की तब "तुम आत्महत्या मत करो तुम दोनोंका पुनः सम्मेलन होगा" ऐसी आकाशवाणी हुई और पुण्डरीकके मृत शरीरको एक दिव्यमूर्ति आकाशमार्गसे ले गई । "अरे दुष्ट ! मेरे मित्रको तू कहाँ ले जा रहा है ?" ऐसा कहते हुए उसका पीछा कर कपिञ्जल भी अदृश्य हुए । "उसी समयसे मैं नियमपरायण हो रही हूँ" ऐसा कह-कर महाश्वेताने राजकुमारको फलमूल खानेके लिए दिया । महाश्वेताने राजकुमारकी "गन्धर्वराज-कुमारी कादम्बरी नामकी मेरी सखी मेरी दुःखद घटना सुनकर कौमार्यव्रत धारण कर रही है" ऐसा कहा । महाश्वेता चन्द्रापीडको हेमकूटमें कादम्बरीके पास ले गई । देखनेके अनन्तर ही कादम्बरी और चन्द्रापीड दोनों ही परस्पर प्रणयमें आसक्त हुए । दो तीन दिन वहीं बिताकर चन्द्रापीड अपने शिबिरमें लौटे, उसी समय उनको शीघ्र राजधानीमें आनेके लिए पिताका आदेशपत्र मिला । तब चन्द्रापीडने "पत्त्रलेखाको लेकर तुम पीछे आना" सेनापति पुत्र मेघनादको ऐसी आज्ञा देकर उज्जयिनीके लिए प्रस्थान किया । इस प्रकर राजकुमार मार्गमें द्रविडधार्मिकसे अधिष्ठित चण्डिकाका दर्शन कर उज्जयिनी पहुँचे, और उन्होंने माता-पिता और मन्त्री शुकनासका अभिवादन कर अपने प्रासादमें निवास किया । कुछ दिनके अनन्तर मेघनादके साथ आई हुई पत्त्रलेखाने कादम्बरीकी विरहावस्था और उलहनावाली उनकी उक्तिको भी चन्द्रापीडसे कहा ।

(पूर्वभाग समाप्त)

महाकवि बाणभट्टकी प्रशस्तियां

युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः ।। (सोमेश्वर, कीर्तिकौमुदी)
जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं बाणी बाणो बभूवेति ।। (गोवर्द्धन, आर्यासप्तशती)
रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
तत्किं तरुणी ? नहि नहि बाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ।। (धर्मदाससूरि, विदग्धमुखमण्डन)
वाणीपाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणीम् ।
भावयन्ति कथं नाऽन्ये भट्टबाणस्य भारतीम् ।। (गङ्गादेवी)
शश्वद्बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रञ्जितो जनः ।। (त्रिविक्रमभट्ट, नलचम्पू)
सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा ।। (कविराज, राघवपाण्डवीय)
श्लेषे केचन, शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चाऽपरेऽ–
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चाऽन्ये कथावर्णने ।
आसर्वत्रगभीरधीरकविताविन्ध्याऽटवीचातुरी–
सञ्चारे कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ।। (चन्द्रदेवकवि)
"बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्यशक्तिं न केऽत्र कवितासु मुदं त्यजन्ति ।
मान्द्यं न कस्य च कवेरिह कालिदास-वाचां रसेन रसितस्य भवत्यधृष्यम् ।।
वागीश्वरं हन्त भजेऽभिनन्दमर्थेश्वरं वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं स्तौमि च कालिदासं, बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ।।
श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नामैव केवलमजायत, वस्तुतस्तु ।
गीर्हर्ष एष निजसंसदि येन राज्ञा संपूजितः कनककोटिशतेन बाणः ।।" (सोड्ढल, उदयसुन्दरी०)
हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ।। (त्रिलोचनभट्ट)
सहर्षचरितारब्धाद्भुतकादम्बरीकथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दा भ्रमति क्षितौ ।। (राजशेखर)
प्रतिकविभेदनबाणः कवितातरुगहनविहरणमयूरः ।
सहृदयलोकसुबन्धुर्जयति श्रीबाणभट्टकविराजः ।। (वीरनारायणचरित)
"प्रकटरसाऽनुगुणविकटाऽक्षररचनाचमत्कारितसकल–
कविकुला बाणस्य वाचः ।। (जयन्तभट्ट, न्यायमञ्जरी)
केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान्कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्दकृतसन्निधिः ।। (धनपाल, तिलकमञ्जरी)
"हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः" । (जयदेव, प्रसन्नराघव)
सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीश्वरः ।
श्रीहर्ष इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः ।। (नवसाहसाङ्कचरित)
दण्डिन्युपस्थिते सद्यः कवीनां कम्पतां मनः ।
प्रविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुद्ध्यते ।। (हरिहर)

नायकाऽदि-परिचय

कादम्बरीमें चन्द्रापीड धीरोदात्त और अनुकूल नायक है ।

कादम्बरी परकीया (कन्या) और मुग्धा नायिका है ।

ये दो आलम्बन विभाव हैं ।

चन्द्र और चन्द्रमा अदि उद्दीपनविभाव हैं ।

परस्परनिरीक्षण आदि अनुभाव हैं ।

निर्वेद आदि व्यभिचारिभाव हैं ।

करुणविप्रलम्भ रस अङ्गी । करुण आदि रस अङ्ग हैं ।

रीति मुख्यतः गौडी और पाञ्चाली हैं ।

गुण-ओज और माधुर्य और प्रसाद हैं ।

गद्य उत्कलिकाप्राय अधिक और चूर्णक भी है ।

लक्षण—

धीरोदात्त—	"अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः । स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ।। (सा० द०, ३–३२)
अनुकूल—	"अनुकूल एकनिरतः" । (३–३७)
परकीया—	"परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा ।" (३–६६)
कन्या—	"कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना ।" (३–६७)
मुग्धा—	प्रथमाऽवतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा । कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा ।।" (३–५८)
ओज—	ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते ।। ८–४ ।।
माधुर्य—	चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते । संभोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात् ।। ८–२ ।।
प्रसाद—	चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवाऽनलः ।। ८–७ ।। स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।
उत्कलिकाप्राय—	अन्यत् (उत्कलिकाप्रायम्) दीर्घसमासाढ्यम् ।। ६–३३२ ।।
चूर्णकम्—	तुर्यमल्पसमासकम् ।। ६–३३२ ।।

॥ श्रीः ॥

कादम्बरी

चन्द्रकला-संस्कृतहिन्दीव्याख्योपेता

मङ्गलाचरणम्

रजोजुषे जन्मनि, सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां, प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ १ ॥

भण्डाऽसुराऽऽदिविबुधारिनिषूदनेन
भक्तप्रसादनपरेण समीहितेन ।
याऽऽस्ते श्रुतिस्मृतिनुता हितहेतुभूता
तां लोकपालनपरां ललितां नमामि ॥ १ ॥

अथ कविकुलललामभूतो महाकविर्बाणभट्टः प्रारिप्सितग्रन्थनिर्विघ्नपरिसमाप्तिकामो नतिरूपं मङ्गलमाचरति—रजोजुष इति ।

अन्वयः प्रजानां जन्मनि रजोजुषे, स्थितौ सत्त्ववृत्तये, प्रलये तमःस्पृशे, (अत एव) सर्गस्थितिनाशहेतवे, त्रयीमयाय त्रिगुणाऽऽत्मने अजाय नम इत्यन्वयः ।

रजोजुष इति । प्रजानां = जनानां, जन्मनि = उत्पत्तौ, रजोजुषे = रजोगुणयुक्ताय । स्थितौ = मर्यादायां, सत्त्ववृत्तये = सत्त्वगुणयुक्ताय, प्रजानामितिशेषः । एवं परत्राऽपि । प्रलये = संहारे, तमःस्पृशे = तमोगुणयुक्ताय, अत एव सर्गस्थितिनाशहेतवे = सृष्टिमर्यादासंहारकारणाय, त्रयीमयाय = ब्रह्मविष्णुमहेश्वररूपाय यद्वा वेदस्वरूपाय, त्रिगुणाऽऽत्मने = रजःसत्त्वतमोगुणस्वरूपाय, स्वयं तु अजाय = जन्मरहिताय, नाशरहिताय चेति ऊह्यम् । तादृशाय ईश्वराय नमः ॥ १ ॥

टिप्पणी—प्रजानां=प्रजायन्त इति प्रजाः, तासाम् प्र + जन् + डः (उपपद०) + आम् । रजोजुषे = रजो जुषत इति रजोजुट्, तस्मै, रजस् + जुष् + क्विप् (उपपद०) + ङे । सत्त्ववृत्तये = सत्त्वे वृत्तिः यस्य सः, तस्मै (व्यधिकरण-बहु०) । तमःस्पृशे = तमः स्पृशतीति तमःस्पृक्, तस्मै, "स्पृशोऽनुदके क्विन्" इति तमस् + स्पृश् + क्विन् (उपपद०) + ङे । सर्गस्थितिनाशहेतवे = सर्गश्च क्षितिश्च नाशश्च सर्गस्थितिनाशाः (द्वन्द्व०), तेषां हेतुः, तस्मै (ष० त०) । त्रयीमयाय = त्रयी एव त्रयीमयं तस्मै, त्रयी + मयट् (स्वरूप अर्थमें) । त्रिगुणाऽऽत्मने = त्रयो गुणा एव आत्मा यस्य सः, तस्मै (बहु०) । अजाय = न जायत इत्यजः, तस्मै, नञ् + जन् + डः + ङे, "अन्येष्वपि दृश्यते" इस सूत्रसे ड प्रत्यय (उप०) "नमः" इस पदके योगमें "नमःस्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च" इससे चतुर्थी । वंशस्थं वृत्तम् । "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" ॥ १ ॥

प्रजाओंके सृष्टिकालमें रजोगुणवाले (ब्रह्मरूप), स्थितिकालमें सत्त्वगुणवाले (विष्णुरूप), संहारकालमें तमोगुणवाले (महेश्वररूप) जन्मरहित, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन तीन स्वरूपोंसे युक्त अथवा वेदस्वरूप त्रिगुण (सत्त्व, रज और तम) स्वरूप अज जन्मरहित ईश्वरको नमस्कार है ॥१॥

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता दशास्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः ।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥ २ ॥
जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्ध-लक्ष्यया ।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—बाणाऽसुरमौलिलालिता दशाऽऽस्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः सुराऽसुराऽधीशशिखाऽन्तशायिनो भवच्छिदः त्र्यम्बकपादपांसवो जयन्ति ॥ २ ॥

जयन्तीति । बाणाऽसुरमौलिलालिताः = बाणदैत्यमुकुटोपसेविताः, दशाऽऽस्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः = रावणशिरोमणिसमूहस्पर्शिनः, सुराऽसुराऽधीशशिखाऽन्तशायिनः = देवदैत्यस्वामिचूडाप्रान्ताऽवस्थानशीलाः, भवच्छिदः = संसारदुःखनाशकाः, त्र्यम्बकपादपांसवः = महेश्वरचरणरेणवः, जयन्ति = सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते ॥ २ ॥

टिप्पणी—बाणाऽसुरमौलिलालिताः = न सुरः असुरः (नञ्), विरोध अर्थमें नञ् । बाणश्चाऽसौ असुरः (क० धा०) । तस्य मौलिः (ष० त०), तेन लालिताः (तृ० त०) । दशाऽऽस्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः = दश आस्यानि यस्य सः (बहु०), तस्य चूडाः (ष० त०), तासु मणयः (स० त०), तेषां चक्रं (ष० त०), तत् चुम्बन्तीति (उपपद०) । सुराऽसुराऽधीशशिखाऽन्तशायिनः = सुराश्च असुराश्च (द्वन्द्व०), तेषाम् अधीशाः, (ष० त०) तेषां शिखाः (ष० त०), तासाम् अन्ताः (ष० त०), तेषु शेरते तच्छीलाः (उपपद०) । भवच्छिदः = भवं छिन्दन्ति इति (उपपद०) । त्र्यम्बकपादपांसवः = त्र्यम्बकस्य पादौ (ष० त०), तयोः पांसवः (ष० त०) । जयन्ति = जि + लट् + झिः, यहाँ पर "जि" धातु अकर्मक है । वंशस्थवृत्तम् ॥ २ ॥

अन्वयः—स उपेन्द्रो जयति, यो बिभित्सया दूरतः क्षणलब्धलक्ष्यया कोपाऽरुणया दृशा एव रिपोः उरः भयात् स्वयम् अस्रपाटलं चकार ॥ ३ ॥

जयन्तीति । सः = श्रुतिस्मृतिपुराणप्रसिद्धः, उपेन्द्रः = विष्णुः, नृसिंहाऽवतारधारीति भावः, जयति = सर्वोत्कर्षेण वर्तते, यः = उपेन्द्रः, बिभित्सया = विदारणेच्छया दूरतः = विप्रकृष्टप्रदेशात् एव, क्षणलब्धलक्ष्यया = अल्पकालप्राप्तलक्ष्यया, कोपाऽरुणया = क्रोधरक्तवर्णया, दृशा एव = दृष्ट्या एव, न तु नखरेणाऽपीति भावः । रिपोः = शत्रोः, हिरण्यकशिपोरिति भावः । उरः = वक्षःस्थलम्, भयात् = विदारणभीतेः, स्वयम् = आत्मना एव । अस्रपाटलम् = रुधिरसमरक्तवर्णं चकार = कृतवान् ॥ ३ ॥

टिप्पणी—सः = यह पद यहाँपर प्रसिद्ध अर्थमें है अतः 'यः" इस पदके न होनेपर भी विधेयाऽविमर्श दोष नहीं होता है । बिभित्सया = भेत्तुम् इच्छा बिभित्सा, तया, भिद् + सन् + अ + टाप् + टा । दूरतः = दूरात् इति, दूर + तसिः (अव्यय) क्षणलब्धलक्ष्यया = लब्धं लक्ष्यं यया सा लब्धलक्ष्या (बहु०), क्षणं लब्धलक्ष्या, तया "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इससे द्वितीया और "अत्यन्तसंयोगे च" इससे द्वि० त० । कोपारुणया = कोपेन अरुणा, तया (तृ० त०) । अस्रपाटलम् = अस्रम् इव पाटलं तत् "उपमानानि सामान्यवचनैः" इससे (उपमान क० धा०) । चकार = कृ + लिट् + तिप् (णल्) । उत्प्रेक्षा अलङ्कार । वंशस्थवृत्तम् ॥ ३ ॥

बाणाऽसुरके मुकुटसे उपसेवित, रावणके मस्तकोंके मणिसमूहका स्पर्श करनेवाली देवता और दैत्योंके स्वामियोंके शिरके समीप रहनेवाली और संसारको दूर करने वाली महेश्वरके चरणोंकी धूलियाँ अत्यन्त उत्कर्षसे रहती हैं ॥ २ ॥

प्रसिद्ध विष्णु (नृसिंह अवतार लेनेवाले) सबसे उत्कर्षपूर्वक रहते हैं, जिन्होंने कि विदारण करनेकी इच्छासे दूरसे ही अल्पक्षणमें ही लक्ष्यको प्राप्त करनेवाले क्रोधसे लाल नेत्रसे ही, शत्रु (हिरण्यकशिपु)के वक्षःस्थलको विदारणके भयसे स्वयम् रुधिरके समान लाल वर्णवाला बना डाला ॥ ४ ॥

नमामि भत्सोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्च्चनम् ।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिका-विटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि ॥ ४ ॥

सज्जनदुर्जनयोः स्तुतिनिन्दे

अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात् कस्य भयं न जायते ।
विषं महा रिव यस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निहितं सदा मुखे ॥ ५ ॥

अन्वयः—सशेखरैः मौखरिभिः कृतार्चनं समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि भत्सोः[1] चरणाम्बुजद्वयं नमामि ॥ ४ ॥

नमामीति । अथ "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥" इति शास्त्रवचनमनुसृत्य देवभक्तिप्रदर्शनाऽनन्तरं गुरुभक्तिं प्रदर्शयति—नमामीति । सशेखरैः = शिरोभूषणसहितैः, मौखरिभिः = क्षत्रियभूपविशेषैः, कृतार्चनं = विहित-पूजनं, समस्तसामन्तेत्यादिः = संपूर्णमण्डलेश्वरमुकुटपरिष्कृतभूम्युन्नतप्रदेशस्थान-घृष्टरक्ताङ्गुलि, भत्सोः= तन्नामकस्य आचार्यस्य, चरणाम्बुजद्वयं = पादकमलयुग्मं, नमामि = नमस्करोमि ॥ ४ ॥

टिप्पणी—सशेखरैः = शेखरेण सहिताः सशेखराः, तैः "तेन सहेति तुल्ययोगे" इससे तुल्ययोग-बहुव्रीहि, "वोपसर्जनस्य" इस सूत्रसे विकल्पसे 'सह'के स्थानमें 'स' आदेश । कृतार्चनं = कृतम् अर्चनं यस्य, तत् (बहु०) । समस्तसामन्तेत्यादिः = समस्ताश्च ते सामन्ताः (क० धा०), तेषां किरीटानि (ष० त०), "अथ मुकुटं किरीटं पुंनपुंसकम् ।" इत्यमरः । समस्तसामन्तकिरीटानि एव वेदिका (रूपक०) । तस्या विटङ्कः (ष० त०), स एव पीठम् (रूपक०) । उल्लुठिता अत एव अरुणा अङ्गुलयो यस्य तत् (बहु०) । समस्त० पीठे उल्लुठिता० (स० त०) । तत् । चरणाम्बुजद्वयं = चरणौ अम्बुजे इव (उपमित०), तयोर्द्वयं, तत् (ष० त०) । नमामि = "णम प्रह्वत्वे शब्दे" धातुसे लट् + मिप् । इस पद्यमें उपमा और रूपकका निरपेक्ष भावसे स्थिति है अतः संसृष्टि अलङ्कार है । वंशस्थ वृत्त है ॥ ४ ॥

अन्वयः—अकारणाऽऽविष्कृतवैरदारुणात् असज्जनात् कस्य भयं न जायते, महाऽहेः मुखे सुदुःसहं विषम् इव यस्य मुखे सुदुःसहं दुर्वचः सदा संनिहितम् ॥ ५ ॥

अकारणेति । कथाया नियममनुसृत्य खलादेर्वृत्तं कीर्तयति—अकारणाऽऽविष्कृत-वैरदारुणात् = निर्हेतुप्रकाशितविरोधभीषणात्, असज्जनात् = दुर्जनात्, कस्य = जनस्य, भयं = भीतिः, न जायते = न उत्पद्यते, महाऽहेः = विशालसर्पस्य, मुखे = आनने, सुदुःसहम् = अतिदुर्मर्षणं, विषम् इव = गरलम् इव, यस्य = असज्जनस्य, मुखे = वक्त्रे, सुदुःसहम्, दुर्वचः = दुष्टवचनं, सदा = सर्वदा संनिहितं = निकटस्थं, भवतीति शेषः ॥ ५ ॥

टिप्पणी—अकारणाऽऽविष्कृतवैरदारुणात् = न कारणम् (नञ्), अकारणम् (यथा तथा, क्रि० वि०) आविष्कृतम्, "सुप्सुपा०" । तच्च तत् वैरं (क० धा०), तेन दारुणः, तस्मात् (तृ० त०) । असज्जनात् = संश्चाऽसौ जनः (क० धा०) न सज्जनः, तस्मात् (नञ्०), "भीत्रार्थानां भयहेतुः" इससे अपादानसंज्ञा होनेसे "अपादाने पञ्चमी" इस सूत्रसे पञ्चमी । जायते = "जनी प्रादुर्भावे" धातुसे लट् + त । महाऽहेः = महांश्चाऽसौ अहिः, तस्य (क० धा०) । सुदुःसहं =

मुकुटोंसे युक्त मौखरिवंशके क्षत्रिय राजाओंसे पूजित, सम्पूर्ण मण्डलेश्वरोंके मुकुटरूप वेदिके उन्नत प्रदेशपर घर्षणसे लाल उंगलियों वाले भत्सु नामक गुरुजीके चरणकमल-युग्मको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

विना कारणके विरोधसे भयङ्कर दुर्जनसे किसे भय नहीं होता है ? विशाल सर्पके मुखमें विषके समान जिस दुर्जनके मुखमें अत्यन्त दुःसहनीय दुष्ट वचन सर्वदा निकट रहता है ॥ ५ ॥

---

१. भत्सोः "भर्वोः" इति च पाठान्तरे ।

कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनशृङ्खला इव ।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥ ६ ॥
सुभाषितं हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम् ।
तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम् ॥ ७ ॥

दुःखेन सोढुं शक्यं दुःसहम्, "ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्राऽर्थेषु खल्" इससे खल् प्रत्यय । दुस् + सह + खल् (उपपद०) । अत्यन्तं दुःसहम् (गति०) दुर्वचः = दुष्टं वचः (गति०) । सदा=सर्वस्मिन् काले, "सर्व" शब्दसे "सर्वैकाऽन्यकियत्तदः काले दा" इस सूत्रसे दा प्रत्यय । "सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि" इससे 'सर्व'के स्थानमें वैकल्पिक "स" आदेश । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है । वंशस्थ छन्द है ॥५॥

अन्वयः—कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलाः कटु क्वणन्तो बन्धनशृङ्खला इव अलं तुदन्ति । सन्तस्तु मणिनूपुरा इव साधुध्वनिभिः पदे पदे मनो हरन्ति ॥ ६ ॥

सम्प्रति ग्रन्थकार उपमाप्रदर्शनपूर्वकं पूर्वार्द्धेन खलस्योत्तरार्द्धेन सज्जनस्य वृत्तं वर्णयति—**कट्विति** । कटु = तीक्ष्णं, क्वणन्तः = ब्रुवन्तः, मलदायकाः = मिथ्याकलङ्कारोपकाः, खलाः = दुर्जनाः, कटु = तीव्रं, क्वणन्तः = शब्दायमानाः, मलदायकाः = मालिन्यसंक्रामकाः, स्पर्शोत्तरमिति शेषः । बन्धनशृङ्खला इव = बन्धलोहनिगडा इव । अलम् = अत्यर्थं, तुदन्ति = पीडयन्ति । सतां दुर्जनेभ्योऽन्तरं प्रदर्शयति—**मनस्त्विति ।** सन्तस्तु = सज्जनास्तु, मणिनूपुरा इव = रत्नखचितमञ्जीरा इव । साधुध्वनिभिः = उपकारकवचनैः, मणिनूपुरपक्षे—मनोहरक्वणितैः, पदे पदे = प्रतिशब्दं, मणिनूपुरपक्षे—प्रतिपादन्यासं, मनः = चित्तं, हरन्ति = आकर्षन्ति ॥ ६ ॥

टिप्पणी—कटु = क्रि० वि० । क्वणन्तः = क्वण + लट् (शतृ०) + जस् । मलदायकाः = मलस्य दायकाः (ष० त०) । खलाः = "पिशुनो दुर्जनः खलः" इत्यमरः । बन्धनस्य शृङ्खलाः (ष० त०) । अलं = क्रि० वि० । तुदन्ति = "तुद व्यथने" लट् + झिः । सन्तः = अस् + लट् (शतृ०) + जस् । साधुध्वनिभिः = साधवश्च ते ध्वनयः, तैः (क० धा०) । मणिनूपुराः = मणिखचिता नूपुराः, "शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तर पदलोपस्योपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे मध्यमपदलोपी समास । हरन्ति = "हृञ् हरणे" लट् + झिः । पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें दो उपमाओंकी संसृष्टि अलङ्कार है । वंशस्थ छन्द है ॥ ६ ॥

अन्वयः—सुभाषितं हारि (अपि) दुर्जनस्य गलात् अर्करियोः अमृतम् इव अधो न विशति । तत् एव सज्जनो हरिः अतिनिर्मलं महारत्नम् इव हृदयेन धत्ते ॥ ७ ॥

सुभाषितमिति । सुभाषितं = मनोहरवचनं, काव्यादिकमिति भावः, हारि = आकर्षकम्, अपि, दुर्जनस्य = खलस्य, गलात् = कण्ठात्, अर्करिपोः = सूर्यशत्रोः, राहोरिति भावः, अमृतम् इव = पीयूषम् इव । अधः = अधोभागे, न विशति = न प्रविशति, दुर्जनपक्षे सहृदयत्वाऽभावादर्करिपुपक्षे उदराऽभावादिति भावः । तत् एव = सुभाषितम् एव, सज्जनः = साधुजनः, गुणग्राहक इति भावः । हरिः = भगवान् विष्णुः, अतिनिर्मलम् = अतिशयस्वच्छं, महारत्नम् इव = कौस्तुभमणिम् इव, हृदयेन = सज्जनपक्षे-मनसा, हरिपक्षे-वक्षःस्थलेन, धत्ते = दधाति ॥ ७ ॥

टिप्पणी— सुभाषितं = शोभनं भाषितम् (गति०) । हारि = हरतीति तच्छीलं, हृञ् + णिनिः +

कड़वा वचन बोलते हुए, मिथ्याकलङ्कका आरोप करते हुए दुर्जनलोग । तीक्ष्ण ध्वनि करती हुई, छूनेपर जंगका मैल लगा देनेवाली बन्धनकी बेड़ीके समान अत्यन्त पीडित करते हैं । जैसे मणिखचित नूपुर, मनोहर, ध्वनियोंसे पग-पग पर चित्तको आकृष्ट करते हैं उसी तरह सज्जन लोग तो उपकारक वचनोंसे प्रत्येक शब्दमें मनको आकृष्ट कर लेते हैं ॥ ६ ॥

सुन्दर वचन (काव्य आदि), मनोहर होता हुआ भी दुर्जनके गलेसे राहुके गलेसे अमृतके समान नीचे

कथाप्रशंसा

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ ८ ॥
हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥ ९ ॥

सुः । दुर्जनस्य = दुष्टो जनः, तस्य (गति०) । गलात् = अपादानमें पञ्चमी । अर्करिपोः = अर्कस्य-रिपुः, तस्य (ष० त०) । विशति = विश + लट् + तिप् । सज्जनः = संश्चासौ जनः (क० धा०) । अतिनिर्मलम् = अत्यन्तं निर्मलं, तत् (गति०) । महारत्नं = महच्च तत् रत्नं, तत् (क० धा०) । "आन्महतः समानाऽधिकरणजातीययोः" इससे आत्व । हृदयेन = करणमें तृतीया । धत्ते = धा + लट् । त । इस पद्यमें दो उपमाओंका संसृष्टि अलङ्कार है । वंशस्थ छन्द है ॥ ७ ॥

अन्वयः—स्फुरत्कलाऽऽलापविलासकोमला शय्यां स्वयम् अभ्युपागता अभिनवा कथा वधूः इव रसेन जनस्य हृदि कौतुकाऽधिकं रागं करोति ॥ ८ ॥

स्फुरदिति । स्फुरत्कलाऽऽलापविलासकोमला = संचलन्मनोहरशब्दरचनामाधुर्यमृदुला, शय्यां = शब्दगुम्फं, वधूपक्षे—तल्पं, स्वयम् = आत्मना एव, अभ्युपागता = संप्राप्ता । अभिनवा = नूतना, कथा = प्रबन्धकल्पना, वधूः इव = ललना इव । रसेन = प्रेम्णा, जनस्य = लोकस्य, हृदि = हृदये, कौतुकाऽधिकं = कुतूहलप्रचुरं, रागं = प्रीतिं, करोति = विदधाति, यथा नवपरिणीता वधूः शय्या-मागता हृदि प्रीतिं जनयति तथैव शब्दगुम्फं संप्राप्ता नवीना कथाऽनुरागमुत्पादयतीति भावः ॥ ८ ॥

टिप्पणी- स्फुरत्० = कलश्चाऽसौ आलापः (क० धा०), स्फुरंश्चाऽसौ कलाऽऽलापः (क० धा०), तस्य विलासः (ष० त०), तेन कोमला (तृ० त०) । शय्यां = "शय्यास्याच्छयनीयेऽपि गुम्फनेऽपि च योषिति ।" इति मेदिनी । कथा = "प्रबन्धकल्पना कथा" इत्यमरः । कौतुकाऽधिकं = कौतुकेन अधिकः, तम् (तृ० त०) । करोति = "(डु) कृञ् करणे" धातुसे लट् + तिप् । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार और वंशस्थ छन्द है ॥ ८ ॥

अन्वयः—उज्ज्वलदीपकोपमैः चम्पककुड्मलैः निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रज इव उज्ज्वल-दीपकोपमैः नवैः पदार्थैः उपपादिता, निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयः कथाः कं न हरन्ति ? ॥ ९ ॥

हरन्तीति । उज्ज्वलदीपकोपमैः = विशददीपसदृशैः, चम्पककुड्मलैः = हेमपुष्पमुकुलैः, निरन्तर-श्लेषघनाः = अविच्छेदसंघटननिविडाः, सुजातयः = सुन्दरमालतीपुष्पयुक्ताः, महास्रजः = पुष्पमालाः, इव, उज्ज्वलदीपकोपमैः = स्फुटदीपकोपमाऽलङ्कारयुक्तैः, नवैः = नूतनैः, पदार्थैः = अभिधेयैः, उप-पादिताः = रचिताः, निरन्तरश्लेषघनाः = अविच्छेदश्लेषाऽलङ्कारप्रचुराः, सुजातयः = मनोहराः अथवा सुन्दरच्छन्दोविशेषयुक्ताः, कथाः = प्रबन्धकल्पनाः, कं = सहृदयं जनं, न हरन्ति = नो वशीकुर्वन्ति ? ॥ ९ ॥

टिप्पणी—उज्ज्वलदीपकोपमैः = उज्ज्वलाश्च ते दीपकाः (क० धा०), ते उपमा येषां, तैः

प्रवेश नहीं करता है । उसी (सुभाषित) को सज्जन, जैसे भगवान् विष्णु अत्यन्त निर्मल महारत्न (कौस्तुभ) को हृदयसे धारण करते हैं वैसे ही मनमें धारण कर लेता है ॥ ७ ॥

शोभित मनोहर आभाषाणकी मधुरतासे कोमल शब्दयोजनावाली नई कथा, शोभमान मनोहर आलापके विलाससे सुकुमार और शय्याको स्वयं प्राप्त नवपरिणीता वधूकी तरह अनुरागसे लोकके हृदयमें प्रचुर कौतुकको उत्पन्न करती है ॥ ८ ॥

उज्ज्वल दीपोंके समान चम्पकपुष्पोंके मुकुलोंसे विच्छेदके बिना संघटनसे घनी चमेलीके फूलोंसे युक्त मनोहर पुष्पमालाओंकी समान स्फुट दीपक और उपमा अलङ्कारोंसे युक्त नये पदार्थोंसे रची हुई लगातार श्लेष अलङ्कारसे घनी मनोहर अथवा जाति नामके छन्दोंसे युक्त कथाएँ किस सहृदय जनको आकृष्ट नहीं करती हैं ॥ ९ ॥

कविवंशवर्णनम्

बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम् ।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयम्भुवः ॥ १० ॥
उवास यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे ।
सरस्वती सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे ॥ ११ ॥

(बहु०) । चम्पककुड्मलैः = चम्पकानां कुड्मलाः तैः (ष० त०) यहाँ कुड्मल कहनेसे विकासोन्मुख कुड्मल लिये जाते हैं । निरन्तरश्लेषघनाः = निर्गतम् अन्तरम् यस्मिन्, (कि० वि०) । निरन्तरं श्लेषः (सहसुपा०) तेन घनाः (तृ० त०) । सुजातयः = शोभना जातयो यासु ताः (बहु०) । "सुमना मालती जातिः" इत्यमरः । महास्रजः = महत्यश्च ताः स्रजः (क० धा०) । उज्ज्वलदीपकोपमैः = उज्ज्वला दीपका उपमा येषु, तैः (बहु०) । निरन्तरश्लेषघनाः = श्लेषेण घनाः (तृ० त०), निरन्तरं श्लेषघनाः (सुप्सुपा०) सुजातयः = शोभना जातिर्यासां ताः (बहु०) । "पद्यं चतुष्पदी, तत्र जातिर्वृत्तमिति द्विधा ।" इस उक्तिसे यहाँपर "जाति" शब्दसे "जाति" नामक छन्दोविशेष भी लिया जाता है । हरन्ति = "हृञ् हरणे" धातुसे लट् + झि । इस पद्यमें भी उपमा और अर्थापत्तिसे सङ्कर अलङ्कार और वंशस्थ छन्द है ॥ ९ ॥

अन्वयः— वात्स्यायनवंशसंभवो जगद्गीतगुणः सताम् अग्रणीः अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः स्वयंभुवःअंश इव कुबेरनामा द्विजो बभूव ॥ १० ॥

बभूवेति । वात्स्यायनवंशसंभवः = वात्स्यायनकुलोत्पन्नः । जगद्गीतगुणः = लोकैर्गानविषयीकृतगुणः, सतां = सज्जनानाम्, अग्रणीः = अग्रसरः, अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः = बहुवैश्यपूजितचरणकमलः, स्वयंभुवः = ब्रह्मणः, अंश इव = अवतार इव, कुबेरनामा = कुबेराऽऽख्यः, द्विजः = ब्राह्मणः, बभूव = सञ्जातः ॥ १० ॥

टिप्पणी— वात्स्यायनवंशसंभवः = वात्स्यायनस्य वंशः (ष० त०) । वत्सस्य युवाऽपत्यं पुमान् वात्स्यायनः, वात्स्य शब्दसे "यञिञोश्च" इससे फक् प्रत्यय । वात्स्यायनवंशात् संभवः (उत्पत्तिः) यस्य सः व्यधि० (बहु०) । जगद्गीतगुणः = गीता गुणा यस्य सः (बहु०), जगति गीतगुणः (स० त०) । अग्रणीः = अग्रं नयतीति, अग्र + नी + क्विप् (उपपद०), "अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्यः" इससे णत्व । अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः = अनेके च ते गुप्ताः (क० धा०) । "वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तम्" (मनुः, २–३२) इस उक्तिके अनुसार गुप्त पदसे वैश्य वर्णका बोध होता है । अनेकगुप्तैः अर्चिते (तृ० त०) । पादौ पङ्कजे इव (उपमेय० क० धा०) । अनेकगुप्तार्चिते पादपङ्कजे यस्य सः (बहु०) । स्वयंभुवः = स्वयं भवतीति, तस्य स्वयं + भू + क्विप् (उपप०) । कुबेरनामा = कुबेरो नाम यस्य सः (बहु०) । द्विजः = द्विर्जायत इति, "अन्येष्वपि दृश्यते" इस सूत्रसे जन् + डः । "मातुरग्रेऽधिजननं, द्वितीयं मौञ्जिबन्धने ।" (मनुः, २–१६९) इस उक्तिके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका माताके गर्भसे एक बार जन्म और मौञ्जीबन्धन (उपनयन) में दूसरे बार जन्म होनेसे उन्हें "द्विज" कहते हैं, प्रकृतमें 'द्विज' पदसे ब्राह्मण विवक्षित हैं । बभूव = भू + लिट् + तिप् (णल्) । इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार और वंशस्थ छन्द है ॥ १० ॥

अन्वयः—श्रुतिशान्तकल्मषे पुरोडाशपवित्रिताऽधरे सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे यस्य मुखे सरस्वती सदा उवास ॥ ११ ॥

उवासेति । श्रुतिशान्तकल्मषे = वेदपाठनष्टपापे, पुरोडाशपवित्रिताऽधरे = हविर्भेदपवित्रीकृतोष्ठे ।

वात्स्यायन कुलमें उत्पन्न, जिनके दयादाक्षिण्य आदि गुण लोकमें गाये गये हैं, सज्जनोंमें अग्रसर, अनेक वैश्यलोग जिनके चरणकमलोंको पूजते हैं, ब्रह्माजीके अवतारके समान कुबेर नामके ब्राह्मण हुए ॥ १० ॥

वेदोंके पाठसे पापसे रहित, पुरोडाश (हविर्विशेष)से पवित्र अधरवाले सोमलताके रससे कटु मध्यभागसे

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्त्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥ १२ ॥
हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव, क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव ।
अभूत् सुपर्णो विनतोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः ॥ १३ ॥

सोमकषायितोदरे = सोमलताकटुकीकृतमध्यभागे, समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे = संपूर्णशास्त्रधर्मशास्त्रसुन्दरे, यस्य = कुबेरस्य, मुखे = वदने, सरस्वती = वाग्देवी, सदा = सर्वदा, उवास = उषितवती ॥ ११ ॥

टिप्पणी—श्रुतिशान्तकल्मषे = शान्तं कल्मषं यस्य, तस्मिन् (बहु०) । श्रुत्या शान्तकल्मषं, तस्मिन् (तृ० त०), यहाँपर 'श्रुति' पदसे श्रुतिपाठमें लक्षणा है । पुरोडाशपवित्रिताऽधरे = पवित्रितः अधरः यस्मिंस्तत्, (बहु०) । पुरोडाशेन पवित्रिताऽधरं, तस्मिन् (तृ० त०) । "पुरोडाशो हविर्भेदे चमस्यां पिष्टकस्य च ।" इति मेदिनी । सोमकषायितोदरे = कषायितम् उदरं यस्य तत् (बहु०), सोमेन कषायितोदरं, तस्मिन् (तृ० त०), सोम पदसे सोमलताके रसमें लक्षणा है । समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे = शास्त्राणि च स्मृतयश्च (द्वन्द्व०) समस्ताश्च ताः शास्त्र-स्मृतयः (क० धा०), ताभिर्बन्धुरं, तस्मिन् (तृ० त०) । "बन्धूरबन्धुरौ रम्ये नम्रे, हंसे तु बन्धुरः ।" इति विश्वः । उवास = "वस निवासे" धातुसे लिट् । वंशस्थ छन्द है ॥ ११ ॥

अन्वयः—यस्य गृहे अभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः पञ्जरवर्तिभिः ससारिकैः शुकैः पदे पदे निगृह्य-माणाः शङ्किता वटवः यजूंषि सामानि च जगुः ॥ १२ ॥

जगुरिति । यस्य = कुबेरस्य, गृहे = भवने, अभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः = पुनःपुनरावर्तितसकल-शास्त्रैः, पञ्जरवर्तिभिः = पिञ्जरस्थितैः, ससारिकैः = सारिकासहितैः, शुकैः = कीरैः, पदे पदे = प्रतिपदं, निगृह्यमाणः = आक्षिप्यमाणाः, अत एव शङ्किताः = सञ्जातशङ्काः, वटवः = ब्राह्मणकुमाराः, यजूंषि = यजुर्मन्त्रान्, सामानि = साममन्त्रान् । जगुः = उच्चरितवन्तः । कुबेरगृहे शुकसारिका अपि यजुःसाममन्त्रप्रवीणाः किमुत अन्ये वटव इति भावः ॥ १२ ॥

टिप्पणी—अभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः = प्रकृता वाक् वाङ्मयं, "तत्प्रकृतवचने मयट्" इससे मयट्, वाच् + मयट् । अभ्यस्तं समस्तं वाङ्मयं यैः, तैः (बहु०) । पञ्जरवर्तिभिः = पञ्जरे वर्तन्ते तच्छीलाः, तैः पञ्जर + वृत् + णिनिः (उपपद०) + भिस् । ससारिकैः = सारिकाभिः सहिताः ससारिकाः, तैः, (तुल्ययोग बहु०) । निगृह्यमाणाः = निगृह्यन्त इति, नि + ग्रह + लट् (कर्ममें) (शानच्) + जस् । शङ्किताः = शङ्का संजाता येषां ते, "तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्" इससे इतच् । शङ्का + इतच् । यजूंषि = "अच्छन्दांस्यप्रगीतानि यजूंषि (काव्यमीमांसा), "छन्द और गीतसे रहित वेदमन्त्रविशेषको "यजु" कहते हैं । सामानि = छन्द और गीतिसे युक्त वेदमन्त्रविशेषको "साम" कहते हैं । जगुः = "गै शब्दे" धातुसे लिट् = झि (उस्) । कुबेरके घरमें मैना और तोते भी वेदपाठ करनेवाले ब्राह्मणकुमारोंकी गलतियोंको पकड़ते थे औरोंका क्या कहना है यह भाव है इस पद्यमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है और वंशस्थ छन्द है ॥ १२ ॥

अन्वयः—भुवनाऽण्डकात् हिरण्यगर्भ इव, क्षीरमहार्णवात् क्षपाकर इव, विनतोदरात् सुपर्ण इव ततो द्विजन्मनां पतिः अर्थपतिः अभूत् ॥ १३ ॥

हिरण्येति । भुवनाऽण्डकात् = ब्रह्माण्डात्, हिरण्यगर्भ इव = ब्रह्मा इव, क्षीरमहार्णवात् =

युक्त और संपूर्ण वेद आदि शास्त्र और धर्मशास्त्रके अध्ययनसे मनोहर जिन (कुबेर)के मुखमें सरस्वतीदेवी सदा निवास करती थीं ॥ ११ ॥

जिन कुबेरके घरमें संपूर्ण शास्त्रोंका अभ्यास किये हुए, पिंजड़ेमें रहे हुए मैनाओंके साथ तोतोंसे प्रत्येक पदपर टोके जानेसे शङ्कायुक्त होकर ब्राह्मणकुमार यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंका पाठ करते थे ॥ १२ ॥

जैसे ब्रह्माण्डसे ब्रह्माजी, क्षीरसमुद्रसे चन्द्रमा और विनताके उदरसे गरुड उत्पन्न हुए वैसे हीन कुबेरनामके

विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः ।
उषस्सु लग्नाः श्रवणेऽधिकां श्रियं प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव ॥ १४ ॥
विधानसम्पादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्त्तिभिः ।
मखैरसंख्यैरजयत् सुरालयं सुखेन यो यूपकरैर्गजैरिव ॥ १५ ॥

दुग्धमहासागरात्, क्षपाकर इव = चन्द्र इव, विनतोदरात् = विनताऽऽख्यकश्यपपत्नीकुक्षेः, सुपर्ण इव = गरुड इव, ततः = तस्मात्, प्रकृतात् कुबेरद्विजादिति भावः, द्विजन्मनां = ब्राह्मणानां, पतिः = श्रेष्ठः, अर्थपतिः = अर्थपतिनामकः पुत्रः, अभूत् = संजातः ॥ १३ ॥

टिप्पणी—भुवनाऽण्डकात् = भुवनस्याऽण्डकं, तस्मात् (ष० त०) । हिरण्यगर्भः = हिरण्यं गर्भे यस्य सः (व्यधिकरणबहु०)"हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयंभूश्चतुराननः ।" इत्यमरः । क्षीरमहार्णवात् = महांश्चाऽसौ अर्णवः (क० धा०) क्षीरस्य महार्णवः, तस्मात् (ष० त०) । क्षपाकरः = क्षपां करोतीति तच्छीलः, "कृञो हेतुताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु" इससे टप्रत्यय । क्षपा + कृ + ट (उपपद०) ! "द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः ।" इत्यमरः । विनतोदरात् = विनताया उदरं, तस्मात् (ष० त०) । द्विजन्मनां = द्वे जन्मनी येषां ते द्विजन्मानः, तेषाम् (बहु०) । इस पद्यमें मालोपमा अलङ्कार है ॥१३॥

अन्वयः--नवा नवाः शिष्यगणा दिने दिने उषःसु विसारि वाङ्मयं विवृण्वतः यस्य कर्णे लग्नाः (सन्तः) चन्दनपल्लवा इव अधिकां श्रियं प्रचक्रिरे ॥ १४ ॥

विवृण्वत इति । नवा नवाः = नूतना नूतनाः, शिष्यगणाः = छात्रसमूहाः, दिने दिने = प्रतिदिनम्, उषःसु = प्रातःकालेषु, विसारि = विसरणशीलं, वङ्मयं = शास्त्रं, विवृण्वतः = विवरणं कुर्वतः, यस्य = अर्थपतेः गुरोः, कर्णे = आकर्णने, श्रोत्रे वा, लग्नाः = आसक्ताः सन्तः, चन्दनपल्लवा इव = श्रीखण्डकिसलयानि इव, अधिकां = प्रचुरां, श्रियं = शोभां, प्रचक्रिरे = विस्तारितवन्त इति भावः ॥ १४ ॥

टिप्पणी--शिष्यगणाः = शिष्याणां गणाः (ष० त०) । विसारि = विसरतीति तच्छीलं, वि + सृ + णिनिः + सुः) । विवृण्वतः = विवृणोतीति विवृण्वन्, तस्य, वि + वृञ् + लट् (शतृ) + ङस् । चन्दनपल्लवाः = चन्दनस्य पल्लवाः (ष० त०) । जैसे चन्दनके पल्लव स्त्रियोंके कानमें संलग्न होते हुए अधिक शोभा फैलाते हैं—वैसे ही छात्रगण अर्थपतिके शास्त्रश्रवणमें संलग्न होकर उनकी शोभाको बढ़ाते थे यह भाव है । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १४ ॥

अन्वयः—यो विधानसम्पादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः यूपकरैः गजैः इव विधानसम्पादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः असंख्यैः मखैः सुखेन सुरालयम् अजयत् ॥१५॥

विधानेति । यः = अर्थपतिः, विधानसम्पादितदानशोभितैः = खाद्यविधिविहितमदजलशोभासम्पन्नैः, स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः = संचलन्महाभटयुक्तशरीरैः, यूपकरैः = पशुबन्धनकाष्ठसमशुण्डादण्डैः, तादृशैः, गजैः इव = हस्तिभिः इव, विधानसम्पादितदानशोभितैः = शास्त्रविध्यनुष्ठितवितरणशोभासम्पन्नैः, स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः = दीप्यमानमखाऽग्नियुक्तस्वरूपैः, असंख्यैः = अपरिमितैः, मखैः = यज्ञैः, सुखेन = अनायासेन, सुराऽऽलयं = स्वर्गम् । अजयत् = जितवान्, अलभतेति भावः ॥१५॥

टिप्पणी—विधानसम्पादितदानशोभितैः = विधानेन सम्पादितम् (तृ० त०), तच्च तत् दानं

ब्राह्मणसे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ अर्थपति उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥

नये नये छात्रगण प्रतिदिन प्रातःकाल सविस्तर शास्त्रका विवरण करनेवाले जिन आचार्य अर्थपतिके शास्त्रविवरणके श्रवणमें अथवा कानमें संलग्न होते हुए चन्दनके पल्लवोंके समान अधिक शोभाको फैलाते थे ॥ १४ ॥

जिन अर्थपतिने विशेष खाद्यविधिसे सम्पादित मदजलसे शोभित, प्रकाशमान बड़े योद्धासे युक्त शरीरवाले, यूपके समान लम्बे सूँड़से युक्त हाथियोंके सदृश विधिपूर्वक किये गये दानसे शोभित दीप्यमान यज्ञके अग्निसे युक्त स्वरूप वाले अगणित यज्ञोंसे अनायास ही स्वर्गको जीतलिया (प्राप्त किया) ॥ १५ ॥

स चित्रभानुं तनयं महात्मनां सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम् ।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलामलं क्रमेण कैलासमिव क्षमाभृताम् ॥ १६ ॥
महात्मनो यस्य सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः ।
द्विषन्मनः प्राविविशुः कृतान्तरा गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुरा इव ॥ १७ ॥

(क० धा०), तेन शोभिताः, तैः (तृ० त०), "दानं गजमदे त्यागे" इति विश्वमेदिन्यौ । स्फुरन्महावीरसनाथमूर्तिभिः = स्फुरन्तश्च ते महावीराः (क० धा०) । "महावीरस्तु गरुडे शूरे सिंहे मखाऽनले ।" इति मेदिनी । तैः सनाथा (तृ० त०) तादृशी मूर्तिर्येषां ते (बहु०) । यूपकरैः = यूप इव करो येषां, तैः "करो वर्षोपले रश्मौ पाणौ प्रत्यायशुण्डयोः । "इति मेदिनी । असंख्यैः = अविद्यमाना संख्या येषां, तैः "नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः" इससे नञ्-बहुव्रीहि । सुराणाम् आलयः, तम् (ष० त०) । अजयत् = जि + लङ् + तिप् । इस पद्यमें शाब्दी उपमा है ॥१५॥

अन्वयः—स क्षमाभृतां मध्ये स्फटिकोपलोपमं कैलासम् इव क्रमेण क्षमाभृतां महाऽऽत्मनां श्रुतिशास्त्रशालिनां सुतोत्तमानां मध्ये चित्रभानुं तनयम् अवाप ॥ १६ ॥

स इति । सः = अर्थपतिः, क्षमाभृतां = पर्वतानां, मध्ये = अन्तरे । स्फटिकोपलोपमं = स्फटिक-रत्नसदृशं, कैलासम् इव = शिवपर्वतम् इव, क्रमेण = अनुक्रमेण, क्षमाभृतां = क्षान्तिमतां, महात्मनां = जितेन्द्रियाणां, श्रुतिशास्त्रशालिनां = वेदशास्त्रशोभितानां, सुतोत्तमानाम् = उत्तमपुत्राणां, मध्ये = अन्तरे, चित्रभानुं = चित्रभानुनामकं, तनयं = पुत्रम्, अवाप = प्राप्तवान् ॥ १६ ॥

टिप्पणी—क्षमाभृतां = क्षमां बिभ्रतीति क्षमाभृतः, तेषाम्, क्षमा + भृ + क्विप् (उपपद०) + आम् । "क्षितिक्षान्त्योः क्षमा" इत्यमरः । स्फटिकोपलोपमं = स्फटिकश्चाऽसौ उपलः (क० धा०), "उपलः प्रस्तरे रत्ने शर्करायां तु योषिति ।" इति मेदिनी । स्फटिकोपल उपमा यस्य सः, तम् (बहु०) । महाऽऽत्मनां = महान् आत्मा येषां ते महाऽऽत्मानः, तेषाम् (बहु०) श्रुतिशास्त्रशालिनां = श्रुतयश्च शास्त्राणि च (द्वन्द्वः), श्रुतिशास्त्रैः शाड(ल)न्ते तच्छीलाः, तैः, श्रुतिशास्त्र + शाड़ (लृ) + णिनिः (उपपद०) + आम् । सुतोत्तमानां = सुताश्च ते उत्तमाः, तेषाम् (क० धा०) । अवाप = अव + आप् + लिट् + तिप् (णल्) । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १६ ॥

अन्वयः—नृसिंहस्य नखाऽङ्कुरा द्विषन्मन इव महात्मनो यस्य गुणाः सुदूरनिर्गताः कलङ्क-मुक्तेन्दुकलाऽमलत्विषः सन्तः द्विषन्मनः अपि कृताऽन्तराः सन्तः प्राविविशुः ॥ १७ ॥

महात्मन इति । नृसिंहस्य = भगवतो नरसिंहस्य (श्रीविष्णवतारविशेषस्य), नखाऽङ्कुराः = नखाग्राऽङ्कुराः, द्विषन्मन इव = शत्रु (हिरण्यकशिपु) हृदयम् इव, महात्मनः=महानुभावस्य, यस्य= चित्रभानोः, गुणाः = पाण्डित्यदयादाक्षिण्यादयः, सुदूरनिर्गताः = अतिदूरनिष्क्रान्ताः, सर्वत्र प्रथिता इति भावः । कलङ्कमुक्तेन्दुकलाऽमलत्विषः = निष्कलङ्कचन्द्रकलासमनिर्मलकान्तयः, सन्तः, द्विषन्मनः अपि = शत्रुचित्तम् अपि, कृताऽन्तराः = विहिताऽवकाशाः सन्तः प्राविविशुः = प्रविष्टाः ॥ १७ ॥

टिप्पणी—नृसिंहस्य = ना सिंह इव, तस्य (उपमित०) । नखाऽङ्कुराः = नखानाम् अङ्कुराः (ष० त०) । महात्मनः = महान् आत्मा यस्य स महात्मा, तस्य (बहु०) । सुदूरनिर्गताः = सुदूरं निर्गताः (सुप्सुपा०) । कलङ्कमुक्तेन्दुकलाऽमलत्विषः = कलङ्केन मुक्तः (तृ० त०), स

अर्थपतिने पर्वतोंके बीचमें स्फटिकरत्नके सदृश कैलास पर्वतके समान क्रमसे क्षमासम्पन्न, जितेन्द्रिय उत्तम पुत्रोंके बीच चित्रभानु नामके पुत्रको प्राप्त किया ॥ १६ ॥

जैसे भगवान् नृसिंहके नखाऽङ्कुरोंने शत्रु (हिरण्यकशिपु)के हृदयमें बहुत दूरतक प्रवेश किया था उसी तरह महात्मा जिन चित्रभानुके गुण बहुत दूरतक फैलकर निष्कलङ्क चन्द्रमाकी कलाके समान निर्मल कान्तिवाले होकर शत्रुओंके मनमें भी स्थान बनाकर प्रवेश करते थे ॥ १७ ॥

दिशामलीकालकभङ्गतां　　गतस्त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः ।
चकार यस्याध्वरधूमसञ्चयो मलीमसः शुक्लतरं निजं यशः ॥ १८ ॥
सरस्वतीपाणि-सरोजसम्पुट-प्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः　　।
यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्ततः सुतो बाण इति व्यजायत ॥ १९ ॥

चाऽसौ इन्दुः (क० धा०) । तस्य कलाः (ष० त०) अमला त्विट् येषां ते (बहु०) । कलङ्क-मुक्तेन्दुकला इव अमलत्विषः "उपमानानि सामान्यवचनैः" इससे समास (उपमान० क० धा०) । द्विषन्मनः = द्विषतो मनः, तत् (ष० त०) । कृतान्तराः = कृतम् अन्तरं यैस्ते (बहु०) । प्राविविशुः = प्र + आङ् + विश् + लिट् झिः (उस्) । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १७ ॥

अन्वयः—दिशाम् अलीकाऽलकभङ्गतां गतः त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः यस्य मलीमसः अध्वर-धूमसञ्चयः मलिनः सन् निजं यशः शुक्लतरं चकार ॥ १८ ॥

दिशामिति । दिशां = दिग्वधूनाम्, अलीकाऽलकभङ्गतां = ललाटचूर्णकुन्तलविच्छित्तितां, गतः= प्राप्तः, त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः = श्रुतिनारीश्रोत्रतापिच्छकिसलयं, यस्य = चित्रभानोः, मलीमसः = मलिनः, कृष्णवर्णः इति भावः । अध्वरधूमसञ्चयः = यज्ञधूमसमूहः, निजं = स्वकीयं, यशः = कीर्ति, शुक्लतरम् = अतिशुभ्रं, चकार = कृतवान् ॥ १८ ॥

टिप्पणी— दिशाम् = यहाँपर वधूरूप उपमानका आरोप आर्थ है । अलीकाऽलकभङ्गताम् = अलकानां भङ्गः (ष० त०), "अलकाश्चूर्णकुन्तलाः" इत्यमरः । "भङ्गस्तरङ्गे भेदे च रुग्विशेषे पराजये । कौटिल्ये भयविच्छित्योः" इति हैमः । अलकभङ्गस्य भावः, अलकभङ्ग + तल् + टाप् । अलीके अलकभङ्गता, ताम् (स० त०) । "भाले गोध्यलिकाऽलीकललाटिनि" इति हैमनाममाला । त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः = त्रयी एव वधूः, "मयूरव्यंसकादयश्च" इससे रूपकसमास । "श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी" इत्यमरः । त्रयीमें वधूका आरोप शाब्द है । तस्याः कर्णः (ष० त०) । तमालस्य पल्लवः (ष० त०) । "पल्लवोऽस्त्री किसलयम्" इत्यमरः । त्रयीवधूकर्णे तमालपल्लवः (स० त०) । अध्वरधूमसञ्चयः = अध्वरे धूमाः (स० त०), तेषां सञ्चयः (ष० त०) । शुक्ल-तरम् = अतिशयेन शुक्लं, तत् । "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इस सूत्रसे तरप् प्रत्यय । चकार = (डु) कृञ् + लिट् + तिप् + (णल्) । इस पद्यमें एकदेशविवर्ति रूपक और विरोधाभास अलङ्कारका अङ्गाङ्गिभावरूप सङ्कर अलङ्कार है ॥ १८ ॥

अन्वयः—सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटप्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात् ततो बाण इति सुतो व्यजायत ॥ १९ ॥

सरस्वतीति । सरस्वती० = शारदाकरकमलसंश्लेषप्रोञ्छितहवनपरिश्रमस्वेदजलस्य, यशोंऽशु-शुक्लीकृतसप्तविष्टपात् = कीर्तिकिरणशुभ्रीकृतसप्तलोकात्, ततः = तस्मात् चित्रभानोः, बाण इति = बाण नामकः । सुतः = पुत्रः, अजायत = जातः ॥ १९ ॥

टिप्पणी—सरस्वती० = पाणिः सरोजम् इव (उपमित०) । सरस्वत्याः पाणिसरोजम् (ष० त०), तस्य सम्पुटः (ष० त०) । होमेन श्रमः (तृ० त०) । शीकररूपम् अम्भः (मध्यम-पद०) । होमश्रमस्य शीकराऽम्भः (ष० त०) । सरस्वतीपाणिसरोजसम्पुटेन प्रमृष्टं (तृ० त०), तादृशं होमश्रमशीकराम्भः यस्य, तस्मात् (बहु०) । यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात् = अशुक्लानि

दिशा-रूप नारियोंके ललाटमें अलकोंके कौटिल्यको प्राप्त श्रुतिरूप स्त्रियोंके कानमें तमालपल्लवरूप जिन चित्रभानुके मलिन (कृष्णवर्ण वाले) यज्ञधूमके समूहने अपने वंशको अधिक उज्ज्वल किया ॥ १८ ॥

सरस्वतीके करकमलोंके सम्पर्कसे जिनके हवनके परिश्रमसे उत्पन्न स्वेदजल पोंछा गया था और अपने यशकी किरणोंसे सातों लोकोंको सफेद करने वाले उन (चित्रभानु)से बाण नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया ।
अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा ॥ २० ॥

शुक्लानि यथा सम्पद्यन्ते तथा कृतानि शुक्लीकृतानि, "कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः" इस सूत्र से च्विप्रत्ययः "अस्य च्वौ" इससे अवर्णका ईत्व । यशसः अंशवः (ष० त०), तैः शुक्लीकृतानि (तृ० त०) यशोंऽशुशुक्लीकृतानि सप्त विष्टपानि येन सः, तस्मात् (बहु०) । ततः = तस्मात् इति, तद् शब्द मे "पञ्चम्यास्तसिल्" इस सूत्रमे तसिल् प्रत्यय । अजायत = "जनी प्रादुर्भावे" धातुसे लङ् + त, "ज्ञाजनोर्जा" इस सूत्रमे जन् धातुके स्थानमें 'जा' आदेश । इस पद्यमें सरस्वतीके करकमलसे हवनके आम जलको पोछनेमें सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धके वर्णनसे अतिशयोक्ति और यशके किरणसे सातो लोकोंके श्वेतीकरणमें सम्बन्धके न होनेपर भी सम्बन्धवर्णनसे दूसरी अतिशयोक्ति इस प्रकार उनका संसृष्टि अलङ्कार है ॥ १९ ॥

अन्वयः—द्विजेन तेन अक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसाऽन्धया अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया अतिद्वयी इयं कथा निबद्धा ॥ १९ ॥

ग्रन्थारम्भप्रसङ्गे महाकविर्बाणभट्टः स्वाऽहङ्कारं परिहरति—**द्विजेनेति** । द्विजेन = ब्राह्मणेन, तेन = बाणभट्टेन, अक्षतकण्ठकौण्ठयया = अनष्टगलकुण्ठत्वया, महामनोमोहमलीमसाऽन्धया = समृद्धचित्ताऽज्ञानमलिनविकलया, अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया = अप्राप्तचातुर्यलीलामोहयुक्तया, तादृश्या धिया = बुद्ध्या, तथाऽपि अतिद्वयी = कथाद्वितयीमतिक्रान्ता, बृहत्कथां वासवदत्तां चाऽतिक्रान्तेति भावः । इयं = मद्बुद्धिसन्निकृष्टस्था, कथा = कादम्बरीस्वरूपा कृतिः, निबद्धा = गुम्फिता ॥२०॥

टिप्पणी—अक्षतकण्ठकौण्ठयया = कुण्ठस्य भावः कौण्ठ्यं, ष्यञ् प्रत्यय । "कुण्ठो मन्दः क्रियासु यः" इत्यमरः । कण्ठे कौण्ठ्यम् (स० त०) । न क्षतम् अक्षतम् (नञ्०) । अक्षतं कण्ठकौण्ठ्यं यस्याः सा तया महा० = महान् (समृद्धः) यो मनोमोहः (चित्ताऽज्ञानम्) तेन मलीमसा (मलिना) सा चाऽसौ अन्धा, तया (क० धा०) । अलब्धेत्यादिः = अलब्धश्चाऽसौ वैदग्ध्यविलासः (क० धा०), तेन (हेतुना) मुग्धा, तया (तृ० त०) । "मुग्धः सुन्दरमूढयोः" इत्यमरः । अतिद्वयी = द्वयीमतिक्रान्ता, "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीया" इससे समास । निबद्धा = नि + बन्ध + क्तः (टाप्) + सुः । इस पद्यमें वृत्यनुप्रास अलङ्कार है ॥ २० ॥

ब्राह्मण उस बाणभट्टने जिसके कण्ठकी कुण्ठता (बोलनेमें मन्दता) नष्ट नहीं हुई है । बढ़े हुए चित्तके अज्ञानसे मलिन और दर्शन शक्तिसे विकल, निपुणताके विलासको न पानेसे मूढ, ऐसी अपनी बुद्धिसे (भी) बृहत्कथा और वासवदत्ताका अतिक्रमण (मात) करने वाली इस कादम्बरीरूप कथाग्रन्थकी रचना की है ॥ २० ॥

कथा-मुखम्

१
शूद्रकवर्णनम्

आसीदशेष-नरपति-शिरः-समभ्यर्च्चित-शासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधि-मालामेखलाया भुवो भर्त्ता, प्रतापानुरागावनत-समस्त-सामन्तचक्रः, चक्रवर्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर इव करकमलोपलक्ष्यमाण-शङ्ख-चक्र-लाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रति-हतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः, गङ्गाप्रवाह

सम्प्रति कथा प्रस्तूयते। अशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः = अशेषाः (समस्ताः) ये नरपतयः (राजानः), तेषां शिरोभिः (मस्तकैः), समभ्यर्चितं (संपूजितं, सादरं गृहीतमिति भावः) शासनम् (आज्ञा) यस्य सः। अतः अपरः = अन्यः, पाकशासन इव = इन्द्र इव। इन्द्रः पूर्वकाले पाकनामकं दैत्यं जघान, ततस्तस्य "पाकशासन" पदेन प्रसिद्धिः। सर्वं विशेषणं शूद्रकस्य राज्ञः। "आसीत्" इति क्रियापदेन सम्बन्धः। अत्र "शासन" पदावृत्तेर्यमकाऽलङ्कारः, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारश्च। चतुरुदधिमालामेखलायाः=चतुर्णाम् (चतुःसंख्यकानाम्) उदधीनां (समुद्राणाम्) माला (पङ्क्तिः) सा एव मेखला (काञ्ची, अवधिरिति भावः) यस्याः, तस्याः। तादृश्याः भुवः (पृथिव्याः), भर्ता (स्वामी)। अत्र भुवि शूद्रके च नायिकानायक-व्यवहारसमारोपात्समासोक्तिरलङ्कारः। प्रतापाऽनु-रागाऽवनतसमस्तसामन्तचक्रः = प्रतापः (कोशदण्डजं तेजः) अनुरागः (प्रेम), ताभ्याम् अवनतं (प्रणतम्) समस्तं (संपूर्णाम्) सामन्तचक्रं (मण्डलेश्वरसमूहः) यस्य सः। यथा लोहचक्रम् अग्नि-तापादवनतं भवति तथैव शूद्रकस्य प्रतापादनुरागाच्च सामन्तमण्डलमवनतमिति ध्वनिः। चक्रवर्ति-लक्षणोपेतः = चक्रवर्तिनः (सार्वभौमस्य) लक्षणानि (सामुद्रिकशास्त्रप्रतिपादितचिह्नानि), तैरुपेतः (युक्तः)। चक्रधर इव = विष्णुरिव, धरतीति धरः (पचाद्यच्), चक्रस्य धरः, अत्र चक्रं धरतीति विग्रहश्च्युतसंस्कृतिदुष्टः। "कर्मण्यण्" इत्यनेन अणा "चक्रधार" इति रूपसिद्धेः। करकमलोपलक्ष्य-माणशङ्खचक्रलाञ्छनः = करकमलयोः (पाणिपद्मयोः) उपलक्ष्यमाणानि (दृश्यमानानि) शङ्खचक्र-लाञ्छनानि (शङ्खचक्राकाररेखाचिह्नानि) यस्य सः। अत्र पूर्णोपमा वृत्यनुप्रासश्च। हर इव = महा-देव इव, जितमन्मथः = जितः (पराजितः) महादेवपक्षे–भालाऽनलदाहेनेति भाव, शूद्रकपक्षे—जितेन्द्रियत्वात्सौन्दर्याऽतिशयाद्वेति भावः। मन्मथः (कामदेवः) येन सः। पूर्णोपमाऽलङ्कारः।

गुह इव = कार्तिकेय इव, अप्रतिहतशक्तिः = अप्रतिहता (अनिरुद्धा) शक्तिः (कार्त्तिकेयपक्षे—आयुधविशेषः, शूद्रक पक्षे (सामर्थ्यम्) यस्य सः। पूर्णोपमा। कमलंयोनिः इव = कमलं (विष्णु-नाभिपद्मम्) योनिः (कारणम्) यस्य सः, ब्रह्मा इवेति भावः। विमानीकृतराजहंसमण्डलः = कमल-योनिपक्षे—विमानीकृतं (व्योमयानीकृतम्) राजहंसानां (हंसविशेषाणां) मण्डलं (समूहः।) येन सः शूद्रकपक्षे—विमानीकृतं (भग्नदर्पीकृतम्), विजयेनेतिशेषः, राजहंसानां (श्रेष्ठभूपानाम्) मण्डलं (समूहः) येन सः। पूर्णोपमा। जलधिः इव = समुद्र इव, लक्ष्मीप्रसूतिः, समुद्रपक्षे—लक्ष्म्याः (पद्मायाः) प्रसूतिः (उत्पत्तिस्थानम्), शूद्रकपक्षे—लक्ष्म्याः (सम्पत्तेः शोभाया वा) प्रसूतिः (प्रसूतिस्थानम्), "लक्ष्मीः सम्पत्तिशोभयोः। ऋद्धौषधे च पद्मायां वृद्धिनामौषधेऽपि च।" इति

समस्त राजाओंके शिरसे पूजित आज्ञावाले दूसरे इन्द्रके समान, चार समुद्रोंकी पङ्क्तिरूप मेखलासे युक्त भूमिके स्वामी, जिनके प्रताप और अनुरागसे समस्त मण्डलेश्वर राजालोग झुकते थे, चक्रवर्तीके लक्षणोंसे युक्त, चक्रधर भगवान् विष्णुके समान करकमलोंमें देखे जानेवाले शङ्ख और चक्रके चिह्नसे युक्त, शिवजीके समान कामदेवको जीतने वाले, जैसे कार्त्तिकेयका शक्तिशस्त्र कुण्ठित नहीं होता है, उसी तरह अकुण्ठित शक्ति (सामर्थ्य)-वाले जैसे ब्रह्माजी विमानीकृत-राजहंसमण्डल अर्थात् राजहंसोंको विमान (व्योमयान) बनानेवाले हैं, वैसे ही विमानीकृत अर्थात् पराजित कर श्रेष्ठ राजाओंको मानहीन बनानेवाले, जैसे समुद्र लक्ष्मीके उत्पत्तिस्थान हैं

इव भगीरथपथप्रवृत्तः, रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः मेरुरिव सकलोपजीव्यमान-पादच्छायः, दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः कर्त्ता महाश्चर्य्याणाम्, आहर्त्ता क्रतूनाम्, आदर्शः सर्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनं गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पातकेतुरहितजनस्य, प्रवर्त्तयिता गोष्ठीबन्धानाम्, आश्रयो रसिकानाम्, प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धौरेयः साहसिकानाम्, अग्रणी-

---

मेदिनी। गङ्गाप्रवाहः = गङ्गायाः (भागीरथ्याः) प्रवाहः (स्रोतः), इव, भगीरथपथप्रवृत्तः = भगीरथस्य (भगीरथनामकसूर्यवंशोत्पन्नराजविशेषस्य) पन्थाः (मार्गः)। तत्र प्रवृत्तः (लग्नः)। धैर्यपूर्वकं कार्याऽनुष्ठातेति भावः। उपमाऽलङ्कारः।

पूर्वकाले राज्ञः सगरस्याऽश्वमेधयज्ञानुष्ठाने भ्रमन्तमश्वं देवराज इन्द्रः पाताले कपिलाश्रमसन्निधौ बद्धवान्। ततश्चाऽश्वाऽन्वेषणप्रवृत्ताः सगरसुतास्तमश्वं कपिलाश्रमसमीपे दृष्ट्वा कपिलं हन्तुमुद्यता बभूवुस्तदनु तेन मुनिना सकोपं विलोकितास्ते भस्मीबभूवुः। बहुकालाऽनन्तरं सगरप्रपौत्रो भगीरथः स्वपूर्वजोद्धारार्थं तपश्चचार, गङ्गावतारणतः स्वपूर्वजांश्चोद्धारेति पौराणिकी वार्ता। रविरिव = सूर्य इव, प्रतिदिवसोपजायमानोदयः = प्रतिदिवसम् (प्रतिदिनम्) उपजायमानः (उत्पद्यमानः) उदयः (सूर्यपक्षे—उद्गमः। राजपक्षे—अभ्युदयः) यस्य सः। पूर्णोपमाऽलङ्कारः।

मेरुरिव = सुमेरु पर्वत इव, सकलोपजीव्यमानपादच्छायः = सकलैः (समस्तैः) उपजीव्यमाना (आश्रीयमाणा) पादानां (मेरुपक्षे—प्रत्यन्तपर्वतानां, राजपक्षे—पादयोः = चरणयोः) छाया (मेरुपक्षे—आतपाऽभावः, राजपक्षे—कान्तिः) यस्य सः। "पादाः प्रत्यन्तपर्वताः" इति "छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः" इत्यमरः। दिग्गज इव = ऐरावतादिदिङ्नाग इव, अनवरतप्रवृत्तदानाऽऽर्द्रीऽकृतकरः = अनवरतं (निरन्तरं यथा तथा) प्रवृत्तं (सञ्जातम्) यत् दानं (दिग्गजपक्षे मदजलं, राजपक्षे—धनादिवितरणम्) तेन आर्द्रीकृतः (क्लिन्नीकृतः) करः (दिग्गजपक्षे—शुण्डादण्डः, राजपक्षे—हस्तः) यस्य सः। "दानं गजमदे त्यागे इति "करो वर्षोपले रश्मौ पाणौ प्रत्यायशुण्डयोः।" इति च मेदिनी। पूर्णोपमाऽलङ्कारः। महाऽऽश्चर्याणां = असाधारणयुद्धादिमहाद्भुतकर्मणां, कर्ता = कारकः। कर्मणि षष्ठी, एवं परत्राऽपि। क्रतूनां = यज्ञानाम्, आहर्ता = कर्ता, सर्वशास्त्राणां = वेदादिसकलवाङ्मयानाम्, आदर्शः = दर्पणः, तस्मिन् राजनि सर्वशास्त्रतत्त्वानां प्रतिबिम्बितत्वादिति भावः। कलानां = नृत्यगीतादिचतुःषष्टिकलानाम्, उत्पत्तिः = उत्पत्तिस्थानम्। गुणानां = दयादाक्षिण्यशौर्यधैर्यादिगुणानां, कुलभवनं = वंशपरम्पराऽऽधारस्थानम्। काव्याऽमृतरसानां = साहित्यपीयूषरसानाम्, आगमः = उत्पत्तिस्थानम्। अत्रैकस्य शूद्रकभूपस्य विषयाणां भेदेनाऽनेकधोल्लेखादुल्लेखाऽलङ्कारः। मित्रमण्डलस्य = मित्राणां (सुहृदाम्) मण्डलस्य (समूहस्य)। उदयशैलः = अभ्युदयस्थानम्। पक्षान्तरे—मित्रस्य (सूर्यस्य) मण्डलस्य (बिम्बस्य) उदयशैलः = उदयपर्वतः। "मित्रं सुहृदि न द्वयोः। सूर्ये पुंसि इति।" उदयस्तु पुमान् पूर्वपर्वते च समुन्नतौ।" इति च मेदिनी। अत्र श्लेषाऽलङ्कारः। अहितजनस्य = शत्रुलोकस्य, उत्पातकेतुः = अनिष्टसूचको धूमकेतुः। अत्र रूपकाऽलङ्कारः।

वैसे ही सम्पत्तिके उत्पत्तिस्थान—जैसे गङ्गाजीका प्रवाह राजा भगीरथके मार्गमें प्रवृत्त है वैसे ही भगीरथके मार्गमें प्रवृत्त (धैर्यपूर्वक कार्यको सम्पन्न करने वाले), जैसे सूर्य प्रतिदिन उदय (पर्वत)को प्राप्त होते हैं वैसे ही प्रतिदिन अभ्युदयको प्राप्त करने वाले, जैसे सुमेरु पर्वतके प्रत्यन्त प्रवर्तों (तलहटियों)की छायाको सबलोग आश्रय करते हैं, उसी तरह जिनके चरणकी छायाको सबलोग आश्रय करते थे। जैसे निरन्तर मदजलके बहनेसे दिग्गजका कर (सूँड़) निरन्तर आर्द्र होता है उसी तरह लगातार होनेवाले दानसे आर्द्रहाथ वाले, बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कर्मोंको करने वाले, यज्ञोंका विधान करनेवाले, समस्त शास्त्रोंके आदर्शस्वरूप, नृत्य आदि कलाओंके उत्पत्तिस्थान, दाक्षिण्य आदि गुणोंके वंशपरम्परास्थान, काव्यके अमृतरसोंके उत्पत्तिस्थान, जैसे मित्र (सूर्य) मण्डलके उदयके लिए उदय पर्वत होता है वैसे ही मित्रमण्डलके अभ्युदयके पर्वतके समान, शत्रुगणके उत्पातसूचक धूमकेतुके समान,

विदग्धानाम्, वैनतेय इव विनतानन्दजननः, वैन्य इव चापकोटिसमुत्सारितसकलाऽराति-कुलाचलो राजा शूद्रको नाम।

नाम्नैव यो निर्भिन्नारातिहृदयो विरचितनरसिंह-रूपाडम्बरम्, एकविक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितभुवनत्रयं जहासेव वासुदेवम्।

गोष्ठीबन्धानां = सभाप्रबन्धानां, प्रवर्तयिता = प्रवर्तकः। रसिकानां = विदग्धानाम्, आश्रयः = आधार-हेतुः। धनुष्मतां = धनुर्धारिणां, प्रत्यादेशः = निराकर्ता। साहसिकानां = साहसकर्माऽनुष्ठातॄणां, धौरेयः = धुरन्धरः, धुरं वहतीति "धुरो यड्ढकौ" इति ढक् प्रत्ययः। विदग्धानां = पण्डितानाम्, अग्रणीः = मुख्यः, अग्रं नयतीति "सत्सूद्विषे"त्यादिना क्विप्, "अग्रग्रामाभ्यां नयतेर्णो वाच्य" इति णत्वम्। वैनतेय इव = गरुड इव, विनताया अपत्यं पुमान्, "स्त्रीभ्यो ढक्" इति ढक्। विनताऽऽनन्द-जननः = विनतायाः (तदाख्यस्वमातुः) राजपक्षे—विनतानाम् (प्रणतानां नराणाम्) आनन्दजननः = (हर्षोत्पादकः)। पूर्णोपमा।

वैन्य इव = पृथुरिव, वेनस्याऽपत्यं पुमान्, कुर्वादिगणे वेनशब्दस्य पाठात् "कुर्वादिभ्यो ण्य" इति सूत्रात् "वेनाच्छन्दसि" इत्युक्तेः ण्यः। लोके वैन्यशब्दप्रयोगश्चिन्त्यः। चापकोटिसमुत्सारित-सकलाऽरातिकुलाऽचलः = चापस्य (धनुषः) कोटिः (अग्रभागः), ततः समुत्सारिताः (दूरी कृताः) सकलाऽरातयः (समस्तशत्रवः) कुलाचला इव (महेन्द्रादिकुलपर्वता इव) येन सः, पूर्वकाले महाराजः पृथुः पर्वताकीर्णां पृथ्वीं चापकोटचा पर्वतानुत्सार्य समीचकारेति श्रीमद्भागवतम्। राजपक्षे—चापानां (धनुषाम्) कोटिः (कोटिमितसंख्या) तया समुत्सारिता, (निराकृताः) सकलाः (समस्ताः) अरातयः (शत्रवः) एव कुलाचलाः (कुलपर्वताः) येन सः। शूद्रको नाम = नाम्ना शूद्रकः। राजा = भूपः आसीत् = अभवत् इति पूर्वस्थक्रियापदेन सम्बन्धः।

यः = शूद्रकः। नाम्ना एव = स्वनामधेयेन एव, निर्भिन्नाऽरातिहृदयः = निर्भिन्नानि (विदारि-तानि) अरातीनां (शत्रूणाम्) हृदयानि (वक्षः स्थलानि) येन सः, विरचितनरसिंहरूपाडम्बरं = विरचितः (विहितः) नरसिंहरूपस्य (नृसिंहस्वरूपस्य) आडम्बरः (समारम्भः) येन सः, "आडम्बरः समारम्भे गजगर्जिततूर्ययोः।" इति विश्वः। पदमिदं "वासुदेवम्" इत्यस्य विशेषणं, तथा च एकविक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलः = एकः (अद्वितीयः) यो विक्रमः (पराक्रमः), तेन आक्रान्तं (व्याप्तम्) सकल (समग्रम्) भुवनतलं (लोकस्वरूपम्) येन सः, तादृशो राजा। विक्रम-त्रयाऽऽयासितभुवनत्रयं विक्रमाणां (पादविक्षेपाणाम्) यत् त्रयं (त्रितयम्), तेन आयासितं (पीडितम्) भुवनत्रयं (लोकत्रितयम्), येन तम्। वासुदेवं = विष्णुम् तम्। जहास इव = उपहसितवान् इव। स्वनाममात्रेण शत्रुहृदयविदारको यो राजा नृसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुवक्षः स्थल-विदारकं विष्णुं, तथा एकविक्रमेण लोकत्रयव्याप्यत्वेन पादविक्षेपत्रितयव्यापकं वामनमुपहसित वानिति भावः। अत्र उपमानभूत-नृसिंह वामनाभ्यामुपमेयभूतस्य राज्ञः शूद्रकस्याऽऽधिक्यवर्णनाद् व्यति-रेकाऽलङ्कारस्तथा जहास इवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। एवं चाऽत्र हसधातो-रकर्मकत्वाद्वासुदेवमित्यत्र लक्ष्यीकृत्येति पदमध्याहार्यम्।

सभायोजनाओंके प्रवर्तक रसिकोंके अवलम्बन स्वरूप, धनुर्धारियोंका निराकरण करनेवाले (हटानेवाले), साहस वालोंके धुरन्धर, पण्डितोंमें प्रधान, जैसे गरुडजी विनता (अपनी माता)के आनन्दको उत्पन्न करते हैं वैसे ही विनत (नम्र) जनोंको आनन्द देने वाले, जैसे महाराज पृथुने धनुके अग्रभागसे कुलपर्वतोंको हटाया था उसीतरह असंख्य धनुसे पर्वतके समान समस्त शत्रुकुलको हटाने वाले शूद्रक नामके राजा थे।

नाममात्रसे शत्रुओंके हृदयको विदीर्ण करनेवाले जिन्होंने नृसिंहके रूपका आडम्बर रचनेवाले वासुदेव-(विष्णु)का और एकमात्र विक्रम (पराक्रम)से समस्त भुवनको आक्रमण करनेवाले जिन्होंने तीनविक्रमों (पादविक्षेपों)से तीन लोकोंको व्याप्त करनेवाले वासुदेव (वामनरूप लेनेवाले विष्णु)का मानों उपहास किया था

अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य विमले कृपाणधाराजले चिरमुवास राजलक्ष्मीः ।

यश्च मनसि धर्म्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य ।

यस्य च मदकल–करि–कुम्भ–पीठपाटनमाचरता लग्न स्थूलमुक्ताफलेन, दृढ–मुष्टि-

---

अतिचिरकाललग्नम् = अधिकसमयसम्बद्धम्, अतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कम् = अतिक्रान्ताः (व्यतीताः) ये कुनृपतयः (अवद्या राजानः) तेषां सहस्रं (समुदायः) तस्य सम्पर्कः (सम्बन्धः) तेन यः कलङ्कः (अपवादः) तम् । "कलङ्कोऽङ्कापवादयोः" इत्यमरः । क्षालयन्ती इव = धावयन्ती इव, राजलक्ष्मीः = भूपालश्रीः, यस्य = राज्ञः शूद्रकस्य, विमले = निर्मले, कृपाणधाराजले = खड्गनिशिताग्ररूपसलिले, चिरं = बहुकालं यावत्, उवास = वासं चकार । राजा शूद्रकः खड्गबलेन राजलक्ष्मीं वशीकृतवानिति भावः । अत्र "क्षालयन्तीवे" त्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा, कृपाणधारायां जलस्य रूपणाद्रूपकाऽलङ्कारश्चेत्युभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

यश्च = शूद्रकश्च, मनसि = चित्ते, "वसता" इति पदेन सम्बन्धः एवं परत्राऽपि । वसता = वासं कुर्वता, धर्मेण = पुण्येन, कोपे = क्रोधे, वसता यमेन = धर्मराजेन प्रसादे = अनुग्रहे, वसता, धनदेन = कुबेरेण, प्रतापे = कोशदण्डजे तेजसि, वसता, वह्निना = अग्निना, भुजे = बाहौ, वसन्त्या भुवा = पृथिव्या, राज्यभारधारणसामर्थ्यात्, दृशि = चक्षुषि, वसन्त्या श्रिया = लक्ष्म्या, प्रीतिपूर्वकनिरीक्षणमात्रेण श्रीसम्भवादिति भावः । वाचि = वचने, वसन्त्या सरस्वत्या । सततगद्यपद्याद्यनेकप्रबन्धरचनादिति भावः । मुखे = वदने, वसता शशिना = चन्द्रमसा, आह्लादकारित्वादिति भावः । बले = सामर्थ्ये, वसता मरुता=वायुना, अतिसामर्थ्यशालित्वादिति भावः । प्रज्ञायां=बुद्धौ, वसता, सुरगुरुणा=बृहस्पतिना रूपे = सौन्दर्ये, वसता, मनसिजेन = कामेन, कामिनीमानहरणादिति भावः । तेजसि = प्रतापे, वसता सवित्रा = सूर्येण, सर्वदेवमयस्य = सकलसुरस्वरूपस्य, प्रकटितविश्वरूपाऽऽकृतेः = प्रकटिता (प्रकाशिता) विश्वरूपस्य (समस्तरूपस्य, विराड्रूपस्येति भावः) आकृतिः (आकारः) येन तस्य । भगवतः = षड्विधैश्वर्यसम्पन्नस्य, "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥" इति विष्णुपुराणम् । नारायणस्य = श्रीविष्णोः, "कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव ।" इति नियमात्षष्ठी । नरस्य अपत्यानि नाराः, ता अयनं यस्य "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्याऽयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ मनु० १–१० । अनुकरोति = अनुकरणं करोति ॥

च = किञ्च, मदकलकरिकुम्भपीठपाटनं = मदेन (दानजलेन) कलाः (मनोहराः) ये करिणः (वैरिहस्तिनः) तेषां कुम्भपीठानि (मस्तकपिण्डफलकानि), तेषां पाटनम् (विदारणम्), विदधतः[1] = कुर्वतः, यस्य = राज्ञः शूद्रकस्य, आगामिना "समीपम्" इति पदेन सम्बन्धः । लग्नस्थूल-

---

बहुत कालोंसे लगे हुए व्यतीत हजारों निन्दित राजाओंके सम्पर्कके कलङ्कको धोती हुई सी राजलक्ष्मीने जिनके खड्गधारारूप निर्मलजलमें बहुत समयतक निवास किया । जो राजा शूद्रक मनमें रहनेवाले धर्मसे, कोपमें रहनेवाले यमराजसे प्रसन्नतामें रहनेवाले कुबेरसे, प्रतापमें रहने वाले अग्निसे, बाहुमें रहनेवाली पृथिवीसे, नेत्रमें रहनेवाली श्रीसे, वाणीमें रहनेवाली सरस्वतीसे, मुखमें रहनेवाले चन्द्रसे बलमें रहनेवाले वायुदेवसे, बुद्धिमें रहनेवाले बृहस्पतिसे सौन्दर्यमें रहनेवाले कामदेवसे तेजमें रहनेवाले सूर्यसे भी इस प्रकार समस्तदेवस्वरूप होकर और विश्वरूप (विराट्रूप)के आकारको प्रकट करनेवाले भगवान् नारायणका अनुकरण (नकल) करते थे ।

मदके जलसे मनोहर हाथियोंके मस्तकपिण्डोंको विदारण करनेवाले जिन राजा (शूद्रक)के बड़ी-बड़ी

---

१. "विदधता" इति पाठान्तरे, "कृपाणेने"तिपदं विशेष्यम् ।

निष्पीडन-निष्ठ्यूत-धाराजलबिन्दु-दन्तुरेण कृपाणेनाकृष्यमाणा सुभटोरःकपाट-विघटित-कवच-सहस्रान्धकार-मध्यवर्त्तिनी करि-करट-गलित-मदजलासार-दुर्दिनास्वभिसारिकेव समरनिशासु समीपमसकृदाजगाम राजलक्ष्मीः।

यस्य च हृदयस्थितानपि पतीन् दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।

यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयति महीं चित्रकर्म्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु

मुक्ताफलेन = लग्नानि (सम्बद्धानि) स्थूलानि (पीवराणि) मुक्ताफलानि (मौक्तिकानि) यस्य तेन, तादृशेन। दृढमुष्टिनिष्पीडनात् = दृढमुष्टिना = (कठोरबद्धपाणिना) निष्पीडनात् (निर्ग्रहणात्) मुष्टिशब्दस्य पुंलिङ्गेऽपि सत्त्वात् स्त्रीलिङ्गमात्रसत्त्वकल्पनया "सामान्ये नपुंसकम्" इत्यस्यावलम्बनं व्यर्थम्। निष्ठ्यूतधाराजलबिन्दुदन्तुरेण = निष्ठ्यूताः (निर्गताः) धारा (निशिताग्रभागाः) एव जलबिन्दवः (सलिलपृषताः) तैः दन्तुरेण (उन्नतानतेन), तथाविधेन कृपाणेन = खड्गेन, आकृष्यमाणा इव = समन्तादृगृह्यमाणा इव, सुभटोरःकपाटविघटितकवचसहस्रान्धकारमध्यवर्तिनी = सुभटानां (वीरयोद्धृणाम्) यानि उरांसि (वक्षःस्थलानि) एव कपाटानि (अरराणि), "कपाटमररं तुल्ये" इत्यमरः, तेभ्यो विघटितं (वियोजितम्) यत् कवचसहस्रं (वारबाणवृन्दम्) तदेव अन्धकारं (तिमिरम्), नैल्यसाम्यादिति भावः। तस्य मध्यवर्तिनी (अन्तःस्थिता), तादृशी राजलक्ष्मीः = वैरिराजश्रीः, करिकरटगलितमदजलाऽऽसारदुर्दिनासु = करिणां (हस्तिनाम्) करटाः (कपोलाः), "करटानि" इति लिखन्तः टीकाकारा भ्रान्ताः। तेभ्यो गलितं (प्रस्रुतम्) यत् मदजलं (दानवारि) तस्य आसारः (धारासम्पातः), तेन दुर्दिनं (मेघजं तमः, लाक्षणिकोऽयमर्थः) यासु तासु। तादृशीषु समरनिशासु = समराः (युद्धानि) निशा (रात्रयः) इव तासु। अभिसारिका इव = दत्तसङ्केता नायिका इव। यस्य = राज्ञः शूद्रकस्य। समीपं = निकटम्, असकृत्[1] = सहृ वारंवारम्। आजगाम = आगता। अभिसारिकालक्षणं यथा—

"अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका॥ (सा० द० ३-७६)।

च = किञ्च, यस्य = राज्ञः, प्रतापाऽनलः = प्रतापः (कोशदण्डजं तेजः) स एव अनलः (अग्निः)। अत्र रूपकमलङ्कारः। हृदि = हृदये, स्थितान् अपि = विद्यमानान् अपि। भर्तॄन् = पतीन्। दिधक्षुः इव = दग्धुमिच्छुः इव, वियोगिनीनाम् अपि = विरहिणीनाम् अपि, रिपुसुन्दरीणां = वैरिप्रमदानाम्, अन्तर्जनितदाहः = अन्तः (अन्तःकरणे) जनितः (उत्पादितः) दाहः (सन्तापः) येन सः, तादृशः सन्। दिवानिशम् = अहोरात्रं, जज्वाल = प्रदीप्तो बभूव।

यस्मिंश्चेति। जितजगति = स्वायत्तीकृतलोके, यस्मिन्, राजनि = भूपे शूद्रके, महीं = पृथिवीं, परिपालयति = परिरक्षति सति, "यस्य च भावेन भावलक्षणम्" इति सप्तमी। चित्रकर्मसु = आलेख्यक्रियासु, वर्णसङ्कराः = वर्णानां (शुक्लनीलादिवर्णानाम्) सङ्करा = (मिश्रणानि), "प्रजानां न

गजमुक्ताओंसे युक्त मजबूत मुट्ठीसे पकड़नेसे तीक्ष्ण नोक-स्वरूप जलबिन्दुओंसे ऊँचनीच खड्गसे खींची गई-सी वीर योद्धाओंके वक्षःस्थलरूप कपाटोंसे विदीर्ण हजारों कवचोंके अन्धकारके बीचमें रहनेवाली राजलक्ष्मी हाथियोंके कपोलोंसे बहते हुए मदजलोंसे दुर्दिनके समान युद्धरूप रात्रियोंमें अभिसारिकाकी तरह उनके पास वारंवार आती थीं। जिन (शूद्रक)का प्रतापरूप अग्नि शत्रुओंकी वियोगिनी सुन्दरियोंके हृदयमें स्थित पतियोंको भी जलानेमें इच्छुक-सा होकर अन्तःकरणमें दाह उत्पन्न कर दिन रात जलता रहता था। जगत्को जीतनेवाले और पृथिवीका पालन करनेवाले जिन (शूद्रक)के राज्यमें चित्रोंमें वर्णसङ्कर = अर्थात् शुक्लनील आदि अनेक वर्णोंका

१. सकृदिति पाठान्तरम्।

केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ता, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः, चापेषु गुणच्छेदाः, गवाक्षेषु जालमार्गाः, शशिकृपाणकवचेषु कलङ्काः, रतिकलहेषु दूतसम्प्रेषणानि, सार्य्यक्षेषु शून्यगृहाः न प्रजानामासन् ।

आसन्" इति उत्तरपदैः सम्बन्धः, एवं परत्राऽपि । प्रजानां = जनानाम्, वर्णसङ्कराः = वर्णानां (ब्राह्मणादीनाम्) सङ्कराः (अनुलोमप्रतिलोमत्वेन मिश्रणानि) न आसन् = न अभवन्, धर्ममर्यादाया विद्यमानत्वादिति भावः । रतेषु = कामक्रीडासु, केशग्रहाः = कचग्रहणानि, प्रजानां कलहेषु न केशग्रहः, काव्येषु = कविकर्मसु, दृढबन्धाः = पदसमासादिगाढगुम्फनानि, प्रजानां गाढबन्धाः = दृढबन्धनानि न । शास्त्रेषु = वेदादिशास्त्रेषु, चिन्ता = चिन्तनं, प्रजानां विषयान्तरे चिन्ता न । स्वप्नेषु = स्वापाऽवस्थासु, विप्रलम्भाः = वियोगाः, प्रजानां विप्रलम्भा न । छत्रेषु = आतपत्रेषु, कनकदण्डाः = सुवर्णयष्टयः, अपराधाऽभावात् प्रजानां कनकदण्डाः = सुवर्णादिदण्डाः न आसन् । ध्वजेषु = पताकासु, प्रकम्पाः = विधूननानि, प्रजानां प्रकम्पा न आसन् । गीतेषु = गानेषु, रागविलसितानि = भैरवादिरागविलासाः, प्रजानां रागविलासाः = निषिद्धाऽनुरागचेष्टितानि, न आसन् । करिषु = हस्तिषु, मदविकाराः = दानविकृतयः, प्रजानां मदविकाराः = गर्वविकृतयः न आसन् । "मदो रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षे-मदानयोः ।" इति मेदिनी । चापेषु = धनुःषु, गुणच्छेदाः = ज्यात्रोटनं, प्रजानां गुणच्छेदाः = दयादाक्षिण्यादिगुणभङ्गा न आसन् । गवाक्षेषु = वातायनेषु, जालमार्गाः = वातागमनाय लघुच्छिद्राणि, प्रजानां जालमार्गाः = दम्भाचारपद्धतयः, न आसन् । "जालं वृन्दगवाक्षयोः । क्षारकाऽऽनायदम्भेषु, नीपे ना, स्त्री तु घोषके ।" इति रभसः । शशिकृपाणकवचेषु = शशी (चन्द्रः), कृपाणः (खड्गः, द्वावपि शब्दौ पुंस्येव, क्लीबलिङ्गे प्रयोक्तारो भ्रान्ताः) कवचः (वारबाणः), तत्र कलङ्काः (चिह्नानि), तत्र च चन्द्रे कलङ्को मृगलाञ्छनाकारः, कृपाणे कवचे च युद्धाऽभावात् मार्जनराहित्येन मालिन्यरूपः, कलङ्को यथायथं ज्ञेयः । प्रजानां तु दुराचाराऽभावात् कलङ्काः (अपवादाः) न आसन् । "कलङ्कोऽङ्के-ऽपवादे च कालायसमलेऽपि च ।" इति मेदिनी । रतिकलहेषु = कामक्रीडाविग्रहेषु, दूतप्रेषणानि = सन्देशहरप्रेरणानि, प्रजानां दूतप्रेषणानि कलहाऽभावान्न आसन् । सार्यक्षेषु = सारिः (अक्षक्रीडा-फलकम्), अक्षाः (पाशकाः), तेषु, शून्यगृहाः = शून्यभवनानि, प्रजानां शून्यगृहा न आसन्, नानाविधकार्यव्यापृतत्वादिति भावः । "सा (शा) री त्वक्षोपकरणे तथा शकुनिकाऽन्तरे ।" इति विश्वः । "अक्षास्तु देवनाः पाशकाश्च ते" । इत्यमरः । पूर्वोक्तेषु चतुर्दशसु वाक्येषु श्लेषः, शाब्दी परिसंख्या च, अनयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः ।

सङ्कर (संमिश्रण) थे । प्रजाओं में वर्णसङ्कर = अर्थात् ब्राह्मण आदि वर्णोंमें सङ्कर (संमिश्रण) नहीं था। रतिक्रीडाओंमें केशग्रहण था, कलहमें केशग्रहण नहीं था। काव्योंमें पद समास आदिका दृढ बन्ध था, और व्यक्तिका दृढ बन्धन नहीं था। शास्त्रोंमें चिन्ता थी, विषयोंमें नहीं। स्वप्नोंमें वियोग होता था, जागरणमें नहीं। छत्रोंमें सुवर्णके दण्ड थे, किसीको सुवर्णका दण्ड (जुर्माना) नहीं किया जाता था। पताकाओंमें कम्प होते थे, प्रजाओंमें नहीं। गानोंमें राग (भैरव आदि) के विलास थे, प्रजाओंमें राग (निषिद्ध अनुराग)के विलास नहीं थे। हाथियोंमें मद (दानजल)के विकार थे, प्रजाओंमें मद (गर्व)के विकार नहीं थे। धनुषोंमें गुण (प्रत्यञ्चा)के छेद थे, प्रजाओंमें गुण (दया दाक्षिण्य आदि गुणों)का छेद नहीं था। झरोखोंमें जाल (हवा बहनेके लिए छोटे-छोटे छेद) थे, प्रजाओंमें जाल (दम्भ आचार) नहीं थे। चन्द्रमामें मृगरूप कलङ्क, तलवारमें कलङ्क (जंग) और कवचमें कलङ्क (मालिन्य) थे, प्रजाओंमें कलङ्क (अपवाद) नहीं थे। कामक्रीडाके कलहोंमें दूतोंका प्रेषण (भेजना) था, कलहके न होनेसे प्रजाओंमें दूतोंका प्रेषण (भेजना) नहीं था। सारी (पाशा खेलनेका पात्र) और पाशोंमें शून्यगृह थे, प्रजाओंके शून्यगृह नहीं थे।

यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तःपुरिकाकुन्तलेषु भङ्गः, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु कर-ग्रहणम्, अनवरतमखाग्निधूमेनाश्रुपातः, तुरङ्गेषु कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत् ।

तस्य च राज्ञः कलिकाल-भयपुञ्जीभूत-कृतयुगानुकारिणी त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव विस्तीर्णा, मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालन-जर्जरितोर्म्मिमालया जलावगाहनागत-जयकुञ्जर-कुम्भ-सिन्दूर-सन्ध्यायमान-सलिलया उन्मद-कलहंस-कुल-कोलाहल-मुखरित-कूलया वेत्रवत्या परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत् ।

यस्य चेति । यस्य = राज्ञः शूद्रकस्य, परलोकात् = लोकान्तरात्, भयं = भीतिः, न तु शत्रुजनात् । "दूरान्यात्मोत्तमाः पराः ।" इत्यमरः । अन्तःपुरिकाकुन्तलेषु = अन्तःपुरं (शुद्धान्तः) वासस्थानमस्ति आसां ता अन्तःपुरिकाः (अन्तःपुरस्थाः स्त्रियः), "अत इनिठनौ" इति ठन् (इक) प्रत्ययः । तदन्तात्स्त्रीत्वविवक्षायां टाप् । तासां कुन्तलेषु (केशेषु) भङ्गः = कुटिलता न तु राज्ञो भङ्गः = पराजयः । "भङ्गस्तरङ्गे भेदे च रुग्विशेषे पराजये । कौटिल्ये भयविच्छित्योः" इति हैमः । अत्र "अन्तःपुरे भवा अन्तःपुरिकाः, भवार्थे ठक् प्रत्ययः" इति लिखन्तो व्याख्यातारः परास्ताः, ठकि सति "किति चे"त्यादिवृद्धेः टिड्ढाणञि"त्यादिना ङीपि, "आन्तःपुरिकी" इति रूपेण भाव्यम् । नूपुरेषु = पादाङ्गदेषु, मुखरता = शब्दशीलता, न तु राज्ञो वाचाटता । "पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् ।" इत्यमरः । विवाहेषु = परिणयसंस्कारेषु, करग्रहणं = पाणिग्रहणं, न तु राज्ञः शूद्रकात् केषां चिद्राज्ञां करग्रहणं, तस्य राजण्डलप्रधानत्वादिति भावः । अनवरतमखाऽग्निधूमेन = अनवरतं (निरन्तरम्) मखाऽग्निधूमेन (यज्ञाऽनलधूमेन) । अश्रुपातः = नयनसलिलपतनं, न तु शोकादिना । तुरङ्गेषु = अश्वेषु, कशाऽभिघातः = चर्मदण्डप्रहारः, नाऽन्यत्र । मकरध्वजे = कामदेवे, चापध्वनिः = धनुष्टङ्कारशब्दः, न तु युद्धे, शत्रुरहितस्य तस्य युद्धाऽभावात् । अत्र पूर्वोक्ते वाक्यसप्तके आर्थी परिसंख्या ।

अथ तस्य राज्ञो विदिशां नगरीं वर्णयति—**तस्येति ।** तस्य = पूर्वोक्तस्य, राज्ञः = शूद्रकस्य, कलिकालभयपुञ्जीभूतकृतयुगाऽनुकारिणी = कलिकालात् = (चरमयुगसमयात्) यत् भयं (भीतिः), तस्मात् पुञ्जीभूतं (समूहीभूतम्) यत् कृतयुगं (सत्ययुगं, प्रथमयुगम्) तत् अनुकरोतीति तच्छीला, पुण्यमयीति भावः । त्रिभुवनप्रसवभूमिः इव = त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं = स्वर्गमर्त्यपाताल-लोकत्रितयम्), "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" इति समासः, "संख्यापूर्वो द्विगुः" इति तस्य द्विगुसंज्ञा, "द्विगुरेकवचनम्" इत्येकवचनत्वम्, "स नपुंसकत्वम्" इति नपुंसकत्वम् त्रिभुवनस्य प्रसव-भूमिः इव = उत्पत्तिभूः इव, विस्तीर्णा = विस्तारसहिता । मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटाऽऽस्फालन-जर्जरितोर्मिमालया = मज्जन्त्यः (स्नान्त्यः) या मालवविलासिन्यः (अवन्तिकामिन्यः), तासां कुचतटानि (पयोधरस्थलानि), तेषाम् आस्फालनं (ताडनम्) तेन जर्जरिताः (क्षीणीकृताः) ऊर्मिमालाः (तरङ्गपङ्क्तयः) यस्याः सा, तया, "वेत्रवत्या" इति पदस्य विशेषणम् । जलाऽव-

---

जिन (शूद्रक) राजाका परलोक (लोकान्तर) से भय था, परलोक (शत्रुजन)से नहीं । अन्तःपुरकी स्त्रियोंके केशोंमें भङ्ग (कुटिलता) थी राजाका भङ्ग (पराजय) नहीं था । नूपुरोंमें मुखरता (शब्दशीलता) थी, अन्यत्र मुखरता (वाचालता) नहीं थी । विवाहोंमें कर (पाणि) का ग्रहण था और कोई राजा शूद्रकसे कर नहीं ले सकते थे । निरन्तर यज्ञके अग्निके धूएँसे अश्रुपात होता था, शोक आदिसे नहीं । घोड़ोंमें कशा (कोड़े)से आघात (प्रहार) था, अन्य जनोंपर नहीं । कामदेवमें धनुष्का टङ्कार था, युद्धमें नहीं ।

कलिसमयके भयसे समूहरूपमें अवस्थित सत्ययुगका अनुकरण (नकल) करनेवाली, स्वर्ग, मर्त्य और पातालस्वरूप तीनों लोकोंकी उत्पत्तिभूमिकी समान विस्तीर्ण, स्नान करती हुई मालवसुन्दरियोंके कुचतटोंसे ताडन होनेसे बिखरी हुई तरङ्गोंकी मालावाली, जलमें स्नान करनेके लिए आये हुए जयशील हाथियोंके मस्तक पिण्डोंमें

स तस्यामवर्जिताशेष-भुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः, द्वीपान्तरागतानेक-भूमिपाल-मौलिमाला-लालित-चरणयुगलो वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन्, अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिरनेककुलक्रमागतैरसकृदालोचित-नीतिशास्त्र-निर्म्मलमनोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः, समानवयोविद्यालङ्कारैरनेकमूर्द्धा-

---

गाहनाऽऽगतजयकुञ्जरकुम्भसिन्दूरसन्ध्यायमानसलिलया = जले (वेत्रवतीसलिले) अवगाहनं (मज्जनम्) तदर्थम् आगताः (आयाताः) "अवनारिता" इति पाठान्तरे आनीता इत्यर्थः। तादृशा ये जयकुञ्जराः (विजयशीला हस्तिनः), तेषां कुम्भाः (मस्तकपिण्डाः) तेषु विद्यमानं यत् सिन्दूरं (नागसम्भवम्) तेन सन्ध्यायमानं (सन्ध्यावदाचरितम्, आरक्तमिति भावः) तादृशं सलिलं (जलम्) यस्याः सा, तया, एवं च उन्मदकलहंसकुलकोलाहलमुखरीकृतकूलया = उन्मदाः (उत्कटमदाः) ये कलहंसाः (कादम्बाः), तेषां कुलं (सजातीयसमूहः) तस्य यः कोलाहलः (कलकलः) तेन मुखरितं (शब्दायमानम्) कूलं (तटम्) यस्याः सा, तादृश्या वेत्रवत्या = तन्नाम्न्या नद्या, परिगता = परिवेष्टिता। विदिशाऽभिधाना = विदिशा अभिधानं यस्याः साम्प्रतं "भेल्सा" इति नामधेययुक्ता, नगरी = पुरी, राजधानी = राजवासभूमिः, आसीत् = अभवत्। अत्रोत्प्रेक्षा, आर्थी उपमा, कुचतटास्फालनेन जर्जरितत्वाऽसम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धकथनात् अतिशयोक्तिश्चेत्येतेषामलङ्काराणां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः।

स तस्यामिति। तस्यां = राजधान्याम्, अवर्जिताशेषभुवनमण्डलतया = अवर्जितानि (स्वायत्तीकृतानि) अशेषाणि (समस्तानि) भुवनमण्डलानि (लोकसमूहाः) येन सः, तस्य भावस्तत्ता, तया। विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः = विगतः (अपगतः) यो राज्यचिन्ताभारः (राष्ट्रचिन्तनभरः), तेन हेतुना निर्वृतः (सुखसम्पन्नः)। द्वीपान्तराऽऽगताऽनेकभूमिपालमौलिमालालालितचरणयुगलः = अन्यानि द्वीपानि द्वीपान्तराणि (अनेकाऽन्तरीपाणि) तेभ्य आगताः (आयाताः) ये अनेके (बहवः) भूमिपालाः (भूपालाः) तेषां मौलिमालाः (मुकुटस्थस्रजः), ताभिः लालितं (सेवितम्) चरणयुगलं (पादयुग्मम्) यस्य सः। भुवनभारं = लोकपालनभारं, वलयम् इव = कङ्कणम् इव, भुजेन = बाहुना, लीलया = विलासेन, अनायासेनेति भावः। उद्वहन् = धारयन्। प्रज्ञया = बुद्ध्या, अमरगुरुम् अपि = बृहस्पतिम् अपि, उपहसद्भिः = उपहासं कुर्वद्भिः, अनेककुलक्रमाऽऽगतैः = बहुवंशपरम्पराप्राप्तैः, नार्वाचीनैरिति भावः। असकृदालोचितनीतिशास्त्रनिर्मलमनोभिः = असकृत् (वारंवारम्) आलोचितं (विचारितम्) यत् नीतिशास्त्रं (राजनयशास्त्रम्), तेन निर्मलं (स्वच्छम्, अकलुषमिति भावः) मनः (चित्तम्) येषां, तैः। अलुब्धैः = अलोलुपैः, अर्थदानेन शत्रुभिरग्राह्यैरिति भावः। स्निग्धैः = स्नेहयुक्तैः, प्रबुद्धैः = ज्ञानसम्पन्नैः, एतादृशैः अमात्यैः = मन्त्रिभिः, परिवृतः = परिवेष्टितः। "मन्त्री धीसचिवोऽमात्यः" इत्यमरः। राज्ञः सखीन् राजपुत्रान् वर्णयति—**समानेत्यादिः**। समानवयोविद्याऽलङ्कारैः = वयः (अवस्था), विद्याः (वेदाऽऽदिचतुर्दशविद्या अष्टादशविद्या वा),

---

अवस्थित सिन्दूरोंसे सन्ध्याकालके समान रक्तवर्णवाले जलसे सम्पन्न; और उत्कट मदवाले कलहंसोंके समूहके कल-कल शब्दसे शब्दयुक्त तटवाली वेत्रवती नदीसे परिवेष्टित विदिशा पुरी उन (शूद्रक)की राजधानी थी।

उन्होंने उस राजधानीमें समस्त भूमण्डलको जीतनेसे राज्यका चिन्ताभार जानेसे सुखी होकर अनेक द्वीपोंसे आये हुए अनेक राजाओंकी मुकुटमालाओंसे चरणकमलोंमें पूजित होकर हाथसे लोकोंके भारको कङ्कणके समान लीलासे धारण करते हुए, बुद्धिसे बृहस्पतिका भी उपहास करनेवाले अनेक वंशपरम्परासे आये हुए निरन्तर नीतिशास्त्रोंकी आलोचनासे निर्मलचित्तवाले, लोभसे रहित स्नेहपूर्ण विद्वान् मन्त्रियोंसे घिरे हुए, समान अवस्था, विद्या और अलङ्कारोंवाले अनेक क्षत्रिय राजाओंके वंशमें उत्पन्न और समस्त कलाओंकी आलोचनासे परिपक्व-

भिषिक्त–पार्थिवकुलोद्गतैरखिल–कलाकलापालोचन–कठोरमतिभिरतिप्रगल्भैः कालविद्भिः प्रभावाऽनुरक्तहृदयैरग्राम्योपहासकुशलैरिङ्गिताकारवेदिभिः काव्य–नाटकाख्यानकाख्यायिकाले-ख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैरतिकठिन–पीवर–स्कन्धोरु–बाहुभिरसकृदवदलित–समद–रिपुगज–घटा–पीठबन्धैः केसरिकिशोरकैरिव, विक्रमैकरसैरपि विनयव्यवहारिभिरात्मनः प्रति-बिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिचिरमुवास ।

अलङ्कारा: (आभूषणानि) । समाना: (सदृशा:) वयोऽवस्थाऽलङ्कारा येषां, तैः, राजपुत्रैरित्यस्य विशेषणम्, एवमन्यत्राऽपि बोध्यम् । अनेकमूर्द्धाऽभिषिक्तपार्थिवकुलोद्गतैः = अनेके (बहवः) मूर्द्धा-ऽभिषिक्ता: (क्षत्रियाः) ये पार्थिवाः (राजानः), तेषां कुलानि (वंशाः), तेभ्य उद्गताः (उत्पन्नाः), तैः । "मूर्द्धाऽभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट् ।" इति "राज्ञि राट् पार्थिवक्ष्माभृन्नृपभूपमहीक्षितः ।" इत्यप्यमरः । अखिलकलाकलापाऽऽलोचनकठोरमतिभिः = अखिलाः (समस्ताः) याः कलाः (नृत्यगीतवादित्रादिरूपाः शिल्पविशेषाः) तासां कलापाः (समुदायाः), तेषाम् आलोचनं (विमर्शनम्), तेन कठोरा (प्रौढा) मतिः (बुद्धिः) येषां, तैः । अतिप्रगल्भैः = अतिशयप्रतिभाऽन्वितैः, कालविद्भिः = समयाऽभिज्ञैः, अवसरवेत्तृभिरिति भावः, प्रभावाऽनुरक्तहृदयैः = प्रभावः (माहात्म्यम्), तेन अनुरक्तम् (अनुरागयुक्तम्) हृदयं (चित्तम्) येषां, तैः अग्राम्यो-पहासकुशलैः = अग्राम्यः (अग्रामीणः, नागरिक इति भावः) य उपहासः (नर्मवचनविलासः), तस्मिन् कुशलाः (निपुणाः), तैः । इङ्गिताऽऽकारवेदिभिः = इङ्गितम् (मनोविकारः) आकारः (आकृतिः मुखरागादिरिति भावः) तौ विदन्ति (जानन्ति) इति तच्छीलाः, तैः । काव्यनाटका-ऽऽख्यानकाऽऽख्यायिकाऽऽलेख्यव्याख्यानादिक्रियानिपुणैः = काव्यम् (कविकर्म, पद्यमयमिति भावः) नाटकम् (रूपकं, दृश्यमिति भावः) आख्यायिका (गद्यकाव्यभेदः, वासवदत्ताऽऽदिः), आलेख्यानि (चित्रकर्माणि), व्याख्यानानि (अर्थनिर्वचनानि) तानि आदिः (प्रभृतिः) यासां ताः, ताश्च ताः क्रियाः (कर्माणि) तासु निपुणाः (प्रवीणाः), तैः । अतिकठिनपीवरस्कन्धोरुबाहुभिः = अतिकठिनाः (अतिशयकठोराः) पीवराः (स्थूलाः), स्कन्धाः (अंसाः), ऊरवः (सक्थीनि), "सक्थि क्लीबे पुमानूरुः" इत्यमरः । बाहवः (भुजाः) येषां, तैः । असकृदवदलितसमदरिपुगजघटापीठबन्धैः = असकृत् (वारंवारम्) अवदलिताः (मर्दिताः) समदाः (मदयुक्ताः) रिपुगजघटाः (शत्रुहस्ति-घटनाः, "करिणां घटना घटा" इत्यमरः । तासां पीठबन्धाः (पृष्ठस्थलभागाः) यैः तैः । अत एव केसरिकिशोरकैः = केसरिणां (सिंहानाम्) किशोरकाः (बालाः), तैः इव । अत्रोपमाऽलङ्कारः । विक्रमैकरसैः = विक्रमे (पराक्रमे) एव एकः (मुख्यः) रसः (अनुरागः) येषां, तैः, अपि । विनय-व्यवहारिभिः = विनयेन (शास्त्रजसंस्कारेण) व्यवहरन्ति (व्यवहारं कुर्वन्ति) तच्छीलाः, तैः । आत्मनः = स्वस्य । प्रतिबिम्बैः = प्रतिकृतिभिः, इव, राजपुत्रैः = नृपकुमारैः, सह = समं, रममाणः = क्रीडन्, प्रथमे = आद्ये, वयसि = अवस्थायां, किशोराऽवस्थायामिति भावः । सुखम् = आनन्दपूर्वकम्, अतिचिरं = बहुकालपर्यन्तम् । उवास = वासं चकार ।

बुद्धिवाले अतिशय प्रतिभासे सम्पन्न, समयको जाननेवाले, प्रभावसे अनुरक्त चित्तवाले, अग्राम्य (शिष्ट) परिहासमें कुशल हृदय और शरीरकी चेष्टाओंको जाननेवाले, काव्य, नाटक, आख्यानक, आख्यायिका, चित्रकर्मव्याख्यान आदि कृत्योंमें प्रवीण, अत्यन्त कठोर और पुष्ट, कन्धे, ऊरु और बाहुओंवाले, शत्रुओंके मदवाले हाथियोंके पीठोंको मर्दन करनेवाले, सिंहोंके बच्चोंके समान, पराक्रममें मुख्य अनुरागवाले होकर भी विनयसे व्यवहार करनेवाले अपने प्रतिबिम्बोंके समान राजकुमारोंके साथ क्रीडा करते हुए युवाऽवस्थामें सुखपूर्वक बहुत समयतक निवास किया ।

तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमाकलयतः प्रथमे वयसि वर्त्तमानस्यापि रूपवतोऽपि सन्तानार्थिभिरमात्यैरपेक्षितस्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत् ।

सत्यपि रूपविलासोपहसित-रतिविभ्रमे लावण्यवति विनयवत्यन्वयवति हृदयहारिणि चावरोधजने, स कदाचिदनवरतदोलायमान-रत्नवलयो घर्घरिकास्फालन-प्रकम्प-झणझणायमान-मणिकर्णपूरः स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः सङ्गीतकप्रसङ्गेन, कदाचिदविरल-विमुक्त-शरासार-शून्यीकृतकाननो मृगयाव्यापारेण, कदाचिदाबद्धविदग्धमण्डलः काव्यप्रबन्धरच-

---

तस्य चेति—अतिविजिगीषुतया = अतिशयविजयाऽभिलाषितया, महासत्त्वतया = महत् (अधिकम्) सत्त्वम् (सत्त्वगुणः) यस्य सः, तस्य भावस्तत्ता, तया च । स्त्रैणं = स्त्रीसमूहं, तृणम् इव = यवसम् इव । लघुवृत्ति = लघ्वी (तुच्छा) वृत्तिः (वर्तनम्) यस्य, तत् । आकलयतः = विचारयतः, प्रथमे = आद्ये, वयसि अवस्थायां, वर्तमानस्य = विद्यमानस्य, अपि, रूपवतः = सौन्दर्यसम्पन्नस्य, अपि, सन्तानार्थिभिः = सन्तानम् (अपत्यम्) अर्थयन्ते (उपयाचन्ते) तच्छीलाः, तैः । तादृशैः अमात्यैः = मन्त्रिभिः, अपेक्षितस्य = अभीष्टस्य, अपि । तस्य = राज्ञः शूद्रकस्य । अथाऽवरोधजनं विशेषयति—**सत्यपीति ।** रूपविलासोपहसितरतिविभ्रमे = रूपं (सौन्दर्यम्), विलासाः (विलसनानि क्रीडा इति भावः), तैः उपहसिताः (हास्यविषयीकृताः), रतेः (कामप्रियायाः) विभ्रमाः (शृङ्गारचेष्टाः) येन, तस्मिन्, लावण्यवति = सौन्दर्याऽतिशयसम्पन्ने, विनयवति = अभ्युत्थानादिशीलयुक्ते, अन्वयवति = महाकुलसम्पन्ने, हृदयहारिणि = मनोहरणशीले, तादृशे अवरोधजने = अन्तःपुरस्थस्त्रीसमूहे, सति अपि = विद्यमाने अपि, सुरतसुखस्य उपरि = कामक्रीडाऽऽनन्दस्य विषये, द्वेषः = अप्रीतिः, इव, आसीत् = अभवत् । अत्र सुरतसुखे द्वेषस्य हेतुं विनाऽपि तस्योत्पत्तेः विभावना, अथवा सुरतस्य हेतावरोधजने सत्यपि सुरतरूपफलाऽभावाद्विशेषोक्तिरित्यनयोः सन्देहसङ्करः, तृणमिवेत्यत्रोपमा च तथा चैतयोः सङ्करः ।

स कदाचिदिति । सः = शूद्रकः, कदाचित् = जातुचित् समये, संगीतकप्रसङ्गेन = गीतवाद्याद्यवसरेण, "दिवसम् अनैषीत्" इत्यत्र सम्बन्धः एवं परत्राऽपि । अनवरतदोलायमानरत्नवलयः = अनवरतं (निरन्तम्) दोलायमाने (दोलावत् आचरिते, उभयतः संचलिते इति भावः) रत्नवलये (मणिखचितकङ्कणे) यस्य सः । घर्घरिकाऽऽस्फालनप्रकम्पझणझणायमानमणिकर्णपूरः = घर्घरिका (वाद्यविशेषः), तस्या आस्फालनं (ताडनं, वादनमितिभावः) तेन झणझणायमानौ (झणझणरूपशब्दं कुर्वन्तौ) मणिकर्णपूरौ (रत्नखचितकर्णाऽलङ्कारौ) यस्य सः । स्वयम् = आत्मना, आरब्धमृदङ्गवाद्यः = आरब्धम् (प्रारब्धम्), मृदङ्गवाद्यं (मुरजवाद्यवादनं, लक्षणया एषोऽर्थः) येन सः । तादृशः सन् दिवसं = दिनम्, अनैषीत् = नीतवान् । कदाचित् = जातुचित्, मृगयाव्यापारेण = आखेटकर्मणा, अविरलविमुक्तशराऽऽसारशून्यीकृतकाननः = अविरलं (निरन्तरं) यथा तथा विमुक्ताः (प्रक्षिप्ताः) ये शराऽऽसाराः (बाणमहावृष्टयः, लक्षणया एषोऽर्थः) तैः शून्यीकृतम् (आखेटपशु-

---

विजयप्राप्तिके लिए अतिशय अभिलाष करनेसे और बहुत ही सत्त्व (सत्त्वगुण वा बल) वाले होनेसे भी स्त्रीसमूहको तृणके समान तुच्छ समझनेवाले, यौवन और सुन्दर होनेपर भी तथा सन्तानकी इच्छा रखनेवाले मन्त्रियोंसे अपेक्षित होनेपर भी सौन्दर्य और विलाससे रतिके विलासका भी उपहास करनेवाली सौन्दर्यमयी, विनयवाली विशाल कुलमें उत्पन्न मनोहर अन्तःपुरकी स्त्रियोंके रहनेपर भी राजा शूद्रकको कामक्रीडाके प्रति अप्रीति-सी थी । वे (शूद्रक) किसी समय संगीतके प्रसङ्गसे निरन्तर रत्नखचित कङ्कणोंको हिलाते हुए, घर्घरिका-(वाद्यविशेष)को बजानेसे कम्पन होकर मणिखचित कर्णाऽलङ्कारोंको 'झनझन' शब्दवाले करते हुए, स्वयम् पखावज बजाते हुए, किसी समय शिकार खेलनेके प्रसङ्गसे लगातार बाणोंकी वृष्टि करनेसे वनको हिंस्र जन्तुओंसे शून्य

नेन, कदाचिच्छास्त्रालापेन, कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन, कदाचिदालेख्यविनोदेन, कदाचिद्वीणया, कदाचिद्दर्शनागत-मुनिजन-चरणशुश्रूषया, कदाचिदक्षरच्युतक-मात्राच्युतक-बिन्दुमती-गूढचतुर्थपाद-प्रहेलिका-प्रदानादिभिः, वनितासम्भोगसुख-पराङ्मुखः सुहृत्परिवृतो दिवसमनैषीत् । यथैव च दिवसमेवमारब्ध-विविध-क्रीडा-परिहास-चतुरैः सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत् ।

रिक्तीकृतम्) काननं (वनम्) येन सः । कदाचित् काव्यप्रबन्धरचनेन = काव्यं (दृश्यश्रव्यादि) प्रबन्धाः (कथाः) तेषां रचनेन (निर्माणेन) । कदाचित्, आबद्धविदग्धमण्डलः = आबद्धम् (आरचितम्) विदग्धानां (निपुणानां जनानाम्) मण्डलं (समूहः) येन सः । कदाचित् शास्त्राऽऽलापेन = वेदादिशास्त्रभाषणेन, कदाचित् आख्यानकाऽऽख्यायिकेतिहासपुराणाऽऽकर्णनेन = आख्यानकम् (अमृतमन्थनादिकमितिवृत्तम्) आख्यायिका (गद्यकाव्यविशेषः), इतिहासः (पुरावृत्तम्, रामायण-महाभारतादिकम्) पुराणं (पञ्चलक्षणं, श्रीमद्भागवतादिकम्) तेषाम् आकर्णनेन (श्रवणेन) । कदाचित्, आलेख्यविनोदेन = चित्रकर्मक्रीडया, कदाचित्, वीणया = विपञ्च्या, तद्वादनेन तच्छ्रवणेन चेति भावः । कदाचित्, दर्शनाऽऽगतमुनिजनचरणशुश्रूषया = दर्शनाऽऽगताः (विलोकनार्थमायाताः) ये मुनिजनाः (वीतरागलोकाः) तेषां चरणशुश्रूषा (पादसेवा), तया । कदाचित्, अक्षरच्युतक-मात्राच्युतकबिन्दुमतीगूढचतुर्थपादप्रहेलिकाप्रदानादिभिः = अक्षरच्युतकम् (अक्षरः = वर्णः, च्युतः = रहितः यस्मिंस्तत्, अक्षरच्युतं, तदेव अक्षरच्युतकम्, यथा—कूजन्ति कोकिलाः साले "अत्र रसाले" इति वक्तव्ये रश्च्युतः, तेन वृक्षे इत्यर्थः, रसाले इत्यस्य आम्र इत्यर्थः) मात्राच्युतकं मात्रा (वर्णाऽवयवः), च्युता (पतिता) यस्मिन्, तत् तदेवं यथा—"मूलस्थितिमधः कुर्वन्पात्रैर्जुष्टो गताऽक्षरैः । विटः सेव्यः कुलीनस्य तिष्ठतः पथिकस्य सः ॥" अत्र "विट" पदात् इकारमात्रायां च्युतायां "वट"-रूपस्याऽर्थस्य प्रतीतिः । बिन्दुमती = पद्याऽक्षरसंख्यया बिन्दुमात्रस्थापनेन तत्तदक्षरोपलब्धिः सा यथा—

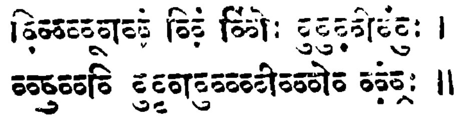

तत्पद्यं यथा—"त्रिनयनचूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुद्वतीबन्धुः ।
अयमुदयति घुसृणाऽरुणरमणीवदनोपमश्चन्द्रः ॥" इति ।

गूढचतुर्थपादः = गूढः (गुप्तः) चतुर्थः (तुर्यः) पादः (चरणः) यस्मिन् सः । आद्ये पादत्रय एव यत्र चतुर्थपादस्याऽक्षरा गूढाः स गूढचतुर्थपादः । तदुदाहरणं यथा—

"न मज्जति क्वचिद्दोषे प्रीणाति जगतो मनः ।
य एकः स परं श्रीमान् चिरं जयति सज्जनः ॥"
अत्र चतुर्थपादाऽक्षराः पादत्रये गूढाः ।

प्रहेलिका = श्लेषे सति यत्र विशेष्यस्याऽनभिधानं सा प्रहेलिका । सा च द्विविधा—शाब्दी आर्थी च । द्वयोरप्युदाहरणं यथा—

"तरुण्याऽऽलिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः ।
गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥"

करते हुए, किसी समय काव्य और प्रबन्धोंकी रचनासे रसिकपुरुषोंको इकट्ठा करते हुए, किसी समय शास्त्राऽऽलापसे, किसी समय आख्यानक, आख्यायिका, इतिहास और पुराणोंको सुननेसे, किसी समय चित्रलेखनके विनोदसे, किसी समय वीणा बजानेसे, किसी समय दर्शनके लिए आये हुए मुनिजनोंके चरणोंकी सेवासे, किसी समय अक्षरच्युतकसे (जहाँपर एक अक्षर हटा देनेसे दूसरा ही अर्थ निकलता है) मात्राच्युतकसे (जहाँपर एक

एकदा तु नातिदूरोदिते नव–नलिन–दलसम्पुट–भिदि किञ्चिन्मुक्त–पाटलिम्नि भगवति सहस्रमरीचिमालिनि, राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वविलम्बिना कौक्षेयकेण सन्निहितविषधरेव चन्दनलता भीषणरमणीयाकृतिः, अविरलचन्दनानुलेपन-धवलित–स्तनतटा उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी चूडामणिसंक्रान्तप्रतिबिम्बच्छलेन

शाब्दयां प्रहेलिकायां भर्तृरूपोऽर्थः । आर्य्यां तु पानीयकुम्भः, स गुरूणां = वृद्धघटानां, सन्निधाने = ऊर्ध्वप्रदेशे स्थित्या सामीप्येऽपि, मुहुर्मुहुः, कूजति = शब्दायते । एतासां प्रदानादिभिः (समर्पणादिभिः), वनितासंभोगसुखपराङ्मुखः = वनितानां (स्त्रीणां) यः संभोगः (उपभोगः) तस्य यत् सुखम् (आनन्दः), तस्मिन् पराङ्मुखः (विमुखः), सुहृत्परिवृतः = सुहृद्भिः (मित्रैः) परिवृतः (परिवेष्टितः) सन्, दिवसं = दिनम् । अनैषीत् = यापितवान् । यथैव = येन प्रकारेण एव, दिवसं = दिनम्, अनैषीत्, एवं = तथैव, आरब्धक्रीडापरिहासचतुरैः = आरब्धाः प्रारब्धाः ये क्रीडापरिहासाः (खेलोपहासाः) तेषु चतुराः (निपुणाः) तैः सुहृद्भिः = मित्रैः, उपेतः = युक्तः सन्, निशां = रात्रिम्, अनैषीत् = नीतवान् ।

एकदेति । एकदा = एकस्मिन्काले, प्रतीहारी = दौवारिकी, समुपसृत्य = समीपमागत्य, सविनयं = नम्रतापूर्वकम्, अब्रवीत् = अवोचत्, इत्यन्वयः । सूर्यवर्णनच्छलेन उक्त्यवसरमाह— भगवति=ऐश्वर्यशालिनि, सहस्रमरीचिमालिनि=सूर्ये इत्यर्थः । सहस्रं च ता मरीचयः माला अस्याऽस्तीति माली, "व्रीह्यादिभ्यश्च" इति इनिः । सहस्रमरीचीनां माली, तस्मिन् । सहस्रकिरणैः मालते (शोभते, तान् धारयति वा) इति अपव्याख्या, मालधातोरसत्त्वात् । नाऽतिदूरोदिते = नाऽतिदूरम् = (नाऽतिविप्रकृष्टम्, अल्पकालमात्रमिति भावः), उदिते (उद्गते) सति, नवनलिनदलसंपुटभिदि = नवानि (नूतनानि), यानि नलिनानि (कमलानि), तेषां दलानि (पत्त्राणि), तेषां सम्पुटाः (मुकुलाः) तान् भिनत्ति (निवारयति) इति नवनलिनदलसम्पुटभित्, तस्मिन्, नवकमलविकासक इति भावः । अत एव किञ्चिन्मुक्तपाटलिम्नि = किञ्चित् (स्तोकं यथा तथा) मुक्तः (त्यक्तः) पाटलिमा (श्वेतरक्तभावः) येन तस्मिन्सति । आस्थानमण्डपगतं = सभाभवनप्राप्तं, राजानं = भूपालं, शूद्रकम् । अङ्गनाजनविरुद्धेन = स्त्रीजनविरुद्धेन, वामपार्श्वाऽवलम्बिना = दक्षिणेतरभागावलम्बनशीलेन, कौक्षेयकेण = खड्गेन, "कौक्षेयको मण्डलाऽग्रः करवालः कृपाणवत्" इत्यमरः । सन्निहितविषधरा = सन्निहितः (निकटस्थितः) विषधरः (सर्पः) यस्याः सा । चन्दनलता इव = श्रीखण्डवल्ली इव । भीषणरमणीयाऽऽकृतिः = भीषणा (भयङ्करी) रमणीया (मनोहरा) आकृतिः (आकारः) यस्याः सा । पूर्णोपमाऽलङ्कारः । अविरलेत्यादिः = अविरलं (घनतरं) यत् चन्दनस्य (श्रीखण्डस्य) अनुलेपनम् (उद्वर्तनम्), तेन धवलितं (शुक्लीकृतम्) स्तनतटं (कुचतटम्) यस्याः, सा, अत्र दृष्टान्तमाह—उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डला = (उन्मज्जत् = उन्मज्जनं कुर्वत् जलं प्रविशदिति

मात्रा हटानेसे दूसरा अर्थ हो जाता है), बिन्दुमतीसे (जहाँपर अक्षरोंकी जगह बिन्दुमात्र रख दिये जाते हैं), गूढचतुर्थपादसे (जहाँपर किसी पद्यमें चतुर्थचरण गूढ है अर्थात् तीन चरणोंके भीतर रहे हुए अक्षरोंसे ही उसको निकाला जाता है), और प्रहेलिका (पहेली) आदि देनेसे स्त्रीके समागम-सुखमें पराङ्मुख होकर मित्रोंसे घिर कर दिन बिताते थे । दिनके ही समान रातको भी अनेक क्रीडा (खिलवाड़) दिल्लगी करनेवाले मित्रोंसे युक्त होकर बिताते थे ।

एकबार नये कमलपत्रोंको विकसित करनेवाले और लालीको कुछ छोड़नेवाले भगवान् सूर्यके कुछ दूर उदित होनेपर प्रातःकालमें सभामण्डपमें स्थित राजाके पास स्त्रीजनके विरुद्ध और वाम भागमें लटकते हुए तलवारसे सर्पकी निकटवर्तिनी चन्दनलताके समान भयङ्कर और मनोहर आकृतिवाली निरन्तर चन्दनके अनुलेपनसे जिसका स्तनतट सफेद है, जिसमें ऐरावत हाथीका मस्तकपिण्ड ऊपर उठा है ऐसी आकाशगङ्गाकी समान, शिरके

राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंसधवलाम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी, प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितल-निहित-जानु-करकमला सविनयमब्रवीत्—

"देव ! द्वारस्थिता सुरलोकमारोहतस्त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुङ्कार-निपातिता राजलक्ष्मीर्दक्षिणापथादागता चण्डाल-कन्यका पञ्जरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति-'सकलभुवनतलसर्वरत्नानाम् उदधिरिवैकभाजनं देवः, विहङ्गमश्चायमाश्चर्यभूतो निखिल-भुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमेनमादायागताऽहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम्' इति, एतदाकर्ण्य देवः प्रमाणमि'त्युक्त्वा विरराम।

भावः) ऐरावतस्य (इन्द्रगजस्य) कुम्भमण्डलं (मस्तकमांसपिण्डः) यस्यां सा, तादृशी, मन्दाकिनी इव = आकाशगङ्गा इव, उपमाऽलङ्कारः। चूडामणिसंक्रान्तप्रतिबिम्बच्छलेन = चूडामणिषु (शिरोरत्नेषु, राजशिरःस्थितेष्विति शेषः), संक्रान्तं (पतितम्) यत् प्रतिबिम्बं (प्रतिच्छाया) तस्य छलं (व्याजः) तेन। राजभिः = नृपैः, शिरोभिः = मस्तकैः, उह्यमाना = धार्यमाणा, मूर्तिमती = शरीरिणी, राजाऽऽज्ञा इव = नृपादेश इव, अत्र कैतवापह्नुतिरुत्प्रेक्षा च अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। कलहंसधवलाऽम्बरा = कलहंसैः (कादम्बैः) धवलं (शुभ्रम्), अम्बरम् (आकाशम्) यस्यां सा, तादृशी शरत् = शरदृतुः, इव। पक्षाऽन्तरे—कलहंस इव (कादम्ब इव) धवलं (शुभ्रम्) अम्बरं (वस्त्रम्) यस्माः सा। पूर्णोपमा। जामदग्न्यपरशुधारा इव = जामदग्न्यस्य (परशुरामस्य) परशुः (कुठारः) तस्य, धारा (अग्रभागः) इव, वशीकृतसकलराजमण्डला=वशीकृतं (स्वाऽधीनीकृतम्) सकलं (समस्तम्) राजमण्डलं (भूपसमूहः) यया सा। पूर्णोपमा। विन्ध्यवनभूमिः = विन्ध्यवनस्य (विन्ध्याऽचलकाननस्य) भूमिः (पृथिवी) इव, वेत्रलतावती = वेत्रयष्टियुक्ता (उपमाऽलङ्कारः) विग्रहिणी = शरीरधारिणी, राज्याऽधिदेवता = राज्यस्य (राष्ट्रस्य) अधिदेवता (अधिष्ठात्री देवी) इव, उत्प्रेक्षा। प्रतीहारी = द्वारपालिका, समुपसृत्य = समीपमागत्य, क्षितितलनिहितजानुकरकमला = क्षितितले (भूतले) निहितं (स्थापितम्) जानु-करकमलम् (अष्ठीवद्धस्तपद्मम्) यया सा, तादृशी सती, राजानं = भूपं शूद्रकं, सविनयं = नम्रतापूर्वकम्, अब्रवीत् = उक्तवती।

देवेति। देव = हे राजन् !, द्वारस्थिता = प्रतीहारवर्तमाना, सुरलोकं = देवभुवनं, स्वर्गम्, आरोहतः = आरोहणं कुर्वतः, कुपितशतमखहुङ्कारनिपातिता = कुपितः (क्रुद्धः) यः शतमखः (इन्द्रः), तस्य हुङ्कारः (हुङ्करणं, क्रोधव्यञ्जको ध्वनिः), तेन निपातिताः (अधः प्रेरिता) राजलक्ष्मीः = भूपश्रीः इव, (उत्प्रेक्षा) पुरा त्रिशङ्कुर्नाम सूर्यवंशप्रसूतो राजा सशरीरं स्वर्गं जिगमिषुः सन् कुलगुरुणा वशिष्ठेन प्रतिषिद्धत्वात्तदर्थं विश्वामित्रस्याचार्यत्वे यज्ञं समारेधे तत्फलत्वेन स्वर्गमारोहन् स इन्द्रेणाऽधः पातित इति रामायणकथा। दक्षिणापथात् = दक्षिणदिङ्मार्गात्, आगता = आयाता, चाण्डालकन्यका = मातङ्गकुमारी, पञ्जरस्थं = पिञ्जरस्थितं, शुकं = कीरम्, आदाय = गृहीत्वा, देवं = राजानं, भवन्तं, विज्ञापयति = निवेदयति। विज्ञापनप्रकारमाह—सकलेति। सकलभुवनतलसर्वरत्नानां = सकलानि (समस्तानि) यानि भुवनतलानि (लोकतलानि) तेषु यानि सर्वरत्नानि

रत्नोंमें पड़े हुए प्रतिबिम्बके बहानेसे अन्य राजाओंके शिरसे ली गई मूर्तिमती राजाकी आज्ञाकी सदृश, हँसीसे सफेद आकाशवाली शरत् (ऋतु) की समान हंसके समान सफेद वस्त्र पहनी हुई, परशुरामके फर्सेकी नोकको समान सब राजसमूहको वशमें करनेवाली, जैसे विन्ध्यपर्वतकी भूमि वेत्रलतासे युक्त है वैसे ही वेत्रयष्टिको लेनेवाली शरीरको धारण करनेवाली राज्यकी अधिदेवताकी सदृश द्वारपालिका निकट आकर घुटने टेककर और करकमलोंको जमीनपर रखकर नम्रताके साथ बोली—हे महाराज ! क्रुद्ध इन्द्रके हुङ्कारसे भूमिपर गिराई गई स्वर्गमें आरोहण करते हुए त्रिशङ्कु राजाकी राजलक्ष्मीकी समान दक्षिणापथसे आई हुई चाण्डालकन्यका पिंजड़ेमें स्थित सुग्गाको लेकर महाराजको निवेदन करती है—समस्तभूतलके सकल रत्नोंके समुद्रके समान महाराज ही एकमात्र पात्र हैं, और

उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्त्तिनां राज्ञामवलोक्य मुखानि 'को दोषः, प्रवेश्यताम्' इत्यादिदेश।

अथ प्रतीहारी नरपतिकथनानन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत्। प्रविश्य च सा नरपतिसहस्र-मध्यवर्त्तिनमशनिभय-पुञ्जितकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेक-रत्नाभरण-किरण-जालकान्तरितावयवमिन्द्रायुध-सहस्र-सञ्छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधर-दिवसम्, अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकशृङ्खला-नियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य

(उदधिपक्षे—सकलमणयः, राजपक्षे = सकलश्रेष्ठवस्तूनि), तेषाम्, उदधिः = समुद्र इव, देवः = भवान्, एकभाजनं = मुख्यपात्रम्। "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि मणावपि नपुंसकम्।" इति मेदिनी। "एके मुख्याऽन्यकेवलाः।" इत्यमरः। आश्चर्यभूतः = अद्भुतस्वरूपः, अयं = निकटवर्ती, विहङ्गमः = पक्षी शुकश्च। निखिलभुवनतलरत्नं = समस्तलोकतलश्रेष्ठः, इति कृत्वा = एवं विचार्य, एनं = विहङ्गमं शुकम्, आदाय, देवपादमूलं = भवच्चरणमूलम्, आयाता = आगता, अहं, देवदर्शनसुखं = भवद्विलोकनाऽऽनन्दम्, अनुभवितुं = विषयीकर्तुम्, इच्छामि = वाञ्छामि। एतत् = पूर्वोक्तं वाक्यम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, देवः = भवान्, प्रमाणं = कार्याऽनुष्ठाने हेतुः। इति = एवम्, उक्त्वा = अभिधाय, विरराम = विरता बभूव, मौनं जग्राहेति भावः। "व्याङ्परिभ्यो रमः" इति परस्मैपदम्।

उपजातेति। उपजातकुतूहलः = उपजातम् (उत्पन्नम्) कुतूहलम् (कौतुकम्) यस्य सः। राजा = भूपः, शूद्रकः। समीपवर्तिनां = निकटस्थानां, राज्ञां=भूपानां, मुखानि=वदनानि, आलोक्य= दृष्ट्वा, को दोषः = किं दूषणं, प्रवेश्यताम् = आनीयताम् इति भावः, इति = एवम्, आदिदेश = आज्ञा-पयामास।

अथेति। अथ = राजवचनश्रवणाऽनन्तरं, प्रतीहारी = द्वारपालिका, नरपतिकथनाऽनन्तरं = राजवचनाऽनुपदम्, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, तां = पूर्वोक्तां, मातङ्गकुमारीं = चाण्डालदारिकां प्रावेश-यत् = प्रवेशम् अकारयत्।

प्रविश्य चेति। प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, सा = चाण्डालदारिका। "राजानम् अद्राक्षीत्" इत्यत्र सम्बन्धः। राजानं विशेषयति—नरपतीत्यादिः। नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनं=नरपतीनां (राज्ञाम्) सहस्रं (बहुसंख्या), तन्मध्यवर्तिनं (तदन्तरस्थितम्), तत्रोपमानं दर्शयति—अशनिभयपुञ्जितकुल-शैलमध्यगतम् = अशनेः (वज्रात्) यत् भयं (भीतिः) ततः पुञ्जिताः (एकत्र स्थिताः) ये कुल-शैलाः (महेन्द्रादयः कुलपर्वताः) तेषां मध्यगतम् (अन्तरस्थितम्), कनकशिखरिणम् इव = सुमेरु-पर्वतम् इव। उपमाऽलङ्कारः। एवं च अनेकरत्नाऽऽभरणेत्यादिः = अनेकानि (बहूनि) यानि रत्ना-ऽऽभरणानि (मण्यलङ्काराः) तेषां यत् किरणजालकं (रश्मिसमूहः) तेन अन्तरिताः (आच्छादिताः) अवयवाः (अङ्गानि) यस्य सः, तम्। उपमानं निर्दिशति—इन्द्रायुधसहस्रसञ्छादिताऽष्टदिग्विभागम्= इन्द्रायुधसहस्रेण (शक्रधनुःसमुदायेन) सञ्छादिताः (आवृताः) अष्टौ (अष्टसंख्यकाः) दिग्विभागाः

चमत्कारपूर्ण यह पक्षी (तोता) भी सकल भूतलका रत्न है ऐसा विचार कर इसको लेकर महाराजके चरणमूलमें आई हुई मैं आपके दर्शनसुखका अनुभव करना चाहती हूँ, "यह सुनकर महाराज आज्ञाके लिए प्रमाण है" ऐसा कह कर चुप हो गई।

राजाने उत्कण्ठित होकर निकटमें विराजमान राजाओंका मुँह देखकर "क्या दोष है ? उसे प्रवेश कराओ।" ऐसी आज्ञा दी।

राजाके भाषणके अनन्तर द्वारपालिकाने उठकर उस चाण्डालकुमारीको प्रवेश कराया।

उसने प्रवेश कर हजारों राजाओंके बीचमें रहे हुए राजा (शूद्रक) को वज्रके भयसे इकट्ठे हुए महेन्द्र आदि कुलपर्वतोंके मध्यमें स्थित सुमेरुपर्वतके समान, अनेक रत्नोंसे खचित भूषणोंके किरणसमूहसे आच्छादित अवयव-वाले राजाको—जिसमें हजारों इन्द्रधनुषोंसे आच्छादित आठ दिशाएँ होती हैं ऐसे वर्षा ऋतुके दिनके सदृश,

गगन–सिन्धु–फेन–पटल–पाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्य्यङ्किकानिषण्णम्, उद्धूयमान–सुवर्णदण्डचामरकलापम्, उन्मयूखमुख–कान्तिविजय–पराभवप्रणते शशिनीव स्फटिकपादपीठे विन्यस्तवामपादम्, इन्द्रनीलमणि-कुट्टिम-प्रभासम्पर्कश्यामायमानैः प्रणत-रिपु-निःश्वासमलिनीकृतैरिव चरण-नखमयूखजालैरुपशोभमानम्, आसनोल्लसित-पद्मराग-किरण-पाटलीकृतेनाचिरमृदितमधु-कैटभ-रुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृतफेन-धवले गोरोचना–लिखित–हंस–मिथुन–सनाथ–पर्य्यन्ते चारुचामरवायुप्रनर्त्तितान्त-

---

(ककुप्प्रदेशाः) यस्मिन्, तम् । तादृशं जलधरदिवसम् = वर्षर्तुदिनम् इव, उपमा । अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य = अवलम्बिताः (आलम्बिताः) स्थूलाः (विपुलाः) मुक्ताकलापाः (मौक्तिकसमूहाः) यस्मिन्, तस्य "दुकूलवितानस्य" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । कनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य = कनकस्य (सुवर्णस्य) शृङ्खलाः (बन्धनरज्जवः) ताभिः नियमितम् (निबद्धम्) मणिदण्डिकाचतुष्टयं (रत्नखचितयष्टिचतुष्कम्) यस्मिन्, तस्य । गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य = गगनसिन्धोः (आकाशगङ्गायाः) यत् फेनपटलं (डिण्डीरसमूहः) तदिव पाण्डुरं (शुभ्रम्), तस्य । "डिण्डीरोऽब्धिकफः फेन" इत्यमरः । तादृशस्य नाऽतिमहतः = नाऽधिकविशालस्य, दुकूलवितानस्य = क्षौममयोल्लोचस्य, अधस्तात् = निम्नस्थाने, इन्दुकान्तपर्यङ्किकानिषण्णम् = इन्दुकान्तानां (चन्द्रकान्तमणीनां) या पर्यङ्किका (अल्पः पर्यङ्कः), तत्र निषण्णम् (उपविष्टम्) । लुप्तोपमाऽलङ्कारः । उद्धूयमानसुवर्णदण्डचामरकलापम् = उद्धूयमानः (सेवकैः कम्प्यमानः, वीज्यमान इति भावः) सुवर्णदण्डः (कनकदण्डयुक्तः) चामरकलापः (प्रकीर्णकसमूहः) यस्य, तम् । उन्मयूखमुखकान्तिविजयपराभवप्रणते = उन्मयूखम् (ऊर्ध्वगामिकिरणयुक्तम्) यत् मुखं (वदनम्) तस्य कान्तिः (शोभा) तया यः विजयः (जयः) तेन यः पराभवः (तिरस्कारः), तेन हेतुना प्रणतः (अवनतः, पादलग्न इति भावः) । "पराभवः । तिरस्कारे विनाशे च पुंसि" इति मेदिनी । तादृशे शशिनि इव = चन्द्र इव, स्फटिकपादपीठे = काचमणिचरणविन्यासस्थाने, विन्यस्तवामपादं = विन्यस्तः (स्थापितः) वामपादः (सव्यचरणः) येन, तम् । राज्ञश्चरणनखकिरणान्विशेषयति—**इन्द्रनीलेति** । इन्द्रनीलमणिकुट्टिमप्रभासम्पर्कश्यामायमानैः = इन्द्रनीलमणीनां (मरकतरत्नानाम्) या कुट्टिमप्रभा (निबद्धभूकान्तिः), तस्याः सम्पर्कः (संमिश्रणम्), तेन श्यामायमानानि (श्यामवदाचरन्ति), तैः । प्रणतरिपुनिःश्वासमलिनीकृतैः = प्रणताः (अवनताः, पराजयेनेति शेषः), ये रिपवः (शत्रवः) तेषां निःश्वासाः (ऊर्ध्वश्वासाः) तैः मलिनीकृतानि (मलीमसीकृतानि), तैः इव, तादृशैः चरणनखमयूखजालैः = चरणयोः (पादयोः) ये नखमयूखाः (नखरकिरणाः), तेषां जालानि (समूहाः), तैः उपशोभमानम् = विराजमानम् ।

ऊरुयुगलं विशिनष्टि—**आसनोल्लसितेति** । आसनोल्लसितपद्मरागकिरणपाटलीकृतेन = आसने (उपवेशनस्थाने) उल्लसिताः (उद्दीप्ताः) ये पद्मरागाः (लोहितमणयः) तेषां किरणाः (मयूखाः), तैः पाटलीकृतेन (श्वेतरक्तीकृतेन), अतः अचिरमृदितमधुकैटभरुधिराऽरुणेन = अचिरम् (अल्पकालम्)

लटकाई गई बड़े-बड़े मोतियोंकी मालाओंसे युक्त, जिसमें मणिखचित चार दण्डियाँ सोनेकी जंजीरोंसे बाँधी गई हैं, आकाशगङ्गाके फेनोंके समान सफेद, मध्यम प्रमाणवाले रेशमी वस्त्रके चंदवेके नीचे चन्द्रकान्त रत्नोंकी छोटीसी पलंगमें बैठे हुए, जिनको सुवर्णदण्डवाले चामर डुलाये जा रहे हैं, ऊपर जानेवाली किरणोंसे युक्त मुखकान्तियोंसे तिरस्कार होनेसे झुके हुए चन्द्रके समान स्फटिकमय चरणपीठ (पाँवदान) में बाएँ चरणको रखनेवाले, नीलम जड़ी हुई निबद्ध भूमिकी कान्तिके सम्पर्कसे नीले होनेवाले, झुके हुए शत्रुओंके निःश्वाससे मलिन किये गयेके समान चरण नखोंके किरणसमूहोंसे शोभित, आसन-स्थानमें उद्दीप्त पद्मराग रत्नोंकी किरणोंसे लाल बनाये गये अल्पसमयमें ही मारे गये मधु और कैटभ दैत्यके रक्तसे लाल वर्णवाले ऊरुओंसे विष्णुके समान शोभित, अमृतके

देशे, दुकूले वसानम्, अतिसुरभि-चन्दनानुलेपन-धवलितोरःस्थलम्, उपरि-विन्यस्त-कुङ्कुमस्थासकम्, अन्तरान्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलाशशिखरिणम्, अपर-शशि-शङ्कया नक्षत्रमालयेव हारलतया कृतमुखपरिवेषम्, अतिचपल-राज-लक्ष्मीबन्धनिगड-शङ्कामुपजनयतेन्द्रमणि-केयूरयुग्मेन मलयज-रस-गन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुयुगलम्, ईषदालम्बि-कर्णोत्पलम्,

---

एव भृदितौ (व्यापादितौ) यौ मधुकैटभौ (दैत्यविशेषौ) तयोः रुधिरम् (रक्तम्) इव अरुणं (रक्तवर्णम्), तेन, तादृशेन ऊरुयुगलेन = सक्थियुगेन, विराजमानं = शोभमानं, हरिम् = मधुसूदनम्, इव ।

राजधारिते दुकूले विशिनष्टि—**अमृतफेनेति ।** अमृतफेनधवले = पीयूषडिण्डीरशुभ्रे, गोरोचनालिखितहंसमिथुनसनाथपर्यन्ते = गोरोचनया (गोपित्तेन) लिखितानि (चित्रितानि) यानि हंसमिथुनानि (चक्राङ्गयुगलानि) तैः सनाथाः (सहिताः) पर्यन्ताः (प्रान्तभागाः) ययोस्ते, चारुचामरवायुप्रनर्तिताऽन्तदेशे = चारुः (मनोहरः, सुखस्पर्श इति भावः) यश्चामरवायुः (प्रकीर्णकपवनः), तेन प्रवर्तिताः (आन्दोलिताः) अन्तदेशाः (प्रान्तभागाः) ययोस्ते, तादृशे दुकूले = क्षौमे, वसानं = धारयन्तम् । "अमृतफेनधवले" इत्यत्र लुप्तोपमा ।

अतीति । अतिसुरभीत्यादिः = अतिसुरभिः (अतिसुगन्धयुक्तः) यः चन्दनः (मलयजः) तस्य अनुलेपनं (विलेपनम्), तेन धवलितम् (शुभ्रीकृतम्) उरःस्थलं (वक्षःस्थलम्) यस्य तम् । उपरिविन्यस्तकुङ्कुमस्थासकम् = उपरि (वक्षःस्थलोर्ध्वभागे) विन्यस्ताः (विहिताः) कुङ्कुमस्य (केसरस्य) स्थासकाः (विलेपनानि) यस्य, तम् । "चर्चा तु चार्चिक्यं स्थासकः ।" इत्यमरः । अन्तराऽन्तरानिपतितबालाऽऽतपच्छेदम् = अन्तराऽन्तरा (मध्ये मध्ये) निपतिताः (पर्यस्ताः) बालाऽऽतपस्य (नवोदितसूर्यप्रकाशस्य) छेदाः (खण्डाः) यस्य, तं, तादृशं कैलासशिखरिणम् = कैलासपर्वतम् इव । उपमाऽऽलङ्कारः ।

भूयो नृपं विशिनष्टि—**अपरेति ।** अपरशशिशङ्कया = अपरः (अन्यः) यः शशी (चन्द्रः), तस्य शङ्का (सन्देहः, भ्रान्तिरिति भावः) तया । नक्षत्रमालया = तारापङ्क्त्या, इव, हारलतया = मुक्तामालावल्ल्या, कृतमुखपरिवेषं = कृतः (विहितः) मुखस्य (वदनस्य) परिवेषः (परिधिः), यस्य तम् । अत्र मुखे शशिभ्रान्त्या भ्रान्तिमान्, "नक्षत्रमालया इवे" त्यत्रोत्प्रेक्षा, तथा चाऽनयोरङ्गाऽङ्गिभावेन सङ्करः । अनेन हारलताया अत्यन्तनैर्मल्यं मुखस्य च चन्द्रसाम्यं सूचितम् ।

केयूरयुग्मं विशिनष्टि—**अतिचपलेति ।** अतिचपलराजलक्ष्मीत्यादिः = अतिचपला (अधिकचञ्चला) या राजलक्ष्मीः (राजश्रीः) तस्या बन्धः (बन्धनम्) तदर्थं यो निगडः (शृङ्खला), स कटकः (वलय) इव, तस्य शङ्का (भ्रान्तिः), ताम्, उपजनयता = प्रकाशयता इन्द्रमणिकेयूरयुग्मेन = इन्द्रमणिखचितम् (इन्द्रनीलरत्नखचितम्) यत् केयूरयुग्मम् (अङ्गदयुगलम्), तेन । अतः मलयजरसगन्धलुब्धेन = मलयजरसः (चन्दनद्रवः) तस्य गन्धः (सौरभम्) तस्मिन् लुब्धेन (लोलुपेन) । भुजङ्गद्वयेन = सर्पयुग्मेन, इव, वेष्टितबाहुयुगलं = वेष्टितम् (आवृतम्) बाहुयुगलं (भुजयुग्मम्) यस्य, तम् । "वेष्टितं स्याद्वलयितं संवीतं रुद्धमावृतम् ।" इत्यमरः । अत्र "निगडः

फेनके समान उज्वल गोरोचनसे लिखे गये हंसके जोड़ोंके चित्रसे युक्त प्रान्तभागवाले और चँवरकी हवासे जिसका प्रान्तभाग हिल रहा है ऐसे रेशमी वस्त्र (उत्तरीय और अधरीय) को धारण करनेवाले, जिनका वक्षःस्थल (छाती) अत्यन्त सुगन्धित चन्दनके अनुलेपनसे सफेद हो गया है। छातीके ऊपर केसरके विलेपनसे युक्त, मध्यमें बालसूर्यके प्रकाशसे युक्त कैलाशपर्वतके समान, उनके गलेमें हारलता दूसरे चन्द्रकी शङ्कासे मानों नक्षत्रमाला है ऐसी प्रतीत होती थी। अत्यन्त चञ्चल राजलक्ष्मीके बन्धनकी शृङ्खलाकी शङ्काको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र नीलमणिके बाजूबन्दोंसे—चन्दनरसके गन्धसे लुब्ध मानों दो सर्पोंसे—वेष्टित दो बाहुवाले थे। जिनके कानमें कमल लटक

उन्नत-घोणम्, उत्फुल्लपुण्डरीक-नेत्रम्, अमलकलधौतपट्टायतम्, अष्टमीचन्द्र-शकलाकारम्, अशेष-भुवन-राज्याभिषेकसलिलपूतम्, ऊर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्, आमोदि-मालतीकुसुम-शेखरम् उषसिशिखर-पर्य्यस्ततारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरण-प्रभापिशङ्गिताङ्गतया लग्न-हर-हुताशमिव मकरध्वजम्, आसन्नवर्त्तिनीभिः सर्वतः सेवार्थमागताभिरिव दिग्वधूभिर्वार-विलासिनीभिः परिवृतम्, अमल-मणिकुट्टिमसंक्रान्त-सकल-देह-प्रतिविम्बतया पतिप्रेम्णा

कटक इवे" त्यत्रोपमा, "....शङ्कामुपजनयता" इत्यत्र भ्रान्तिमान्, "भुजङ्गद्वयेनेवे" त्यत्रोत्प्रेक्षा चैतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

राज्ञः पुनर्विशेषणान्तराणि प्रदर्शयति—**ईषदालम्बीत्यादिः०** । ईषदालम्बिकर्णोत्पलम् = ईषदालम्बिनी (किञ्चिल्लम्बमाने) कर्णोत्पले (श्रवणकुवलये) यस्य तं, तादृशम्। उन्नतघोणम् = उन्नता (उच्चा) घोणा (नासिका) यस्य, तम्। "घोणा नासा च नासिका।" इत्यमरः। उत्फुल्लपुण्डरीकनेत्रम् = उत्फुल्ले (विकसिते) पुण्डरीके (श्वेतकमले) इव नेत्रे (नयने) यस्य, तम्। अत्र लुप्तोपमा।

ललाटदेशं विशेषयति—**अमलेत्यादिः०**। अमलकलधौतपट्टाऽऽयतम् = अमलः (निर्मलः) यः कलधौतपट्टः (सुवर्णपीठम्) स इव आयतः (विस्तीर्णः), तम्। अष्टमीचन्द्रशकलाऽऽकारम् = अष्टमी-चन्द्रस्य (अष्टम्युदितचन्द्रमसः) यत् शकलं (खण्डम्) तस्य इव आकारः (आकृतिः) यस्य, तम्। द्वे लुप्तोपमे। अशेषभुवनराज्याऽभिषेकपूतम् = अशेषाणि (समस्तानि) यानि भुवनानि (लोकाः), तेषां राज्यम् (आधिपत्यम्) तस्य अभिषेकः (मङ्गलस्नानम्) तेन पूतः (पवित्रः)। तम्। एवं च ऊर्णासनाथं = भ्रूमध्यावर्तयुक्तं, तादृशं ललाटदेशं = भालप्रदेशम्, उद्वहन्तं = धारयन्तम्।

पुनरपि राजानं विशेषयति—आमोदि-मालतीकुसुमशेखरम् = आमोदीनि (अतिसौरभयुक्तानि) यानि मालतीकुसुमानि (जातिपुष्पाणि) तानि शेखराः (शिरोभूषणानि) यस्य सः, तम्। "सुमना मालती जातिः" इत्यमरः। अतः उषसि = प्रातःकाले, शिखरपर्यस्ततारकापुञ्जं = शिखरे (शृङ्गे) पर्यस्ताः (पतिताः) तारकापुञ्जाः (नक्षत्रसमूहाः) यस्मिन्, तम्। तादृशं पश्चिमाऽचलम् (अस्त-पर्वतम्) इव। अत्रोपमाऽलङ्कारः।

मदनसादृश्यं प्रदर्शयति—**आभरणेति**। आभरणप्रभापिशङ्गिताऽङ्गतया=आभरणानां (भूषणा-नाम्) या प्रभा (कान्तिः) तया पिशङ्गितानि (पिङ्गलितानि) अङ्गानि (देहाऽवयवाः) यस्य सः, तस्य भावस्तत्ता तया। लग्नहरहुताऽशं = लग्नः (सक्तः) हरस्य (महादेवस्य) हुताशः (नयना-ऽनलः) यस्मिन्, तम्। तादृशं मकरध्वजं = कामदेवम्, इव। अत्रोपमाऽलङ्कारः।

आसन्नेति। आसन्नवर्तिनीभिः = निकटस्थिताभिः, सर्वतः = परितः, सेवाऽर्थं = परिचर्याऽर्थम्, आगताभिः = आयाताभिः, अत एव दिग्वधूभिः = दिशः (काष्ठाः) एव वध्वः (प्रमदाः), ताभिः इव, वारविलासिनीभिः = वाराङ्गनाभिः, परिवृतं = परिवेष्टितम्। दिग्वधूभिः इव" इह रूपकमुत्प्रेक्षा च, तथा च तयोरेकाश्रयस्थितेः सङ्कराऽलङ्कारः।

अमलेति। अमलमणीत्यादिः = अमलाः (निर्मलाः) ये मणयः (रत्नानि) तत्खचिता ये कुट्टिमाः (निबद्धभूमयः) तेषु संक्रान्तं (संलग्नम्) सकलदेहप्रतिबिम्बं (समस्तशरीरप्रतिच्छाया)

रहे थे। उन्नत नासिकावाले, विकसित श्वेत कमलोंके समान नेत्रोंवाले, निर्मल सुवर्णपट्टके समान विशाल, अष्टमीके अर्धचन्द्रके समान आकारवाले, समस्त भूमण्डलके राज्याऽभिषेकसे पवित्र, भौंहोंके बीचमें ऊर्णा (रोमके आवर्त) से युक्त ललाटको धारण करनेवाले, सुगन्धित चमेलीके फूलोंको शिरोभूषण करनेवाले प्रातःकालमें शिखरमें पड़े हुए नक्षत्रोंके समूहवाले अस्तपर्वतके समान, भूषणोंकी कान्तिसे पीले अङ्ग होनेसे शिवजीके नेत्राऽग्निसे युक्त कामदेवके सदृश, निकटमें रहनेवाली सेवाके लिए आई हुई दिशारूप वधूओंके समान वेश्याओंसे घिरे हुए, निर्मल रत्नोंके फर्शमें

वसुन्धरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितम्, अपरिमितपरिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्त-गज-तुरग-साधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादिताशेषद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि 'सूक्ष्मदर्शनम्–' महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्, अविरत-प्रवृत्त-दानमप्यमदम्, अत्यन्तशुद्ध-स्वभावमपि कृष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थित-सकल-भुवनतलं राजानमद्राक्षीत् ।

यस्य सः, तस्य भावस्तत्ता, तया हेतुना, वसुन्धरया = पृथिव्या, पतिप्रेम्णा = भर्तृप्रणयेन,हृदयेन = हृदा, उह्यमानं = धार्यमाणम्, इव । उत्प्रेक्षा । अशेषजनभोग्यताम् = अशेषाः (समस्ताः) ये जनाः (लोकाः) तेषां भोग्यताम् (उपभोगयोग्यताम्), उपनीतया = प्राप्तया, अपि, सर्वसामान्ययाऽपीति भावः । तथाऽपि असाधारणया = असामान्यया, एतादृश्या राजलक्ष्म्या = भूपश्रिया, समालिङ्गितदेहं = समाश्लिष्टशरीरम्, अत्र विरोधाभासाऽलङ्कारः । अशेष० इत्यत्र लक्ष्म्या = शोभया, असामान्यया राजलक्ष्म्या = शूद्रकादन्यत्राऽस्थितया राजलक्ष्म्या इति विरोधप्रतिहारः ।

अपरिमितेति । अपरिमितपरिवारजनम् = असंख्यातपरिजनलोकम् अपि, अद्वितीयं = द्वितीयजनरहितम्, अत्राऽपि विरोधाभासस्तत्परिहारस्तु, अद्वितीयं = सर्वोत्कृष्टम् ।

अनन्तेति । अनन्तगजतुरङ्गसाधनम् = अनन्ताः (असंख्याः) गजाः (हस्तिनः) तुरङ्गाः (अश्वाः) एव साधनानि (उपकरणानि) यस्य सः, तम्, अपि, खड्गमात्रसहायं = खड्मात्रं (करवालमात्रम्) सहायः (सहचरम्) यस्य तम् । विरोधाभासः, गजाद्यनपेक्षत्वेन खड्गमात्राऽपेक्षिणम् इति तत्परिहारः । एकदेशस्थितम् = एकदेशः (एकप्रदेशः, समानमण्डपादिरिति भावः) तस्मिन् स्थितम् (निषण्णम्) अपि, व्याप्तभुवनमण्डलं = व्याप्तं (व्याप्तिविषयीकृतम्) भुवनमण्डलं (जगन्मण्डलम्) येन, तम्, अत्राऽपि विरोधाभासः, प्रतापाऽतिशयेनेति परिहारः । **आसन इति ।** आसने = सिंहासने, स्थितम् = उपविष्टम्, अपि, धनुषि = चापे, निषण्णं = स्थितम्, अत्राऽपि विरोधाभासः, धनुष आधारत्वेनैव स्थितम् इति परिहारः ।

उत्सादितेति । उत्सादितद्विषदिन्धनम् = उत्सादितानि (व्यापादितानि) निर्वापितानीति भावः । द्विषन्तः (शत्रवः) इव इन्धनानि (काष्ठानि) येन, तम्, अपि, ज्वलत्प्रतापाऽनलं = ज्वलन् (दहन्) प्रतापः (तेजः) एव अनलः (अग्निः) यस्य, तम् । अत्र द्विषत्सु इन्धनत्वारोपः प्रतापेऽनलत्वारोपस्य कारणमिति परम्परितरूपकं, तथा इन्धनस्योत्सादितत्वे सति कथं ज्वलनत्वमिति विरोधाभासश्च, ज्वलन् = दीप्यमान इति विरोधपरिहारः, इत्थं च द्वयोरप्यलङ्कारयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

आयतेति । आयतलोचनम् = आयते (विशाले) लोचने (नेत्रे) यस्य, तम्, अपि, सूक्ष्मदर्शनं = सूक्ष्मे (अविशाले) दर्शने (लोचने) यस्य, तम् । विरोधाभासः । सूक्ष्मम् (अध्यात्मविषयम्) दर्शनं (ज्ञानम्) यस्येति परिहारः । "सूक्ष्मं स्यात्कैतवेऽध्यात्मे पुंस्यणौ, त्रिषु चाऽल्पके ।" इति । "दर्शनं नयनस्वप्नबुद्धिधर्मोपलब्धिषु ।" इत्यपि मेदिनी । महादोषम् अपि सकलगुणाऽधिष्ठानम्,

---

सम्पूर्ण शरीरका प्रतिबिम्ब संक्रान्त होनेसे मानों पतिके प्रेमसे पृथ्वीके द्वारा हृदयमें धारण किये गयेके समान, समस्त मनुष्योंके उपभोगके विषय होनेपर असामान्य राजलक्ष्मीसे आलिङ्गित शरीरवाले, असंख्य परिजनोंके होनेपर भी अद्वितीय (दूसरेसे रहित, परिहारपक्ष—सादृश्यसे रहित), असंख्य हाथी घोड़े आदि साधनोंके होनेपर भी खड्गमात्रकी सहायता लेनेवाले (खड्गमात्रको सहाय समझनेवाले) एक स्थानमें रहकर भी भुवनमण्डलको व्याप्त करनेवाले, सिंहासनमें बैठकर भी धनुषपर विद्यमान (धनुषका ही सहारा लेनेवाले), समस्त शत्रुरूप इन्धन (लकड़ी) को नष्ट करनेपर भी जले हुए प्रतापरूप अग्निवाले, विशाल नेत्रोंवाले होकर भी सूक्ष्म दर्शनों (नेत्रों) वाले विशालनेत्र होकर भी सूक्ष्मदर्शन (छोटे नेत्रोंवाले, परिहारपक्षमें अध्यात्मविषयक ज्ञानसे युक्त) महादोष (विरोधमें—महादोषोंसे युक्त, परिहारपक्षमें—दीर्घ बाहुओंसे युक्त) होकर संपूर्ण गुणोंके आधार, कुपित

आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्त-कुवलयदल-कोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय नरपतिप्रतिबोधनार्थं सकृत् सभाकुट्टिममाजघान; येन सकलमेव तद् राजकम् एकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन युगपदावलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत् ।

इत्यत्र विरोधाभासः, तत्परिहारस्तु—महादोषं = महान्तौ (दीर्घौ) दोषौ (बाहू) यस्य, तम् । सकलगुणाऽधिष्ठानं = सकलाः (समग्राः) ये गुणाः (दयादाक्षिण्यादयः), तेषाम् अधिष्ठानम् = आधारस्थानम् । "भुजबाहू प्रवेष्टोदोः" इत्यमरः । कुपतिम् अपि कलत्रवल्लभम्, अत्र विरोधाभासः । परिहारस्तु—कुपतिं = कोः (पृथिव्याः) पतिः (स्वामी) तम् । कलत्रवल्लभं = कलत्रस्य (भार्यायाः), बल्लभः (प्रियः), तम् । "गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी" इति "कलत्रं श्रोणिभार्ययोः" इति चाऽमरः । अविरतप्रवृत्तदानम् = अविरतं (निरन्तं यथा तथा) प्रवृत्तं (निरूपणम्) दानं (मदजलम्) यस्य, तं, तथाऽपि, अमदं = मदजलरहितम्, अत्राऽपि विरोधाभासः, विरोधपरिहारस्तु, अविरतप्रवृत्तदानं = अविरतं प्रवृत्तं दानं (वितरणम्) यस्य सः, तम् दानशीलम् इति भावः । तथाऽपि अमदं=गर्वरहितमिति भावः । "मदो रेतसि कस्तूर्यां, गर्वे हर्षेभदानयोः ।" इति मेदिनो । अत्यन्तेति । अत्यन्तशुद्धस्वभावम् = अत्यन्तं (साऽतिशयम्) शुद्धः (निर्मलः) स्वभावः (प्रकृतिः) यस्य, तम्, अपि, कृष्णचरितं = कृष्णं (श्यामं, मलिनम्) चरितं (चरित्रम्) यस्य, तम् । अत्र विरोधाऽऽभासः । विरोधपरिहारस्तु—कृष्णचरितं = कृष्णस्य (वासुदेवस्य) इव चरितं (चरित्रम्, आचारः) यस्य तम् । "कृष्णे नीलाऽसितश्यामकालश्यामलमेचकाः ।" इति "विष्णुर्नारायणः कृष्ण" इति चाऽमरः । अकरम् = हस्तरहितम्, अविद्यमानः करो यस्य, तम् अपि, हस्तस्थितभुवनतलं = हस्ते (करे) स्थितम्, (विद्यमानम्) भुवनतलं (भूमण्डलम्) यस्य, तम् । अत्राऽपि विरोधः, तत्परिहारस्तु—अकरम् = अविद्यमानः करः (अन्यस्मै दीयमानो भागः) यस्य सः, राजमण्डलाऽधिपतित्वादिति भावः । "बलिहस्तांऽशवः कराः ।" इत्यमरः । विरोधाभासोऽलङ्कारः । तादृशं राजानं = भूपालं शूद्रकम् । अद्राक्षीत् = दृष्टवती ।

आलोक्येति—सा = चाण्डालकन्यका, आलोक्य = दृष्ट्वा, राजानमिति शेषः । दूरस्थिता एव = विप्रकृष्टप्रदेशे विद्यमाना एव चाण्डालजात्युत्पन्नत्वादिति भावः । प्रचलितरत्नवलयेन = प्रचलितं (किञ्चिदपसृतम्), रत्नवलयं (मणिखचितकटकम्) यस्मात्, तेन । रक्तकुवलयदलकोमलेन = रक्तं (लोहितम्) यत् कुवलयदलम् (उत्पलपत्त्रम्), तदिव कोमलं (मृदुलम्), तेन अत्र लुप्तोपमा । तादृशेन पाणिना = हस्तेन । जर्जरितमुखभागां = जर्जरितः (जीर्णः) मुखभागः (अग्रप्रदेशः) यस्याः, ताम् । तादृशीं वेणुलतां = वंशयष्टिम्, आदाय = गृहीत्वा, नरपतिप्रतिबोधनाऽर्थं = नरपतेः (राज्ञः शूद्रकस्य) प्रतिबोधनाऽर्थं (सम्मुखीकरणाऽर्थम्) सभाकुट्टिमं = परिषन्निबद्धभुवम्, "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः" इत्यमरः । सकृत् = एकबारम्, आजघान = ताडितवती ।

(विरोधमें—कुत्सित स्वामी, परिहारमें पृथ्वीके स्वामी) होकर भी पत्नियोंके प्यारे, निरन्तरदान (विरोधमें—मदजल, परिहारमें—विवरण) करनेपर भी मद (विरोधमें—मदजल, परिहारमें—गर्व) से रहित, अतिशय शुद्ध स्वभाववाले होकर भी कृष्णचरित (विरोधमें—मलिन चरित्रवाले, परिहारमें—कृष्णके समान चरित्रवाले), अकर (विरोधमें कर = हाथ) वाले, परिहारमें—सर्वस्वतन्त्र होने से किसी दूसरे राजाको कर = भाग नहीं देनेवाले संपूर्ण भूतलको अपने हाथमें रखनेवाले) ऐसे राजाको देखा ।

राजाको देखकर दूरमें रहकर ही उसने हिलनेवाले रत्नकङ्कणवाले रक्तकमलके पत्रके समान कोमल हाथसे जीर्ण अग्रभागवाली बाँसकी छड़ीको लेकर राजाओंका ध्यान खींचनेके लिए सभाके फर्शको एकबार ताडन किया, जिससे समस्त राजमण्डल तत्क्षण जैसे तालवाद्यके शब्दसे जङ्गली हाथियोंका समूह आकृष्ट होता है वैसे ही, एक ही बार मुँह मोड़कर राजाकी ओरसे नेत्रोंको हटाकर उस (चाण्डालकन्या) के सम्मुख हो गये ।

अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय' इत्यभिधाय प्रतीहार्य्या निर्दिश्यमानां तां वयःपरिणाम-शुभ्र-शिरसा रक्तनराजीवनेत्रापाङ्गेनानवरत-कृत-व्यायामतया यौवनापगमेऽप्यशिथिलशरीर-सन्धिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिना अनुगृहीतार्य्यवेशेन शुभ्र-वाससा पुरुषेणाधिष्ठित-पुरोभागाम्, आकुलाकुल-काकपक्षधारिणा कनक-शलाका-निर्म्मितमप्यन्तर्गत-शुकप्रभाश्यामा-यमानं मरकतमयमिव पञ्जरमुद्वहता चण्डालदारकेणानुगम्यमानाम् असुर-गृहीतामृतापहरण-

---

येन = आघातेन, सकलं = समस्तम्, एव, तत् राजकं = राजसमूहः, "गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्य-राजपुत्रवत्समनुष्याऽजाद्वुञ्" इति वुञ्। एकपदे = तत्क्षणे, तालशब्देन = वाद्यविशेषध्वनिना, वनकरियूथम् = वनकरिणाम् (अरण्यगजानाम्) यूथम् (समूहः), इव तेन = पूर्वोक्तेन वेणुलता-ध्वनिना = वंशयष्टिशब्देन, युगपत् = एकस्मिन् काले, आवलितवदनम् = आवलितं (परावर्तितम्) वदनं (मुखं) येन तत्, तादृशं सत्, अवनिपालमुखात् = राजवदनात्, आकृष्य = आकर्षणं कृत्वा, चक्षुः = नेत्रं, तदभिमुखं = चाण्डालकन्यासंमुखम्, आसीत् = अभवत्, उपमालङ्कारः।

अवनिपतिस्त्विति। अवनिपतिः = भूपतिः, शूद्रकः। अनिमिषलोचनः तां ददर्शेति सम्बन्धः। दूरात् = विप्रकृष्टप्रदेशात्, आलोकय = दर्शय, शुकमिति शेषः। इति = एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, चाण्डालकन्यकामिति भावः। चाण्डालकन्यकां विशेषयति—**प्रतीहार्येति।** अनिमिषलोचनः = अनिमिषे (निमेषव्यापाररहिते) लोचने (नयने) यस्य सः। प्रतीहार्या = द्वारपालिकया, निर्दिश्यमानं = निर्देशविषयीक्रियमाणां, तां = चाण्डालकन्यकां, वयः परिणामशुभ्रशिरसा = वयसः (अवस्थायाः) परिणामेन (परिवर्तनेन) वार्धक्येनेति भावः। शुभ्रं (शुक्लम्) शिरः (मस्तकः) यस्य सः, तेन, इदं चाण्डालकन्यकासहचरविशेषणम्, एवं परत्रापि। तथा—रक्तराजीवनेत्राऽपाङ्गेन = रक्तराजीवे (अरुणकमले) इव, नेत्राऽपाङ्गौ (नयनप्रान्तौ) यस्य, तेन लुप्तोपमा। अनवरतकृतव्यायामतया = अनवरतं (निरन्तरम्), कृतः (विहितः) व्यायामः (परिश्रमः, स्वास्थ्यरक्षाऽर्थमिति शेषः), येन सः, तस्य भावस्तत्ता, तया हेतुना। यौवनाऽपगमे = यौवनस्य (तारुण्यस्य), अपगमे (निवृत्तौ) अपि, अशिथिलशरीरसन्धितया = अशिथिलाः (अश्लथाः, दृढा इति भावः) शरीरस्य (देहस्य) सन्धयः (धातूनामस्थ्यादीनां च बन्धाः) यस्य सः, तेन। मातङ्गत्वे = चाण्डालत्वे, सति अपि = विद्यमाने अपि। नाऽतिनृशंसाऽऽकृतिना = नाऽतिनृशंसा (नाऽतिक्रूरा) आकृतिः (आकारः) यस्य, तेन। अनुगृहीताऽऽर्यवेषेण = अनुगृहीतः (अनुग्रहविषयीकृतः, स्वीकृत इति भावः) आर्यस्य (सभ्यस्य) वेषः (नेपथ्यम्) येन सः तेन। शुभ्रवाससा=शुभ्रं (शुक्लम्) वासः (वस्त्रम्) यस्य, तेन। तादृशेन पुरुषेण = पुंसा, अधिष्ठितपुरोभागाम् = अधिष्ठितः (आश्रितः) पुरोभागः (अग्रभागः) यस्याः, ताम्।

आकुलाकुलेति। आकुलाऽऽकुलकाकपक्षधारिणा = आकुलाऽऽकुलः (इतस्ततो विक्षिप्तः) यः काकपक्षः (शिखण्डकः), तं धारयतीति तच्छीलः, तेन। "चाण्डालदारकेण" इत्यस्य विशेषणम्। कनकशलाकानिर्मितं = कनकस्य (सुवर्णस्य) याः शलाकाः (इषीकाः) ताभिः निर्मितम् (रचितम्), अपि, वहिः पीतमपीति भावः। अन्तर्गतशुकप्रभाश्यामायमानम् = अन्तर्गतः (अन्तःस्थितः) यः शुकः (कीरः), तस्य प्रभया (कान्त्या) श्यामायमानम् (श्यामवद् दृश्यमानम्) अत एव—मरकत-मयम् = गारुत्मतमयम्, इव, श्याममयमिवेति भावः। तादृशं पञ्जरं = पिञ्जरं, शुकस्वासपात्रमिति भावः। उद्वहता = धारयता, चाण्डालदारकेण = अन्त्यजपुत्रेण, अनुगम्यमानाम् = अनुस्रियमाणाम्।

"दूरसे देखो" ऐसा कहकर द्वारपालिकासे निर्देशित, अवस्थाके परिपक्व होनेसे सफेद शिरवाले, रक्तकमलोंके समान नेत्रोंके कोणोंसे युक्त, निरन्तर व्यायाम (कसरत) करनेसे जवानीके बीतनेपर भी दृढ़ शरीर सन्धियोंसे युक्त, चाण्डाल होनेपर भी जिसका आकार अधिक क्रूर नहीं था, सभ्य पुरुषके वेशको धारण करनेवाले, सफेद वस्त्रोंवाले पुरुषको आगे करनेवाली, चञ्चल केशोंको धारण करनेवाले, सुवर्णकी शलाकासे निर्मित होकर भी

कृत-कपट-पटु विलासिनीवेशस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, सञ्चारिणीमिवेन्द्र-नीलमणिपुत्रिकाम्, गुल्फावलम्बिनानीलकञ्चुकेनाच्छन्नशरीराम्, उपरि रक्तांशुक-विरचिता-वगुण्ठनां नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसन्ध्यातपाम्, एक-कर्णविसक्त-दन्तपत्त्रप्रभाधवलितक-पोल-मण्डलाम् उद्यदिन्दुकिरणच्छुरित-मुखीमिव विभावरीम्, आकपिल-गोरोचना-रचित-तिलक-तृतीय-लोचनाम् ईशानुचरितकिरातवेशामिव भवानीम्, उरःस्थल-निवास-संक्रान्त-

---

असुरेति । असुरेत्यादिः = असुरैः (दैत्यैः) गृहीतम् (आत्तम्) यत् अमृतम् (पीयूषम्) तस्य अपहरणे (अपहृतौ) कृतः (विहितः) कपटः (छलम्) तस्मिन् पटुः (निपुणः) विलासिनी वेषः (नार्याकृतिः, मोहिनीरूपमिति भावः) येन, तस्य । तादृशस्य भगवतः = षड्विधैश्वर्यसम्पन्नस्य ।

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।" (विष्णुपुराणम्)

हरेः = विष्णोः, अनुकुर्वतीम् = अनुकरणं कुर्वतीम् इव ।

पुनस्तां विशेषयति—**सञ्चारिणीमिति** । सञ्चारिणीं=सञ्चरणशीलाम् , इन्द्रनीलमणिपुत्रिकां = मरकतरत्नपाञ्चालिकाम्, इव । अत्र क्रियोत्प्रेक्षा ।

गुल्फेति । गुल्फाऽवलम्बिनीलकञ्चुकेन = गुल्फावलम्बी (घुटिकाऽवलम्बी) यो नीलकञ्चुकः (श्यामवर्णकूर्पासकः), तेन । आच्छन्नशरीराम् = आच्छन्नम् (अपवारितम्) शरीरं (देहः) यस्याः, ताम् ।

उपरीति । उपरि रक्तांऽशुकरचिताऽवगुण्ठनाम् = उपरि (ऊर्ध्वदेशे) रक्तांऽशुकेन (लोहित-वस्त्रेण) रचितम् (कृतम्) अवगुण्ठनं (मुखाऽऽवरणम्) यया, ताम् । अत एव—निपतितसन्ध्या-तपां = निपतितः (प्राप्तः) सन्ध्यातपः (सायङ्कालिकः सूर्यकिरणः) यस्यां, ताम् । तादृशीं नीलो-त्पलस्थलीं = नीलकुवलयाऽकृत्रिमभूमिम् इव । अत्र काव्यलिङ्गोपमयोः सङ्करः ।

एकेति । एकेत्यादिः = एककर्णे (एकश्रोत्रे) अवसक्तं (लग्नम्) यत् दन्तपत्त्रं (कर्णभूषण-विशेषः), तस्य प्रभा (कान्तिः), तया धवलितं (शुक्लीकृतम्) कपोलमण्डलं (गण्डफलकम्) यस्याः, ताम् ।

उद्यदिन्द्विति । उद्यदिन्दुकिरणच्छुरितमुखीम् = उद्यन् (उदयं प्राप्नुवन्) य इन्दुः (चन्द्रः) तस्य किरणाः (मयूखाः), तैः छुरितं (सम्बद्धम्) सप्रकाशमिति भावः, मुखं (पूर्वभागः) यस्याः, ताम् । तादृशीं विभावरीं = रात्रिम् इव ।

आकपिलेति । आकपिलेत्यादिः = आकपिला (ईषत्पीतरक्ता) या गोरोचना (गोपित्तम्), तेन रचितं (निर्मितम्) यत् तिलकं (पुण्ड्रम्) तदेव तृतीयं (त्रिसंख्यापूरकम्) लोचनं (नेत्रम्) यस्याः ताम् । अत एव—ईशानरचिताऽनुरचितकिरातवेषाम् = ईशानरचितः (शङ्करनिर्मितः, यो वेषः) तस्य, अनुरचितः (पश्चान्निर्मितः) किरातवेषः (अनार्यनेपथ्यम्) यया, तादृशीं भवानीम् = पार्वतीम्, इव । उपमाऽलङ्कारः ।

भीतर रहे हुए तोतेकी कान्तिसे श्यामवर्णवाले पत्तोंसे बने हुएके समान पिंजड़ेको लेता हुआ चाण्डालपुत्रको पीछे करनेवाली, श्यामवर्ण होनेसे दैत्योंसे छीने गये अमृतको अपहरण करनेके लिए कपटमें कुशल विलासिनी-(मोहिनी) का वेश लेनेवाले भगवान् विष्णुका अनुकरण करनेवाली-सी, चलती फिरती इन्द्रनीलमणिकी पुतलीकी सदृश, पैरोंकी गाँठोंतक लटकनेवाले काले कञ्चुक (जामा) से शरीरको आच्छादित करनेवाली, ऊपर लाल कपड़ेसे घूँघट करनेवाली, सन्ध्याकी धूप पड़नेसे नीलकमलकी भूमिकी सदृश, एक कानमें लटके हुए दन्तपत्त्र-(कर्णभूषण) की कान्तिसे जिसका कपोल मण्डल सफेद हो रहा है, अतः उगे हुए चन्द्रमाकी किरणोंसे सम्बद्ध रात्रिकी समान, कुछ पीले गोरोचनसे बनाये गये तिलकसे तृतीय नेत्रवाली, अतः किरातवेश लेनेवाले महादेवका

नारायण-देहप्रभा-श्यामलितामिव श्रियम्, कुपित-हर हुताशन-दह्यमान-मदन-धूम-मलिनीकृतामिव रतिम्, उन्मद-हलि-हलाकर्षण-भय-पलायितामिव कालिन्दीम्, अतिबहल-पिण्डालक्तक-रस-राग-पल्लवितपादपङ्कजाम्, अचिर-मृदित-महिषासुर-रुधिर-रक्तचरणामिव कात्यायनीम्, आलोहिताङ्गुलि-प्रभा-पाटलित-नख-मयूखाम् अतिकठिन-मणिकुट्टिम-स्पर्शमसहमानां क्षितितले पल्लवभङ्गानिव निधाय सञ्चरन्तीम्, आपिञ्जरेणोत्सर्पिणां नूपुरमणीनां प्रभाजालेन रञ्जित-शरीरतया पावकेनेव भगवता रूप एव-पक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता जातिसंशोधनार्थ-

श्रियम इव । श्रियं विशिनष्टि—**उरःस्थलेति** । उरःस्थलेत्यादिः । उरःस्थले (वक्षःस्थले) यो निवासः (निवसनम्) तेन संक्रान्ता (प्रतिबिम्बिता) या नारायणस्य (विष्णोः) देहप्रभा (शरीरकान्तिः), तया श्यामलिताम् (श्यामवर्णीकृताम्) श्रियम् = लक्ष्मीम् इव । अत्रोपमातद्गुण-योरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

रतिम् इव । रतिं विशिनष्टि—**कुपितेत्यादिः** । कुपितः (क्रुद्धः, शरप्रहारेणेति शेषः) यो हरः (महादेवः), तस्य यो हुताऽशनः (अग्निः, तृतीयलोचनरूपः) तेन दह्यमानः (भस्मीक्रियमाणः) यो मदनः (कामः) तस्य धूमः (अग्निशेषः) तेन मलिनीकृतां (मलीमसीकृताम्, मालिन्यं प्राप्तामिति भावः) तादृशीं रतिं = कामप्रियाम् इव । अत्राऽतिशयोक्त्युपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

कालिन्दीमिव । कालिन्दीं विशिनष्टि—**उन्मदेत्यादिः** । उन्मदः (उत्कटमदः, अहङ्कारयुक्त इति भावः) तादृशो यो हली (हलाऽऽयुधः, बलराम इति भावः) तस्य यत् हलं (लाङ्गलमायुधम्) तेन यत् आकर्षणम् (आकृष्टिः), ततो भयं (भीतिः), तेन पलायितां (कृतपलायनाम्) तादृशीं कालिन्दीं = यमुनाम् इव । अत्रोत्प्रेक्षा ।

कात्यायनीम् इव । कात्यायनीं विशिनष्टि—**अतिबहलेति** । अतिबहलः (अतिप्रचुरः) यः पिण्डालक्तकः (पिण्डीकृता लाक्षा) तस्य रसः (द्रवः) तस्य यो रागः (लौहित्यम्) तेन पल्लविते (किसलयीकृते, रक्तवर्णीकृते' इति भावः) पादपङ्कजे (चरणकमले) यस्याः, ताम् । अतएव—अचिरमृदितमहिषाऽसुररुधिररक्तचरणाम् = अचिरम् (अबहुकालं, तत्क्षणमिति भावः) मृदितः (मर्दितः) यो महिषाऽसुरः (महिषदैत्यः), तस्य रुधिरम् (असृक्) तेन रक्तौ (लोहितौ) चरणौ (पादौ) यस्याः सा, ताम् । तादृशीं कात्यायनीं = दुर्गाम्, इव । अत्र पुनरुक्तवदाभासोपमयोरेका-श्रयाऽनुप्रवेशेन सङ्करः ।

आलोहितेति । आलोहिताऽङ्गुलिप्रभापाटलितनखमयूखाम् = आलोहिताः (अतिरक्ताः) या अङ्गुलयः (करशाखाः), तासां प्रभा (दीप्तिः) तया पाटलिताः (श्वेतरक्तीकृताः) नखमयूखाः (नखरकिरणाः) यस्याः, ताम् ।

अतिकठिनेति । अतिकठिनमणिकुट्टिमस्पर्शम् = अतिकठिनम् (अधिककठोरम्) यत् मणिकुट्टिमं (रत्ननिबद्धभूमिः), तस्य स्पर्शः (आमर्शनम्), तम् । असहमानाम्=अमृष्यन्तीम्, अतः क्षितितले= भूतले, पल्लवभङ्गान् = किसलयखण्डान्, निधाय = स्थापयित्वा, इव, संचरन्तीं = संचरणं कुर्वतीम् इव, अत्र क्रियोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

आपिञ्जरेणेति । आपिञ्जरेण = ईषत्पीतरक्तेन, उत्सर्पिणा = ऊर्ध्वगामिना, नूपुरमणीनां =

अनुकरण कर किरातवेश लेनेवाली पार्वतीकी समान, वक्षःस्थलमें निवास करनेसे प्रतिबिम्बित विष्णुके शरीरकी कान्तिसे श्यामवर्णवाली लक्ष्मी-सी, कुपित रुद्रके अग्निमें जलाये गये कामदेवके धूमसे मलिन बनाई गई रतिकी समान, उत्कट गर्ववाले बलरामके हलसे आकर्षणके भयसे भागी हुई यमुनाकी सदृश, अतिशय अधिक लाक्षारसकी लालिमासे जिसका चरणकमल पल्लवित-सा हो गया है, अतः कुछ काल पहले मारे गये महिषाऽसुरके रुधिरसे रक्त चरणोंवाली दुर्गाकी समान, अधिक लाल उंगलियोंकी कान्तिसे जिसके नखोंकी किरणें गुलाबी हो गई हैं, अतः अधिक कठोर मणियोंके फर्सके स्पर्शको न सहनेसे पल्लवोंके टुकड़ोंको बिछाकर चल रहीकी सदृश, कुछ

मालिङ्गितदेहाम्, अनङ्ग-वारण-शिरो-नक्षत्रमालायमानेन रोमराजि-लतालवालकेन मेखला-दाम्ना परिगतजघनाम्, अतिस्थूल-मुक्ताफल-घटितेन शुचिना हारेण गङ्गास्रोतसेव कालिन्दीशङ्कया कृतकण्ठग्रहाम्, शरदमिव विकसित-पुण्डरीक-लोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेश-जालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्, नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणा-भरण-भूषिताम्,

---

मञ्जीररत्नानां, प्रभाजालेन = कान्तिसमूहेन, रञ्जितशरीरतया = रागयुक्तदेहत्वेन, रूपे = सौन्दर्ये अथवा चक्षुर्ग्राह्यगुणविशेषे, एव, पक्षपातिना = पक्षपातकारिणा, प्रजापतिं = ब्रह्माणम्, अप्रमाणीकुर्वता, भगवता = ऐश्वर्यादिसम्पन्नेन, पावकेन = अग्निदेवेन, जातिसंशोधनाऽर्थं = जन्मपवित्रीकरणाऽर्थं, चाण्डालजातिशुद्धिकरणाऽर्थमिति भावः । आलिङ्गितदेहाम् = आश्लिष्टशरीराम्, अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

अनङ्गेति । अनङ्गवारणशिरोनक्षत्रमालायमानेन = अनङ्गः (कामः) एव वारणः (हस्ती) तस्य शिरसि (मस्तके) नक्षत्रमालायमानेन = तारकापङ्क्तिवत् आचरता, रोमराजिलताऽऽलवालकेन = रोमराजिः (लोमपङ्क्तिः) एव, लता (वल्ली), तस्या आलवालकेन (आवापेन), "स्यादा-लवालमालमावापः" इत्यमरः । तादृशेन मेखलादाम्ना = काञ्चीरज्ज्वा, परिगतजघनस्थलां = परिगतं (समन्ततो व्याप्तम्) जघनस्थलं (कटिपुरोभागस्थानम्) यस्याः, ताम् । अत्र रूपकोपमयोः सङ्करः ।

अतिस्थूलेति । अतिस्थूलमुक्ताफलघटितेन = अतिस्थूलानि (अधिकविपुलानि) यानि मुक्ता-फलानि (मौक्तिकफलानि) तैः घटितेन (रचितेन), शुचिना = शुक्लवर्णेन, हारेण = मुक्तामालया, कालिन्दीशङ्कया = यमुनासन्देहेन, चाण्डालकन्यकायाः श्यामत्वादिति भावः । गङ्गास्रोतसा = भागीरथी-प्रवाहेण, कृतकण्ठग्रहां = कृतः (विहितः) कण्ठग्रहः (गलग्रहणम्, आलिङ्गनमिति भावः) यस्याः, ताम् । अत्रोत्प्रेक्षाभ्रान्तिमतोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः ।

शरदमिति । शरदम् = घनात्ययम्, इव, विकसितपुण्डरीकलोचनां = विकसितानि (प्रफुल्लानि) पुण्डरीकाणि (श्वेतकमलानि) एव लोचनानि (नेत्राणि) यस्याः सा, ताम् शरत्पक्षे रूपकालङ्कारः । चाण्डालकन्यकापक्षे—विकसिते पुण्डरीके इव लोचने यस्याः सा, ताम् । अत्रोपमाऽलङ्कारः । अत आरभ्य—यक्षाऽधिपलक्ष्मीमिवाऽलकोद्भासिनीम्" एतत्पर्यन्ते पार्यन्तिकः श्लेषाऽलङ्कारः ।

प्रावृषमिति । प्रावृषं = वर्षाकालम्, इव, घनकेशजालां = घनाः (मेघाः) एव केशजालानि (शिरोरुहसमूहाः) यस्याः, ताम्, प्रावृट्पक्षे रूपकम् । चाण्डालकन्यकापक्षे—घनाः (निबिडाः) केशजालानि (शिरोरुहसमूहाः) यस्याः, ताम् । श्लेषाऽलङ्कारः ।

मलयमेखलामिति । मलयमेखलां = मलयस्य (दाक्षिणात्यपर्वतविशेषस्य) मेखलाम् (मध्य-भागम्) इव । चन्दनपल्लवाऽवतंसां=चन्दनपल्लवाः (श्रीखण्डकिसलयानि) एव अवतंसः (भूषणम्) यस्याः, ताम् ।

नक्षत्रमालामिति । नक्षत्रमालां = तारकापङ्क्तिम्, इव, चित्रश्रवणाऽऽभरणाभूषितां = चित्र-श्रवणे (चित्रश्रवणनक्षत्रे) एव आभरणे (भूषणे) ताभ्यां भूषिताम् (अलङ्कृताम्) । चाण्डाल-कन्यकापक्षे—चित्राणि (अनेकप्रकाराणि) यानि श्रवणाऽऽभरणानि (कर्णभूषणानि कुण्डलादीनीति भावः), तैः भूषिताम् (अलङ्कृताम्) । श्लेषः ।

पीले और ऊपर जाते हुए नूपुरके रत्नोंके कान्तिसमूहसे शरीरके रंग जानेसे मानों केवल रूपमें ही पक्षपात करने-वाले भगवान् अग्निदेवसे ब्रह्मदेवको प्रमाण न मानकर (चाण्डाल) जातिको शुद्ध करनेके लिए आलिङ्गित शरीरवाली, कामदेवरूपी हाथीके शिरकी नक्षत्रमालाकी समान, रोमपङ्क्तिरूप लताके लिए क्यारीकी समान मेखलाकी मालासे व्याप्त जघनवाली, अतिशय मोटे मोतियोंसे बने हुए सफेद हार (माला)से यमुनाके सन्देहसे गङ्गाके प्रवाहसे कण्ठमें लिपटी हुईकी समान, विकसित श्वेतकमलोंके समान नेत्रोंसे शरत्की सदृश, घने केशसमूहसे घन (मेघ) रूप केशसमूहवाली वर्षाकी समान, चन्दन पल्लवरूप भूषण पहननेसे चन्दनपल्लवयुक्त मलयपर्वतके मध्यभागकी सदृश, जैसे चित्रा और श्रवणरूप भूषणोंसे नक्षत्रपङ्क्ति भूषित होती है वैसे ही विचित्र

श्रियमिव हस्तस्थित-कमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्, अरण्यभूमिमिव रूप-सम्पन्नाम्, दिव्ययोषितमिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अरण्यकमलिनीमिव मातङ्गकुलदूषिताम्, अमूर्त्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्, मधुमास-कुसुम-समृद्धिमिव अजातिम्, अनङ्ग-कुसुम-चापलेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिपलक्ष्मी-

---

श्रियमिति । श्रियं = लक्ष्मीम्, इव, हस्तस्थितकमलशोभां = हस्तस्थिता (करस्थिता) कमलेन (पद्मेन) शोभा (कान्तिः) यस्याः सा । चाण्डालकन्यकापक्षे—हस्तस्थिता कमलस्य इव शोभा यस्याः सा । श्लेषः ।

मूर्च्छामिति । मूर्च्छाम् = मोहम्, इव, मनोहारिणीं = चैतन्यलोपकारिणीम्, चाण्डाल-कन्यकापक्षे—सौन्दर्येण मनोहराम् । श्लेषाऽलङ्कारः । अरण्यभूमिमिति । अरण्यभूमिं = वनभुवम्, इव, अक्षतरूपसम्पन्नाम् = अक्षताः (अनष्टाः) ये रूपाः (पशवः), तैः सम्पन्नां = सहिताम् । चाण्डालकन्यकापक्षे—अक्षतम् (अनुपभुक्तम्) यत् रूपं (सौन्दर्यम्) तेन सम्पन्नाम् । "रूपं स्वभावे सौन्दर्ये नामगे पशुशब्दयोः । ग्रन्थावृत्तौ नाटकादावाकारश्लोकयोरपि" इति मेदिनी । श्लेषाऽलङ्कारः ।

दिव्ययोषितमिति । दिव्ययोषितं = दिव्या (स्वर्गभवा) योषित् (स्त्री, देवाऽङ्गनेति भावः), ताम्, इव, अकुलीनां = कौ (पृथिव्याम्) लीना (स्थिता), न कुलीना, तां, भूतलस्थितिरहितामिति भावः । चाण्डालकन्यकापक्षे—कुले भवा कुलीना, "कुलात्ख" इति खप्रत्ययः । तस्य "आयनेयी" त्यादिना ईनादेशः । न कुलीना, ताम् । चाण्डालत्वादप्रशस्तकुलोत्पन्नामिति भावः । "गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी" त्यमरः । श्लेषः । निद्रामिति । निद्राम् = स्वापाऽवस्थाम्, इव, लोचनग्राहिणीं = नेत्रग्राहिकां, नेत्रव्यापार (दर्शन) राहित्यकारिकामिति भावः । चाण्डालकन्यकापक्षे—लोचनग्राहिकां = नेत्राऽऽ-कर्षिणीं, सौन्दर्याऽतिशयेनेति भावः ।

अरण्यकमलिनीमिति । अरण्यकमलिनीं = विपिनपद्मिनीम्, इव, मातङ्गकुलदूषितां = मातङ्ग-कुलेन (हस्तिसमूहेन) दूषिताम् (मर्दिताम्), चाण्डालकन्यकापक्षे—मातङ्गकुलेन (चाण्डाल-वंशेन, मातङ्गकुलोत्पन्नत्वेनेति भावः), दूषितां (दोषयुक्ताम्) "मातङ्गः श्वपचे गजे" इति मेदिनी । अमूर्तां = मूर्ति (शरीर) रहिताम् इव, स्पर्शवर्जिताम् = आमर्शनरहिताम्, शरीराऽभावादिति भावः । चाण्डालकन्यकापक्षे—धर्मशास्त्रे चाण्डालस्पर्शस्य निषिद्धत्वादिति भावः । **आलेख्यगतामिति** । आलेख्यगतां = चित्रप्राप्ताम्, इव, दर्शनमात्रफलां = दर्शनमात्रं (विलोकनमात्रम्) फलं (प्रयोजनम्) यस्याः, ताम् । यथा चित्रस्थितायाः व्यक्तेर्दर्शनाऽतिरिक्तं किमपि फलं न, तथा चाण्डालकन्यकाया अपि स्पर्शादिनिषेधाद्दर्शनमात्रं प्रयोजनमिति भावः ।

मधुमासेति । मधुमासकुसुमसमृद्धिम् = मधुमासे (चैत्रमासे) कुसुमसमृद्धिम् (पुष्पसंवृद्धिम्) इव, अजातिं = जातिरहिताम्, वसन्ते (चैत्रवैशाखयोः) जातिपुष्पाभावात् । चाण्डालकन्यकापक्षे अप्रशस्तजातिमतीमिति भावः । अत्र नञः अप्राशस्त्याऽर्थबोधकत्वम् । "सुमना मालती जातिः" इत्यमरः ।

अनङ्गेति । अनङ्गकुसुमचापलेखाम् = अनङ्गस्य (कामदेवस्य) । कुसुमचापस्य (पुष्पधनुषः)

कर्णभूषणोंसे भूषित हाथमें कमल लेनेवाली लक्ष्मीकी समान, हाथोंमें कमलकी शोभासे युक्त, जैसे मूर्च्छा मनकी वृत्तिको हरण करती है वैसे ही सौन्दर्यसे मनको हरण करनेवाली, जैसे वनभूमि रूपों (पशुओं) से सम्पन्न होती है वैसे ही रूप (सौन्दर्य) से सम्पन्न, जैसे दिव्य (स्वर्गस्थित) देवी कु (पृथिवी) में लीना (सम्बद्धा) नहीं होती है वैसे चाण्डालकन्या होनेसे अकुलीन (उत्तम कुलमें अनुत्पन्न), जैसे निद्रा नेत्रवृत्तिको ग्रहण करती है वैसी ही) नेत्रोंकी ग्राहिणी (आकर्षण करनेवाली), जङ्गलकी कमलिनी जैसे मातङ्ग (हाथी) के समूहसे दूषित (मर्दित होती है वैसे ही मातङ्ग कुल (चाण्डालवंश) से दोष युक्त, अशरीरिणी (अदेहधारिणी) की तरह स्पर्शसे वर्जित, चित्रस्थितकी समान दर्शनमात्र फलसे युक्त, जैसे चैत्रमासमें फूलोंकी समृद्धि जाति पुष्प (चमेली) से रहित होती है

मिवालकोद्भासिनीम्, अचिरोपरूढयौवनाम्, अतिशयरूपाकृतिम्, अनिमिष-लोचनो ददर्श। दृष्ट्वा च तां समुपजातविस्मयस्याभून्मनसि महीपतेः—"अहो ! विधातुरस्थाने रूप-निष्पादन-प्रयत्नः। तथाहि, यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसम्पदुत्पादिता, किमर्थमपगत-स्पर्श-सम्भोग-सुखे कृतं कुले जन्म।

मन्ये च 'मातङ्ग-जाति-स्पर्श-दोष-भयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि करतल-स्पर्श-क्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः।

लेखां (रेखां, लतामितिभावः) इव, मुष्टिग्राह्यमध्यां = मुष्टिग्राह्यं (संपीडिताऽङ्गुलिग्रहणीयम्) मध्यं (मध्यभागः, चाण्डालकन्यकापक्षे—अवलग्नम्) यस्याः, ताम्। धनुषो मध्यभागस्य क्षीणत्वाच्चाण्डालकन्यकायाः कृशमध्यत्वादिति भावः।

यक्षाधिपलक्ष्मीमिति—यक्षाऽधिपलक्ष्मीं = यक्षाऽधिपस्य (कुबेरस्य) लक्ष्मीम् (सम्पत्तिम्), इव, अलकोद्भासिनीम् = यक्षाऽधिपलक्ष्मीपक्षे—अलकया (तदाख्यनगर्या) उद्भासनशीलाम्, चाण्डालकन्यकापक्षे—अलकैः (चूर्णकुन्तलैः) उद्भासनशीलाम् (उद्दीपनशीलाम्)। पूर्ववच्छ्लेषाऽलङ्कारः। अचिरोपरूढयौवनाम् = अल्पकालादेव प्राप्ततारुण्याम्। अतिशयरूपाऽऽकृतिम् = अतिशयरूपा (अधिकसौन्दर्ययुक्ता) आकृतिः (आकारः) यस्याः ताम्, तादृशीं तां = चाण्डालकन्यकाम्, अवनिपतिः = भूपतिः (शूद्रकः)। अनिमिषलोचनः = अनिमिषे (निमेषव्यापाररहिते) लोचने (नेत्रे) यस्य सः, तत्सौन्दर्ये तृष्णाऽतिशयेनेति भावः।

समुपजातेति। समुपजातविस्मयस्य = समुपजातः (समुत्पन्नः) विस्मयः (आश्चर्यम्) यस्य, तस्य। महीपतेः = राज्ञः, शूद्रकस्य। मनसि = चित्ते, अभूत् = जातः, वक्ष्यमाणप्रकारो विचार इति शेषः।

अहो इति। अहो = आश्चर्यम्। विधातुः = ब्रह्मणः, अस्थाने = अनुपयुक्तस्थले। रूपनिष्पादनप्रयत्नः = रूपस्य (सौन्दर्यस्य) निष्पादनं (निर्माणम्) तत्र प्रयत्नः (प्रयासः)।

प्रयत्नवैफल्यं प्रदर्शयति—तथाहीति। नामेत्यभ्युपगमे। आत्मरूपोपहसिताऽशेषरूपसंपत् = आत्मरूपेण (स्वसौन्दर्येण) उपहसिता (उपहासविषयीकृता) अशेषा (समस्ता) रूपसम्पत् (सौन्दर्यसमृद्धिः) यया सा। इयं = चाण्डालकन्यका, उत्पादिता = निर्मिता, यदि = चेत्। (तर्हि), किमर्थं = किंप्रयोजनम्, अपगतस्पर्शसंभोगसुखे = अपगते (दूरीभूते) स्पर्शसंभोगसुखे (आमर्शनोपभोगाऽऽनन्दे) यस्मिन्, तादृशे, कुले = वंशे, जन्म = उत्पत्तिः, कृतं = विहितम्।

उत्प्रेक्षते—मन्य इति। मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयात् = मातङ्गजातेः (चाण्डालजातस्य) स्पर्शः (आमर्शनम्), तेन यो दोषः (दूषणम्) तस्मात् भयात् (भीतेः)। अस्पृशता = स्पर्शम् अकुर्वता, प्रजापतिना = ब्रह्मणा, इयं = चाण्डालकन्यका, उत्पादिता = जनिता। अन्यथा = अन्यथाप्रकारेण, इत्थमसत्त्वे सतीति भावः। लावण्यस्य = सौन्दर्यस्य, इयम् = ईदृशी, अक्लिष्टता = क्लेशरहितता, अबाधितता इति भावः। कथं=केन प्रकारेण, स्यादिति शेषः। उक्तमर्थमुपपादयति—नहीति। करतल-

---

वैसे अजाति (कुत्सित जाति) वाली, कामदेवके पुष्पधनुकी लता मध्यभागमें पतली होनेसे मुष्टिसे पकड़ी जाती है वैसे मुष्टिसे ग्राह्य (पतली) मध्य (कमर) वाली, जैसे कुबेरकी लक्ष्मी अलकासे शोभित होती है वैसे ही अलकोद्भासिनी, अर्थात् अलकों (चूर्णकुन्तलों)से शोभित होनेवाली, कुछ ही काल पहले यौवनको प्राप्त करनेवाली, उत्कृष्ट सौन्दर्य और आकारवाली वैसी चाण्डालकन्याको राजाने पलक भी न मारकर देखा।

आश्चर्ययुक्त होनेवाले राजाके मनमें ऐसा विचार हुआ—आश्चर्य है, ब्रह्माजीका अनुचित स्थानमें सौन्दर्य उत्पन्न करनेका प्रयत्न हुआ है। जैसे कि अपने सौन्दर्यसे समस्त सौन्दर्य-सम्पत्तिका उपहास करनेवाली इसको उत्पन्न किया है तो किस लिए स्पर्श और संभोगके सुखसे रहित वंशमें उत्पन्न किया ?। मैं समझता हूँ कि चाण्डालजातिके स्पर्शके दोषके भयसे ब्रह्माजीने स्पर्शके विना ही इसको उत्पन्न किया, ऐसा नहीं होता तो ऐसा

सर्वथा धिग्विधातारम् असदृशसंयोगकारिणम् । मनोहराकृतिरपि क्रूरजातितया येनेयमसुरश्रीरिव सतत-निन्दित-सुरता रमणीयाऽप्युद्वेजयति' इति ।

एवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषदवगलित-कर्णपल्लवावतंसा प्रगल्भवनितेव कन्यका प्रणनाम ।

कृतप्रणामायाञ्च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायाम्, स पुरुषस्तं विहङ्गमं शुकमादाय पञ्जर-गतमेव किञ्चिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयदब्रवीच्च—

'देव ! विदितसकलशास्त्रार्थः, राजनीतिप्रयोगकुशलः, पुराणेतिहासकथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनाम्, काव्य-नाटकाख्यायिकाख्यानक-प्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानामध्येता

स्पर्शक्लेशितानां = हस्ततलामर्शनबाधितानाम्, अवयवानाम् = अङ्गानाम्, ईदृशी = एतादृशी, कान्तिः = शोभा, नहि भवति = न सम्पद्यते ।

सर्वथेति । असदृशसंयोगकारिणम् = असदृशः (सादृश्यरहितः, अनुपयुक्त इति भावः) एतादृशः यः संयोगः (सम्बन्धः), तत्कारिणं (तद्विधातारम्), विधातारं (ब्रह्मदेवम्), धिक् = निन्दा, निन्दामीतिभावः । येन = असदृशसंयोगेन, रमणीया = मनोहरा, अपि, इयं = चाण्डालकन्यका, असुरश्रीः = दैत्यलक्ष्मीः, इव, सततनिन्दितसुरता = सततं (निरन्तरम्) निन्दितं, (जुगुप्सितम्) सुरतं (रतिक्रीडा), यस्याः सा, असुरश्रीपक्षे—सततनिन्दिता (निरन्तरजुगुप्सिता) सुरता (सुरसमूहः, सुरभावो वा) यया सा, तादृशी सती उद्वेजयति = उद्वेगं जनयति, वैरस्यमुत्पादयतीतिभावः ।

एवमिति । एवमादि = इत्यादिकं, चिन्तयन्तं = विमर्शं कुर्वन्तम्, एव, राजानं = भूपालं, शूद्रकम्, ईषदवगलितकर्णपल्लवाऽवतंसा = ईषत् (अल्पम्) अवगलितौ (अधोऽवलम्बितौ) कर्णपल्लवौ (श्रोत्रकिसलये) एव अवतंसौ (भूषणे) यस्याः सा, तादृशी सती, कन्यका = कुमारी । चाण्डालस्येति शेषः, प्रगल्भवनिता = प्रौढनायिका, इव, प्रणनाम = प्रणामं चकार ।

कृतेति । कृतप्रणामायां = कृतः (विहितः) प्रणामः (नमस्कारः) यया, तस्याम् । तदनन्तरं, मणिकुट्टिमोपविष्टायां = मणिकुट्टिमं (रत्ननिबद्धभूमिः) तत्र उपविष्टायां (निषण्णायाम्, सत्यां) सः = पूर्वोक्तः, पुरुषः = पुमान्, चाण्डालकन्यायाः, पुरोगामीति शेषः । पञ्जरगतम् = पिञ्जरस्थितम्, एव, तं = पूर्वोक्तं, विहङ्गमं = पक्षिणं, शुकम्, आदाय = गृहीत्वा, राज्ञे = भूपालाय, शूद्रकाय, न्यवेदयत् = निवेदितवान्, अब्रवीच्च = अकथयच्च ।

देवेति । देव = राजन् !, विदितसकलशास्त्रार्थः = विदिताः (ज्ञाताः) सकलाः (समस्ताः) शास्त्रार्थाः (वेदादिशास्त्रतत्त्वानि) येन सः । राजनीतिप्रयोगकुशलः = राजनीतिप्रयोगे (राजनय-व्यवहारे) कुशलः (निपुणः), पुराणेतिहासकथाऽऽलापनिपुणः = पुराणम् (पञ्चलक्षणं, ब्राह्मादिकम्) इतिहासः (पुरावृत्तं, रामायणादिकम्), तयोः याः कथाः (वृत्तान्ताः) तासाम् आलापः (आभाषणम्), तत्र निपुणः (प्रवीणः) । गीतश्रुतीनां = गीतं (गानम्) श्रुतयः (तीव्राऽऽदिका द्वाविंशतिसंख्यकाः), तासां, "वेदिते" ति पदेन योगे "कर्तृकर्मणोः कृति" इति कर्मणि षष्ठी । वेदिता = ज्ञाता । काव्येत्यादिः = काव्यं (कविकर्म), नाटकं (अभिनेयं काव्यम्), आख्यायिका (गद्यकाव्यविशेषः)

दोषरहित लावण्य कैसे होता ? हाथके स्पर्शसे बाधित अवयवोंकी ऐसी कान्ति नहीं होती है । असमान पदार्थोंका संयोग करनेवाले विधाताको सर्वथा धिक्कार है, जिससे सुरता (देवसमूह) की निन्दा करनेवाली असुरश्री (दैत्य-लक्ष्मी) की समान यह मनोहर होनेपर भी निरन्तर निन्दित सुरत (रतिक्रीडा) वाली होकर चित्तको उद्विग्न (विचलित) कर रही है । इस प्रकार विचार करनेवाले राजाको कर्णपल्लवोंको कुछ झुकाती हुई उस चाण्डाल-कन्याने प्रगल्भ स्त्रीके समान प्रणाम किया । प्रणाम करके उस कन्याके रत्नोंके फर्शपर बैठनेपर उस पुरुषने पिंजड़ेमें रहे हुए उस तोतेको लेकर कुछ समीप आकर राजाको समर्पण किया, और कहा भी—राजन् ! समस्त शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाला, राजनीतिके व्यवहारमें कुशल, पुराण और इतिहासकी कथाओंके भाषणमें कुशल,

स्वयञ्च कर्त्ता, परिहासालापपेशलः, वीणा-वेणु-मुरजप्रभृतीनां वाद्यविशेषाणामसमः श्रोता, नृत्यप्रयोगदर्शननिपुणः चित्रकर्म्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः, प्रणयकलह-कुपित-कामिनी-प्रसादनोपायचतुरः, गज-तुरग-पुरुष-स्त्री-लक्षणाभिज्ञः, सकलभूतल-रत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः। सर्वरत्नानाञ्च उदधिरिव देवो भाजनमिति कृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देव-पादमूलमायाता, तदयमात्मीयः क्रियतामित्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार।

अपसृते च तस्मिन् स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वा समुन्नमय्य दक्षिणं चरणमति-स्पष्ट-वर्ण-स्वर-संस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ—

आख्यानकं (नलोपाख्यानादिकम्), तत्प्रभृतीनां (तदादीनाम्) अपरिमितानां (नियतपरिमाण-रहितानाम्, अगणितानामितिभावः), सुभाषितानां = मनोहरनीत्यादिविषयकपद्यानाम्), अध्येता = अध्ययनकर्ता, पाठकः। तेषां स्वयं च = आत्मना एव च। कर्ता = रचयिता, परिहासाऽऽलापपेशलः = परिहासः (नर्मवचनम्), तस्य आलापाः (आभाषणानि), तेषु पेशलः (कुशलः) वीणावेणुमुर-जादीनां = वीणा (वल्लकी ततवाद्यम्) वेणुः (वंशः सुषिरवाद्यम्) मुरजः (मृदङ्गः, आनद्धवाद्यम्) तदादीनां (तत्प्रभृतिवाद्यविशेषाणाम्, आदिपदेन कांस्यादिकानि घनवाद्यानि गृह्यन्ते)। एतेषां वाद्य-विशेषाणाम्, असमः = अतुल्यः, अनुपम इति भावः। श्रोता = आकर्णयिता। नृत्यप्रयोगदर्शननिपुणः = नृत्यं (ताललयाऽभिनयाश्रितः संगीतविशेषः) तत्प्रयोगः (तदनुष्ठानम्) तस्य दर्शने (विलोकने) निपुणः (प्रवीणः)। चित्रकर्मणि = आलेख्यक्रियायां, प्रवीणः = कुशलः। द्यूतव्यापारे = द्यूतं (दुरो-दरम्) तस्य व्यापारे (कर्मणि), प्रगल्भः = प्रतिभाऽन्वितः। प्रणयकलहेत्यादिः = प्रणयकलहः (प्रीतिविवादः) तस्मिन् कुपिता (क्रुद्धा) या कामिनी (रमणी), तस्याः प्रसादनं (प्रसन्नता-पादनम्), तस्मिन् ये उपायाः (साधनानि) तेषु चतुरः (निपुणः)। गजतुरगेत्यादिः = गजाः (हस्तिनः) तुरगाः (अश्वाः) पुरुषाः (पुमांसः) स्त्रियः (नार्यः) तासां लक्षणानि (सामुद्रिका-दिशास्त्रप्रतिपादितानि) तेषु अभिज्ञः (प्रवीणः)। सकलभूतलरत्नभूतः = सकलं (समस्तम्) यत् भूतलं (धरामण्डलम्) तत्र रत्नभूतः (श्रेष्ठभूतः)। अयं = सन्निकृष्टस्थः, वैशम्पायनो नाम = नाम्ना वैशम्पायन इति प्रसिद्धः, शुकः = कीरः। सर्वरत्नानां = सकलमणीनाम्, उदधिः = रत्नाकरः, इव, सर्वरत्नानां = सकलश्रेष्ठवस्तूनां, देवः = भवान्, भाजनं = पात्रं, "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि मणावपि नपुं-सकम्" इति मेदिनी। इति कृत्वा = इति विमृश्य। एनम् = शुकम्, आदाय = गृहीत्वा, अस्मत्स्वामि-दुहिता = अस्मत्स्वामिनः (अस्मत्प्रभोः) दुहिता (पुत्री)। देवपादमूलं = भवच्चरणमूलम्, आयाता = आगता, अस्तीति शेषः। तत् = तस्मात्कारणात्, अयं = वैशम्पायननामा शुकः, आत्मीयः = स्वकीयः, क्रियतां = विधीयताम्। इति = पूर्वोक्तं वाक्यम्, उक्त्वा = अभिधाय, पञ्जरं = पिञ्जरं, शुकवास-पात्रं, नरपतेः = राज्ञः शूद्रकस्य, पुरः = अग्रे, निधाय = स्थापयित्वा, असौ = वक्ता पुरुषः, अपस-सार = अपसृतः।

अपसृत इति। तस्मिन्=पूर्वोक्ते पुरुषे, अपसृते = दूरीभूते सति, सः = पूर्वोक्तः, विहङ्गराजः =

गीतकी तीव्रा आदि श्रुतियोंका जानकार, काव्य, नाटक, आख्यायिका, और आख्यानक आदिके अपरिमित सुभाषितोंको पढ़ा हुआ और स्वयम् भी रचना करनेवाला, परिहासके भाषणमें निपुण, बीन, बाँसुरी, पखावज आदि वाद्योंका बेजोड़ श्रोता (सुननेवाला), नृत्यके प्रयोग और दर्शनमें कुशल, चित्रकर्ममें निपुण, द्यूतक्रीड़ामें प्रतिभासंपन्न, प्रेमकलहमें क्रुद्ध नायिकाको प्रसन्न करनेके उपायमें निपुण, हाथी, पुरुष और स्त्रियोंके लक्षणोंका जानकार, समस्त भूतलमें रत्नस्वरूप यह वैशम्पायन नामका तोता है, महाराज भी समुद्रके समान समस्त रत्नोंके पात्र हैं ऐसा समझकर इस (तोते) को लेकर हमारे स्वामीकी पुत्री महाराजके चरणमूलमें आई हैं। इस कारणसे आप इसको अपना बनाएँ।" ऐसा कहकर राजाके आगे उस पिंजड़ेको रखकर वह हट गया। उसके हटनेपर उस पक्षिराज (तोते) ने राजाके सम्मुख होकर दाएँ पैरको उठाकर अत्यन्त स्पष्ट वर्ण, स्वर और संस्कारवाली

'स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः ।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम् ॥'

राजा तु तां श्रुत्वा संजात-विस्मयः सहर्षमासन्नवर्त्तिनम् अतिमहार्घहेमासनोपविष्टम् अमरगुरुमिवाशेषनीतिशास्त्रपारगम् अतिवयसमग्रजन्मानमखिलमन्त्रिमण्डले प्रधानममात्यं कुमारपालितनामानमब्रवीत्—

'श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे, स्वरे च मधुरता ! प्रथमं तावदि-

---

पक्षिराजः शुकः, राजाऽभिमुखः = नृपसंमुखः, भूत्वा, दक्षिणं = वामेतरं, चरणं = पादं, समुन्नमय्य = समुन्नतं कृत्वा, ऊर्ध्वं विधायेति भावः । अतिस्पष्टेत्यादिः = अतिस्पष्टाः (अधिकस्फुटाः) वर्णाः (अक्षराः) स्वराः (उदात्तादयः), तेषां संस्काराः (परिपाकाः) यस्यां, तया गिरा = वाण्या, कृतजयशब्दः = । कृतः (विहितः) जयशब्दः (जयेतिपदम्) येन सः । राजानं = भूपतिम्, उद्दिश्य = अनूद्य, इमां = वक्ष्यमाणप्रकाराम्, आर्यां = मात्राच्छन्दोविशेषं, पपाठ = पठितवान् ।

अन्वयः—अश्रुस्नातं हृदयशोकाऽग्नेः समीपतरवर्ति विमुक्ताऽऽहारं भवतो रिपुस्त्रीणां स्तनयुगं व्रतं चरति इवेत्यन्वयः ।

स्तनयुगमिति । हे राजन् ! इति सम्बोधनपदमध्याहार्यम् । अश्रुस्नातम् = अश्रुभिः (नयन-सलिलैः) स्नातं (कृतस्नानम्), हृदयशोकाऽग्नेः = हृदये (चित्ते) यः शोकाऽग्निः (शोकः = मन्युः पत्युर्वधजनितो बन्धजनितो वेतिशेषः) एव अग्निः (वह्निः) तस्य, समीपतरवर्ति = निकटतरस्थितं, विमुक्ताहारं = विगतः मुक्ताहारो (मौक्तिकमाला) यस्मात्तत्, तादृशं भवतः = तव, रिपुस्त्रीणां = वैरिनारीणां, स्तनयुगं = पयोधरयुग्मं । व्रतं=कृच्छ्रादिनियमं, चरति=अनुतिष्ठति । अन्योऽपि कृच्छ्रादि-व्रताऽनुष्ठाता जनः स्नानं करोति हवनाऽनलसमीपे तिष्ठति, आहारं च विमुञ्चति । आर्या छन्दः । अस्मिन्पद्ये "हृदयशोकाऽग्नेः" इत्यत्र निरङ्गरूपकं "विमुक्ताहारम्" इत्यत्र सभङ्गश्लेषः, क्रियोत्प्रेक्षा-चेत्यलङ्काराणां मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः ॥ २१ ॥

राजेति । राजा तु = नृपश्च, तां = पूर्वोक्ताम्, आर्यां = मात्राच्छन्दोविशेषं, श्रुत्वा = आकर्ण्य, सञ्जातविस्मयः = सञ्जातः (समुत्पन्नः) विस्मयः (आश्चर्यम्) यस्य सः, तथा सन्, आसन्नवर्तिनं = निकटस्थितम्, अतिमहाऽर्घहेमाऽऽसनोपविष्टम् = अतिमहाऽर्घम् (अधिकबहुमूल्यम्) यत् हेमाऽऽसनं (सुवर्णासनम्) तस्मिन् उपविष्टम् (निषण्णम्) । अमरगुरुं = देवाचार्यं बृहस्पतिम्, इव, अशेष-नीतिशास्त्रम् = अशेषाणि (समस्तानि) यानि नीतिशास्त्राणि (नयशास्त्राणि) तेषां पारगम् (पार-गामिनम्) रहस्यज्ञातारमिति भावः । अतिवयसम् = अधिकाऽवस्थम्, वृद्धमिति भावः । अग्रजन्मानं = ब्राह्मणम्, तथा च अखिलमन्त्रिमण्डलप्रधानं = अखिले (समग्रे, मन्त्रिमण्डले) अमात्यसमूहे, प्रधानं (मुख्यम्), कुमारपालितनामानं = कुमारपालितो नाम (नाम) यस्य सः, तम् अब्रवीत् = उक्तवान् ।

श्रुतेति । भवद्भिः = युष्माभिः, अस्य = निकटवर्तिनः, विहङ्गमस्य = पक्षिणः शुकस्य, वर्णो-च्चारणे = वर्णानाम् (स्वरव्यञ्जनाद्यक्षराणाम्) उच्चारणे (वचने), स्पष्टता = स्फुटता, स्वरे च = उदात्तादिस्वरे च, मधुरता माधुर्यम्, श्रुता = आकर्णिता किम् इति प्रश्नः काक्वा व्यज्यते ।

वाणीसे जय शब्दका उच्चारण कर राजाको उद्देश्यकर इस आर्याको पढ़ा—(हे राजन् !) आँसुओंसे स्नान किया हुआ, हृदयस्थित शोकरूप अग्निके अति समीपस्थित, मोतियोंकी मालाको छोड़नेवाला आपके शत्रुओंकी स्त्रियोंका स्तनयुग्म मानों स्नानयुक्त और आहारका परित्यागवाले व्रतका आचरण कर रहा है" ।

राजाने उस आर्याको सुनकर आश्चर्ययुक्त होकर हर्षके साथ निकटवर्ती, अत्यन्त बहुमूल्य सुवर्णासनमें बैठे हुए, बृहस्पतिके समान संपूर्ण नीतिशास्त्रोंके पारगामी, अधिक वयवाले, ब्राह्मण और समस्त मन्त्रियोंमें मुख्य कुमारपालित नामके प्रधानमन्त्रीसे कहा—"आपने इस पक्षीकी वर्णोंके उच्चारणमें स्पष्टता और स्वरमें

दमेव महदाश्चर्य्यम्, यदयमसङ्कीर्णवर्णप्रविभागामभिव्यक्तमात्रानुस्वार-स्वर-संस्कारयोगां विशेषसंयुक्ताम् अतिपरिस्फुटाक्षरां गिरमुदीरयति। तत्र पुनरपरम् अभिमतविषये तिरश्चोऽपि मनुजस्येव संस्कारवती बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः। तथाहि-अनेन समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेनोच्चार्य्य जयशब्दमियमार्य्या मामुद्दिश्य परिस्फुटाक्षरं गीता। प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहार-मैथुन-निद्रा-संज्ञामात्र-वेदिनो भवति। इदन्तु महच्चित्रम्।'

इत्युक्तवति भूभुजि कुमारपालितः किञ्चित्स्मितवदनो नृपमवादीत्—'देव! किमत्र चित्रम्। एते हि शुकसारिकाप्रभृतयो विहङ्ग-विशेषा यथाश्रुतां वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेव

प्रथममिति। प्रथमं = पूर्वम्। इदम् = प्रत्यक्षम्, एव, महत् आश्चर्यम् = अतिकौतूहलमिति भावः। यत् = यस्मात् कारणात्, अयं = शुकः असङ्कीर्णवर्णप्रविभागाम् = असङ्कीर्णः (संकररहितः, परस्परवैलक्षण्येन श्रूयमाण इति भावः) वर्णप्रविभागः = स्वरव्यञ्जनाद्यक्षरभिन्नत्वम् यस्यां सा ताम्। अभिव्यक्तमात्राऽनुस्वारसंस्कारयोगाम् = अभिव्यक्ताः (परिस्फुटाः) मात्राऽनुस्वारसंस्कारयोगाः (मात्राः = ह्रस्वादयः, अनुस्वारः, संस्कारः = व्याकरणशुद्धिः, येषां ते) तादृशा योगाः (सम्बन्धाः) यस्यां सा ताम्, विशेषसंयुक्तां = विशेषेण (शब्दश्लेषादिना), संयुक्ताः (सहिता)। ताम्, तादृशीं गिरं = वाणीम्, उच्चारयति = ब्रवीति।

तत्रेति। तत्र = उच्चारणे। पुनः = भूयः, अपरम् = अन्यत्, वक्तव्यमस्तीति शेषः। अभिमत-विषये = अभीष्टविषये, तिरश्चोऽपि = तिर्यग्जातेः, पशुपक्ष्यादेरपीति भावः। संस्कारवतः = तत्तदर्थ-विषयाऽनुभवजन्यः संस्कारः, तद्वतः (तद्युक्तस्य) मनुजस्य इव = मनुष्यस्य इव। बुद्धिपूर्वा = मति-पूर्विका, प्रवृत्तिः = चेष्टा, भवतीति शेषः।

तादृशीं प्रवृत्तिं दर्शयति—**तथाहीति**। तथा हि—यथेति भावः। समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेन = समुत्क्षिप्तः (ऊर्ध्वीकृतः) दक्षिणचरणः (वामेतरपादः) येन सः, तेन। अनेन = शुकेन, जयशब्दं = जयेति पदम्, उच्चार्य = उदीर्य, मां = राजानम्, उद्दिश्य, अनूद्य, इयम् = एषा, आर्या = मात्राच्छन्दो-विशेषः, परिस्फुटाऽक्षरं = व्यक्तवर्णं यथा तथा (क्रि० वि०)। गीता = उदीरिता।

प्रायेणेति। प्रायेण = बाहुल्येन, पक्षिणः = विहङ्गाः, पशवश्च = चतुष्पदाश्च, मृगादयश्चेति भावः। भयाहारेत्यादिः = भयं (भीतिः) आहारः (भक्षणम्) मैथुनं (रतिक्रीडा) निद्रा (स्वापः) संज्ञा (सङ्केतशब्दादिः), तन्मात्रवेदिनः (तन्मात्रज्ञातारः) भवन्ति = वर्तन्ते। इदं तु = एतत्तु, शुककर्तृकमार्याच्छन्दःपाठादिकमिति भावः। महत् = अधिकम्, आश्चर्यं = विस्मयजनकमिति भावः।
इत्युक्तवतीति। भूभुजि = राज्ञि शूद्रके, इति = उक्तप्रकारम्, उक्तवति = भाषितवति। कुमारपालितः = तन्नामा मन्त्रिमुख्यः, किञ्चित् = ईषत्, स्मितवदनः = हास्ययुक्तमुखः सन्, नृपं = राजानम्, अवादीत् = अब्रवीत्।

देवेति। देव = हे राजन्, अत्र = शुककृतोच्चारणादिविषये, किं, चित्रम् = आश्चर्यम्।

एते हीति। एते = इमे, शुकसारिकाप्रभृतयः = कीरसारिकादयः, विहङ्गभेदाः = पक्षि-

---

मधुरताको सुना। पहले तो यही बड़ा आश्चर्य है कि यह (तोता) असङ्कीर्ण वर्णविभागवाली, स्पष्ट मात्रा, अनुस्वार और संस्कारके सम्बन्धसे युक्त तथा शब्दश्लेष आदिसे युक्त वाणीका उच्चारण करता है।

उस उच्चारणमें यह दूसरी बात है कि अभीष्ट विषयमें तिर्यग्जाति (पशु पक्षियों) की भी संस्कारवाले मनुष्यकी समान बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति (चेष्टा) होती है। जैसे कि—इसने दाहने पैरको उठाकर जयशब्दका उच्चारण कर मुझे उद्देश्य कर स्पष्ट अक्षरोंसे इस आर्याको गाया। अकसर पक्षी और पशु भय, आहार, मैथुन, निद्रा और सङ्केतमात्रको जाननेवाले होते हैं। यह तो बहुत आश्चर्य है। राजाके ऐसा कहनेपर कुमारपालितने कुछ मुस्कुरा-कर कहा—"इसमें क्या आश्चर्य है? ये तोते मैना आदि पक्षिविशेष श्रवणके अनुसार वाणीका उच्चारण करते हैं

देवेन। तत्राप्यन्यजन्मोपात्त-संस्कारानुबन्धेन वा पुरुषप्रयत्नेन वा संस्कारातिशय उपजायत इति नातिचित्रम्। अन्यच्च, एतेषामपि पुरा पुरुषाणामिवातिपरिस्फुटाभिधाना वागासीत्, अग्निशापात्त्वस्फुटालापता शुकानामुपजाता, करिणाञ्च जिह्वापरिवृत्तिः।'

इत्येवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिरकिरणमम्बरतलस्य मध्यमारूढमावेदयन्, नाडिकाच्छेद-प्रहत-पटु-पटह-नादानुसारी मध्याह्न-शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत्। तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमयो विसर्जितराजलोकः क्षितिपतिरास्थानमण्डपादुत्तस्थौ।

अथ चलति महीपतावन्योन्यमतिरभस-सञ्चलन-चालिताङ्गद-पत्त्रभङ्ग-मकरकोटि-

---

विशेषाः, यथाश्रुतां = श्रवणाऽनुसारिणीं, वाचं = वाणीम्, अर्थबोधशून्यं यथा तथेति शेषः। उच्चारयन्ति = प्रतिपादयन्ति, इति = एतत्, देवेन = तत्रभवता, अधिगतं = ज्ञातम्, एव।

अत्र हेत्वन्तरं प्रतिपादयति—**तत्राऽपीति**। तत्राऽपि=उच्चारणविशेषेऽपि,अन्यजन्मोपात्तेत्यादिः= अन्यजन्मनि (पूर्वजन्मनि) उपात्तः (प्राप्तः) यः संस्कारः (वासना) तदनुबन्धेन (तदनुसरणेन) वा = अथवा, पुरुषप्रयत्नेन = मानवप्रयासेन, वा, संस्काराऽतिशयः=वासनादाढर्यम्, उपजायते=उत्पद्यते इति = अतः, नाऽतिचित्रम् = नाऽधिकाश्चर्यम्, अस्य व्यक्तवाचोच्चारण इति भावः।

अन्यच्चेति। अन्यत् = अपरं, च पुरा = पूर्वकाले, एतेषाम् अपि = पशुपक्षिणाम् अपि, पुरुषाणाम् इव = मनुष्याणाम् इव अतिपरिस्फुटाऽभिधाना = अतिपरिस्फुटम् (अधिकव्यक्तम्) अभिधानम् (उच्चारणम्) यस्यां सा, तादृशी वाक् = वाणी, आसीत् = अभवत्। अग्निशापात् = अनलशापात् हेतोः, तु, शुकानां = कीराणाम्, अपरिस्फुटाऽभिधाना = अस्फुटाऽऽलापता, अव्यक्तोच्चारणता, उपजाता = समुत्पन्ना,करिणां = हस्तिनां, च जिह्वापरिवृत्तिः = रसनापरिवर्तनं, व्यक्तवागुच्चारणसमर्थां जिह्वां दूरीकृत्य जिह्वान्तरपरिवृत्तिरिति भावः। उपजातेति पूर्वस्थपदेन सम्बन्धः।

एवमिति। एवम् = इत्थं, पूर्वोक्तप्रकारं, तस्मिन् = कुमारपालित इति भावः। उच्चारयति एव = उक्तवति एव, अम्बरतलस्य = आकाशतलस्य, मध्यम् = अन्तरभागम्, अध्यारूढं = कृताऽधिरोहणम्, अशिशिरकिरणम् = ऊष्णरश्मिं, सूर्यमित्यर्थः। आवेदयन् = ज्ञापयन्। नाडिकेत्यादिः = नाडिका (घटिका) तस्याः छेदः (समाप्तिः) तत्र प्रहतः (ताडितः) यः पटुः (दृढः) पटहः (आनकः), तस्य यो नादः (ध्वनिः), तदनुसारी (तदनुसरणशीलः) "आनकः पटहोऽस्त्री स्यात्" इत्यमरः। मध्याह्नशङ्खध्वनिः = मध्याह्ने (अह्नो मध्ये) ताडितः यः शङ्खः (कम्बुः) तस्य ध्वनिः (नादः) उदतिष्ठत् = उत्थितः।

तमिति। तं = ध्वनिम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, च। समासन्नस्नानसमयः = समासन्नः (सन्निकटवर्ती) स्नानसमयः (मज्जनकालः) यस्य सः। तादृशः क्षितिपतिः = राजा, विसर्जितराजलोकः = विसर्जितः (निर्वर्तितः) राजलोकः (सामन्तमण्डलम्) येन सः, तादृशः सन्, आस्थानमण्डपात् = सभाभवनात्, उत्तस्थौ = उत्थितः।

अथेति। अथ = राजोत्थानाऽनन्तरं, महीपतौ = राज्ञि, चलति = संचलनं कुर्वति सति, "मही-

---

यह तो आप जानते ही हैं। उसमें भी पूर्व जन्ममें प्राप्त संस्कारके अनुसरणसे वा पुरुषके प्रयत्नसे विशेष संस्कार उत्पन्न हो जाता है इसमें ज्यादा आश्चर्य नहीं है। और भी बात है, इन लोगोंका भी पहले मनुष्योंके समान बहुत ही स्पष्ट उच्चारणवाली वाणी थी। अग्निदेवके शापसे तोतोंकी वाणी अस्पष्ट हो गई और हाथियोंकी जीभ उलटी हुई है। कुमारपालितके ऐसा कहनेके अनन्तर ही सूर्य आकाशके मध्यभागमें आरूढ हो गये हैं ऐसा ज्ञापन करती हुई घड़ीकी समाप्तिमें बजाये गये नगाड़के शब्दका अनुसरण करनेवाली मध्याह्नकी शङ्खध्वनि बज गई। उसे सुनकर स्नानका समय निकट होनेसे सामन्तोंको रुखसत कर राजा सभामण्डपसे उठ गये।

तब राजाके चलनेपर परस्पर अत्यन्त वेगसे चलनेसे सञ्चलित बाजूबन्दोंके सुवर्णखण्ड और मकराकार

पाटितांशुकपटानाम्, आक्षेप-दोलायमान-कण्ठदाम्नाम्, अंसस्थलोल्लासित-कुङ्कुम-पटवासधूलि-पटलपिञ्जरीकृत-दिशाम्, आलोल-मालतीकुसुम-शेखरोत्पतदलिकदम्बकानाम्, अर्द्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्, गमन-प्रणाम-लालसानाम् अहमहमिकया, वक्षःस्थल-प्रेङ्खोलित-हारलतानाम्, उत्तिष्ठतामासीदतिमहान् सम्भ्रमो महीपतीनाम् ।

इतश्चेतश्च निष्पतन्तीनां स्कन्धावसक्त-चामराणां चामरग्राहिणीनां कमलमधु-पानमत्त-जरत्कलहंस-नाद-जर्जरितेन पदे पदे रणितमणीनां मणिनूपुराणां निनादेन, वारविलासिनीजनस्य सञ्चरतो जघनस्थलास्फालनरसित-रत्नमालिकानां मेखलानां मनोहारिणा झङ्कारेण, नूपुररवा-

---

पतीनां संभ्रम आसीत्" इत्येतैः वक्ष्यमाणपदैः सम्बन्धः । अन्योन्यं = परस्परम्, अतिरभसेत्यादिः = अतिरभसेन (अतिवेगेन) यत् संचलनं (गमनम्) तेन, चालितानि (स्वस्थानाच्च्यावितानि) अङ्गद-पत्त्राणि (केयूरसुवर्णपत्त्राणि) तेषां भङ्गाः (खण्डानि) तथा मकराः (मकराकारकुण्डलानि, नामैकदेशे नामग्रहणमिति न्यायात्) तेषां कोटयः (अग्रभागाः), ताभिः पाटिताः (विदारिताः) अंशुकपटाः (सूक्ष्मवस्त्राणि) येषां, तेषाम् । आक्षेपदोलायमानकण्ठदाम्नाम् = आक्षेपेण (परस्पर-सम्बन्धेन) दोलायमानानि (दोलावदाचरन्ति, चञ्चलानीति भावः) कण्ठदामानि (गलमाल्यानि) येषां, तेषाम् । अंसस्थलोल्लासितेत्यादिः = अंसस्थलेभ्यः (स्कन्धस्थानेभ्यः) यानि कुङ्कुमपटवास-धूलिपटलानि (कुङ्कुमानां = केसराणां, पटवासानां = पिष्टातकानां, गन्धद्रव्यविशेषणामित्यर्थः, यानि धूलिपटलानि (परागसमूहाः), तैः पिञ्जरीकृताः (पीतरक्तीकृताः) दिशः (काष्ठाः) यैः, तेषाम् आलोलेत्यादिः = आलोलाः (चञ्चलाः) ये मालतीपुष्पाणाम् (जातिकुसुमानाम्) शेखराः (शिरो-भूषणानि) तेभ्यः उत्पतन्ति (उड्डीयमानानि) अलिकदम्बकानि (भ्रमरसमूहाः) येषां, तेषाम् । अर्धाऽवलम्बिभिः = अर्धभागलग्नैः । कर्णोत्पलैः = श्रवणकुवलयैः । चुम्ब्यमानगण्डस्थलानां = चुम्ब्य-मानं (सम्बद्धयमानम्) गण्डस्थलं (कपोलस्थलम्) येषां, तेषाम्, अहमहमिकया = अहं पूर्वमहं पूर्व-मित्यहङ्कारक्रियया । "अहमहमिका तु सा स्यात्परस्परं यो भवत्यहङ्कारः ।" इत्यमरः । गमनप्रणाम-लालसानां = गमने (प्रस्थानसमये) यः प्रणामः (नमस्कारः) तस्मिन् लालसानाम् (अत्युकण्ठिता-नाम्) । वक्षःस्थलप्रेङ्खोलितहारलतानां = वक्षःस्थले (उरःस्थले) प्रेङ्खोलिता (सञ्चलिता) हारलता (मुक्तामाला) येषां, तेषाम् । उत्तिष्ठताम् = उत्थानं कुर्वतां, तादृशानां महीपतीनां=राज्ञाम् । संभ्रमः = त्वरा, आसीत् = अभवत् ।

इतश्चेतश्चेति । इतश्च इतश्च = संभ्रमवशात् इतश्च ततश्च । निष्पतन्तीनां = निष्क्रामन्तीनां, स्कन्धाऽवसक्तचामराणां = स्कन्धेषु (अंसेषु) अवसक्तानि (न्यस्तानि) चामराणि (प्रकीर्णकानि) यासां, तासाम् । चामरग्राहिणीनां = प्रकीर्णकधारिणीनां स्त्रीणाम् । कमलमधुपानेत्यादिः = कमलेषु (पद्मेषु) यत् मधु (पुष्परसः) तस्य पानम् (आस्वादः) तेन मत्ताः (मदयुक्ताः) जरन्तः (जीर्णाः) ये कलहंसाः (कादम्बाः) तेषां नादः (ध्वनिः) तेन जर्जरितेन (मिश्रितेन) पदे पदे = प्रतिपदम् । रणितमणीनां = रणिताः (शब्दिताः) मणयः (रत्नानि) येषां, तेषाम् । तादृशानां

कुण्डलोंके अग्रभागोंसे विदारित महीन कपड़ोंवाले परस्पर सम्बन्धसे हिलनेवाली मालाओंसे युक्त, कन्धोंसे उठे हुए केसर और सुगन्धिद्रव्योंके चूर्णोंसे दिशाओंको पीतवर्ण करनेवाले, जिनके चञ्चल मालतीपुष्पोंके मुकुटोंसे भौंरे उड़ रहे थे, आधे लटके हुए कर्णभूषण कमलोंसे जिनके कपोल चुम्बित-से प्रतीत हो रहे थे जाते समय राजाको प्रणाम करनेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित, पहले प्रणाम करनेकी होड़बाजीसे जिनके वक्षःस्थलोंपर मोतियोंकी माला हिल रही थी, उठते हुए उन राजाओंका बहुत अधिक संभ्रम (जल्दबाजी) हो रहा था ।

इधर उधरसे निकलती हुई कन्धोंपर चमर रखनेवाली स्त्रियोंके कमलके मधुको पीनेसे मत्त वृद्ध हंसोंके शब्दसे मिश्रित, पग-पगपर बजाती हुई मणियोंसे युक्त नूपुरोंकी ध्वनिसे चलती हुई वेश्याओंके जघनस्थलोंपर

कृष्टानाञ्च धवलितास्थानमण्डप-सोपानफलकानां भवनदीर्घिकाकलहंसकानां कोलाहलेन, रशना-रसितोत्सुकानाञ्च तारतर-विराविणामुल्लिख्यमान-कांस्य-क्रेङ्कारदीर्घेण गृहसारसानां कूजितेन, सरभसप्रचलित-सामन्तशतचरणतलाभिहतस्य चास्थानमण्डपस्य निर्घोषगम्भीरेण कम्पयतेव वसुमतीं ध्वनिना, प्रतिहारिणाञ्च पुरः ससम्भ्रममुत्सारितजनानां दण्डिनां समारब्धहेल-मुच्चैरुच्चरतामालोकयतालोकयन्त्विति तारतर-दीर्घेण भवनप्रासाद-कुञ्जेषूच्चरित-प्रतिच्छन्द-

---

मणिनूपुराणां = रत्नखचितपादाङ्गदानां, निनादेन = शब्देन, "सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानमभवत्" इत्यत्र सम्बन्धः । एवं परत्राऽपि । **वारेति** । सञ्चरतः = गच्छतः, वारविलासिनीजनस्य = गणिकालोकस्य, जघनेत्यादिः = जघनस्थलस्य (कटिपुरोभागस्य) आस्फालनं (संघट्टनम्) तेन रसिताः (शब्दिताः) रत्नमालिकाः (मणिमाल्यानि) यासु, तासाम् । मणिमेखलानां = रत्न-खचितकाञ्चीनां, मनोहारिणा = चित्ताकर्षिणा, झङ्कारेण=झमितिशब्देन । **नूपुरेति** । नूपुररवाऽऽकृष्टानां = नूपुररवैः (पादाऽङ्गदशब्दैः) आकृष्टानां (जाताकर्षणानाम्) तथा च । धवलितेत्यादिः = धवलि-तानि (श्वेतीकृतानि) आस्थानमण्डपस्य (राजसभाभवनस्य) सोपानफलकानि (आरोहणमण्ड-लानि) यैः, तेषां, तादृशानां भवनदीर्घिकाकलहंसकानां = भवनदीर्घिकाः (प्रासादवाप्यः) तासां कलहंसकानां (कादम्बानाम्), कोलाहलेन = कलकलेन । **रसनेति** । रशनारसितोत्सुकितानां=रशनानां (मेखलानाम) रसितैः (शब्दैः) उत्सुकितानाम् (उत्कण्ठितानाम्), तारतरविराविणां = तारतरम् (उच्चतरम्) यथा तथा विरुवन्तीति तच्छीलाः, तेषाम्, उच्चतरशब्दकारिणामित्यर्थः । तादृशानां गृहसारसानां = भवनपुष्कराह्वपक्षिणाम्, "पुस्कराह्वस्तु सारसः" इत्यमरः । उल्लिख्यमानकांस्यक्रेङ्कार-दीर्घेण= उल्लिख्यमानं (घृष्यमाणम्) यत् कांस्यं (वाद्यविशेषः) तस्य क्रेङ्कारः (क्रेमिति शब्दः) स इव दीर्घं (विस्तृतम्) तेन । तादृशेन कूजितेन=रुतेन । "कांस्यं वाद्यान्तरे पानपात्रे स्यात्तैजसाऽन्तरे ।" इति मेदिनी । सरभसेति । सरभसेत्यादिः = सरभसं (सवेगम्) प्रचलिताः (गन्तुमारब्धाः) ये सामन्ताः (मण्डलेश्वराः), तेषां शतं (बहुसंख्या), तस्य चरणतलानि (पादतलानि), तैः अभि-हतस्य (ताडितस्य), आस्थानमण्डपस्य = राजसभाभवनस्य, निर्घोषगम्भीरेण = अस्फुटशब्दगम्भीरेण, वसुमतीं = पृथ्वीं, कम्पयता = क्षोभयता, ध्वनिना = शब्देन, अत्र लुप्तोपमा, उत्प्रेक्षाचेति द्वयोरङ्गाङ्गि-भावेन सङ्कराऽलङ्कारः । प्रतिहारिणां चेति । पुरः = अग्रे, नृपस्येति शेषः । ससम्भ्रमं = सत्वरं, समारब्धहेलं = समारब्धा (उपक्रान्ता) हेला (अनादरः) यस्मिन् कर्मणि, तद्यथा तथा । "हेला स्त्रियामवज्ञायां विलासे वारयोषिताम् ।" इति मेदिनी । उत्सारितजनानाम्=उत्सारिताः (दूरीकृताः) जनाः (लोकाः) यैः, तेषाम् । दण्डिनां = दण्डधारिणाम् उच्चैः = उच्चस्वरेण, आलोकयत आलोक-यत = पश्यत पश्यत, इति = एवम्, उच्चरतां = ब्रुवतां, प्रतीहारिणां = द्वारपालानां, तारतरदीर्घेण= अत्युच्चायतेन, भवनप्रासादकुञ्जेषु = भवनानि (गृहाणि) प्रासादा (देवानां राज्ञां च मन्दिराणि) तेषां कुञ्जेषु (लतागृहेषु) । उच्चरितप्रतिच्छन्दतया = उच्चरितः (उद्गतः) यः प्रतिच्छन्दः प्रतिरूपः शब्दः (प्रतिध्वनिः इति भावः) तस्य भावस्तत्ता तया । दीर्घतां = बहुलताम्, उपगतेन = प्राप्तेन, आलोकशब्देन = जयशब्देन ।

संघट्टनसे शब्द करनेवाली रत्नमालासे युक्त मणिखचित मेखलाओंके मनोहर झङ्कारसे और नूपुरकी ध्वनिसे आकृष्ट सभामण्डपकी सीढ़ियोंको सफेद करनेवाले, भवनकी बावलीके हंसोंके कोलाहलसे, मेखलाकी ध्वनिसे उत्कण्ठित, अत्यन्त ऊँचा शब्द करनेवाले रगड़े गये कांसेके क्रेङ्कार शब्दके समान दीर्घ, गृहसारसोंके कूजनसे वेगसे चलनेवाले सैकड़ों सामन्तोंके पादतलसे ताडित सभामण्डपके मेघगर्जितके समान मानों पृथ्वीको कम्पित करती हुई ध्वनिसे, राजाके सामने जल्दबाजीसे अनादरपूर्वक सामान्य मनुष्योंको हटानेवाले दण्डधारियोंके ऊँचे स्वरसे देखिये देखिये ऐसा कहनेवाले द्वारपालोंके अत्यन्त तीव्र राजभवन और कुञ्जोंमें उच्चारणकी प्रतिध्वनिसे दीर्घताको प्राप्त

तया दीर्घतामुपगतेनालोकशब्देन, राज्ञाञ्च ससम्भ्रमावर्जित-मौलिलोल-चूडामणीनां प्रणमताममल-मणिशलाकादन्तुराभिः किरीट-कोटिभिरुल्लिख्यमानस्य मणिकुट्टिमस्य निःस्वनेन, प्रणामपर्य्यस्तानामतिकठिनमणिकुट्टिमनिपतितरणरणायितानाञ्च मणिकर्णपूराणां निनादेन, मङ्गलपाठकानाञ्च पुरोयायिनां जय जीवेति मधुरवचनानुयातेन पठतां दिगन्तव्यापिना कलकलेन, प्रचलित-जनचरणशतसंक्षोभा-द्विहाय कुसुमप्रकरमुत्पतताञ्च, मधुलिहां हुङ्कृतेन, संक्षोभादतित्वरितपदप्रवृत्तैरवनिपतिभिः केयूरकोटिताडितानां क्वणित-मुखर-रत्नदाम्नाञ्च मणिस्तम्भानां रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत् ।

अथ विसर्जितराजलोको 'विश्रम्यता' मिति स्वयमेवाभिधाय तां चाण्डाल-कन्यकाम्, 'वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम्' इति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमादिश्य कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृतो नरपतिरभ्यन्तरं प्राविशत् ।

राज्ञां चेति । ससंभ्रमं = सत्वरम्, आवर्जितमौलिलोलचूडामणीनाम् = आवर्जिताः (प्रणामार्थमवनमिताः ये मौलयः (किरीटानि) तेषु लोलाः (चञ्चलाः) चूडामणयः (शिरोरत्नानि) येषां तेषाम् । "मौलिः किरीटे धम्मिल्ले चूडायामनपुंसकम् ।" इति मेदिनी । प्रणमतां = प्रणामं कुर्वतां, राज्ञां = भूपानाम्, अमलमणिशलाकादन्तुराभिः=अमला (निर्मलाः) या मणिशलाकाः (रत्नेषीकाः) ताभिः दन्तुराभिः (विषमाभिः) । किरीटकोटिभिः = मुकुटाग्रप्रदेशैः, उल्लिख्यमानस्य = विदार्यमाणस्य, मणिकुट्टिमस्य = रत्नबद्धभुवः, निःस्वनेन = ध्वनिना ।

प्रणामेति । प्रणामपर्यस्तानां = प्रणामेन (नमस्कारेण) पर्यस्तानाम् (पतितानाम्), अतिकठिनेत्यादिः = अतिकठिनः (अतिशयकठोरः) यो मणिकुट्टिमः (रत्नमयनिबद्धभूमिः) तस्मिन् निपतितेन (निपातेन) रणरणायितानां (कृतरणरणशब्दानाम्), तादृशानां, मणिकर्णपूराणां=रत्नखचितकर्णभूषणानां, निनादेन = शब्देन । पुरोयायिनाम् = अग्रगामिनां, जयजीवेति मधुरवचनाऽनुयातेन = जयजीवेति मनोहरवचोऽनुसृतेन, पठतां = पाठं कुर्वतां, मङ्गलपाठकानां = बन्दिनां, दिगन्तव्यापिना = दिशाऽन्तव्यापकेन, कलकलेन = कोलाहलेन, प्रचलितेति । प्रचलितेत्यादिः=प्रचलिताः (गन्तुं प्रवृत्ताः) ये जनाः (मानवाः), तेषां चरणशतानि (पादशतानि) तेषां संक्षोभः (संचलनम्) तस्मात् । कुसुमप्रकरं = पुष्पसमूहं, विहाय = त्यक्त्वा, उत्पतताम् = उड्डीयमानानां, मधुलिहां = भ्रमराणां, हुङ्कृतेन = हुङ्कारशब्देन । संक्षोभात् = संचलनात्, अतित्वरितपदप्रवृत्तैः = अतिशीघ्रचरणन्यासप्रवर्तमानैः, अवनिपतिभिः = भूपालैः, केयूरकोटिताडितानां = केयूराणाम् (अङ्गदानाम्) कोटयः (अग्रभागाः), ताभिः, ताडितानाम् (आहतानाम्), क्वणितमुखररत्नदाम्नां=क्वणितेन (शब्दितेन) मुखराणि (शब्दायमानानि) रत्नदामानि (मणिमाल्यानि) येषु, तेषाम् । तादृशानां मणिस्तम्भानां = रत्नस्थूणानां, रणितेन = शब्देन, तत् = पूर्वोक्तम्, आस्थानभवनं = सभामण्डपं, सर्वतः = परितः, क्षुभितम् इव = क्षुब्धम् इव अभवत् = अभूत् ।

अथेति । अथ = अनन्तरं, नरपतिः = राजा, विसर्जितराजलोकः = विसर्जिताः (विसृष्टाः)

जय-जयकार शब्दसे जल्दबाजीसे शिर झुकानेसे चञ्चल शिरके रत्नोंसे युक्त प्रणाम करनेवाले राजाओंके निर्मल रत्नशलाकाओंसे विषम मुकुटके अग्रभागोंसे घिसे जाते हुए मणिकुट्टिमके शब्दसे, प्रणाम करनेसे गिरे हुए, अत्यन्त कठोर मणिखचित कुट्टिम (फर्श) पर गिरनेसे "रणरण" शब्द करनेवाले रत्नखचित कर्णाऽलङ्कारोंके शब्दसे, आगे जानेवाले मङ्गलपाठ करनेवालोंके "जय हो" चिरञ्जीव हों" ऐसे मधुरवचनसे अनुसृत दिशाओंके कोनोंको व्याप्त करनेवाले कोलाहलसे, चलनेवाले मनुष्योंके सैकड़ोंके सञ्चलनसे फूलोंके समूहको छोड़कर उड़ते हुए भौंरोंके हुङ्कारसे, क्षोभसे अति शीघ्र पादन्यासोंसे युक्त राजाओंके बाजूबन्दके अग्रभागसे ताडित अतएव शब्दसे मुखरित रत्नमालाओंके और रत्नस्तम्भोंके शब्दसे वह सभामण्डप चारों ओर क्षुब्धके समान हुआ ।

तब राजाओंको रुखसत कर उस चाण्डालकुमारीको "विश्राम करो" ऐसा स्वयम् कहकर "वैशम्पायनको

अपनीताभरणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः, चन्द्रतारकाशून्य इव गगनाभोगः, समुपाहृत-समुचित-व्यायामोपकरणां व्यायामभूमिमयासीत् ।

स तस्याञ्च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृतमधुरव्यायामः, श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषदवलित-सिन्दुवार-कुसुम-मञ्जरी-विभ्रमाभिः, उरसि निर्दयश्रम-च्छिन्न-हारविगलित-मुक्ताफल-प्रकारानुकारिणीभिः ललाटपट्टकेऽष्टमी-चन्द्र-शकल-तलोल्लसदमृतबिन्दुबिडम्बिनीभिः स्वेदजल-कणिकासन्ततिभिरलङ्क्रियमाणमूर्त्तिः, इतस्ततः स्नानोपकरणसम्पादनसत्वरेण

राजलोकाः (नृपसमूहाः) येन सः, तादृशः सन् । विश्रम्यतां = विश्रमः क्रियताम् इति = एवं, स्वयम् = आत्मना, तां = चाण्डालकन्यकाम्, अभिधाय = उक्त्वा, वैशम्पायनः = शुकः, अभ्यन्तरं = प्रासादमध्यं, प्रवेश्यतां = प्रवेशपात्रीक्रियताम्, इति = एवं, ताम्बूलकरङ्कवाहिनीं = नागवल्लीदलपात्रधारिणीं स्त्रियम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, कतिपयराजपुत्रपरिवृतः = कतिपये (कियन्तः) ये राजपुत्राः (नृपकुमाराः) तैः परिवृतः (परिवेष्टितः) सन् । अभ्यन्तरं = प्रासादमध्यं, प्राविशत् = प्रविष्टः ।

अपनीतेति । अपनीताभरणः=अपनीतानि (शरीराद् दूरीकृतानि) आभरणानि (अलङ्काराः) येन सः, विगलितकिरणजालः = विगलितानि (स्रस्तानि) किरणजालानि (करसमूहाः) यस्य सः, तादृशः, दिवसकर इव = सूर्य इव, चन्द्रतारकासमूहशून्यः = चन्द्रः (इन्दुः) तारकासमूहः (नक्षत्रसमूहः) ताभ्यां शून्यः (रहितः), गगनाऽऽभोगः = आकाशमण्डलम्, इव, समुपाहृतेत्यादिः = समुपाहृतानि (भृत्यैः समुपानीतानि) समुचितानि (योग्यानि) व्यायामे (शरीरश्रमाऽभ्यासे) उपकरणानि (लौहमुदगरादीनि साधनानि) यस्यां, तां, तादृशीं व्यायामभूमिम् = शरीरश्रमाऽभ्यासभुवम्, अयासीत्=अगमत् । अत्र "दिवसकर इव" "गगनाऽऽभोग इव" इति स्थलद्वये उपमाऽलङ्कारयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिः । **स इति** । सः = राजा, तस्यां = व्यायामभूमौ । समानवयोभिः = समानं (तुल्यम्) वयः (अवस्था) येषां, तैः, वयस्यैरित्यर्थः । राजपुत्रैः = भूपकुमारैः, सह = समं, कृतमधुरव्यायामः = कृतः (विहितः) मधुरः (शोभनः) व्यायामः (शरीरपरिश्रमः) येन सः, "मधुरौ स्वादुशोभनौ" इति व्याडिः । श्रमवशात् = व्यायामवशात्, कपोलयोः = गण्डफलकयोः उन्मिषन्तीभिः = प्रकाशमानाभिः । ईषदवलितेत्यादिः = ईषत् (किञ्चित्) अवदलितं (मर्दितम्) यत् सिन्दुवारस्य (निर्गुण्ड्याः) कुसुमं (पुष्पम्), तस्य मञ्जरी (वल्लरी) तस्या इव विभ्रमः (विलासः) यासां, ताभिः । उरसि = वक्षःस्थले, निर्दयश्रमेत्यादिः = निर्दयश्रमेण (कठिनप्रयासेन) आच्छिन्नः (छेदं प्राप्तः) यो हारः (मुक्तावली) ततो विगलितानि (अवस्रंसितानि) यानि मुक्ताफलानि (मौक्तिकफलानि) तेषां प्रकरः (समूहः) तम् अनुकुर्वन्तीति तच्छीलाः, ताभिः, ललाटपट्टके = भालपट्टके । अष्टमीचन्द्रेत्यादिः = अष्टमीचन्द्रः (अष्टमीविधुः) एव शकलं (खण्डम्), तस्य तलं (स्वरूपम्), तत्र उल्लसन्तः (दीप्यमानाः) ये अमृतबिन्दवः (पीयूषपृषताः) तान् विडम्बयन्ति (अनुकुर्वन्ति) तच्छीलाभिः, तादृशीभिः, स्वेदजलकणिकासन्ततिभिः=स्वेदजलस्य (निदाघसलिलस्य, श्रमवशादुपजातस्येति भावः) कणिकाः (जलकणाः), तासां सन्ततिभिः (परम्पराभिः), अलङ्क्रिय-

---

भीतर प्रवेश कराओ" इस प्रकार पानके डिब्बेको लेनेवाली स्त्रीको आज्ञा देकर कुछ राजपुत्रोंसे घिरे हुए राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया । अलङ्कारोंको उतारकर किरणोंसे रहित सूर्यके समान, चन्द्र और ताराओंसे शून्य आकाशमण्डलके समान राजा कसरतकी सामग्रीसे युक्त व्यायामभूमिमें पहुँचे । वे वहाँपर समवयस्क राजपुत्रोंके साथ सुन्दर व्यायाम (कसरत) करके परिश्रम करनेसे उठी हुई कपोलोंपर मर्दन किये गये निर्गुण्डीके फूलोंकी मञ्जरीकी समान वक्षःस्थलपर कठिन परिश्रमसे टूटे हुए हारसे गिरे हुए मोतियोंका अनुकरण (नकल) करनेवाली ललाटपर अष्टमीके चन्द्रके खण्डके स्वरूपपर प्रकाश होनेवाली अमृतविन्दुओंका अनुकरण करनेवाली पसीनेकी जलबिन्दुओंकी पङ्क्तिसे अलङ्कृत शरीरवाले, इधर-उधर स्नानकी सामग्री को जुटानेमें शीघ्रता करनेवाले आगे

पुरःप्रधावता परिजनेन तत्कालं विरलजनेऽपि राजकुले समुत्सारणाधिकारमुचितमाचरद्भिः दण्डिभिरुपदिश्यमानमार्गः, वितत-सितवितानाम्, अनेक-चारणगण-निबध्यमानमण्डलाम्, गन्धोदक-पूर्ण-कनकमयजलद्रोणी-सनाथमध्याम्, उपस्थापित-स्फाटिकस्नानपीठाम्, एकान्तनिहितैरतिसुरभि-गन्ध-सलिलपूर्णैः परिमलावकृष्ट-मधुकर-कुलान्धकारितमुखैरातपभयान्नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैरिव स्नानकलशैरुपशोभितां स्नानभूमिमगच्छत् ।

अवतीर्णस्य जलद्रोणीं वारविलासिनी-कर-मृदित-सुगन्धामलककलिप्तशिरसो राज्ञः परितः समुपतस्थुरंशुक-निबिडनिबद्ध-स्तनपरिकराः, दूरसमुत्सारित-वलय-बाहुलताः, समु-

---

माणमूर्तिः = अलङ्क्रियमाणा (भूष्यमाणा) मूर्तिः (शरीरम्) यस्य सः । इतस्ततः = समन्ततः । स्नानोपकरणेत्यादिः = स्नानस्य (मज्जनस्य) उपकरणानि (साधनानि जलादीनि) तेषां सम्पादनं (निष्पादनम्) तस्मिन् सत्वरेण (शीघ्रेण) । अतः पुरः = अग्रे, प्रधावता = शीघ्रं गच्छता, परिजनेन = सेवकेन, तत्कालं = तत्क्षणं, राजकुले = भूपभवने, विरलजनेऽपि = अल्पजनेऽपि, उचितं = योग्यं, समाचरद्भिः = कुर्वद्भिः, दण्डिभिः = यष्टिधारकैः पुरुषैः, उपदिश्यमानमार्गः = उपदिश्यमानः (निर्दिश्यमानः) मार्गः (पन्थाः) यस्य सः । अतः परं स्नानभूमेर्विशेषणानि—विततसितवितानां = विततं (विस्तृतम्) सितं (शुक्लम्) वितानम् (उल्लोचः) यस्यां सा, ताम्, तादृशीं स्नानभूमिम्, एवमन्यत्राऽपि अन्वयः कर्तव्यः । अनेकचारणेत्यादिः=अनेके (बहवः) ये चारणगणाः (कुशीलवसमूहाः) तैः निबद्धयमानं (विरच्यमानम्) मण्डलं (परिवरणम्) यस्यां, ताम् गन्धोदकेत्यादिः = गन्धोदकेन (सुरभिजलेन) पूर्णा (पूरिता) या कनकमयी (सुवर्णमयी) जलद्रोणी (सलिलकुण्डिका), तया सनाथः (युक्तः) मध्यः (मध्यभागः) यस्यां, ताम् । उपस्थापितेत्यादिः = उपस्थापितं (निकटनिहितम्) स्फाटिकं (स्फाटिकमणिनिर्मितम्) स्नानपीठं (मज्जनाऽऽसनम्) यस्यां, ताम् । एकान्तनिहितैः=एकान्ते (रहसि) निहितैः (स्थापितैः) । अतिसुरभीत्यादिः = अतिसुरभि (अतिशयेष्टगन्धयुक्त) यत् गन्धसलिलं (गन्धपूर्णजलम्), तेन पूर्णैः (पूरितैः) । परिमलाऽवकृष्टेत्यादिः=परिमलेन (मनोहरगन्धेन) अवकृष्टाः (आकृष्टाः) ये मधुकराः (भ्रमराः) तेषां कुलं (समूहः), तेन अन्धकारितं (सञ्जाताऽन्धकारम्) मुखम् (अग्रभागः) येषान्तैः । आतपभयात्=सूर्यज्योतिर्भीतेः) नीलेत्यादिः=नीलकर्पटेन (कृष्णवस्त्रखण्डेन) अवगुण्ठितम् (आच्छादितम्) मुखम् (अग्रभागः) येषां, तैः । इव, तादृशैः स्नानकलशैः = मज्जनकुम्भैः, उपशोभितां = शोभायुक्तां, स्नानभूमिं = मज्जनभुवम्, अगच्छत् = अव्रजत् । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

अवतीर्णस्येति । जलद्रोणीं = सलिलकुण्डिकाम्, अवतीर्णस्य = कृताऽवतरणस्य, वारविलासिनीत्यादिः = वारविलासिन्याः (वेश्यायाः) करेण (हस्तेन) मृदितं (संचूर्णितम्) यत् सुगन्धाऽऽमलकं (सुरभिधात्रीफलं, तेन लिप्तं) (लेपविषयीकृतम्) शिरः (मस्तकः) यस्य, तस्य । राज्ञः = भूपस्य, परितः = समन्ततः, अंशुकेत्यादिः = अंशुकैः (वस्त्रैः) निबिडं (दृढं यथा तथा) निबद्धः (संयतः) स्तनपरिकरः (कुचवस्त्रबन्धः) यामिस्ताः, "वारयोषितः" इत्यस्य विशेषणाम्, एवमन्यत्राऽपि ।

दौड़नेवाले सेवकसे उस समय राजप्रासादमें थोड़े मनुष्योंके रहनेपर भी उचित हटानेके अधिकारका आचरण करनेवाले दण्डधारियोंसे बताये गये मार्गसे सफेद चाँदनी बिछाई गई, जिसके चारों ओर अनेक चारणगण बैठे हुए थे, जिसके मध्यमें सुगन्धित जलसे पूर्ण सुवर्णमय जलकुण्डिका थी, स्फटिकमय स्नानपीठसे युक्त, एकान्तमें रक्खे गये खुशबूवाले जलसे पूर्ण, जिनके मुखमें सुगन्धसे आकृष्ट भौंरोंसे अन्धकार हो रहा था, गर्मीके भयसे नीले कपड़ेसे ढके हुएके समान स्नानकलशोंसे शोभित ऐसी स्नानभूमिमें (राजा) पहुँचे। जलकुण्डिकामें उतरे हुए वेश्याओंके हाथोंसे पीसे गये सुगन्धित आँवलेसे लिप्त मस्तकवाले राजाके चारों ओर रेशमी वस्त्रसे दृढतापूर्वक स्तन भागको बाँधनेवाली बाहोंसे कङ्कणोंको ऊपर चढ़ानेवाली कर्णभूषणोंको ऊपर

त्क्षिप्तकर्णाभरणाः कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः, गृहीतजल-कलसाः स्नानार्थमभिषेकदेवता इव वारयोषितः।

ताभिश्च समुन्नत-कुचकुम्भ-मण्डलाभिर्वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षणं रराज राजा।

द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिक-धवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह।

ततस्ताः काश्चिन्मरकतमणि-कलस-प्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्त्तिमत्यः पत्त्रपुटैः, काश्चिद्रजतकलसहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण, काश्चित् कलसोत्क्षेप-श्रम-स्वेदार्द्र-शरीरा जलदेवता इव स्फटिकैः कलसैस्तीर्थजलेन, काश्चिन्मलयसरित

दूरेत्यादिः = दूरं (विप्रकृष्टं यथा तथा) समुत्सारितानि (उपरिन्यस्तानि) वलयानि (कङ्कणानि) याभ्यस्ताः, तादृश्यो बाहुलताः (भुजलताः) यासां ताः। समुत्क्षिप्तकर्णाऽऽभरणाः = समुत्क्षिप्तानि (ऊर्ध्वस्थापितानि) कर्णाभरणानि (श्रोत्राऽलङ्काराः) याभिस्ताः। कर्णोत्सङ्गादित्यादिः=कर्णोत्सङ्गात् (श्रोत्रसमीपात्) उत्सारिताः (ऊर्ध्वस्थापिताः) अलकाः (चूर्णकुन्तला) याभिस्ताः। गृहीतजलकलशाः = गृहीतः (आत्तः) जलकलशः (सलिलकुम्भः) याभिस्ताः, स्नानाऽर्थं = राज्ञो मज्जनाऽर्थम्, अभिषेकदेवता इव=स्नानाऽधिष्ठातृदेव्य इव, वारयोषितः = वेश्याः, समुपतस्थुः=समुपस्थिताः।

ताभिश्चेति। समुन्नतेत्यादिः = समुन्नतम् (अत्युच्चम्) कुचकुम्भमण्डलं (स्तनकलशसमूहः) यासां ताभिः। करिणीभिरिव = हस्तिनीभिरिव, परिवृतः = परिवेष्टितः, वारिमध्यप्रविष्टः = जलाऽन्तरकृतप्रवेशः। वनकरी इव = अरण्यहस्ती इव, राजा = भूपः शूद्रकः, तत्क्षणं = तत्कालं, रराज = शुशुभे। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

द्रोणीसलिलादिति। द्रोणीसलिलात् = कुण्डिकाजलात्, उत्थाय = उत्थानं कृत्वा, अमलस्फटिकधवलम् = अमलः (निर्मलः) यः स्फटिकः (स्फटिकमणिः) स इव धवलं (शुभ्रम्), स्नानपीठं मज्जनस्थानं, तत् वरुणः = प्रचेताः, राजहंसम् इव = मरालम् इव, आरुरोह = आरूढवान्, राजेति शेषः। उपमाऽलङ्कारः।

तत इति। ततः = राजकर्तृकस्नानपीठाऽऽरोहणाऽनन्तरं, ताः = वाराऽङ्गनाः, तासां भेदान्निर्दिशति—मरकतेत्यादिः = मरकतमणिनिर्मितः (हरिन्मणिरचितः) यः कलसः (कुम्भः), तस्य प्रभा (कान्तिः) तया श्यामायमानाः (श्यामवदाचरन्त्यः) मूर्तिमत्यः = शरीरधारिण्यः, नलिन्य इव = कमलिन्य इव, काश्चित् = कतिचित्, वाराङ्गनाः, पत्त्रपुटैः = पर्णसम्पुटैः, राजानम्, अभिषिषिचुः, इत्यत्र सम्बन्धः, एवं परत्राऽपि। काश्चित्=वारयोषितः, रजतकलशहस्ताः=रजतकलशः (रूप्यकुम्भः) हस्ते (करे) यासां ताः पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन = पूर्णचन्द्रस्य (षोडशकलेन्दोः) मण्डलं (बिम्बम्) तस्मात् विनिर्गतेन (निःसृतेन), ज्योत्स्नाप्रवाहेण = चन्द्रिकास्रोतसा, रजन्य इव = निशा इव, अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। काश्चित्, कलशोत्क्षेपश्रमस्वेदार्द्रशरीराः = कलशस्य (घटस्य) उत्क्षेपः (उत्थापनम्) तस्मात् यः श्रमः (आयासः) तेन यः स्वेदः (घर्मजलम्) तेन आर्द्रं (क्लिन्नम्) शरीरं

रखनेवाली और जलकलशोंको लेनेवाली वेश्याएँ अभिषेककी देवताएँ-सी प्रतीत होती हुई उपस्थित हुईं। जलके मध्यमें स्थित राजा उन्नत कुचकलशोंवाली उन वेश्याओंसे घिरा होकर उस समय हथिनियोंसे घिरे हुए जङ्गली हाथीके समान शोभित हुए। जलकुण्डिकाके जलसे उठ करके राजा वरुण जैसे राजहंसपर चढ़ते हैं उसी तरह निर्मल स्फटिकके समान सफेद स्नानपीठपर चढ़े। तब कुछ वेश्याओंने पन्नासे बने हुए कलशकी कान्तिसे श्यामवर्णवाली होती हुई मानों मूर्तिमती पद्मिनी होकर पत्त्रपुटोंसे (राजाको स्नान कराया) कुछ वेश्याओंने चाँदीके कलशको हाथमें लेकर पूर्णचन्द्रके बिम्बसे निकले हुए चन्द्रिकाप्रवाहसे रात्रियोंकी तरह (स्नान कराया)। कुछ वेश्याओंने कलशको उठानेके परिश्रमसे पसीनेसे आर्द्रशरीरवाली होकर स्फटिकके कलशोंसे तीर्थजलसे जल-

इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन, काश्चिदुत्क्षिप्त-कलस-पार्श्व-विन्यस्त-हस्तपल्लवाः प्रकीर्य्यमाण-नख-मयूख-जालकाः प्रत्यङ्गुलि-विवर-विनिर्गत-जलधाराः सलिलयन्त्रदेवता इव, काश्चिजाड्य-मपनेतुमाक्षिप्त-बालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलशहस्ताः कुङ्कुमजलेन वाराङ्गनाः यथायथं राजानमभिषिषिचुः।

अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेक-प्रहत-पटु-पटह-झल्लरी-मृदङ्ग-वेणुवीणा-गीत-निनादानुगम्यमानो वन्दिवृन्द-कोलाहलाकुलो भुवन-विवरव्यापी स्नानशङ्खानामापूर्य्य-माणानामतिमुखरो ध्वनिः।

(देहः) यासां ताः। स्फाटिकैः = स्फटिकमणिसम्बन्धिभिः, कलशैः = घटैः, तीर्थजलेन = तीर्थ-सलिलेन। जलदेवता इव = सलिलाऽधिष्ठातृदेव्य इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। काश्चित्, चन्दनरसमिश्रेण = मलयजद्रवसंयुक्तेन, सलिलेन, = जलेन, मलयसरित इव = मलयपर्वतनद्य इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। काश्चित्, उत्क्षिप्तेत्यादिः = उत्क्षिप्तः (उत्थापितः) यः कलशः (कुम्भः), तस्य पार्श्वयोः = वामदक्षिणभागयोः, विन्यस्ताः (स्थापिताः) हस्तपल्लवाः (करकिसलयानि) याभिस्ताः, प्रकीर्य-माणनखमयूखजालकाः = प्रकीर्यमाणानि (इतस्ततो विक्षिप्यमाणानि) नखमयूखानां (कररुह-किरणानाम्) जालकानि (समूहाः) यासां ताः। प्रत्यङ्गुलिविवरविनिर्गतधाराः = प्रत्यङ्गुलि प्रतिकरशाखम्) यानि विवराणि (छिद्राणि), तेभ्यो विनिर्गता (निःसृता) जलधारा (सलिल-सन्ततिः) यासां ताः, सलिलयन्त्रदेवता इव = जलयन्त्राऽधिष्ठातृदेव्य इव। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

काश्चित् = का अपि वाराङ्गनाः। कनककलशहस्ताः = कनककलशः (सुवर्णकुम्भः) हस्ते (करे) यासां ताः। दिवसश्रिय इव = वासरलक्ष्म्य इव, जाड्यं = शैत्यम्, अपनेतुं = निवारयितुम्, आक्षिप्तबालातपेन इव = आक्षिप्तः (आकर्षितः) बालातपः (नूतनसूर्यद्योतः) येन तेन इव, कुङ्कुम-जलेन = काश्मीरसलिलेन, यथायथं = यथास्वं, राजानं = भूपालम्, अभिषिषिचुः = स्नानं कारितवत्यः। अत्रापि "आक्षिप्त बालातपेनेव" इत्यत्र "दिवसश्रिय इवे" त्यत्र च उत्प्रेक्षालङ्कारः।

अनन्तरमिति। अनन्तरम् = अभिषेकाऽनन्तरं, श्रुतिपथं = कर्णमार्गं, स्फोटयन् इव = विदारयन् इव, अनेकप्रहतेत्यादिः = अनेकैः (बहुभिर्जनैः) प्रहताः (वादिताः) पटवः (समर्थाः) पटहाः (आनकाः) "आनकः पटहोऽस्त्री स्यात्" इत्यमरः। झल्लर्यः (वाद्यविशेषाः), मृदङ्गाः (मुरजाः) वेणवः (वंश्यः) वीणाः (वल्लक्यः), गीतानि च (गानानि च) तेषां निनादः (ध्वनयः), तैः, अनुगम्यमानः (अनुस्त्रियमाणः), बन्दिवृन्दकोलाहलाऽऽकुलः = बन्दिनां (स्तुतिपाठकानाम्) वृन्दं (समूहः), तस्य कोलाहलः (कलकलः), तेन आकुलः (मिश्रः), भुवनविवरव्यापी = भुवनानां (लोकानाम्) विवराणि (छिद्राणि) व्याप्नोतीति तच्छीलः, एतादृशः अतिमुखरः = अतिशय-शब्दायमानः, आपूर्यमाणानां = मुखवातैः पूरणीक्रियमाणानां, स्नानशङ्खानां = मज्जनकम्बुवाद्यानां, ध्वनिः = निनादः, उदपादिः = उत्पन्नोऽभूत्। उदुपसर्गपूर्वकस्य "पद गतौ" इति धातोर्लुङि प्रथम-पुरुषैकवचने रूपम्।

देवताओंकी समान होकर (स्नान कराया), कुछ वेश्याओंने चन्दनरससे मिश्रित जलसे मलयपर्वतकी नदियोंके समान होकर (स्नान कराया), कुछ वेश्याओंने उठाये गये कलशके पार्श्वोंमें पल्लवके समान हाथोंको रखनेसे नाखूनोंके किरणसमूहको फैलाकर प्रत्येक अङ्गुलियोंके विवरोंसे निकलती हुई जलधारासे जलयन्त्रकी देवियोंकी तरह होकर (स्नान कराया)। कुछ वेश्याओंने शैत्यको हटानेके लिए बालसूर्यके प्रकाशको खींचनेवाली दिनकी लक्ष्मियोंके समान होकर सोनेके कलशको हाथमें लेकर केसरके जलसे राजाको स्नान कराया। उसके बाद कर्णमार्गको विदारण करते हुए-से वजाये गये अनेक नगाड़े, झाँझ, पखावज, वंशी, बीन और गानेके शब्दसे अनुगत तथा स्तुतिपाठकोंके कोलाहलसे व्याप्त लोकच्छिद्रोंको व्याप्त करनेवाला बजाये गये स्नानकालिक शङ्खोंका अत्यन्त विस्तीर्ण शब्द उत्पन्न हुआ।

एवञ्च क्रमेण निर्वर्तिताभिषेको विषधरनिर्म्मोक-परिलघुनी धवले परिधाय धौतवाससी शरदम्बरैकदेश इव जलक्षालन-निर्मलतनुः अतिधवल-जलधर-च्छेद-शुचिना दुकूलपटपल्लवेन तुहिनगिरिरिव गगनसरित्स्रोतसा कृतशिरोवेष्टनः सम्पादित-पितृजलक्रियो मन्त्रपूततोयाञ्जलिना दिवसकरमभिप्रणम्य देवगृहमगमत् ।

उपरचित-पशुपतिपूजश्च निष्क्रम्य देवगृहान्निर्वर्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारिभिरलिकदम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमद-कर्पूर-कुङ्कुमवास-सुरभिणा चन्दनेनानुलिप्तसर्वाङ्गो

एवं च = पूर्वोक्तप्रकारेण, क्रमेण = परिपाट्या, निर्वर्तिताऽभिषेकः = निर्वर्तितः (विहितः) अभिषेकः (स्नानम्) येन सः । विषधरनिर्मोकपरिलघुनी = विषधरस्य (सर्पस्य) निर्मोकौ (कञ्चुकौ) इव परिलघुनी (अतिशयसूक्ष्मे), धवले = शुक्ले, धौतवाससी = प्रक्षालितवस्त्रे, उत्तरीयाऽधरीयस्वरूपे इति भावः । परिधाय = धारयित्वा, शरदम्बरैकदेशः इव = शरदि (मेघाऽत्यये) अम्बरस्य (आकाशस्य) एकदेश (एकखण्डः) इव, जलक्षालननिर्मलतनुः = जलेन (सलिलेन) क्षालनं (प्रक्षालनम्) तेन निर्मला (स्वच्छा) तनुः (शरीरम्) यस्य सः । उपमाऽलङ्कारः । अतिधवलेति० = अतिधवलः (अतिशयशुभ्रः) यो जलधरच्छेदः (मेघखण्डः), स इव शुचिः (उज्ज्वलः), तेन, दुकूलपटपल्लवेन = क्षौमवस्त्रकिसलयेन, दुकूलपटः पल्लवम् इव, तेन, कृतशिरोवेष्टनः = कृतं (विहितम्) शिरोवेष्टनं (मस्तकप्रावरणम्) येन सः, अत एव गगनसरित्स्रोतसा= गगनसरितः (आकाशगङ्गायाः) स्रोतसा (प्रवाहेण) कृतशिरोवेष्टनः (विहितशिखरप्रावरणः) तुहिनगिरिः (हिमाऽऽलयः) इव, उपमाऽलङ्कारः । मन्त्रपूततोयाऽञ्जलिना = मन्त्रपूतः (मन्त्रपवित्रः) यः तोयाऽञ्जलिः (जलाऽञ्जलिः) तेन, सम्पादितपितृजलक्रियः = सम्पादिता (निष्पादिता), पितॄणां (कव्यवाडनलादीनाम्) जलक्रिया (तर्पणकर्म) येन सः, दिवसकरं = सूर्यम् । अभिप्रणम्य = सम्मुखं नमस्कृत्य, देवगृहं = सुरमन्दिरम्, अगमत् = गतः । गम्धातोर्लुङ्, च्लेरङ् ।

उपरचिते त । उपरचितपशुपतिपूजः = उपरचिता (उपविहिता) पशुपतेः (शङ्करस्य) पूजा (अर्चा) येन, तस्य । पशूनां (जीवानाम्) पतिः (स्वामी) पशुपतिः, तदुक्तं लिङ्गपुराणे—

"ब्रह्माद्याः स्थावराऽन्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः ।
पशवः परिकीर्त्यन्ते समस्ताः पशुवर्तिनः ॥" इति ।

एतेन शूद्रकस्य शैवत्वं प्रतीयते । देवगृहात् = सुरमन्दिरात्, निष्क्रम्य = बहिरागत्य, निर्वर्तिताऽग्निकार्यः = निर्वर्तितम् (कृतम्) अग्निकार्यम् (अग्निहोत्रकर्म) येन सः । अग्निशालायामिति शेषः । एतत्कथनं पञ्चमहायज्ञानामुपलक्षणम् । पञ्च महायज्ञा यथा—

"बलिकर्म-स्वधा-होम-स्वाध्यायाऽतिथिसत्क्रियाः ।
भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः ॥ १०२ ॥" याज्ञवल्क्य० आचार० ।

विलेपनभूमौ = अङ्गरागनिष्पादनभुवि । झङ्कारिभिः = झङ्कारशब्दयुक्तैः, अलिकदम्बकैः = भ्रमरसमूहैः, अनुबद्धयमानपरिमलेन = अनुबद्धयमानः (अनुस्रियमाणः) परिमलः (सौरभम्) यस्य, तेन । मृगमद० = मृगमदः (कस्तूरी) कर्पूरः (घनसारः), कुङ्कुमः (केसरः) तेषां वासः (सौरभम्) तेन सुरभिणा (सुगन्धयुक्तेन), तादृशेन चन्दनेन = मलयजरसेन, अनुलिप्तसर्वाऽङ्गः =

इस प्रकार क्रमसे स्नानकर सर्पकी केंचुलीके समान हलके और सफेद धोये कपड़ोंको पहनकर शरत् ऋतुके आकाशके एक भागके समान जलस्नानसे निर्मल शरीरवाला होकर अत्यन्त सफेद मेघके खण्डके सदृश निर्मल रेशमी वस्त्रसे आकाशगङ्गाके प्रवाहसे हिमालय पर्वतके समान शिरमें लपेटकर मन्त्रसे पवित्र जलाञ्जलिसे पितरोंका तर्पण कार्य कर सूर्यको प्रणाम कर राजा देवमन्दिरमें गये। पशुपति (शिवजी) की पूजा कर देवमन्दिरसे निकलकर अग्निकार्य (अग्निहोत्र) समाप्त कर विलेपनभूमिमें झङ्कार करनेवाले भ्रमरोंसे सुगन्धका

विरचितामोदि-मालतीकुसुमशेखरः कृतवस्त्रपरिवर्तो रत्नकर्णपूरमात्राभरणः समुचितभोजनैः सह भूपतिभिराहारमभिमत-रसास्वाद-जातप्रीतिरवनिपो निर्वर्त्तयामास।

परिपीतधूमवर्त्तिरुपस्पृश्य च गृहीतताम्बूलस्तस्मात् प्रमृष्ट-मणि-कुट्टिम-प्रदेशादुत्थाय नातिदूरवर्त्तिन्या ससम्भ्रम-प्रधावितया प्रतीहार्य्या प्रसारितं बाहुम अवलम्ब्यानवरत-वेत्रलताग्रहण-प्रसङ्गादतिजरठ-किसलयानुकारि-करतलं करेण, अभ्यन्तरसञ्चारसमुचितेन परिजनेनानुगम्यमानो धवलांशुक-परिगतपर्य्यन्ततया स्फटिक-मणिमय-भित्ति-बद्धमिवोपलक्ष्यमाणम्, अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिमलेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्तशिशिरमणिभूमिम्,

---

अनुलिप्तानि (लेपितानि) सर्वाणि (सकलानि) अङ्गानि (अवयवाः) यस्य तेन। विरचितामोदि० = विरचितः (कृतविरचनः) आमोदिनाम् (अतिसुगन्धयुक्तानाम्) मालतीकुसुमानां (जातिपुष्पाणाम्) शेखरः (शिरोभूषणम्) येन सः। कृतवस्त्रपरिवर्तः = कृतः (विहितः) वस्त्रयोः (पूर्वं परिहितयोरुत्तरीयाऽधरीययोः) परिवर्तः (परिवर्तनम्) येन सः। रत्नकर्णपूरमात्राऽऽभरणः = रत्नखचितं मणिखचितं कर्णपूरमात्रम् (कर्णभूषणम् एव) आभरणम् (अलङ्कारः) यस्य सः। समुचितभोजनैः = समुचितं (योग्यम्) भोजनं (भक्षणम्) येषां तैः, तादृशैः भूपतिभिः = राजभिः, सह = समम्। अभिमत० = अभिमताः (अभीष्टाः) ये रसाः (मधुरादयः) तेषाम् आस्वादः (आस्वादनम्) तेन जाता (उत्पन्ना) प्रीतिः (सन्तुष्टिः) यस्य सः। तादृशः नृपतिः = राजा। आहारं = भक्षणम्, निर्वर्तयामास = निष्पादयामास।

उपस्पृश्य = आचम्य "उपस्पर्शस्त्वाचमनम्" इत्यमरः।

परिपीतधूमवर्तिः = परिपीता (पानविषयीकृता) धूमवर्तिः = (द्रव्यविशेषः) येन सः। गृहीतताम्बूलः = गृहीतम् (आत्तम्) ताम्बूलं (नागवल्लीदलम्) येन सः। तस्मात्, प्रमृष्टमणिकुट्टिमप्रदेशात् = प्रमृष्टः (जलादिशोधितः) यो मणिकुट्टिमप्रदेशः (रत्ननिबद्धस्थानं), तस्मात्=उत्थाय= उत्थानं कृत्वा, नाऽतिदूरवर्तिन्यां = नाऽतिविप्रकृष्टस्थले विद्यमानया, ससम्भ्रमप्रधावितया = ससम्भ्रमं (सत्वरम्) प्रधावितया (त्वरितं गच्छन्त्या), तादृश्या प्रतीहार्या = द्वारपालिकया अनवरत० = अनवरतं (निरन्तरं यथा तथा) यः = वेत्रलताग्रहणप्रसङ्गः (वेतमयदण्डोपादानाऽवसरः) तस्मात्। अतिजरठेत्यादिः = अतिजरठम्) अतिजीर्णम्, अतिकठिनमिति भावः) यत् किसलयं (पल्लवः), तस्य अनुकारि (अनुकरणशीलं, सदृशमिति भावः) तादृशं करतलं (हस्ततलम्) यस्य, तं, तादृशं प्रसारितबाहुं = विस्तारितभुजम्। करेण = हस्तेन। अवलम्ब्य = गृहीत्वा। अभ्यन्तरसंचारसमुचितेन= अभ्यन्तरे (अन्तःपुरे) यः सञ्चारः (सञ्चरणम्), तस्मिन् समुचितेन (योग्येन), परिजनेन = सेवकेन, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः। धवलांऽशुकेत्यादिः = धवलं (शुभ्रम्) यत् अंशुकं (क्षौमवस्त्रम्) तेन परिगतः (परिवेष्टितः) पर्यन्तः (प्रान्तभागः), तस्य भावः, तत्ता, तया। स्फटिकेत्यादिः = स्फटिकमणिमयी (स्फटिकरत्नमयी) या भित्तिः (कुड्यम्) तया निबद्धम् (रचितम्) इव, उपलक्ष्यमाणं दृश्यमानम्, अनेन अंशुकानां धावल्याऽतिशयः प्रतीयते। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

अनुसरण किये गये कस्तूरी कपूर केसरके सम्पर्कसे सुगन्धपूर्ण चन्दनसे सब अङ्गोंमें लेपन कर सुगन्धित चमेलीके फूलोंके शिरोभूषणसे युक्त होकर कपड़ोंको बदल कर रत्नखचित कर्णभूषणमात्र धारण कर अपने साथ भोजन करनेके लिए योग्य राजाओंके साथ अभीष्ट रसके आस्वादनसे प्रसन्न होकर राजाने आहार किया।

तब (औषधोंसे बने हुए) धूम्रपान कर आचमन कर ताम्बूल लेकर उस परिष्कृत मणिखचित फर्शसे उठकर कुछ ही दूर प्रदेशमें रही हुई शीघ्रताके साथ आई हुई द्वारपालिकाके वेत्रलताको लेते रहनेसे अति कठोर पल्लवके सदृश फैलाये हुए बाहुलताके करतलको अपने हाथसे सहारा लेकर अन्तःपुरमें सञ्चरणमें योग्य सेवकसे अनुगत होकर सफेद रेशमी वस्त्रोंसे वेष्टित प्रान्तभागवाला होनेसे स्फटिकमणिमय भीतसे बने हुएके समान

अविरलविप्रकीर्णेन विमल-मणिकुट्टिम-गगनतलतारागणेनेव कुसुमोपहारेण निरन्तरनिचितम्, उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन सन्निहितगृहदेवतेनेव गन्धसलिल क्षालितेन कलधौतमयेन स्तम्भसञ्चयेन विराजमानम्, अतिबहलागुरु-धूप-परिमलम्, अखिलविगलित-जलनिवह-धवल-जलधर-शकलानुकारिणा कुसुमामोदवासित-प्रच्छदपटेन, पट्टोपधानाध्यासितशिरोधाम्ना मणिमय-प्रतिपादुकाप्रतिष्ठितपादेन पार्श्वस्थ-रत्नपादपीठेन तुहिनशिलातल-सदृशेन शयनेन सनाथीकृतवेदिकं भुक्त्वास्थानमण्डपमयासीत् ।

अतिसुरभिणा = अतिसुगन्धयुक्तेन, मृगनाभिपरिगतेन = कस्तूरीव्याप्तेन, आमोदिना = अतिसुगन्धयुक्तेन, चन्दनवारिणा = मलयजजलेन, सिक्तशिशिरमणिभूमि = सिक्ता (उक्षिता) अतएव शिशिरा (शीतला) या मणिभूमिः (रत्ननिबद्धा भूः) यस्मिंस्तम् । "आस्थानमण्डपम्" इत्यस्य विशेषणमेव मन्यत्रापि । "अयासीत्" इति क्रियापदेन सम्बन्धः । अविरलविप्रकीर्णेन = अविरलं (घनं यथा तथा) विप्रकीर्णेन (विक्षिप्तेन), विमलेत्यादिः = विमलमणीनां (निर्मलरत्नानाम्) यत् कुट्टिमं (निबद्धा भूः) तत्र गगनतलतारागणेन (आकाशतलनक्षत्रसमूहेन) इव, कुसुमोपहारेण = पुष्पसमूहेन, निरन्तरनिचितं = निरन्तरं (सन्ततम्) निचितम् (व्याप्तम्), उपमाऽलङ्कारः । उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन = उत्कीर्णः (उत्कीर्य कृतः) शालभञ्जिकानां (पाञ्चालिकानाम्) निवहः (समूहः) यस्मिंस्तम् । सन्निहितगृहदेवतेन = सन्निहिताः (समीपस्थिताः) गृहदेवताः (गेहदेव्यः) यस्मिंस्तेन, इव । गन्धसलिलक्षालितेन = गन्धसलिलेन (सुगन्धयुक्तजलेन) क्षालितेन (धौतेन) । कलधौतमयेन = सुवर्णरचितेन, "कलधौतं रूप्यहेम्नोः" इत्यमरः । स्तम्भसञ्चयेन=स्थूणासमूहेन, विराजमानं = शोभमानम् । अत्र उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । अतिबहलाऽगुरुधूपपरिमलम् = अतिबहलः (अतिप्रचुरः) अगुरुधूपानां (कृष्णाऽगुरुधूपानाम्) परिमलः (सौरभम्) यस्मिंस्तम् । अखिलेति० = अखिलः (समस्तः) विगलितः (निर्गतः) जलनिवहः (सलिलसमूहः) यस्मात् सः, अतएव धवलः (शुभ्रः) यो जलधरः (मेघः), तस्य शकलं (खण्डम्) तत् अनुकरोतीति, "शयनेन" इत्यस्य विशेषणमेवं परत्राऽपि, तेन । कुसुमाऽऽमोद० = कुसुमानां (पुष्पाणाम्) य आमोदः (सौरभम्) तेन वासितः (भावितः) प्रच्छदपटः (आस्तरणवस्त्रम्) यस्मिंस्तेन । पट्टोपधानाऽध्यासितशिरोधाम्ना = पट्टस्य (क्षौमवस्त्रस्य) यत् उपधानम् (उपबर्हः) तेन अध्यासितः (अधिष्ठितः) शिरोभागः (मस्तकदेशः) यस्मिंस्तत्, तेन । "उपधानं तूपबर्हः" इत्यमरः । मणिमयेत्यादिः = मणिमय्यः (रत्नप्रचुराः) याः प्रतिपादुकाः (आधारपीठानि) तासु प्रतिष्ठिताः (संविद्यमानाः) पादाः (पर्यङ्कचरणाः) यस्मिंस्तेन । पार्श्वस्थरत्नपादपीठेन = पार्श्वस्थं (समीपस्थम्) रत्नमयं (मणिप्रचुरम्) यत् पादपीठं (चरणन्यासस्थानम्) तेन । तुहिनशिलातलसदृशेन = तुहिनशिलातलेन (हिमप्रस्तरतलेन) सदृशं (तुल्यम्) तेन । तादृशेन शयनेन (शय्यया), सनाथीकृतवेदिकं = सनाथीकृता (सहिता) वेदिका (परिष्कृतभूमिः) यस्मिंस्तत् तादृशम् आस्थानमण्डपं = सभामण्डपं, भुक्त्वा = भोजनं कृत्वा, अयासीत् = प्राप्तवान् । "या प्रापणे" इति धातोर्लुङि प्रथमपुरुषैकवचने रूपम् । "यमरमनमातां सक् चे"ति सगिटौ ।

अत्यन्त सुगन्धवाले, कस्तूरीसे युक्त चन्दनजलसे सिक्त शीतलमणि भूमिसे युक्त लगातार बिखरे गये, निर्मल रत्नोंसे निबद्ध भूमिमें आकाशमें तारागणके समान पुष्पोंके उपहारसे निरन्तर व्याप्त, खुदी हुई पुतलियोंसे मानों गृहदेवताओंसे युक्त, सुगन्धितजलसे धोये गये सुवर्णनिर्मित स्तम्भोंके समूहसे शोभित, अत्यधिक अगुरुके धूपसे सुगन्धित, संपूर्ण जलके निकलनेसे सफेद मेघके खण्डका अनुकरण करनेवाले फूलोंके सुगन्धसे युक्त शिर रखनेके स्थानमें चादरवाले रेशमी तकियेसे युक्त, मणिमय प्रतिपादुकाओंपर प्रतिष्ठित पाँवदानवाले, हिमशिलाके सदृश समीपास्थित रत्नखचित पाँवदानवाले पलंगसे युक्त सभामण्डपमें राजा शूद्रक भोजनके अनन्तर पहुँच गये ।

तत्र च शयने निषण्णः क्षितितलोपविष्टया शनैः शनैरुत्सङ्ग-निहितासिलतया खड्ग-वाहिन्या नव-नलिन-दल-कोमलेन करसम्पुटेन संवाह्यमानचरणस्तत्कालोचितदर्शनैरवनि-पतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्त्तमिवासाञ्चक्रे ।

ततो नातिदूरवर्त्तिनीम् 'अन्तःपुराद्वैशम्पायनमादायागच्छ' इति समुपजाततद्वृत्तान्त-प्रश्न-कुतूहलो राजा प्रतीहारीमादिदेश ।

सा क्षितितल-निहित जानु-करतला 'यथाज्ञापयति देवः' इति शिरसि कृत्वाज्ञां यथा-दिष्टमकरोत् ।

अथ मुहूर्त्तादिव वैशम्पायनः प्रतीहार्य्या गृहीतपञ्जरः कनकवेत्रलतावलम्बिना किञ्चिद-वनतपूर्वकायेन सितकञ्चुकावच्छन्नवपुषा जराधवलितमौलिना गद्गदस्वरेण मन्दमन्दसञ्चारिणा विहङ्गजातिप्रीत्या जरत्कलहंसेनेव कञ्चुकिनानुगम्यमानो राजान्तिकमाजगाम ।

तत्रेति । तत्र = तस्मिन्, शयने = शय्यायां, निषण्णः = उपविष्टः, शूद्रकः । क्षितितलोपविष्टया= क्षितितले (भूतले) उपविष्टया (निषण्णया), एवं च, उत्सङ्गनिहिताऽसिलतया = उत्सङ्गे (अङ्के), निहिता (स्थापिता), असिलता (खड्गलता) यया सा, तया । खड्गवाहिन्या = करवालधारिण्या कयाचित् परिचारिकया, नवनलिन० = नवं (नूतनम्) यत् नलिनदलं (कमलपत्रम्) तत् इव कोमलं (मृदुलम्), तेन तादृशेन करसंपुटेन = हस्तयुग्मेन, संवाह्यमानचरणः = संवाह्यमानौ (संमर्द्यमानौ) चरणौ (पादौ) यस्य सः । तत्कालोचितदर्शनैः = तत्काले (तत्समये) उचितं (योग्यम्) दर्शनम् (अवलोकनम्) येषां ते, तैः । तादृशैः अवनिपतिभिः = भूपैः, अमात्यैः = सचिवैः, मित्रैश्च = सुहृद्भिश्च सह = समं, तास्ताः = अनेकप्रकाराः, कथाः = वार्ताऽऽलापान्, कुर्वन् = विदधत्, मुहूर्तम् इव = कञ्चित्क्षणम् इव । आसाञ्चक्रे = उपविवेश । नवनलिनमित्यत्र उपमाऽलङ्कारः ।

तत इति । ततः = कथाऽऽलापाऽनन्तरं, नाऽतिदूरवर्तिनीं = नाऽतिविप्रकृष्टस्थानसंनिहितां, प्रतीहारीं = द्वारपालिकां, समुपजात० = समुपजातं (समुत्पन्नम्) तस्य (शुकस्य) वृत्तान्तप्रश्ने (उदन्तपृच्छायाम्) कुतूहलं (कौतुकम्) यस्य सः, तादृशः सन्, राजा । अन्तःपुरात् = शुद्धान्तात् । वैशम्पायनं = तन्नामकं शुकम्, आदाय = गृहीत्वा, आगच्छ = आयाहि, इति, आदिदेश = आज्ञापयामास ।

सेति । सा = प्रतीहारी, क्षितितल० = क्षितितले (भूतले) निहितं (स्थापितम्) जानुकरतलं (ऊरुपर्वहस्ततलम्) यया सा । तादृशी सती । देवः = राजा, भवान्, यथा = येन प्रकारेण, आज्ञापयति = आदिशति । तथैवाचरिष्यामीति शेषः । इति = एवं, शिरसि = मस्तके, आज्ञाम् = आदेशं, कृत्वा = विधाय, यथादिष्टम् = आज्ञाऽनुसारम्, अकरोत् = कृतवती ।

अथ = अनन्तरं, मुहूर्तात् इव = अल्पकालात् इव, प्रतीहार्या = द्वारपालिकया, गृहीतपञ्जरः = गृहीतम् (आत्तम्) पञ्जरं (लोहशलाकानिर्मितं पक्षिनिवेशनयन्त्रम्) यस्य सः, तादृशो वैशम्पायनः ।

वहाँपर पलंगपर बैठकर जमीनपर बैठी हुई तलवारको गोदमें रखनेवाली तलवार धारण करनेवाली दासी नये कमलपत्रके समान कोमल हाथोंसे धीरे धीरे मर्दित चरणोंवाले राजा (शूद्रक) उस समय उचित दर्शनवाले राजाओं, सचिवों और मित्रोंके साथ अनेक प्रकारके वार्तालाप कर कुछ समयतक बैठे रहे । तब वैशम्पायनके विषयमें प्रश्न करनेकी उत्कण्ठा उत्पन्न होनेसे कुछ दूर रहनेवाली द्वारपालिकाको "अन्तःपुरसे वैशम्पायनको लेकर आओ" इस प्रकार राजाने आज्ञा दी । द्वारपालिकाने घुटनों और करतलोंको जमीनपर रखकर "महाराजकी जैसी आज्ञा" ऐसा कहकर शिरमें आज्ञाको रखकर आज्ञाके अनुसार किया ।

तब कुछ समयके अनन्तर ही द्वारपालिकाने जिसका पिंजड़ा लिया था वह वैशम्पायन तोता सुवर्णकी वेत्रलताको लेनेवाले शरीरके पूर्वभावको कुछ झुकानेवाले और सफेद जामाको धारण करनेवाले बुढ़ापासे सफेद शिरवाले गद्गद (अस्पष्ट) स्वरवाले और धीरे-धीरे चलनेवाले पक्षिजातिके प्रेमसे मानों बूढ़े हंसके सदृश कञ्चुकीसे अनुगत होकर राजाके पास आ गया ।

क्षितितल-निहितकरतलस्तु कञ्चुकी राजानं व्यज्ञापयत्—'देव ! देव्यो विज्ञापयन्ति, देवादेशादेष वैशम्पायनः स्नातः कृताहारश्च देवपादमूलं प्रतीहार्य्या नीत' इत्यभिधाय गते च तस्मिन् राजा वैशम्पायनमपृच्छत्—'कच्चित् अभिमतमास्वादितमभ्यन्तरे भवता किञ्चिदशनजातम् ?' इति ।

स प्रत्युवाच—'देव किंवा नास्वादितम् ?' आमत्त-कोकिल-लोचनच्छविर्नीलपाटलः कषायमधुरः प्रकाममपीतो जम्बूफलरसः हरि-नखरभिन्न-मत्तमातङ्गकुम्भ-मुक्तरक्तार्द्रमुक्ता-

---

कनकवेत्रलताऽवलम्बिना = कनकनिर्मिता (सुवर्णरचिता) या वेत्रलता (वेतसलता) ताम् अवलम्बते तच्छीलस्तेन । तद्ग्राहिणेतिभावः । किञ्चिदवनतपूर्वकायेन = स्तोकाऽवनम्रदेहपूर्वभागेन, कायस्य पूर्वं पूर्वकायः, "पूर्वाऽपराऽधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे" इति एकदेशिसमासः । किञ्चिदवनतः पूर्वकायो यस्य, तेन । सितकञ्चुकाऽवच्छन्नवपुषा = सितः (शुक्लः) यः कञ्चुकः (कूर्पासकः) तेन अवच्छन्नम् (आच्छादितम्) वपुः (शरीरम्) यस्य, तेन । जराधवलितमौलिना = जरसा (विस्रसया), धवलितः (शुक्लीकृतः) मौलिः (शिरः) यस्य तेन । गद्गदस्वरेण = गद्गदः (अस्फुटः) स्वरः (शब्दः) यस्य तेन । मन्दमन्दसञ्चारिणा = मन्दप्रकारं मन्दमन्दं "प्रकारे गुणवचनस्य" इति मन्दशब्दस्य द्विर्भावः । मन्दमन्दं सञ्चरतीति तच्छीलस्तेन शनैः शनैः सञ्चरणशीलेनेति भावः । बिहङ्गजाति प्रीत्या = पक्षिजातिस्नेहेन, जरत्कलहंसेन इव = वृद्धराजहंसेन इव, कञ्चुकिना = सौविदल्लकेन, कञ्चुकिलक्षणं यथा—

"अन्तः पुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणाऽन्वितः ।
सर्वशास्त्रार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥"

इत्युक्तलक्षणलक्षितेन अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः, राजाऽन्तिकं = भूप (शूद्रक) समीपम्, आजगाम = आययौ, जरत्कलहंसेनेत्युपमाऽलङ्कारः ।

क्षितितलेति । क्षितितल० = क्षितितले (भूतले) निहितं (स्थापितम्) करतलं (हस्ततलम्) येन सः । तादृशः कञ्चुकी = सौविदल्लः, राजानं = नृपं शूद्रकं, व्यज्ञापयत् = विज्ञापितवान् । देव = हे राजन् !, देव्यः = महिष्यः, विज्ञापयन्ति = निवेदयन्ति । देवाऽऽदेशात् एव = भवदाज्ञाया एव, एषः = अयं, वैशम्पायनः = तन्नामकः शुकः, स्नातः = कृतस्नानः, अकर्मकात् ष्णाधातोः "गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थाऽऽसवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च" ति कर्तरि क्त प्रत्ययः । कृताऽऽहारश्च = विहितभोजनश्च । प्रतीहार्या = द्वारपालिकया, देवपादमूलं = भवच्चरणमूलम्, आनीतः = प्रापितः । इति = एवम्, अभिधाय = उक्त्वा, तस्मिन् = कञ्चुकिनि, गते = निवृत्ते सति, राजा, वैशम्पायनम्, अपृच्छत् = पृष्टवान् । अभ्यन्तरे = अन्तःपुरे, भवता = त्वया, किञ्चित् = किमपि । अभिमतम् = अभीष्टम्, अशनजातं = भक्ष्यपदार्थसमूहः, आस्वादितं कच्चित् = आस्वादनविषयीकृतं किम्, "कच्चित्कामप्रवेदने" इत्यमरः । सः = वैशम्पायनः, प्रत्युवाच = प्रत्युक्तवान् । देव = महाराज, किं वा = अशनजातं न आस्वादितम् = न आस्वादनविषयीकृतं, काकुः । सर्वमपि आस्वादितमिति भावः । तदेवमुपपादयति—आमत्तेत्यादिना । आमत्तकोकिललोचनच्छविः = आमत्तः (मदोन्मत्तः) यः कोकिलः (पिकः), तस्य लोचनयोः (नेत्रयोः) इव छविः (कान्तिः) यस्य सः । एवं च नीलपाटलः = कृष्ण–श्वेतरक्तः । कषायमधुरः = तुवरमिष्टः,

---

कञ्चुकीने जमीनपर हाथोंको रखकर राजाको निवेदन किया—"महाराज ! रानियाँ निवेदन करती हैं कि महाराजकी आज्ञासे स्नानकर आहार ग्रहण करनेवाले इस वैशम्पायनको द्वारपालिका आपके चरणोंके समीप ले आई है" ऐसा कहकर कञ्चुकीके जानेपर राजाने वैशम्पायनसे पूछा—"आपने अन्तःपुरमें अभीष्ट कुछ भोजन चख लिया ?" । वैशम्पायनने उत्तर दिया—महाराज ! मैंने क्या नहीं खाया ? मत्त कोयलके नेत्रोंके समान नीली और गुलाबी कान्तिसे युक्त कषाय और मीठा जामुनका रस पर्याप्त पी लिया । सिंहके नाखूनोंसे विदीर्ण

फलल्वीषि खण्डितानि दाडिम-बीजानि, नलिनीदल-हरिन्ति द्राक्षाफल-स्वादूनि च दलितानि स्वेच्छया प्राचीनामलकीफलानि। किं वा प्रलपितेन बहुना, सर्वमेव देवीभिः स्वयं करतलोपनीयमानममृतायते' इति।

एवंवादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्—आस्तां तावत् सर्वम्, अपनयतु नः कुतूहलम्, आवेदयतु भवानादितः प्रभृति कार्त्स्न्येनात्मनो जन्म कस्मिन् देशे? भवान् कथं जातः? केन वा नाम कृतम्? का ते माता? कस्ते पिता? कथं वेदानामागमः? कथं शास्त्राणां परिचयः? कुतः कलाः आसादिताः? किंहेतुकं जन्मान्तरानुस्मरणम्? उत वरप्रदानम्, अथवा विहगवेष-धारी कश्चिच्छन्नं निवससि? क्व पूर्वमुषितम्? कियद्वा वयः?

"[illegible]रस्तु कषायोऽस्त्री" त्यमरः। एतादृशो जम्बूफलरसः = जम्बूफलद्रवः, प्रकामं = पर्याप्तं यथा तथा, [illegible]पीतः = सम्यक्पानविषयीकृतः। अत्रोपमाऽलङ्कारः। एवमेव - हरिनखरेत्यादिः०=हरेः (सिंहस्य) नखरैः (नखैः) भिन्नाः (विदारिताः) मत्तमातङ्गानां (मदयुक्तहस्तिनाम्) ये कुम्भाः (मस्तकमांसपिण्डाः) तेभ्यो मुक्तानि (अपगतानि) यानि रक्ताऽऽर्द्राणि (रुधिरविलग्नानि) मुक्ताफलानि (मौक्तिकानि), तेषाम् इव त्विट् (कान्तिः) येषां तानि, तादृशानि दाडिमबीजानि=करकफलबीजानि, खण्डितानि = खण्डीकृतानि, चञ्चुपुटेनेति शेषः। उपमाऽलङ्कारः। इत्थमेव नलिनीदलहरिन्ति = नलिनी (कमलिनी) तस्या दलानि (पत्त्राणि) तानि इव हरिन्ति (हरितवर्णानि), द्राक्षाफलस्वादूनि = द्राक्षा (मृद्वीका) तस्याः फलानि (सस्यानि) इव स्वादूनि (स्वादयुक्तानि), "मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा" इत्यमरः। प्राचीनाऽऽमलकीफलानि = पानीयामलकफलानि, स्वेच्छया = निजाऽभिलाषेण, चूर्णितानि = चूर्णीकृतानि, चञ्चुपुटेनेति शेषः। उपमाऽलङ्कारः। वा = अथवा, बहुना = अधिकेन, प्रलपितेन = अनर्थकवचनेन, किं = किं प्रयोजनम्। सर्वम् एव = सकलम् एव, अशनजातमिति शेषः। देवीभिः = महिषीभिः। स्वयम् = आत्मनैव, करतलोपनीयमानं = करतलैः (हस्ततलैः) उपनीयमानं (समीपे प्राप्यमाणं सत्), अमृतायते=अमृतवत् आचरति, "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इति क्यङ् प्रत्ययः। उपमाऽलङ्कारः। इति=वाक्यसमाप्तौ, "इति हेतुप्रकरणप्रकाशाऽऽदिसमाप्तिषु।" इत्यमरः। एवंवादिनः = पूर्वोक्तं वाक्यं कथयतः वैशम्पायनस्येति भावः। वचनं = वचः, आक्षिप्य = आक्षेपं कृत्वा, वाक्यसमाप्तौ बाधां विधायेति भावः। नरपतिः = राजा शूद्रकः, अब्रवीत् = अकथयत्। इदं = पूर्वोक्तम् एतत्, सर्वं = सकलम्, आस्तां = तिष्ठतु, तावदिति वाक्याऽलङ्कारे। भवान्, नः = अस्माकं, कुतूहलं = कौतुकम्, अपनयतु = निवारयतु। भवान्, आदितः प्रभृति = प्रथमत आरभ्य। कार्त्स्न्येन = साकल्येन, आत्मनः = स्वस्य, जन्म = जननं, कस्मिन् देशे = जनपदे जातमिति शेषः। भवान्, कथं = केन प्रकारेण, जातः = उत्पन्नः, केन वा = पुरुषेण, नाम = अभिधानं, तवेति शेषः। कृतं = विहितम्। ते = तव, माता = जननी, का, ते = तव, पिता = जनकः, कः? वेदानां = श्रुतीनाम्, आगमः = उपलब्धिः, कथं = केन प्रकारेण, जातः। शास्त्राणां = व्याकरणन्यायादीनां, परिचयः = संस्तवः, कथं = केन प्रकारेण जातः। कला = नृत्यगीतादिका कला, कुतः = कस्मात्, आसादिताः = प्राप्ताः, जन्माऽन्तराऽऽनुस्मरणं = जन्माऽन्तरस्य (पूर्वजन्मनः) अनुस्मरणम् (अनुस्मृतिः) किंहेतुकं =

हाथीके शिरके मांसपिण्डसे निकले हुए रुधिरसे आर्द्र मोतियोंकी-सी कान्तिवाले अनारके दानोंको खण्ड-खण्ड कर खा लिया। कमलके पत्तोंके समान हरे अङ्गूरके समान स्वादु जलआंवलोंके फलोंको अपनी इच्छा से चूर्ण-चूर्ण कर खा डाला। अधिक कहनेसे क्या? रानियोंसे अपने करतलोंसे लाया गया सब कुछ अमृतके समान प्रतीत हो रहा है।" ऐसा कहते हुए वैशम्पायनकी बातमें आक्षेप कर राजाने कहा—"यह सब रहने दें, आप हमारी उत्कण्ठा हटा दें। शुरूसे पूर्णरूपसे किस देशमें अपना जन्म हुआ? आप कैसे उत्पन्न हुए? किसने आपका नाम रक्खा? कौन आपकी माता और आपके पिता हैं? वेदोंकी प्राप्ति कैसे हुई? शास्त्रोंका परिचय कैसे हुआ? किससे

कथं पञ्जरबन्धनम् ? कथं चण्डाल-हस्तगमनम् ? इह वा कथमागमनम् ? ।

वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजातकुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्टो मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्—"देव ! महतीयं कथा, यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्"—

अस्ति पूर्वापर-जलनिधि-वेलावनलग्ना मध्यदेशालङ्कारभूता मेखलेव भुवः, वन-करिकुल-मदजल सेक-संवर्द्धितैरतिविकच-धवल-कुसुमनिकरमत्युच्चतया तारा-गणमिव शिखरदेशलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकल-कुररकुल-दश्यमान-मरिचपल्लवा, करि-

किंकारणम् । उत=अथवा, वरप्रदानं=देवादिवरवितरणं जन्मान्तरानुस्मरणकारणमिति भावः । अथवा=उताहो, कश्चित्=कोऽपि त्वं, विहगवेषधारी=विहगस्य (पक्षिणः) वेषधारी (नेपथ्य-धारकः) सन्, छन्नं=प्रच्छन्नं यथा स्यात्तथा, निवससि=निवासं करोषि ?, पूर्वं=प्रथमं, क्व=कुत्र, उषितं=स्थितम् । वा=अथवा । वयः=अवस्था, कियत्=किंपरिमाणं, पञ्जरबन्धनं=पञ्जराऽ-वस्थानं, कथं=केन प्रकारेण, जातमिति शेषः । चाण्डालहस्तगमनं=दिवर्कीतिकरप्रापणं, कथं=केन प्रकारेण, जातम् । वा=अथवा इह=अत्र,मत्सन्निधौ आगमनं=प्राप्तिः, कथम् ? उपजात-कुतूहलेन=उपजातम् (उत्पन्नम्) कुतूहलं (कौतुकम्) यस्य तेन, तादृशेन अवनिपतिना=राज्ञा शूद्रकेण, स्वयम्=आत्मना, सबहुमानम्=अधिकसत्कारपूर्वकं, पृष्टः=अनुयुक्तः, वैशम्पायनस्तु=तन्नामकः शुकस्तु, मुहूर्तम् इव=कंचित्कालम् इव, ध्यात्वा=चिन्तयित्वा, सादरम्=आदरपूर्वकम्, अब्रवीत्=अवदत्, देव=महाराज !, इयम्=एषा, कथा=प्रवृत्तिः, मद्विषयेति शेषः, महती=सविस्तरा, कौतुकं यदि=कुतूहलं चेत्, आकर्ण्यतां=श्रूयताम् ।

अस्तीति । पूर्वाऽपरजलनिधिवेलावनलग्ना=पूर्वाऽपरौ (पूर्वपश्चिमौ) यौ जलनिधी (समुद्रौ), तयोः यत् वेलावनं (तटकाननम्) तत्पर्यन्तं लग्ना (सम्बद्धा), मध्यदेशाऽलङ्कारभूता=उत्तर (हिमालय) दक्षिण (विन्ध्य) पर्वतमध्यप्रदेशभूषणभूता । मध्यदेशलक्षणं यथा मनुस्मृतौ—

"हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥" २-२१ ।

भुवः=पृथिव्याः, मेखला इव=काञ्ची एव "विन्ध्याटवी" इत्यत्र सम्बन्धः । वनकरिकुलेत्यादिः=वने (अरण्ये) करिणां (हस्तिनाम्) कुलानि (यूथानि) तेषां यत् मदजलं (दान-वारि) तस्य सेकः (सेचनम्) तेन संवर्द्धितैः (वृद्धिं प्राप्तैः), "पादपै" रित्यस्य विशेषणम् । शिखरदेशलग्नं=शृङ्गप्रदेशस्थितम्, अतिविकचेत्यादिः०=अतिविकचानि (अतिशयविकसितानि) धवलानि (शुक्लानि) यानि कुसुमानि (पुष्पाणि), तेषां निकरं (समूहम्), अतः अत्युच्चतया=अतिशयोन्नतत्वेन । तारागणम् इव=नक्षत्रसमूहम् इव, उद्वहद्भिः=धारयद्भिः पादपैः=वृक्षैः, उपशोभिता=शोभां प्रापिता । "तारागणम् इवे" त्यत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । मदकलेत्यादिः=मदेन (मत्तभावेन) कलाः (मनोहराः) ये कुरराः (उत्क्रोशाः) तेषां कुलं (समूहः) तेन दश्यमानानि (भक्ष्यमाणानि)

आपने नृत्यगीत आदि कलाओंको प्राप्त किया ? पूर्वजन्मके स्मरणका कारण क्या है ? अथवा वर मिलनेसे हुआ है ? अथवा पक्षीका वेष लेनेवाले आप कोई गुप्त रूपसे रहते हैं ? आप पहले कहाँ रहे ? आपकी उम्र क्या है ? आप कैसे पिंजड़ेके बन्धनमें पड़े ? कैसे चाण्डालके हाथमें जाना हुआ ? अथवा यहाँपर आप कैसे आ गये ?" । इस प्रकार उत्कण्ठावाले राजासे स्वयम् बहुत सम्मानसे पूछा गया वैशम्पायन कुछ काल तक सोचकर आदरपूर्वक बोला—"महाराज ! यह लम्बी कथा है । आपको उत्कण्ठा है तो सुन लें" ।

पूर्व और पश्चिमके समुद्रकी तीरभूमिके वनोंसे सम्बद्ध मध्यदेशके अलङ्कारका समान, पृथ्वीकी मेखला (करधनी) की तरह प्रतीत होनेवाली, विन्ध्याऽटवी (विन्ध्यपर्वतकी वनभूमि), इसका पीछे तक सम्बन्ध है । जो जङ्गली हाथियोंके मदजलके सेचनसे बढ़ाये गये अत्यन्त ऊँचे होनेसे अतिशय खिले हुए पुष्पसमूहको मानों शिखरप्रदेशमें लगे हुए तारासमूहको धारण करते हुए पेड़ोंसे शोभित है, जहाँपर मदसे मनोहर कुरर पक्षी मरिचके

कलभ-करमृदित-तमालकिसलयामोदिनी मधुमदोपरक्त-केरली-कपोल-च्छविना सञ्चरद्वनदेवता-चरणालक्तक-रस-रञ्जितेनेव पल्लवचयेन संछादिता, शुककुल-दलितदाडिमीफल-द्रवार्द्रीकृत-तलैरतिचपल-कपि-कम्पित-कक्कोल-च्युतपल्लव-फलशबलैः अनवरत-निपतित-कुसुमरेणुपांसुलैः पथिक-जन-रचित लवङ्गपल्लवसंस्तरैः अतिकठोर नारिकेल-केतकी-करीर-बकुल-परिगतप्रान्तैः ताम्बूलीलतावनद्ध-पूग-खण्डमण्डितैर्वनलक्ष्मी-वासभवनैरिव विराजिता लतामण्डपैः, उन्मद-मातङ्ग-कपोलस्थल-गलित-सलिल-सिक्तेनेव। नवरतमेलालतावनेन मद-

---

मरिचपल्लवानि (कोलकिसलयानि) यस्यां सा, "मरी (रि) चं कोलकं कृष्णभूषणं धर्मपत्तनम्" इत्यमरः। करिकलभेत्यादिः = करिणां (हस्तिनाम्) ये कलभाः (शावकाः), "कलभः करिशावकः" इत्यमरः) तेषां कराः (शुण्डादण्डाः), तैर्मृदितानि (संचूर्णितानि) यानि तमालकिसलयानि (तापिच्छपल्लवानि) तैः आमोदिनी (सौरभयुक्ता)। मधुमदोपरक्तेत्यादिः = मधु (मद्यं, "मधु मद्यं पुष्परस" इत्यमरः) तस्य यो मदः (मत्तता) तेनोपरक्तः (अरुणः) यः केरलीकपोलः (केरलदेशोद्भवनारीगण्डफलकः) तस्येव छविः (कान्तिः) यस्याः सा। संचरदित्यादिः = संचरन्त्यः (सञ्चरणं कुर्वत्यः) या वनदेवताः (काननदेव्यः) तासां चरणेषु (पादेषु) योऽलक्तकरसः (लाक्षाद्रवः), तेन रञ्जितेन इव (रक्तीकृतेन इव) पल्लवचयेन (किसलयसमूहेन) संछादिता (आच्छादिता)। "कपोलकोमलच्छविना" इत्यत्रोपमा, "रञ्जितेनेवे" त्यत्रोत्प्रेक्षा चेत्येतयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करोऽलङ्कारः। शुककुलेत्यादिः० = शुककुलेन (कीरसमूहेन) दलितानि (विदारितानि) यानि दाडिमीफलानि (कुवलयसस्यानि) तेषां द्रवः (रसः), तेन आर्द्रीकृतं (क्लिन्नीकृतम्) तलम् (अधोभागः) येषां तैः, "लतामण्डपैः" इत्यस्य विशेषणम्। एवमन्यत्राऽपि। अतिचपलेत्यादिः० = अतिचपलाः (अतिशयचञ्चलाः) ये कपयः (वानराः) तैः कम्पिताः (धूताः) ये कक्कोलाः (कोशफलवृक्षाः, "अथ कोलकम्। कक्कोलकं कोशफलम्" इत्यमरः), तेभ्यः च्युतानि (पतितानि)। यानि पल्लवफलानि (किसलयसस्यानि) तैः शबलाः (कर्बुराः), तैः। अनवरतेत्यादिऽ० = अनवरतं (निरन्तरम्) निपतितानि (स्रस्तानि) यानि कुसुमानि (पुष्पाणि) तेषां रेणुभिः (परागैः) पांसुलैः (सरजस्कैः)। पथिकजनेत्यादिः = पन्थानं गच्छन्तीति पथिकाः, "पथः ष्कन्" इति ष्कन्प्रत्ययः। "अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि।" इत्यमरः। पथिकजनैः (पान्थजनैः) रचिताः (निर्मिताः) लवङ्गपल्लवानां (देवकुसुमकिसलयानाम्) संस्तराः (आसनानि) येषु, तैः। अतिकठोरेत्यादिः = अतिकठोराः (अतिशयकठिनाः) नालिकेराः (नारिकेलाः), केतक्यः (क्रकचच्छदाः) करीराः (ग्रन्थिलाः, "करीरे तु क्रकरग्रन्थिलावुभौ।" इत्यमरः।) वकुलाः (केसराः) तैः परिगतः (व्याप्तः) प्रान्तः (पर्यन्तदेशः) येषां, तैः। ताम्बूलीलतेत्यादिः = ताम्बूलीलताभिः (नागवल्लीव्रततिभिः) अवनद्धाः (बद्धाः) ये पूगखण्डाः (क्रमुकसमूहाः) तैः मण्डितैः (अलङ्कृतैः), "तालव्यो मूर्धन्योऽब्जादिकदम्बे शण्डशब्दोऽयम्। मूर्धन्य एव वृषभे पूर्वाचार्यैर्विनिर्दिष्टः।" इत्यूष्मविवेकः। तादृशैः वनलक्ष्मीवासभवनैः = वनलक्ष्म्याः (अरण्यश्रियः) वासभवनैः (निवासगृहैः) इव, लतामण्डपैः = वल्लीजनाश्रयैः। विराजिता = शोभिता। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

पल्लवोंको चबाते रहते हैं। जो हाथीके बच्चोंके सूँड़ोंसे चूर्णित तापिच्छके पल्लवोंसे सुगन्धसम्पन्न है। जो केरल देशकी स्त्रियोंके मदिरामदसे लाल कपोलकी समान कान्तिसे युक्त, चलती हुई वनदेवताके चरणोंके अलक्तकरससे रंगे हुएसे पल्लवोंसे आच्छादित है। शुकसमूहसे विदारित अनारके फलोंके रससे आर्द्र किये गये अधोभागवाले अतिशय चञ्चल बन्दरोंसे कम्पित कक्कोलके पेड़ोंसे गिरे हुए पल्लवों और फलोंसे चितकबरे, लगातार गिरे हुए पुष्पपरागोंसे चूर्णयुक्त पथिकोंसे रचित लवङ्ग पल्लवोंके आसनोंसे युक्त, अत्यन्त कठोर नारियल, केतकी, करीर और मौलसिरीसे व्याप्त पर्यन्त देशवाले, ताम्बूललताओंसे सम्बद्ध सुपारीके पेड़ोंसे अलङ्कृत वनलक्ष्मीके निवास भवनोंके

गन्धिनान्धकारिता, नख-मुख-लग्नेभकुम्भ-मुक्ताफल-लुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमान-केशरिशता, प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्यु भीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्त-सिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्द-नालङ्कृता च, कर्णीसुतकथेव सन्निहित-विपुलाचला शशोपगता च कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव

उन्मदेत्यादिः = उन्मदा (उत्कटमदाः) ये मातङ्गाः (गजाः), तेषां कपोलस्थलानि (गण्डप्रदेशाः), तेभ्यो गलितं (पतितम्) यत् सलिलं (मदजलम्) तेन सिक्तम् (उक्षितम्), तेन इव, अत एव मदगन्धिना = मदगन्धयुक्तेन, तादृशेन एलालतावनेन = एलालतानां (बहुला-वल्लीनाम्) वनेन (विपिनेन) अनवरतं=निरन्तरम्, अन्धकारिता = श्यामीकृता अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

नखमुखेत्यादिः = नखानां (नखराणाम्) मुखेषु (अग्रभागेषु) लग्नानि (सम्बद्धानि) यानि इभकुम्भमुक्ताफलानि (गजमस्तकपिण्डमौक्तिकानि) तेषु लुब्धैः (लोलुपैः), शबरसेनापतिभिः = म्लेच्छभेदसैन्यस्वामिभिः, अभिहन्यमानकेसरिशता = अभिहन्यमानं (व्यापाद्यमानम्) केशरिशतं (सिंहसमूहः) यस्यां सा । प्रेताऽधिपनगरी इव = प्रेताऽधिपस्य (यमराजस्य) नगरी इव (पुरी इव), सदासन्निहितमृत्युभीषणा = सदा (सर्वदा) सन्निहितः (निकटस्थः) यो मृत्युः (मरणं), तेन, भीषणा (भयङ्करी), महिषाऽधिष्ठिता=महिषेण (प्रेताऽधिपवाहनेन, लुलायेन वा, जातावेकवचनम्) अधिष्ठिता (कृतस्थितिः) "विन्ध्याटवी" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । "लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः" इत्यमरः । उपमाऽलङ्कारः । समरोद्यतपताकिनी = समरे (युद्धे) उद्यता (तत्परा) पताकिनी (सेना), इव, बाणाऽऽसनाऽऽरोपितशिलीमुखा = बाणाऽसनेषु (कार्मुकेषु) आरोपिताः (स्थापिताः) शिलीमुखाः (बाणाः) यया सा । विन्ध्याऽटवीपक्षे—बाणासु (नील-झिण्टीषु) असनेषु (सर्जकेषु) आरोपिताः (स्थापिताः) शिलीमुखाः (भ्रमराः) यस्यां सा । "बाणा तु बाणमूले स्त्री नीलझिण्ट्यां पुनर्द्वयोः ।" इति मेदिनी "अथो पीतसालके । सर्जकाऽसन-बन्धूकपुष्पप्रियकजीवकाः ।" इत्यमरः । विमुक्तसिंहनादा = विमुक्तः (त्यक्तः) सिंहनादः (सिंहस्येव शब्दः, क्ष्वेडा इति भावः) यया सा, "क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्या" दित्यमरः । विन्ध्याटवीपक्षे—विमुक्तः (त्यक्तः) सिंहैः (केसरिभिः) नादः (गर्जनध्वनिः) यस्यां सा । कात्यायनी इव = दुर्गा इव, प्रचलितखड्गभीषणा=प्रचलितः (संचरितः) यः खड्गः (करवालः), तेन भीषणा (भयङ्करी), रक्तचन्दनाऽलङ्कृता च = रक्तम् (रुधिरम्) एव यत् चन्दनं (श्रीखण्डद्रवः) तेन अलङ्कृता (भूषिता) च । विन्ध्याऽटवीपक्षे—प्रचलिताः (सञ्चरिताः) ये खड्गाः (गण्डकाः) तैः भीषणा "गण्डके खड्गखड्गिनौ" इत्यमरः । रक्तचन्दनाऽलङ्कृता = रक्तचन्दनैः (पत्त्राऽङ्गैः) अलङ्कृता (भूषिता) च । "तिलपर्णी तु पत्त्राऽङ्गं रञ्जनं रक्तचन्दनम् ।" इत्यमरः । कर्णीसुतकथा = कर्णी-सुतस्य (चौर्यकलाप्रवर्तकस्य) कथा (उदन्तः) इव, सन्निहितविपुलाचला = सन्निहितौ (समीप-

---

समान लतामण्डपोंसे शोभित, उत्कट मदवाले हाथियोंके गण्डस्थलोंसे गिरे हुए जलसे लगातार सींचे हुए-से अतएव मदके गन्धवाले इलायचीके लतावनसे अन्धकारयुक्त, सिंहोंके नाखूनोंके अग्रभाग (नोक) में लगे हुए हाथियोंके मस्तकपिण्डोंसे निकले हुए मोतियोंमें लुब्ध शबरसेनापतियोंसे जहाँपर सैकड़ों सिंह मारे जाते हैं, यमराजकी पुरीकी समान हमेशा रहनेवाले मृत्युसे भयङ्कर, महिष (यमराजके वाहन) से, विन्ध्याटवीपक्षमें आरण्यक भैंसोंसे अधिष्ठित है । जैसे युद्धमें उद्यत सेना बाणासन (धनुष) पर बाण चढ़ाकर सिंहनाद करती है वैसे ही वह विन्ध्यपर्वतभूमि भी बाण और असन (सर्ज) वृक्षोंपर रहे हुए शिलीमुखों (भौंरो) वाली सिंहोंके नाद-(शब्द) से युक्त है । प्रचलित खड्ग (तलवार) से भीषण और रक्तरूप चन्दनसे अलङ्कृत दुर्गाकी सदृश, प्रचलित खड्गों (गैंड़ों) से भयङ्कर और रक्तचन्दनके वृक्षोंसे अलङ्कृत है । जैसे कर्णीसुत (चौर्यकलाके प्रवर्तक) की कथामें विपुल और अचल नामके मित्र साथमें रहते हैं और शश नामका प्रधानमन्त्री है वैसे ही जिसमें विपुल (विशाल) अचल (पर्वत) निकट हैं, और जो शशों (खरगोशों) से युक्त है । जैसे प्रलयकालकी

प्रनृत्तनीलकण्ठा पल्लवारुणा च, अमृतमथनवेलेव श्रीद्रुमोपशोभिता वारुणी-परिगता च, प्रावृडिव घनश्यामला अनेकशतह्रदालङ्कृता च, चन्द्रमूर्त्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृग-बालव्यजनोपशोभिता समदगजघटा-परिपालिता च, गिरितनयेव स्थाणुसङ्गता मृगपतिसेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च,

वर्तिनौ) विपुलाऽचलौ (विपुलाऽचलनामकौ सखायौ) यस्यां सा । शशोपगता = शशेन (शशनामकेन मन्त्रिमुख्येन) उपगता (संयुक्ता) च । विन्ध्याटवीपक्षे—सन्निहितविपुलाऽचला = सन्निहिताः (निकटवर्तिनः) विपुलाः (महान्तः) अचलाः (पर्वताः) यस्यां सा । शशोपगता = शशैः (पश्चनखैः पशुविशेषैः) उपगता (सहिता) । कल्पान्तप्रदोषसन्ध्या = कल्पाऽन्तस्य (युगाऽन्तस्य) यः प्रदोषः (रजनीमुखम्) तस्य सन्ध्या (सायंवेला) सा, इव । प्रनृत्तनीलकण्ठा = प्रनृत्तः (कृतनृत्यः) नीलकण्ठः (महादेवः) यस्यां सा । पल्लवाऽरुणा = पल्लवम् (किसलयम्) इव अरुणा (रक्तवर्णा), विन्ध्याऽटवीपक्षे—प्रनृत्ताः नीलकण्ठाः (मयूराः) यस्यां सा, "मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक् ।" इत्यमरः । पल्लवाऽरुणा = पल्लवैः अरुणा च । अमृतमथनवेला = अमृताय (पीयूषाय) यत् मथनं (समुद्रविलोडनम्) तस्य वेला (समयः) इव, श्रीद्रुमोपशोभिता = श्रीः (लक्ष्मीः) द्रुमः (वृक्षः, कल्पवृक्ष इति भावः) ताभ्याम् उपशोभिता (शोभासम्पन्ना) वारुणीपरिगता = वारुण्या (मदिरया) परिगता (सहिता) च, विन्ध्याऽटवीपक्षे—श्रीद्रुमोपशोभिता = श्रीद्रुमैः (लक्ष्मीवृक्षैः, बिल्ववृक्षैरिति भावः) उपशोभिता (शोभासम्पन्ना) । वारुणी—परिगता = पश्चिमदिक्प्राप्ता । प्रावृड् = वर्षर्तुः, इव, घनश्यामला = घनैः (मेघैः) श्यामला (कृष्णवर्णा), अनेकशतह्रदाऽलङ्कृता=अनेकाः (बह्वचः) शतह्रदाः (विद्युतः), ताभिः अलङ्कृता (भूषिता) च घना । विन्ध्याटवीपक्षे—घनश्यामला = घना (वृक्षैर्निबिडा) श्यामला (कृष्णवर्णा) च । अनेकशतानि (बहुशतानि) ये ह्रदाः (अगाधजलाः जलाशयाः) तैः अलङ्कृता । "तत्राऽगाधजलो ह्रदः" इत्यमरः । चन्द्रमूर्तिः = इन्दुदेह, इव, सततं = निरन्तरम् । ऋक्षसार्थाऽनुगता = ऋक्षाणां (नक्षत्राणाम्) सार्थः (समूहः), तेन अनुगता (अनुसृता), "नक्षत्रमृक्षं भं तारा" इत्यमरः हरिणाऽध्यासिता = हरिणेन (मृगचिह्नेन) अध्यासिता (आश्रिता) च । विन्ध्याटवीपक्षे—ऋक्षसार्थाऽनुगता = ऋक्षाणां (भल्लूकानाम्) सार्थेन अनुगता । हरिणैः (मृगैः) अध्यासिता च । राज्यस्थितिः = राज्यमर्यादा, इव, चमरमृगेत्यादिः = चमरमृगाणां (चमरहरिणानाम्) बालानां (शिरोरुहाणाम्) व्यजनानि (चामराणि) तैः उपशोभिता (शोभासम्पन्ना), समदगजघटापरिपालिता = समदा (मदजलसहिता) या गजघटा (हस्तिसमूहः), तया परिपालिता = (संरक्षिता) च । विन्ध्याटवीपक्षे—चमरमृगेत्यादिः = चमरमृगैः (चमरहरिणैः), तेषां बालैः (शिरोरुहैः), व्यजनैः (व्यजनप्रकृतिभिस्तालादिवृक्षैः), उपशोभिता । गिरितनया =

सन्ध्या, नाचते हुए नीलकण्ठ (शिवजी) से युक्त है और पल्लवके समान लालवर्णवाली है वैसे ही वह (विन्ध्याटवी), नाचते हुए नीलकण्ठों (मयूरों) से युक्त है और पल्लवोंसे लालवर्णवाली है । जैसे अमृतमथनकी बेला (समय) श्री (लक्ष्मी) और द्रुम (वृक्ष—अर्थात् कल्पवृक्ष) से शोभित और वारुणी (मदिरा) से युक्त थी वैसे ही वह श्रीद्रुमों (बेलके वृक्षों) से शोभित और वारुणी (वरुणदिशा पश्चिम) को प्राप्त हुई है । वर्षा (ऋतु) जैसे घन (मेघ) से श्यामवर्ण और अनेक शतह्रदाओं (बिजलियों) से अलङ्कृत होती है वैसे ही वह वृक्षोंसे घन (गाढ) और श्यामवर्णवाली और सैकड़ों ह्रदों (गहरे जलाशयों) से अलङ्कृत है । जैसे चन्द्रकी मूर्ति निरन्तर ऋक्षों (नक्षत्रों) के समूहसे अनुसृत है और हरिण (मृगचिह्न) से आश्रित है वैसे ही वह निरन्तर ऋक्षों (रीछों) के समूहसे अनुसृत है और हरिणों (मृगों) से आश्रित है । जैसे राज्यमर्यादा चमरमृगोंके बालों (रोओं) के चमरसे शोभित है और मदयुक्त हाथियोंके समूहसे परिपालित है वैसे ही वह चमरमृगोंसे और उनके बालों (चमरों) से और व्यजन (पङ्खा) के हेतु ताडवृक्षोंसे शोभित है, और मदयुक्त हाथियोंसे परिपालित है । जैसे पार्वती स्थाणु (शिवजी) से संयुक्त हैं और वाहनरूप सिंहसे सेवित हैं वैसे ही

कामिनीव चन्दन-मृगमदपरिमलवाहिनी रुचिरागुरु-तिलकभूषिता च, सोत्कण्ठेव विविधपल्लवानिलवीजिता समदना च, बालग्रीवेव व्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डिता गण्डकाभरणा च, पानभूमिरिव प्रकटित-मधुकोश-शता प्रकीर्णविविधाकुसुमा च, क्वचित् प्रलयवेलेव महावराह-दंष्ट्रा-

---

पार्वती, इव, स्थाणुसङ्गता = स्थाणुना (शिवेन) सङ्गता (सहिता), "स्थाणू रुद्र उमापतिः" इत्यमरः। मृगपतिसेविता = मृगपतिना (सिंहेन) सेविता (आश्रिता) च। वाहनभावेनेति शेषः। विन्ध्याटवीपक्षे—स्थाणुभिः (शाखापत्त्ररहिततरुभिः) सेविता, "स्थाणु वा ना ध्रुवः शङ्कुः" इत्यमरः। मृगपतिभिः (सिंहैः) सेविता च। जानकी = सीता, इव, प्रसूतकुशलवा = प्रसूतौ (उत्पादितौ) कुशलवौ पुत्रौ यया सा। निशाचरपरिगृहीता = निशाचरेण (राक्षसेन रावणेनेति भावः) परिगृहीता (ग्रहणकर्मीकृता) च, विन्ध्याऽटवीपक्षे—प्रसूताः (जनिताः) कुशानां (दर्भाणाम्) लवाः (लेशाः) यस्यां सा। "स्त्रियां मात्रा त्रुटी पुंसि लवलेशकणाऽणवः।" इत्यमरः। निशाचरैः (रात्रिभ्रमणशीलैरुलूकादिभिश्च) परिगृहीता (स्वीकृता) च। कामिनी = शृङ्गारनायिका इव, चन्दनमृगमदपरिमलवाहिनी=चन्दनस्य (मलयजद्रवस्य) मृगमदस्य (कस्तूर्याः) च यः परिमलः (सौरभम्), तं वहति (धारयति) इति। रुचिराऽगुरुतिलकभूषिता = रुचिरः (मनोहरः) यः अगुरुः (कृष्णाऽगुरुः) तस्य तिलकेन (विशेषकेण) भूषिता (अलङ्कृता), च। विन्ध्याऽटवीपक्षे—रुचिराः (सुन्दराः) ये अगुरवः (कृष्णाऽगुरवः) तिलकाः (क्षुरकाः) तैर्भूषिता। "तिलकः क्षुरकः श्रीमान्" इत्यमरः। सोत्कण्ठा = उत्कण्ठया (उत्सुकतया, प्रियसमागम इति शेषः) सहिता तादृशी नायिका इव, विविधपल्लवाऽनिलवीजिता=विविधानि (अनेकप्रकाराणि) यानि पल्लवानि (किसलयानि) तेषाम् अनिलः (वायुः) तेन वीजिता (स्पर्शीकृता), समदना = मदनेन (कामावेशेन) सहिता (युक्ता)। विन्ध्याऽटवीपक्षे—समदना = मदनैः (पिण्डीतकवृक्षैः) सहिता, "पिण्डीतको मरुवकः श्वसनः करहाटकः। शल्यश्च मदने" इत्यमरः। बालग्रीवा = बालः (स्तनन्धयः), तस्य ग्रीवा (कन्धरा) इव, व्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डिता = व्याघ्रस्य (शार्दूलस्य) नखपङ्क्तिः (नखराऽऽवलिः), तया मण्डिता (भूषिता), दैवोत्पातनिवारणार्थमिति शेषः। गण्डकाऽऽभरणा = गण्डकं (गण्डस्थलपर्यन्तवर्ति ग्रीवाभूषणम्) आभरणं (भूषणम्) यस्यां सा। विन्ध्याऽटवीपक्षे—व्याघ्राः (शार्दूलाः) तेषां नखपङ्क्तिभिः (नखराऽऽवलिभिः) मण्डिता। गण्डकाभरणा = गण्डकाः (खड्गाः) एव आभरणानि (भूषणानि) यस्यां सा। 'गण्डके खड्गखड्गिनौ" इत्यमरः। पानभूमिः = मद्यपानभूः, इव, प्रकटितमधुकोशशता = प्रकटितम् (आविष्कृतम्) मधुकोशानां (मद्यपानपात्राणाम्) शतं (बहुसंख्या) यस्यां सा। प्रकीर्णविविधकुसुमा = प्रकीर्णानि (विक्षिप्तानि) विविधानि (अनेकप्रकाराणि) कुसुमानि (पुष्पाणि) यस्यां, सा च। विन्ध्याऽटवीपक्षे—प्रकटितं (प्रकाशितम्) मधुकोशानां (माक्षिकाश्रयाणाम्) शतं (बहुसंख्या) यस्यां सा।

क्वचित् = कुत्रचित्। प्रलयवेला = क्षयसमयः, इव। महावराहेत्यादिः = महावराहस्य

वह स्थाणु (शाखा और पत्तेसे रहित अर्थात् ठूंठे) वृक्षोंसे संयुक्त है और सिंहोंसे सेवित है। जैसे सीताजी कुश और लवको पैदा करनेवाली हैं और निशाचर (राक्षस अर्थात् रावण) से परिगृहीत हैं वैसे ही वह कुशलवों अर्थात् कुशोंके टुकड़ोंको उत्पन्न करनेवाली और निशाचरों (रातमें घूमनेवाले उल्लू आदियों) से युक्त है। जैसे श्रृङ्गारनायिका चन्दनरस, और कस्तूरीके सुगन्धको धारण करती है सुन्दर अगुरुके तिलकसे भूपित होती है वैसे ही वह चन्दन और कस्तूरीके सुगन्धको धारण करती है और सुन्दर अगुरु और तिलक वृक्षोंसे भूषित है। जैसे पतिमें उत्कण्ठा रखनेवाली स्त्री अनेक पल्लवोंकी हवासे वीजित होती हैं (झली जाती है) और मदन-(कामावेश) से युक्त होती है वैसे ही वह अनेक पल्लवोंकी हवासे वीजित होती हैं और मदन वृक्षोंसे युक्त है। जैसे बालककी ग्रीवा बाघकी नखपङ्क्तिसे युक्त और गण्डक (कपोल तक रहनेवाले भूषण) से अलङ्कृत होती है वैसे ही वह (विन्ध्याऽटवी) बाघोंकी नखपङ्क्तिसे युक्त और गैंड़ोंसे अलङ्कृत है। जैसे मद्यपानकी भूमि सैकड़ों

समुत्खात-धरणिमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्द-भज्यमान-तुङ्गशालाकुला, क्वचिदचिरनिर्वृत्त-विवाहभूमिरिव हरित-कुश-समित्-कुसुम-शमी-पलाशशोभिता, क्वचिदुद्वृत्त-मृगपति-नाद-भीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेव कोकिलकुल-कलप्रलापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेग-कृत-तालशब्दा, क्वचिद्विधवेव उन्मुक्ततालपत्रा, क्वचित् समरभूमिरिव शर-शत-निचिता, क्वचिदमरपति-तनुरिव नेत्रसहस्र-सङ्कुला, क्वचिन्नारायणमूर्त्तिरिव तमालनीला, क्वचित् पार्थरथ-

(विष्णुतृतीयाऽवतारस्य) दंष्ट्राभि: (विशालदशनै:) समुत्खातम् (ऊर्ध्वमानीतम्) धरणिमण्डलं (भूमण्डलम्) यस्यां सा । प्रलयकाले भगवान्वराहो हिरण्याक्षं हत्वा भूगोलमुद्बभारेति पौराणिका: । विन्ध्याऽटवीपक्षे—महावराहै: (विशालसूकरै:) दंष्ट्राभि: (विशालदशनै:) समुत्खातम् (अवदारितम्) धरणिमण्डलं (भूप्रदेश:) यस्यां सा । क्वचित् = कुत्रचित् । दशमुखनगरी = रावणपुरी, लङ्केति भाव:, सा इव, चटुलवानरेत्यादि: = चटुला: (चञ्चला) ये वानरा: (कपय:) तेषां वृन्दानि (समूहा:) तै: भज्यमाना: (आमर्द्यमाना:) तुङ्गा: (उन्नता:) या: शाला: (भवनभागा:) ताभि: आकुला (व्याप्ता) विन्ध्याऽटवीपक्षे—चटुल०=भज्यमाना: ये शाला: (शालवृक्षा:) तै: आकुला (व्याप्ता) । क्वचित् = कुत्रचित्, अचिरेत्यादि: = अचिरनिर्वृत्त: (अल्पकालनिष्पन्न:) यो विवाह: (परिणयसंस्कार:), तस्य भूमि: मेदिनी इव, हरितकुशेत्यादि: = हरिता: (हरिद्वर्णा:) ये कुशा (दर्भा:) समिध: (काष्ठानि) कुसुमानि (पुष्पाणि) शम्य: (शिवा:) पलाशा: (किंशुका:) तै: शोभिता (शोभासम्पन्ना:), उभयत्र समानोऽर्थ: । क्वचित् = कुत्रचित् । उद्वृत्तेत्यादि: = उद्वृत्त: (दुर्वृत्त:, क्रूर इति भाव:) एतादृशो यो मृगपति: (मृगेन्द्र:, सिंह:) तस्य नाद: (गर्जनम्) तस्मात् भीता (त्रस्ता) इव, कण्टकिता = रोमाञ्चिता, विन्ध्याटवीपक्षे—सञ्जातकण्टका, इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कार: । क्वचित् = कुत्रचित्, मत्ता इव = मद्यपानमदयुक्ता रमणी इव, कोकिलकुलप्रलापिनी = कोकिलानां (पिकानाम्) कुलं (समूह:), ते न प्रलापिनी (अनर्थकवचोयुक्ता) । क्वचित् = कुत्रचित्, उन्मत्ता इव = उन्मादयुक्ता इव, वायुवेगकृततालशब्दा = वायुवेगेन (वातविकारेण कृता: (विहिता:) तालशब्दा: (करतालशब्दा:) यया । विन्ध्याऽटवीपक्षे—वायुवेगेन (वातजवेन) कृता: (विहिता:) तालशब्दा: (तालवृक्षध्वनय:) यस्यां सा ।

क्वचित् = कुत्रचित्, विधवा इव = विगत: धव: (पति:) यस्या: सा, मृतभर्तृका नारी इवेति भाव: । उन्मुक्ततालपत्रा = उन्मुक्तानि (त्यक्तानि) तालपत्राणि (कर्णाभरणानि) यया सा "कर्णिका तालपत्रं स्यात्" इत्यमर:, विन्ध्याऽटवीपक्षे—उन्मुक्तानि तालपत्राणि (तालवृक्षदलानि) यया सा । क्वचित्, समरभूमि: इव = रणभू: इव, शरशतनिचिता = शरशतै: (बाणशतै:) निचिता (व्याप्ता) । विन्ध्याऽटवीपक्षे—शरशतै: (तेजनकवृक्षशतै:), निचिता (व्याप्ता) । 'गुन्द्रस्तेजनक:

मधु (मदिरा) के पात्रोंसे युक्त और बिखरेहुए अनेक फूलोंसे युक्त होती है वैसे ही वह सैकड़ों मधुकोशों-(शहदके छत्तों) से युक्त और बिखरे हुए अनेक फूलोंसे युक्त है । प्रलयकी वेला (समय) में महान् वराह (वराहाऽवतार भगवान् विष्णु) की दाढ़ोंसे उठाई गई भूमिकी सदृश कहींपर महावराहों (बड़े सूअरों) की दाढ़ोंसे उठाई गई भूमि देखी जाती है । जैसे रावणकी नगरी (लङ्का) चञ्चल वानरोंसे तोड़ी गई शालाओं (भवनभागों) से व्याप्त थी वैसे ही कहींपर वह चञ्चल वानरोंसे तोड़े गये शाल वृक्षोंसे व्याप्त है । कहींपर कुछ समय पहले ही सम्पन्न विवाहकी भूमिकी समान हरे कुशों, समिधाओं, फूलों और पलाश वृक्षोंसे शोभित भूमि है । कहींपर उन्मत्त सिंहोंके गर्जनसे डरी हुई-सी कण्टकित (रोमाञ्चयुक्त वा काँटोंवाली) जमीन है । कहींपर मदसे मत्त स्त्रीकी सदृश कोकिलकुलके प्रलापसे युक्त है । कहींपर उन्मत स्त्रीकी सदृश वायुवेगसे तालशब्द (ताड़के वृक्षोंका शब्द) करनेवाली है । कहींपर तालपत्र (कर्णभूषण) को छोड़नेवाली विधवा स्त्रीकी समान तालपत्रों-(ताड़ वृक्षके पत्तों) को छोड़नेवाली (विंध्याटवी) है । कहींपर सैकड़ों शरों (बाणों) से व्याप्त युद्ध भूमिकी समान सैकड़ों शरों (वृक्षों) से व्याप्त (विन्ध्याटवी) है । कहीं पर सहस्रनेत्रों से व्याप्त इन्द्र की तनु (शरीर) की

पताकेव वानराक्रान्ता, क्वचिदवनिपति-द्वारभूमिरिव वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा, क्वचिद्विराटनगरीव कीचकशताकुला, क्वचिदम्बरश्रीरिव व्याधानुगम्यमान-तरल-तारक-मृगा, क्वचिद्गृहीतव्रतेव दर्भ-चीर-जटा-बल्कल-धारिणी, अपरिमित बहलपत्रसञ्चयाऽपि सप्तपर्णभूषिता, क्रूरसत्त्वाऽपि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम ।

शर: ।" इत्यमर: । क्वचित्, अमरपतितनु: = अमराणां (देवानाम्) पति: (स्वामी, इन्द्र इति भाव:), तस्य तनु: (शरीरम्) इव, नेत्रसहस्रसंकुला=नेत्रसहस्रेण (नयनसहस्रेण) संकुला (व्याप्ता) । "आखण्डल: सहस्राक्ष" इति प्रसिद्धि: । विन्ध्याऽटवीपक्षे—नेत्राणां (जटानां, तरुमूलानामिति भाव:) सहस्रेण सङ्कुला । 'नेत्रं मथिगुणे, वस्त्रभेदे, मूले द्रुमस्य च ।" इति मेदिनी । क्वचित् नारायणमूर्ति: (विष्णुशरीरम्) इव, तमालनीला = तमाल: (तापिच्छ:) इव नीला (कृष्णवर्णा) । विन्ध्याऽटवीपक्षे—तमालै: (तापिच्छै:) नीला ।

क्वचित्, पार्थरथपताका = पार्थ: (अर्जुन:), तस्य रथ (स्यन्दन:) । तस्य पताका (वैजयन्ती) इव, वानराक्रान्ता = वानरेण (कपिना हनूमता इति भाव:) आक्रान्ता (अधिष्ठिता), अर्जुनरथ: कपिध्वज इति महाभारतप्रसिद्धि:, विन्ध्याऽटवीपक्षे = वानरै: (कपिभि:) आक्रान्ता (कृताक्रमणा) । क्वचित् अवनिपतिद्वारभूमि: = अवनिपति: राजा, तस्य द्वारभूमि: (प्रतीहारभू:) इव वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा = वेत्रलता: (वेतसवृक्षयष्टय:), तासां शतम् (बाहुल्यम्), तेन दुष्प्रवेशा (दु:खेन प्रवेष्टुं शक्या, खल् प्रत्यय:) । विन्ध्याऽटवीपक्षे—वेत्रा: (वेतसवृक्षा:), लता: (वल्ल्य:), तासां शतं (बाहुल्यम्) तेन दुष्प्रवेशा । क्वचित् विराटनगरी = विराटस्य (मत्स्यराजस्य) नगरी (पुरी) इव कीचकशताऽऽकुला = कीचकस्य (विराटश्यालकस्य) शतै: (बहुसंख्यकै: जनै:) आकुला (व्याप्ता), विन्ध्याऽटवीपक्षे—कीचकानां (वंशविशेषाणां, छिद्रेषु वायुप्रवेशेन शब्दायमानानां वंशविशेषाणामिति भाव:) शतेन (बाहुल्येन) आकुला (व्याप्ता) । "कीचका वेणवस्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धता: ।" इत्यमर: । क्वचित् अम्बरश्री: = आकाशलक्ष्मी:, इव । व्याधाऽनुगम्यमान० = व्याधेन (लुब्धकरूपधारिणा हरेण) अनुगम्यमानम् (अनुस्रियमाणम्) अत एव भयेन (भीत्या) तरलं (चञ्चलम्) तारकमृगं (मृगशिरोनक्षत्रम्) यस्यां सा । पुरा ब्रह्मा स्वकन्यां सुन्दरीं सन्ध्यां विलोक्य मदनातुरस्तामनुससार । सा च मृगीरूपेण शिवं शरणं जगाम, ब्रह्माऽपि मृगरूपेण तामनुससार । तत: शिव: ब्रह्मण: शिरश्छेदाय शरं प्रचिक्षेप । भीतो ब्रह्मा मृगशिरोनक्षत्रमधिष्ठित इति शिवपुराणे कथा विद्यते । विन्ध्याटवीपक्षे—व्याधै: (लुब्धकै:) अनुगम्यमाना:, अतएव भयेन तरलतारका: (चञ्चलकनीनिका:) मृगा: (हरिणा:) यस्यां सा । क्वचित् गृहीतव्रता = गृहीतम् (आत्तम्) व्रतं (नियम:) यया सा । अत एव दर्भचीरेत्यादि: = दर्भा: (कुशा:) चीराणि (वृक्षत्वच:) जटा: (शिफा:) वल्कलानि (वल्कानि) तानि धारयतीति दर्भ०धारिणी । उभयत्राऽर्था: समाना: ।

अपरिमित० = अपरिमित: (असंख्यात:) बहलानाम् (अत्यधिकानाम्) पत्त्राणां (पर्णानाम्)

नाई वह सहस्रों नेत्रों (जटाओं) से व्याप्त है । कहींपर तमाल-सी नीलवर्णवाली नारायणमूर्तिकी सदृश वह तमाल (तापिच्छ) वृक्षोंसे नीलवर्णवाली है । कहींपर वानर—(हनूमान्) की मूर्तिसे युक्त अर्जुनकी रथपताकाकी समान वह वानरोंसे आक्रान्त है । कहींपर सैकड़ों बेतकी छड़ियोंसे दु:खसे प्रवेशयोग्य राजाकी द्वारभूमिकी सदृश वह सैकड़ों बेतकी लताओंसे दुष्प्रवेश्य है । कहींपर कीचक (विराटके साले) के सैकड़ों पुरुषोंसे व्याप्त विराट राजाकी नगरीकी समान वह सैकड़ों कीचकों (वंशविशेषों) से व्याप्त है । कहींपर व्याधरूपधर पीछा किया गया और चञ्चल तारकमृग (मृगशिरानक्षत्र) से युक्त आकाशलक्ष्मीकी सदृश वह व्याधसे पीछा किये गये चञ्चल नेत्रोंकी पुतलियोंवाले मृगोंसे युक्त है । कहींपर व्रत लेनेवाली स्त्रीकी समान वह कुश, चीर, जटा और वल्कलको धारण कर रही है । असंख्य और अत्यधिक पत्त्रसमूहोंसे युक्त होकर भी वह सप्तपर्णों (सप्तपर्ण, छतिवन वृक्षों) से

तस्याञ्च दण्डकारण्यान्तःपाति सकलभुवनविख्यातम् उत्पत्तिक्षेत्रमिव भगवतो धर्म्मस्य, सुरपति-प्रार्थना-पीत-सकल-सागर-सलिलस्य मेरु-मत्सराद् गगनतल-प्रसारित-शिरःसहस्रेण दिवसकर-रथागमन-पथमपनेतुमभ्युद्यतेन अवगणितसकलसुर-वचसा विन्ध्यगिरिणाप्यनुल्लङ्घिताज्ञस्य जठरानल-जीर्ण-वातापिदानवस्य सुरासुर-मुकुट-मकरपत्र-कोटि-चुम्बितचरण-रजसो

सञ्चयः (समूहः) यस्यां सा । तथाऽपि सप्तपर्णोपशोभिता = सप्तभिः पर्णैः (पत्रैः) उपशोभिता, अत्र विरोधः, तत्परिहारः—सप्तपर्णैः (विषमच्छदैर्वृक्षैः) उपशोभिता (शोभोपसम्पन्ना) । "सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः ।" इत्यमरः । क्रूरसत्त्वा = क्रूराः (घातुकाः) सत्त्वाः (जन्तवः, व्याघ्रादय इति भावः) यस्यां सा, तथाऽपि मुनिजनसेविता "सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु ।" इत्यमरः । मुनिजनसेविता = मुनिजनैः (वशिष्ठादिवाचंयमजनैः) सेविता (आश्रिता) । अत्राऽपि विरोधाभासः । पुष्पवती = आर्तववती, तथाऽपि पवित्रा = प्रयता, अत्राऽपि विरोधः । परिहारस्तु—पुष्पवती= पुष्पाणि (कुसुमानि) सन्ति यस्यां सा, मतुप् प्रत्ययः, स्त्रीत्वविवक्षायाम् "उगितश्चे"ति ङीप् । "पुष्पं विकासिकुसुमस्त्रीरजःसु नपुंसकम्" । इति मेदिनी । "अथ रजस्वला । स्त्री धर्मिण्यविरात्रेयी मलिनी पुष्पवत्यपि ।" इत्यमरः । तादृशी विन्ध्याऽटवी = विन्ध्यपर्वतवनम् । नामेति प्रसिद्धौ । अस्ति = विद्यते ।

तस्यां = विन्ध्याऽटव्याम् । दण्डकाऽरण्याऽन्तःपाति = दण्डकाऽरण्यस्य (दण्डकवनस्य) अन्तःपाति (अभ्यन्तरवर्ति) । "आश्रमपदम्" इत्यस्य विशेषणम् । एवं परत्राऽपि । सूर्यवंशोत्पन्नः कश्चिद्दण्डको नाम राजा शुक्राचार्यपुत्रीमरजां नाम प्रसभमुपभुक्तवान् । ततः कुपितः शुक्रस्तमशपत्—अचिरात्तव निधनं भवेत्, सप्ताहाभ्यन्तरे तव राज्यं चाऽरण्यभावं प्राप्नुया"दिति कथा वाल्मीकिरामायणस्था । सकलभुवनविख्यातं = सकलानि (समस्तानि) यानि भुवनानि (लोकाः), तेषु विख्यातम् (प्रसिद्धम्) । भगवतः=ऐश्वर्यादिसम्पन्नस्य, धर्मस्य = सुकृतस्य, उत्पत्तिक्षेत्रं=जन्मस्थानम्, इव । सुरपतीति० = सुरपतिः (इन्द्रः) तस्य प्रार्थनया (याचनया) पीतं (धयितम्) सकलं (समस्तम्) सागरजलं (समुद्रसलिलम्) येन, तस्य, "अगस्त्यस्य" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । समुद्रजलाऽभ्यन्तरवर्तिनां कालेयनामकानामसुराणां संहाराऽर्थं देवेन्द्रप्रार्थनया महर्षिरगस्त्यः समुद्रजलं पपाविति महाभारतस्था कथाऽत्राऽनुसन्धेया । मेरुमत्सरात् = मेरोः (हेमाद्रेः) मत्सरात् (उन्नतिरूपशुभद्वेषात्), "मत्सरोऽन्यशुभद्वेष" इत्यमरः । गगनतलेत्यादिः = गगनतले (आकाशतले) प्रसारितं (विस्तारितम्) विकटं (विकृतम्) शिरःसहस्रं (शिखरसहस्रम्) येन, तेन । दिवसकरेत्यादिः = दिवसकरस्य (सूर्यस्य) रथस्य (स्यन्दनस्य) या गतिः (गमनम्) तस्याः पन्थाः (मार्गः), तम् । 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे" इति सूत्रेण समासाऽन्तः अप्रत्ययः । अच्प्रत्यय इति लिखन्तष्टीकाकारा भ्रान्ताः । तं च गमनपथम्, अपनेतुं = निवारयितुं, निरोद्धुमिति भावः । अभ्युद्यतेन = प्रवृत्तेन । अत एव अवगणितसकलसुरवचसा = अवगणितानि (अनादृतानि) सकलानां (समस्तानाम्) सुराणां (देवानाम्) वचांसि (वचनानि) येन, तेन । तादृशेन विन्ध्यगिरिणा = दक्षिण (विन्ध्य) पर्वतेन = अपि, अनुल्लङ्घिताऽऽज्ञस्य = अनुल्लङ्घिता (अनतिक्रान्ता) आज्ञा

शोभित हो रही है । क्रूर जन्तुओंसे युक्त होकर भी जो मुनिजनोंसे सेवित है । पुष्पवती (फूलोंवाली) वा स्त्रीरजसे युक्त होकर भी पवित्र, विन्ध्यपर्वतकी अटवी (वन) है ।

उस (विन्ध्याऽटवी) में दण्डकारण्यका अन्तर्गत, सब लोकोंमें प्रसिद्ध, भगवान् धर्मके उत्पत्तिस्थानके समान, इन्द्रकी प्रार्थनासे समुद्रके सम्पूर्ण जलको पीनेवाले, सुमेरुकी ईर्ष्यासे आकाशतलमें विकृत हजारों चोटियोंको फैलानेवाले सूर्यके रथके गमनमार्गको रोकनेके लिए तत्पर अत एव समस्त देवताओंके वचनको तिरस्कार करनेवाले विन्ध्य पर्वतने भी जिनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं किया था, उदराऽग्निसे वातापि नामके दानवको

दक्षिणाशा-मुख-विशेषकस्य सुरलोकादेकहुङ्कारनिपातित-नहुषप्रकटप्रभावस्य भगवतो महामुने-रगस्त्यस्य-भार्य्यया लोपामुद्रया स्वयमुपरचितालबालकैः करपुटसलिलसेक-संवर्द्धितैः सुत-निर्विशेषैरुपशोभितं पादपैः, तत्पुत्रेण च गृहीतव्रतेनाषाढिना पवित्रभस्म-विरचित-त्रिपुण्ड्का-

(आदेशः) यस्य, तस्य । "अगस्त्यस्ये" त्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । "सुमेरुमिव मामपि प्रदक्षिणीकुरु" इति विन्ध्यस्याऽनुरोधे भास्करेणाऽवधीरिते सति विन्ध्यः सूर्यमार्गं स्व शिखरनिकर-प्रवर्द्धनपूर्वकमवरुरोध । ततो देवप्रार्थनया तत्राऽगस्त्यमुनिः समाययौ, विन्ध्यगिरिश्च तं प्रणनाम, "यावदहं न प्रत्यागच्छेयं तावत्त्वं प्रणतस्तिष्ठेरिति मुनिवचसा स तथैव तस्थौ, सोऽपि पुनर्न प्रत्याययाविति पौराणिकी कथाऽनुसन्धेया । जठराऽनलजीर्णवातापिदानवस्य = जठराऽनलेन (उदराऽग्निना) जीर्णः (पाकविषयीकृतः) वातापिदानवः (वातापिनामको दनुजः) येन, तस्य । पुरा इल्वलो नाम दानवो ब्राह्मणवेषं विधाय मेषरूपविधायिनः स्वकनीयसो वातापिदानवस्य मांसेन निमन्त्रिता-न्बहून्ब्राह्मणान्भोजयामास । भोजनाऽनन्तरम् "एहि वातापे" इति मायाविना तेनेल्वलेनाकारितो-वातापिर्ब्राह्मणानामुदरं भित्त्वा निश्चक्राम । ततश्च तादृशं ब्राह्मणकदर्थनं दृष्ट्वा दयमानानां देवानां प्रार्थनयाऽगस्त्यो वातापिं जरयामास, जघान चेल्वलमिति महाभारतीया कथाऽनुसन्धेया । सुराऽसुरे-त्यादिः = सुराः (देवाः) असुराः (सुरविरोधिनो दैत्यादयः) तेषां मुकुटेषु (किरीटेषु) यानि मकरपत्त्राणि (मकराऽऽकाराः पक्षाः) तेषां कोटयः (अग्रभागाः) ताभिश्चुम्बितानि (संयोगविषयी कृतानि) चरणरजांसि (पादधूलयः) यस्य, तस्य । सुराऽसुरसम्मानभाजनस्येति भावः । दक्षिणा-मुखविशेषकस्य = दक्षिणा (अवाची दिक्), तस्या मुखं (वदनम्) तस्य विशेषकस्य (तिलक रूपस्य) । अत्राऽगस्त्ये विशेषकत्वारोपस्य दक्षिणदिशि वधूत्वारोपः कारणमिति परम्परितरूपकम-लङ्कारः । सुरलोकात् = देवलोकात्, स्वर्गादिति भावः । एकहुङ्कारेत्यादिः = एकहुङ्कारेण (एक-हुङ्कृत्या) निपातितः (भ्रंशितः) नहुषस्य (नहुषभूपस्य चन्द्रवंशोत्पन्नस्य कस्यचिद्राज्ञः) प्रकटः (व्यक्तः) प्रभावः (महत्त्वम्) येन, तस्य । भगवतः = षड्विधैश्वर्यसम्पन्नस्य, महामुनेः = महर्षेः, अगस्त्यस्य = कुम्भसंभवस्य । पुरा वृत्रवधाद् ब्रह्महत्यया देवेन्द्रे स्वर्गराज्यच्युते सति देवै-रराजकत्वपरिहाराय भूपो नहुषः स्वर्गराज्येऽभिषिक्तस्ततो राजमदेन स इन्द्राणीं चकमे । ततश्च सुरगुरुमन्त्रणया शच्या महर्षिभिरूढां शिबिकामारुह्य मत्प्रासादमायातु भवान्, अहं त्वदीया भवामी" ति सन्दिष्टम् । ततः स महर्षिभिरूढया शिबिकया शचीसमीपमागन्तुमुद्यतः । शिबिकावहने मन्दगति-मगस्त्यं त्वराऽर्थं "सर्प सर्पे"ति ब्रुवन् पदाऽभिजघान । ततश्च महर्षिणा "सर्पो भवे"ति शप्तः स सर्पो जातः, तं च भगवान् श्रीकृष्णो निजकरकमलस्पर्शेन उद्धारेति महाभारतीया कथाऽनुसन्धेया । तादृशस्य महामुनेः, भार्यया = पत्न्या, लोपामुद्रया = राजकुमार्या, स्वयम् = आत्मना, उपरचिताऽऽल-वालकैः = उपरचितानि (परिनिर्मितानि) आलवालकानि (आवापाः) येषां, तैः । करपुटसलिल-सेकसंवर्द्धितैः = करपुटेन (हस्तयुग्मेन) यः सलिलसेकः (जलसेचनम्), तेन संवर्द्धिताः (सम्यग्वृद्धिं प्रापिताः), तैः, सुतनिर्विशेषैः = पुत्रसदृशैः, पादपैः = वृक्षैः, उपशोभितं = सञ्जातशोभम् । "तत्पुत्रेण दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम्", अत्र दृढदस्योर्विशेषणानि—गृहीतव्रतेन = गृहीतं (स्वीकृतम्) व्रतं (ब्रह्मचर्यनियमः) येन, तेन । आषाढिना = आषाढः (पलाशदण्डः) अस्याऽस्तीति, तेन पलाशदण्डयुक्तेन । "पालाशो दण्ड आषाढो व्रते" इत्यमरः । पवित्रभस्मेत्यादिः = पवित्रं (प्रयतम्)

पचानेवाले, जिनके चरणोंकी धूलको देवता और दैत्योंके किरीटस्थित मकराकार पत्त्रोंके अग्रभागने स्पर्श कर लिया था, दक्षिणदिशारूप स्त्रीके मुखके तिलकके सदृश, एक हुङ्कारसे ही देवलोक से राजा नहुषके प्रकाशित प्रभावको गिरानेवाले भगवान् महामुनि अगस्त्यकी पत्नी लोपामुद्रासे जिनके आलवाल (क्यारी) की रचना की थी, अञ्जलिसे जलके सेचनसे बढ़ायेगये पुत्रोंके समान वैसे वृक्षोंसे शोभा सम्पन्न, तथा ब्रह्मचर्य व्रतको ग्रहण करनेवाले

भरणेन कुश-चीवर-वाससा मौञ्जमेखलाकलितमध्येन गृहीत-हरितपर्णपुटेन प्रत्युटजमटता भिक्षां दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम्, अतिप्रभूतेध्माहरणाच्च यस्येध्मवाह इति पिता द्वितीयं नाम चकार, दिशि दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः श्यामलीकृत-परिसरं सरिता च कलशयोनि-परिपीतसागरमार्गानुगतयेव बद्धवेणिकया गोदावर्या परिगतमाश्रमपदमासीत् ।

यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदन-लक्ष्मी-विभ्रमविरामो रामो महा-मुनिमगस्त्यमनुचरन् सह सीतया लक्ष्मणोपरचित-रुचिर-पर्णशालः पञ्चवट्यां कञ्चित् कालं

यत् भस्म (भूतिः) तेन विरचितं (विनिर्मितम्) त्रिपुण्ड्रकम् (रेखात्रयसमाहार) एव आभरणम् (अलङ्कारः) येन, तेन । कुशचीवरवाससा = कुशमयं (दर्भमयम्) चीवरवासः (मुनिवस्त्रम्) यस्य, तेन । मौञ्जमेखलाकलितमध्येन = मौञ्जी (मुञ्जमयी) या मेखला (रशना) तया कलितः (बद्धः) मध्यः (अवलग्नम्) यस्य, तेन ।

"मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ।
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या, वैश्यस्य शणतान्तवी ॥" मनुः २–४२ ।

गृहीतहरितपर्णपुटेन = गृहीतम् (आत्तम्) हरितं (पालाशवर्णम्) पर्णपुटं (पत्रपुटकम्) येन, तेन । प्रत्युटजं = प्रतिपर्णशालम् । उटजम् उटजं प्रति, यथार्थेऽव्ययीभावः । "पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः । भिक्षां = भिक्षाऽर्थम्, अटता = गच्छता । दृढदस्युनाम्ना = दृढदस्युनामकेन, अगस्त्य-पुत्रेण, पवित्रीकृतं = प्रयतीकृतम् । अतिप्रभूतेध्माहरणात् = अतिप्रभूतानि (अतिशयप्रचुराणि) यानि इध्मानि (काष्ठानि) तेषाम् आहरणात् (आनयनात्) पिता = जनकः, अगस्त्यमुनिः, यस्य = पुत्रस्य इध्मवाह इति, इध्मानि वहतीति, "कर्मण्यण्" इति अण्प्रत्ययः, उपपदसमासः । द्वितीयं = द्वयोः पूरणम्, नाम = अभिधानं, चकार = विदधौ । दिशि दिशि = प्रतिदिशं, "नित्यवीप्सयोः" इति द्विरुक्तिः । शुकहरितैः = शुका इव हरितानि तैः, "उपमानानि सामान्यवचनैः" इति समासः, कीरहरितवर्णैः, कदलीवनैः = रम्भाविपिनैः, श्यामलीकृतपरिसरं = श्यामीकृतपर्यन्तभागम्, श्यामलीकृतः परिसरो यस्य तत् "पर्यन्तभूः परिसरः" इत्यमरः । कलशयोनीत्यादिः = कलशः (कुम्भः) योनिः (उत्पत्ति-कारणम्) यस्य सः, अगस्त्य इति भावः । "अगस्त्यः कुम्भसंभव" इत्यमरः । कलशयोनिना (अगस्त्येन) परिपीतः (चुलुकीकृतः) यः सागरः (समुद्रः), तस्य मार्गः (पन्थाः) तम् अनुगतया (अनुसृतया) अत एव बद्धवेणिकया = बद्धा (नद्धा) वेणिका (प्रवाहः, केशरचना च) यया, तया गोदावर्या = गोदावरीनाम्न्या, सरिता = नद्या, परिगतं = परिवेष्टितम् । अगस्त्येन परिपीतत्वेन सागरलोपशङ्कया पतिव्रतया गोदावर्या बद्धवेणीकत्वेन पतिमार्गाऽनुसरणं कर्तव्यमित्युत्प्रेक्षाभावः ।

यत्र = यस्मिन् आश्रमपदे, दशरथवचनं = दशरथस्य (स्वपितुः) वचनं (वचः, चतुर्दशवर्ष-पर्यन्तं वनवासरूपम्), अनुपालयन् = समाचरन्, अतः उत्सृष्टराज्यः = उत्सृष्टं (त्यक्तम्) राज्यम् (राजकर्म) येन सः । दशवदनलक्ष्मीविभ्रमविरामः = दशवदनः (दशाननः, रावण इति भावः)

पलाशदण्डको लेनेवाले, पवित्र भस्मके त्रिपुण्ड्रको आभूषणके समान धारण करनेवाले, कुशमय मुनिवस्त्रको पहने हुए, मूँजकी मेखलासे कमरको बाँधनेवाले, हरे पत्तोंका दोना लिये हुए, प्रत्येक पर्णशालामें भिक्षाके लिये जाते हुए तथा अत्यधिक इन्धनको लानेसे पिता (अगस्त्य) ने जिनका "इध्मवाह" ऐसा दूसरा नाम रक्खा था, ऐसे दृढ दस्यु नामके अगस्त्यपुत्रसे पवित्र किया गया, प्रतिदिशामें तोतेके समान हरे केलेके वनोंसे जिस (आश्रम) की पर्यन्त भूमि श्यामवर्णवाली हुई थी और अगस्त्यसे पीये गये समुद्रके मार्गका अनुसरण करनेवाली अतः वेणी (चोटी वा प्रवाह) बाँधनेवाली गोदावरीसे परिवेष्टित आश्रमस्थान था ।

जिस आश्रमस्थानमें दशरथके वचनका पालन करते हुए, राज्यको छोड़ने वाले, रावण की राज्यलक्ष्मी के विलासको समाप्त करनेवाले पञ्चवटीमे लक्ष्मणसे रचित सुन्दर पर्णशालामें महामुनि अगस्त्यकी सेवा करते

सुखमुवास। चिरशून्येऽद्यापि यत्र शाखानिलीन-निभृत-पाण्डु-कपोतपङ्क्तयोऽमल लग्नतापसाग्निहोत्र-धूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरवः। बलिकर्म्म-कुसुमान्युद्धरन्त्याः सीतायाः करतलादिव सङ्क्रान्तो यत्र रागः स्फुरति लताकिसलयेषु। यत्र च पीतोद्गीर्णजलनिधि-जलमिव मुनिना निखिलमाश्रमे पान्तर्वर्तिषु विभक्तं महाह्रदेषु। यत्र च दशरथ-सुत-निशितशरनिकर-निपात-निहत-रजनीचर-बल-बहल-रुधिर-सिक्त-मूलमद्यापि तद्रागाविद्ध-निर्गतपलाशमिवाभाति नव-किसलयमरण्यम्। अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनव-जलधर-निवह-निनादमाकर्ण्य

तस्य या लक्ष्मीः (श्रीः) तस्याः विभ्रमस्य (विलासस्य) विरामः (अवसानं, समाप्तिरिति भावः) यस्मात् सः। तादृशो रामः = रामचन्द्रः, महामुनिं = महर्षिम्। अगस्त्यं = कुम्भसंभवम्, अनुचरन् = अनुसरन्, सीतया = जानक्या, सह = समम्, लक्ष्मणोपरचितरुचिरपर्णशालः=लक्ष्मणेन (सौमित्रिणा) उपरचिता (उपनिर्मिता) रुचिरा (मनोहरा) पर्णशाला (उटजः) यस्य सः। पञ्चवट्यां = पञ्च-प्रकारवृक्षविशेषयुक्ते जनस्थानाऽन्तर्गतप्रदेशे। कंचित्कालं = कंचित्समयं, सुखं = सानन्दम्, उवास = वासं चकार, "वस निवासे" इति धातोर्लिट्। "लिटयभ्यासस्योभयेषाम्" इत्यभ्यासस्य सम्प्रसारणम्। "विरामो राम" इत्यत्र यमकालङ्कारः। चिरेति। चिरशून्ये = बहुसमयान्मुनिरहिते, यत्र = यस्मिन् आश्रमपदे, शाखानिलीनेत्यादिः = शाखासु (विटपेषु) निलीनाः (संलग्नाः) कपोतानां (पारावतानाम्) पङ्क्तयः (राजयः) येषु ते। अमलेत्यादिः = अमला (निर्मला) लग्ना (सम्बद्धा) तापसानाम् (तपस्विनाम्) यत् अग्निहोत्रं (यज्ञविशेषः) तस्य धूमराजिः (धूमपङ्क्तिः) येषु ते। तादृशा इव, तरवः = वृक्षाः, लक्ष्यन्ते = दृश्यन्ते। "लक्ष दर्शनाऽङ्कनयोः" इति धातोः कर्मणि लट्। बलिकर्मेति। बलिकर्मकुसुमानि=बलिकर्मणि (पूजाक्रियायाम्) कुसुमानि (पुष्पाणि), उद्धरन्त्याः= संचिन्वत्याः, सीतायाः = जानक्याः, करतलात् = हस्ततलात्, लताकिसलयेषु = वल्लीपल्लवेषु, संक्रान्त इव = कृतसंक्रम इव, रागः = लौहित्यं, स्फुरति = शोभते। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

यत्र चेति। यत्र = आश्रमपदे। मुनिना = अगस्त्येन, निखिलं = समस्तम्। पीतोद्गीर्णजलनिधि-जलं = पीतोद्गीर्णं (प्राक् पीतं = धयितम्) पश्चात् = उद्गीर्णं (वान्तम्) "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराण-नवकेवलाः समानाऽधिकरणेन" इति पूर्वकालसमासः। पीतोद्गीर्णं च तत् जलनिधिजलम् (समुद्र-सलिलम्), आश्रमोपान्तवर्तिषु = आश्रमस्य (स्ववासस्थानस्य) उपान्तः (प्रान्तभागः) तद्वर्तिषु (तत्स्थायिषु)। महाह्रदेषु = गभीरजलाशयेषु। विभक्तम् इव = कृतविभागम् इव, वर्तत इति शेषः। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

यत्र चेति। दशरथसुतेत्यादिः० = दशरथसुतौ (रामलक्ष्मणौ) तयोः निशिताः (तीक्ष्णाः) ये शराः (बाणाः), तेषां निकरः (समूहः) तस्य निपातेन (प्रहारेण) निहताः (व्यापादिताः) ये रजनीचराः (रात्रिश्चराः, राक्षसा इत्यर्थः) तेषां बलं (सैन्यम्) तस्य बहलं (प्रचुरम्) यत् रुधिरं (रक्तम्) तेन सिक्तम् (उक्षितम्) मूलम् (अधोभागः) यस्य तत्। अत एव अद्याऽपि = इदानीमपि, तद्रागाऽऽविद्धनिर्गतपलाशं = तस्य (रुधिरस्य) रागः (लौहित्यम्) तेन आविद्धानि

हुए रामचन्द्रजीने सीताजीके साथ कुछ समय तक सुखपूर्वक निवास किया था। बहुत कालसे शून्य जहाँपर आज भी शाखाओंमें लीन सफेद कबूतरोंकी पङ्क्तिवाले वृक्ष तपस्वियोंके अग्निहोत्रके निर्मल धूमपङ्क्तिसे युक्तके समान देखे जाते हैं। जहाँपर पूजाके लिए फूलोंको चुनती हुई सीताके करतलसे लालिमा मानों संक्रान्त होकर लता और पल्लवोंमें शोभित हो रही है। जहाँ पहले पीकर पीछे उगले हुए समुद्रके समस्त जलको मानों अगस्त्य मुनिसे आश्रमके समीप रहनेवाले बड़े जलाशयोंमें विभाग कर दिया है। जहाँ नये किसलयोंवाला जङ्गल रामके तीखे बाणोंके प्रहारसे मारी गई राक्षससेनाके प्रचुर रुधिरसे सींचे गये मूलोंसे युक्त होकर आज भी उस रुधिरकी लालिमासे युक्त होकर निकले हुए पत्तोंवाला-सा मालूम होता है। जहाँ अभी भी वर्षा ऋतुमें गम्भीर मेघगर्जनको

भगवतो रामस्य त्रिभुवन-विवर-व्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो न गृह्णन्ति शष्प-कवलमजस्रमश्रु-जल-लुलित-दृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जराजर्ज्जरित-विषाणकोटयो जानकीसंवर्द्धिता जीर्णमृगाः । यस्मिन्ननवरत-मृगया-निहत-शेष-वनहरिण-प्रोत्साहित इव कृतसीताविप्रलम्भः कनकमृगो राघवमतिदूरं जहार । यत्र मैथिलीवियोगदुःखदुःखितौ रावण-विनाश-सूचकौ चन्द्रसूर्य्याविव कबन्धग्रस्तौ समं रामलक्ष्मणौ त्रिभुवनभयं महच्चक्रतुः । अत्यायतश्च यस्मिन्

(युक्तानि) निर्गतानि (निःसृतानि) पलाशानि (पत्राणि) यस्मिस्तत् इव, नवकिसलयं = नवानि (नूतनानि) किसलयानि (पल्लवानि) यस्मिंस्तत् । तादृशम् अरण्यं = विपिनम्, आभाति = संशोभते । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । **अधुनाऽपीति** । अधुनाऽपि = इदानीमपि, **यत्र** = आश्रमपदे, जलधर-समये = जलधरस्य (मेघस्य) समये (काले) वर्षर्ताविति भावः । गम्भीरं = गभीरम्, अभिनव-जलधरनिवहनिनादम् = अभिनवाः (नवीनाः) ये जलधराः (मेघाः), तेषां निवहः (समूहः) तस्य निनादं (गर्जनम्) आकर्ण्य = श्रुत्वा भगवतः = ऐश्वर्यसम्पन्नस्य, रामस्य = रामचन्द्रस्य, त्रिभुवनविवरव्यापिनः = त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रिभुवनं (त्रैलोक्यम्), "तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च" इति समासस्तस्य "संख्यापूर्वोद्विगुः "इति द्विगुसंज्ञा, "स नपुंसकम्" इति तस्य नपुंसक-त्वम् । त्रिभुवनस्य (त्रैलोक्यस्य) विवराणि (छिद्राणि) तानि व्याप्नोतीति तच्छीलस्तस्य, त्रैलोक्य-च्छिद्रव्यापनशीलस्येति भावः । तादृशस्य चापघोषस्य = धनुःशब्दस्य, "स्मरन्त" इत्यस्य योगे "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी । स्मरन्तः = आध्यायन्तः अजस्रं = निरन्तरम्, अश्रुजल-लुलितदृष्टयः = अश्रुजलेन (अस्रसलिलेन) लुलिताः (व्याकुलिताः) दृष्टयः (नेत्राणि) येषां ते । अतः दश = दशसंख्यकाः । दिशः = काष्ठाः, शून्याः = सीतारामलक्ष्मणरहिताः, वोक्ष्य = दृष्ट्वा, जराजर्जरित-विषाणकोटयः = जरसा (वार्द्धक्येन) जर्जरिताः (विशीर्णाः) विषाणानां (शृङ्गाणाम्) कोटयः (अग्रभागाः) येषां ते । तादृशा जानकीसंवर्द्धिताः = जानक्या (सीतया) संवर्द्धिताः (बालतृण-सलिलप्रदानेन वृद्धिं प्रापिताः) जीर्णमृगाः = वृद्धहरिणाः, शष्पकवलं = बालतृणग्रासम्, न गृह्णन्ति = न आददते, सीतारामादीनां शोकेनेति भावः । अत्र रामचापघोषस्मृतेः स्मरणाऽलङ्कारः, शष्पकवलग्रह-णस्य सम्बन्धेऽपि तदसम्बन्धवर्णनादतिशयोक्त्यलङ्कारस्तथा च द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः ।

यस्मिन्निति । यस्मिन् = वने । अनवरतेत्यादिः = अनवरतं (निरन्तरं यथा तथा) या मृगया (आखेटक्रीडा), तस्यां निहताः (व्यापादिताः) तेभ्यः शेषः (अवशिष्टाः) ये वनहरिणाः (अर-ण्यमृगाः) तैः प्रोत्साहितः (उत्साहं प्रापित) इव, कृतसीताविप्रलम्भः = कृतः (विहितः), सीतायाः (जानक्याः) विप्रलम्भः (विप्रयोगः) येन सः । कनकमृगः = सुवर्णहरिणः, मारीच इति भावः । राघवं = रामचन्द्रम्, अतिदूरम्=अतिशयविप्रकृष्टप्रदेशं, जहार=हृतवान् । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

यत्रेति । यत्र = पञ्चवट्यां, मैथिलीवियोगदुःखदुःखितौ = मैथिल्याः (वैदेह्याः) वियोगेन (विरहेण) यद्दुखं (क्लेशः) तेन दुःखितौ (सञ्जातदुःखौ), रावणविनाशसूचकौ = रावणस्य (दशवदनस्य) यो विनाशः (ध्वंसः) तस्य सूचकौ (ज्ञापकौ) रामलक्ष्मणौ = कौशल्यासुमित्रा-तनयौ, चन्द्रसूर्यौ = इन्दुभास्करौ, इव, कबन्धग्रस्तौ = कबन्धेन (राहुणा, रामलक्ष्मणपक्षे)—दानव-

---

सुनकर भगवान् रामके त्रैलोक्यके छिद्रोंको व्याप्त करनेवाले चापके शब्दका स्मरण करते हुए वार्द्धक्यसे जीर्ण सींगोंके अग्रभागवाले सीताजीसे बढ़ाये गये बूढ़े मृग दशों दिशाओंको शून्य देखकर निरन्तर आँसूसे व्याप्त नेत्रोंवाले होकर घासकी कौरको ग्रहण नहीं करते हैं । जिसमें लगातार शिकार करनेसे मारे गये (मृगों) से बचे हुए वनके मृगोंसे प्रोत्साहित-सा होकर सीताका वियोग करनेवाला सोनेका मृग (मारीच) रामचन्द्रको बहुत दूर लेगया । जहाँ सीताके वियोगके दुःखसे दुःखित रावण-विनाशके सूचक चन्द्र और सूर्यके समान कबन्ध (राम और लक्ष्मणके पकड़नेवाला दनु वा राहु) से ग्रस्त राम और लक्ष्मणने एक ही बार त्रैलोक्यमें अधिक भय कर

दशरथसुत-शर-निपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्य-प्रसादनागतनहुषाजगर-कायशङ्कामकरो-दृषिजनस्य। जनकतनया भर्त्रा विरहविनोदनार्थमुटजाभ्यन्तरलिखिता यत्र रामनिवास-दर्शनोत्सुका पुनरिव धरणीतलादुल्लसन्ती वनचरैरद्याप्यालोक्यते।

तस्य च सम्प्रत्यपि प्रकटोपलक्ष्यमाण-पूर्ववृत्तान्तस्यागस्त्याश्रमस्य नातिदूरे जलनिधि-पानप्रकुपित-वरुणप्रोत्साहितेन अगस्त्यमत्सरात्तदाश्रमसमीपवर्त्यपर इव वेधसा जलनिधिरुत्पा-

---

कबन्धेन, ग्रस्तौ, चन्द्रसूर्यपक्षे — कवलितौ, रामलक्ष्मणपक्षे—गृहीतौ। तादृशौ रामलक्ष्मणौ, समं = युगपत्, महत् = प्रचुरं, त्रिभुवनभयं=त्रिभुवनस्य (लोकत्रयस्य) भयं (भीतिम्) चक्रतुः = कृतवन्तौ।

अत्यायतश्चेति। यस्मिन् = यत्र, दशरथसुतशरनिपातितः = दशरथसुतस्य (रामचन्द्रस्य) शराः (बाणाः) तैः निपातितः (छित्वाऽधःपातितः), योजनबाहोः = क्रोशचतुष्टयविस्तृतभुजस्य, दनुकबन्धस्येति भावः। बाहुः = भुजः। ऋषिजनस्य = मुनिजनस्य, अगस्त्येत्यादिः = अगस्त्यस्य-(कुम्भसंभवस्य ऋषेः, सर्पो भवेति नहुषस्य शप्तुरिति भावः) प्रसादनं (प्रसन्नीकरणम्)' तदर्थम् आगतः (प्राप्तः) यो नाहुषः (नहुषसम्बन्धी) अजगरकायः (वाहसशरीरम्) तस्य शङ्काम् (सन्देहम्) अकरोत् = कृतवान्। "अजगरे शयुर्वाहस इत्युभौ" इत्यमरः। अत्र दनुकबन्धबाहौ नहुषस्याऽजगरकायशङ्कया भ्रान्तिमदलङ्कारः। तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—"साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धि-र्भ्रान्तिमान्प्रतिभोत्थितः।" इति।

जनकतनयेति। यत्र = आश्रमपदे। जनकतनया = सीता, भर्त्रा = पत्या, रामचन्द्रेणेति भावः। विरहविनोदनार्थं = विरहस्य (वियोगस्य) विनोदनाऽर्थम् (निवारणाऽर्थम्)। उटजाऽभ्यन्तर-लिखिता = उटजस्य (पर्णशालायाः) अभ्यन्तरे (मध्ये) लिखिता (चित्रीकृता सती), रामनिवास-दर्शनोत्सुका = रामस्य (रामचन्द्रस्य) निवासः (वासस्थानम्) तस्य दर्शनं (विलोकनम्), तस्मिन् उत्सुका (उत्कण्ठिता) सती पुनः = भूयः, धरणीतलात्=धरण्याः (भूमेः) तलात् (अधोभागात्) पातालादिति भावः। "ऊधः स्वरूपयोरस्त्री तलम्" इत्यमरः। उल्लसन्ती इव = उद्दीप्यमाना इव, वनचरैः = किरातैः, अद्य अपि = अधुना अपि, आलोक्यते = दृश्यते। अत्र पुनः पदेन सीता यथा पुरा यज्ञभूमिकर्षणसमये पातालादुत्थिता, लोकाऽपवादभीतेन रामेण पुनः सीताशुद्धिनिश्चयार्थं सभायामायो-जिता, तस्या भूयो भूतलप्रवेशः, रामनिवासदर्शनोत्कण्ठया पुनरपि उल्लसन्तीव आलोक्यत इत्यत्र उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

तस्य = पूर्वोक्तस्य, सम्प्रति अपि = अधुना अपि, प्रकटोपलक्ष्यमाणेत्यादिः = प्रकटम् (व्यक्तं यथा तथा) उपलक्ष्यमाणः (ज्ञायमानः) पूर्ववृत्तान्तः (प्राचीनोदन्तः) यस्य, तस्य। अगस्त्या-श्रमस्य = अगस्त्यावासस्थानस्य। नाऽतिदूरे = निकट एव, जलनिधीत्यादिः = जलनिधेः (समुद्रस्य) पानं (धयनम्) तेन हेतुना प्रकुपितः (कोपं प्रापितः) यः वरुणः (प्रचेताः) तेन प्रोत्साहितेन = प्रोत्साहं प्रापितेन, वेधसा = ब्रह्मदेवेन, अगस्त्यमत्सरात् = अगस्त्यशुभद्वेषात्, अतः अपरः = अन्यः, जलनिधिः इव = समुद्र इव, "पम्पाभिधानं पद्मसर" इति पदद्वयेन सम्बन्धः, एवं परत्राऽपि। उत्प्रेक्षा-

---

दिया था। जिसमें रामचन्द्रजीके बाणसे गिराया गया योजनबाहु (चारकोस तक लम्बे बाहुवाले) कबन्धके बाहुने ऋषियोंको अगस्त्यको प्रसन्न करनेके लिए नहुषके अजगरके शरीरकी शङ्का उत्पन्न कर दी। जहाँ पति (राम) से विरहको हटानेके लिए पर्णशालाके भीतर चित्रित सीता आज भी वनचरोंसे मानों फिर भी रामके निवासस्थल देखनेके लिए उत्कण्ठित होकर भूतल (पाताल) से निकलती हुई सी दिखाई पड़ती है।

इस समय भी जिसके पूर्व वृत्तान्त स्पष्ट रूपसे देखे जाते हैं ऐसे अगस्त्यके आश्रमसे कुछ ही दूरपर मानों समुद्रके पानसे क्रुद्ध वरुणसे उत्साहित ब्रह्माजीसे उत्पन्न अगस्त्यके मात्सर्यसे उनके आश्रमके समीप ही दूसरे

दितः, प्रलयकाल-विघट्टिताष्ट-दिग्विभाग-सन्धिबन्धं गगनतलमिव भुवि निपतितम्, आदिवराह-समुद्धृत-धरामण्डल-स्थानमिव जलपूरितम्, अनवरत-मज्जदुन्मद-शबरकामिनी-कुचकलश-लुलित-जलम्, उत्फुल्ल-कुमुद-कुवलय-कह्लारम्, उन्निद्रारविन्दमधुबिन्दुनिष्यन्दबद्धचन्द्रकम्, अलि-कुलपटलान्धकारितसौगन्धिकम्, सारसित-समद-सारसम्, अम्बुरुह-मधुपान-मत्त-कल-हंसकामि-नीकृत-कोलाहलम्, अनेक-जलचर-पतङ्गशत-सञ्चलनचलित-वाचाल-वीचिमालम्, अनिलोल्लासि-तकल्लोल-शिखर-शीकरारब्ध-दुर्दिनम्, अशङ्कितावतीर्णाभिरम्भः क्रीडारागिणीभिः स्नानसमये

लङ्कारः । प्रलयकालेत्यादिः = प्रलयकाले (संहारसमये) विघट्टिताः (नष्टाः) ये दिग्विभागाः (आशाप्रभागाः) तेषां सन्धयः (संयोगाः) तेषां बन्धः (मर्यादा) यस्मिंस्तत्, अतः भुवि = भूमौ, निपतितम् (अवस्रस्तम्) गगनतलम् = आकाशस्वरूपम्, इव । आदिवराहेत्यादिः = आदिवराहेण = विष्णोस्तृतीयाऽवतारेण, समुद्धृतं (जलाद्बहिरानीतम्) धरामण्डलस्थानम् (भूगोलप्रदेशः) इव, जलपूरितम् (सलिलपूर्णम्) ।

अनवरतेत्यादिः । अनवरतं (सततम्) मज्जन्त्यः (स्नानं कुर्वत्यः) उन्मदाः (उद्गतमदाः) याः शबरकामिन्यः (भिल्ललललनाः) तासां कुचकलशैः (स्तनकुम्भैः) लुलितम् (आलोडितम्) जलं (सलिलम्) यस्मिंस्तत् ।

उत्फुल्लेति । उत्फुल्लानि (विकसितानि) कुमुदानि (कैरवाणि) कुवलयानि (उत्पलानि) कह्लाराणि (सौगन्धिकानि) यस्मिंस्तत् । "सिते कुमुदकैरवे" इति "स्यादुत्पलं कुवलयम्" इति, "सौगन्धिकं तु कह्लारम्" इति चाऽमरः ।

उन्निद्रेति । उन्निद्राणि (विकसितानि) यानि अरविन्दानि (कमलानि) तेषां मधुबिन्दवः (मकरन्दपृषताः) तेषां निष्यन्दाः (द्रवाः) तैर्बद्धाः (कृताः) चन्द्रकाः (चन्द्राकारा मयूरमेचकाः) यस्मिंस्तत् । "समौ चन्द्रकमेचकौ" इत्यमरः ।

अलिकुलेत्यादिः । अलिकुलानां (भ्रमरवर्गाणाम्) यत् पटलं (समूहः) तेन अन्धकारितानि (सञ्जातान्धकाराणि, अप्रकाशितानीति भावः) सौगन्धिकानि (कह्लाराणि) यस्मिंस्तत् । सारसित-समदसारसम् = आरसितेन (शब्देन) सहिताः सारसिताः (शब्दायमानाः), "तेन सहेति तुल्ययोगे" इति तुल्ययोगबहुव्रीहिः, "वोपसर्जनस्ये"ति सहस्य सभावः । सारसिताः समदाः (मदसहिताः) सारसाः (पुष्कराह्वाः, पक्षिविशेषाः) यस्मिंस्तत् । अम्बुरुहेत्यादिः = अम्बुनि (जले) रोहन्तीति अम्बुरुहाणि, "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति कप्रत्ययः । बुरुहाणां (कमलानाम्) यत् मधु (पुष्परसः), तस्य पानं (धयनम्) तेन मत्ताः (मदयुक्ताः) याः कलहंसकामिन्यः (वरटाः) ताभिः कृतः (विहितः) कोलाहलः (कलकलः) यस्मिंस्तत् ।

अनेकेत्यादिः । अनेके (बहवः) ये जलचराः (मत्स्यादयो जन्तवः) पतङ्गाः (पक्षिणः, हंसादय इति भावः) तेषां शतानि (समूहाः) तेषां यत् सञ्चलनं (प्रस्फुरणम्) तेन चलिताः (क्षुब्धाः) अत एव वाचाला (शब्दायमाना) वीचिमाला (तरङ्गपङ्क्तिः) यस्मिंस्तत् ।

अनिलोल्लासितेत्यादिः । अनिलेन (वायुना) उल्लासिताः (ऊर्ध्वप्रसारिताः) ये कल्लोलाः

समुद्रके समान, मानों प्रलय समयमें आठ दिशाविभागोंका सन्धिबन्धन नष्ट होकर भूमिमें गिरे हुए आकाश तलके सदृश, आदि वराहसे उठाये गये भूमण्डलके स्थानके समान जलसे पूर्ण, लगातार स्नान करती हुई उत्कट मदवाली शबरकी सुन्दरियोंके कुचकलशोंसे आलोडित जलसे युक्त, जो विकसित कुमुद, उत्पल और रक्तकमलोंसे युक्त है, खिले हुए कमलोंके पुष्परसोंसे चन्द्रकोंसे सम्पन्न है, भौंरोंके समूहसे सौगन्धिक (कमल) अन्धकार युक्त हो गये हैं । शब्द करनेवाले मत्त सारसोंसे युक्त, कमलके पुष्परसके पानसे मत्त हँसियोंके कोलाहलसे परिपूर्ण, अनेकों जलचारी ग्राह आदि और हंस आदिके संचलनसे शोर करती हुई तरङ्ग पङ्क्तियोंसे युक्त, वायुसे उठाये गये तरङ्गके ऊँचे

वनदेवताभिः केशपाशकुसुमैः सुरभीकृतम्, एकदेशावतीर्णमुनिजनापूर्य्यमाण-कमण्डलु-कल-जलध्वनि-मनोहरम्, उन्मिषदुत्पलवनमध्यचारिभिः सवर्णतया रसितानुमेयैः कादम्ब-कदम्बकैरासेवितम्, अभिषेकावतीर्ण-पुलिन्दराज-सुन्दरी-कुच-चन्दनधूलि-धवलित-तरम्, उपान्त-केतकी-रजःपटल-बद्ध-कूल-पुलिनम्, आसन्नाश्रमागत-तापसक्षालितार्द्र-वल्कल-कषाय-पाटल-तटजलम्, उपतट-वृक्ष-पल्लवानिल-वीजितम्, अविरल-तमाल-वीथ्यन्धकारिताभिर्वलिनिर्वासितेन संचरता

(महातरङ्गाः), त एव उन्नतत्वात् शिखराणि (शृङ्गसदृशा इति भावः) तेषां सीकराः (अम्बुकणाः) तैः आरब्धं (विहितम्) दुर्दिनम् (मेघच्छन्नदिनम्) यस्मिंस्तत् । "महत्सूल्लोलकल्लोलौ" इति, "सीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः" इति चाऽमरः ।

अतो वनदेवता विशेषयति—अशङ्किताऽवतीर्णाभिः = अशङ्कितम् (शङ्कारहितं यथा तथा) अवतीर्णाभिः (कृताऽवतरणाभिः), अम्भःक्रीडारागिणीभिः = अम्भःक्रीडायां (जलकेलौ) रागिणीभिः (कृताऽभिलाषाभिः) । तादृशीभिः वनदेवताभिः (वनाऽधिदेवीभिः), स्नानसमये = मज्जनकाले, केशपाशकुसुमैः = कचसमूहपुष्पैः, सुरभीकृतं = सौगन्ध्यमापादितम् ।

एकदेशाऽवतीर्णेत्यादिः = एकदेशे (एकभागे, पम्पासरस इति शेषः) अवतीर्णाः (कृताऽवतरणाः) मुनिजनाः (तापसलोकाः) तैः आपूर्यमाणाः (संभ्रियमाणाः) ये कमण्डलवः (कुण्डयः, जलपात्रविशेषाः) तेषां कलः (मनोहरः) यो ध्वनिः (शब्दः), तेन मनोहरम् (सुन्दरम्) । "अस्त्री कमण्डलुः कुण्डी"त्यमरः ।

उन्मिषदित्यादिः । उन्मिषन्ति (विकसन्ति) यानि उत्पलानि (कुवलयानि) तेषां वनं (समूहः) तन्मध्यचारिभिः (तदन्तश्चरणशीलैः) सवर्णतया (तुल्यवर्णत्वेन सादृश्येन) समानो वर्णो येषां ते सवर्णाः, "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनसन्धिषु" इति सूत्रेण समानस्य सभावः, सवर्णस्य भावस्तत्ता, तया (तल् + टाप्) । रसिताऽनुमेयैः, रसितेन (शब्देन) अनुमेयैः (अनुमातुं योग्यैः) तादृशैः कादम्बैः = कलहंसैः, आसेवितं = पर्युपासितम् ।

अभिषेकाऽवतीर्णेत्यादिः = अभिषेकाय (स्नानाय) अवतीर्णाः (कृताऽवतरणाः) याः पुलिन्दराजस्य (म्लेच्छजातिविशेषस्य) सुन्दर्यः (स्त्रियः) तासां कुचाः (पयोधराः) तेषु ये चन्दनधूलयः (श्रीखण्डचूर्णानि) तैर्धवलिततरम् (साऽतिशयं शुक्लीकृतम्) ।

उपान्तेत्यादिः=उपान्ते (समीपे) केतकीनां (सूचीपुष्पाणाम्) रजःपटलं (परागसमूहः) तेन बद्धं (संबद्धम्) कूले (तटे) पुलिनं (जलादचिरनिर्गततटम्) यस्मिंस्तत् ।

आसन्नाश्रमागतेत्यादिः = आसन्नाः (निकटवर्तिनः) ये आश्रमाः (मुनिवासस्थानानि) तेभ्य आगताः (आयाताः) ये तापसाः (तपस्विनः) तैः क्षालितानि (धौतानि) अत आर्द्राणि (क्लिन्नानि) यानि वल्कलानि (वल्कानि, वृक्षत्वङ्निर्मितवस्त्राणीति भावः) तैः कषायं (तुवरम्) पाटलं (श्वेतरक्तम्) तटजलं (तीरसलिलम्) यस्मिंस्तत् ।

उपतटेत्यादिः = तटस्य समीपे उपतटम् "अव्ययं विभक्ती"त्यादिनाऽव्ययीभावसमासः । उपतटं ये वृक्षाः (तरवः) तेषां पल्लवानि (किसलयानि) तैः योऽनिलः (वायुः) तैः वीजितम् (कृत-

---

भागोंके जलकणोंसे मेघसे आच्छादित दिनके समान, स्नानके समयमें निःशङ्क होकर उतरी हुई जलक्रीडामें अनुराग करनेवाली वनदेवियोंसे केशपाशमें रहे हुए फूलोंसे सुगन्धित किया गया, एक भागमें अवतीर्ण मुनियोंसे भरे गये कमण्डलुके कोमल जलध्वनिसे मनोहर, खिले हुए कमलोंके मध्यमें घूमनेवाले कमलके तुल्य वर्ण होनेसे शब्दसे अनुमानके विषय कलहँसोसे निरन्तर सेवित, स्नानके लिये उतरी हुई पुलिन्दराजकी स्त्रियोंके कुचोंमें चन्दनकी धूलिसे अत्यन्त सफेद, समीपमें केतकीके फूलोंके परागोंसे सम्बद्ध तटमें पुलिनसे युक्त, समीपके आश्रमोंसे आये हुए तपस्वियोंके धोये गये भीगे वल्कलोंसे जिसके किनारेका जल गुलाबी और कषाय हो गया है, तटके समीपके वृक्षों

प्रतिदिनमृष्यमूकवासिना सुग्रीवेणावलुप्त-फल-लघु-लताभिः, उदवासितापसानां देवताच्चर्नोपयुक्त-कुसुमाभिरुत्पतज्जलचर-पक्षपुट-विगलित-जलबिन्दुसेकसुकुमार-किसलयाभिः लतामण्डपतल-शिखण्डि-मण्डलारब्ध–ताण्डवाभिः अनेककुसुम-परिमलवाहिनीभिर्वनदेवताभिः स्वश्वासवासिताभिरिव वनराजिभिरुपरुद्धतीरम्, अपरसागरशङ्किभिः सलिलमादातुमवतीर्णैर्जलधरैरिव बहल-पङ्क-मलिनैर्वनकरिभिरनवरतापीयमानसलिलम्, अगाधमनन्तमप्रतिमम् अपां निधानं पम्पाभिधानं पद्मसरः ।

व्यजनम्)। अविरलेत्यादिः = अविरला (निरन्तरा) या तमालवीथी (तापिच्छपङ्क्तिः), तया अन्धकारिताभिः (तिमिरिताभिः, अप्रकाशिताभिरिति भावः) "वनराजिभिः" इत्यस्य विशेषणम् । एवं परत्राऽपि । निर्वासितेन = स्थानान्निष्कासितेन, प्रतिदिनं = प्रत्यहं, सञ्चरता = गच्छता, ऋष्यमूकनिवासिना = ऋष्यमूकपर्वतनिवसनशीलेन सुग्रीवेण = वाल्यनुजेन, अवलुप्तफललघुलताभिः = अवलुप्तानि (दूरीकृतानि) फलानि (सस्यानि) याभ्यस्ता, अतः लघ्व्यः (लाघवयुताः फलभाररहिता इति भावः) लता (व्रततयः) यासु, ताभिः ।

उदवासितापसानाम् = उदके (जले) वासः, "पेषंवासवाहनधिषु चे"ति सूत्रेण उदकस्योदादेशः । उदवासोऽस्ति येषां ते उदवासिनः, "अत इनिठनौ" इतीनिः । उदवासिनश्च ते तापसाः तेषाम्, (क० धा०) । जलनिवासितपस्विनाम् । देवताऽर्चनोपयुक्तकुसुमाभिः = देवा एव देवताः, "देवात्तल्" इति स्वाऽर्थे (प्रकृत्यर्थे) तल्प्रत्ययः । देवतानाम् (देवानाम्) अर्चने (पूजने) उपयुक्तानि (सोपयोगानि) कुसुमानि (पुष्पाणि) यासु, ताभिः ।

उत्पतदिति । उत्पतन्तः (उड्डीयमानाः) ये जलचराः (सलिलचराः) पतङ्गाः (पक्षिणः, हंसाद्याः) तेषां पक्षपुटेभ्यः (पतत्रपुटेभ्यः) विगलिताः (प्रस्नुताः) ये जलबिन्दवः (सलिलपृषताः), तेषां सेकेन (सेचनेन) सुकुमाराणि (कोमलानि) किसलयानि (पल्लवानि) यासां, ताभिः ।

लतेत्यादिः = लतानां (वल्लीनाम्) ये मण्डपाः (आच्छादितप्रदेशाः) तेषां तलेषु (अधःप्रदेशेषु) यत् शिखण्डिमण्डलं (मयूरसमूहः), तेन आरब्धं (विहितम्) ताण्डवं (नृत्यम्) यासु ताभिः । "ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तनम् ।" इत्यमरः । **अनेकेत्यादिः**-अनेकानि (बहूनि, विभिन्नजातीयानीति भावः)। यानि कुसुमानि (पुष्पाणि) तेषां परिमलः (सुगन्धः) तं वहन्तीति तच्छीलास्ताभिः । तादृशीभिर्वनदेवताभिः (अरण्याऽधिष्ठातृदेवीभिः), स्वश्वासवासिताभिः=स्वश्वासेन (आत्मनिःश्वासेन) वासिताभिः (भाविताभिः) इव, वनराजिभिः (वृक्षसमूहपङ्क्तिभिः), उपरुद्धतीरम् = उपरुद्धम् (उपावृतम्) तीरं (तटम्) यस्मिंस्तत्, "पम्पाऽभिधानं पद्मसर" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । अपरसागरशङ्किभिः = अपरः (अन्यः) यः सागरः (समुद्रः) तं शङ्कन्ते (सन्दिहते) तच्छीलाः, तैः । "वनकरिभि" रित्यस्य विशेषणम् । तत्रोत्प्रेक्ष्यते—सलिलं = जलम्, आदातुं = ग्रहीतुम्, अवतीर्णैः = कृताऽवतरणैः, आकाशादिति शेषः । जलधरैः = मेघैः, इव, बहलपङ्कमलिनैः = बहलाः (प्रचुराः) ये पङ्काः (कर्दमाः), त इव मलिनाः (मलीमसाः, कृष्ण-

---

पल्लवोंकी हवासे झला गया, लगातार तापिच्छ वृक्षोंकी पङ्क्तिसे अन्धकारित (आच्छादित), वालीसे निर्वासित प्रतिदिन घूमते हुए ऋष्यमूकमें रहनेवाले सुग्रीवसे तोड़े गये फलोंसे हलकी लताओंसे युक्त, जलमें निवास करनेवाले तपस्वियोंके देवताके अर्चनके लिए उपयुक्त फलोंसे युक्त, उड़नेवाले जलचारियों (हँस आदि) के पंखोंसे गिरे हुए जलबिन्दुओंके सेचनसे कोमल पल्लवोंसे युक्त, लतामण्डपके नीचे जहाँपर मयूर नृत्यका आरम्भ कर रहे हैं, अनेक फूलोंके सुगन्धको धारण करनेवाली वनदेवताओंसे अपने निःश्वाससे मानों सुगन्धित, ऐसी बनपङ्क्तियोंसे आच्छादित तीरवाला, दूसरे समुद्रकी शङ्का करनेवाले जल पीनेके लिए उतरे हुए मेघोंके सदृश, प्रचुर पङ्कोंसे मलिन हाथियोंसे जहाँका जल निरन्तर पीया जाता है, तलस्पर्शसे रहित, अन्तसे रहित, अनुपम

यत्र च विकच-कुवलय-प्रभा-श्यामायमान-पक्षपुटान्यद्यापि मूर्त्तिमद्रामशापग्रस्तानीव मध्यचारिणामालोक्यन्ते चक्रवाकनाम्नां पक्षिणां मिथुनानि।

तस्यैवंविधस्य सरसः पश्चिमे तीरे राघव-शर-प्रहार-जर्जरित-बालतरु-षण्डस्य च समीपे दिग्गज-करदण्डानुकारिणा जरदजगरेण सततमावेष्टितमूलतया बद्धमहालवाल इव

वर्णा इति भावः) जलधरपक्षेऽयं विग्रहः। वनकरिपक्षे तु—बहलपङ्कैः (प्रचुरकर्दमैः) मलिनैः (कृष्णवर्णैः)। तादृशैः वनकरिभिः = अरण्यहस्तिभिः। अनवरतं = निरन्तरम्। आपीयमानसलिलम् = (आमन्तात्) पीयमानं (पानकर्मीक्रियमाणम्) सलिलं (जलम्) यस्मिंस्तत्। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

अगाधम् = तलस्पर्शरहितम्, अनन्तम् = अन्तरहितम्, अपरिमितमिति भावः। अप्रतिमम् = अविद्यमाना प्रतिमा (उपमा) यस्य तत्, अनुपममिति भावः। "नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोप" इति नञ्बहुव्रीहिः। अपां = जलस्य, निधानं = निधिरूपम्। "आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्।" इत्यमरः। पम्पाऽभिधानं = पम्पा अभिधानं (नामधेयम्) यस्य तत्। तादृशं पद्मसरः = पद्मप्रचुरं सरः, "शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्" इति मध्यमपदलोपी समासः। पद्मपरिपूर्णः कासार इति भावः।

यत्र चेति। यत्र = पम्पासरसि। मध्यचारिणाम् = अभ्यन्तरचरणशीलानां, चक्रवाकनाम्नां = रथाङ्गनामकानां, पक्षिणां = पतङ्गानां, विकचेत्यादिः = विकचानि (विकसितानि) यानि कुवलयानि (नीलकमलानि) तेषां प्रभा (कान्तिः) तया श्यामायमानानि (श्यामवदाचरन्ति) पक्षपुटानि (पत्त्रपुटानि) येषां तानि, मिथुनानि = द्वन्द्वानि, अद्य अपि = एतत्कालपर्यन्तम् अपि, मूर्तिमद्रामशापग्रस्तानि = मूर्तिमान् (शरीरधारी) यो रामशापः (राघवशपनम्), तेन ग्रस्तानि (गृहीतानि), इव आलोक्यन्ते = दृश्यन्ते। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

रावणेनाऽपहृतां जनकतनयामुद्दिश्य पम्पासरसि साऽतिशयं विलपन्तं राममालोक्य चक्रवाकाः उपाहसन्, ततो "यूयमपि प्रतिनिशं वियोगदुःखभाजो भवते"ति "रामः शशापे"ति किंवदन्तीमनुसृत्य एषोक्तिः। अत्र कुवलयप्रभया श्यामायमानानां चक्रवाकानां मूर्त्तिमच्छापग्रस्तत्वेनोत्प्रेक्षा।

तस्येति। तस्य = पूर्वोक्तस्य, एवंविधस्य = एतादृशस्य, पूर्ववर्णितस्येति भावः। सरसः = कासारस्य, पम्पासरस इति भावः। पश्चिमे = पश्चिमदिग्वर्तिनि, तीरे = तटे।

राघवेत्यादिः = राघवस्य (रामस्य) ये शराः (बाणाः) तेषां प्रहारः (उपघातः) तेन जर्जरितः (विदारितः) बालानां (ह्रीबेराणां वृक्षविशेषाणाम्) तरूणाम् (अन्येषां सामान्यवृक्षाणाम्) यः खण्डः (समूहः), तस्य समीपे = निकटे, दिग्गजकरदण्डाऽनुकारिणा = दिक् स्थितः गजः दिग्गजः, (मध्यम० समासः) (ऐरावतादिः), दिग्गजा यथा—"ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥" इत्यमरः। दिग्गजस्य (ऐरावतादेः) यः करदण्डः (शुण्डादण्डः) तम् अनुकरोति (अनुहरति) इति तच्छीलः, तेन, दिग्गजशुण्डादण्डसदृशेन, दीर्घेणेति भावः। तादृशेन, जरदजगरेण = जरंश्चाऽसौ अजगरस्तेन, जीर्णवाहसेनेत्यर्थः। "अजगरे शयुर्वाहस इत्युभौ" इत्यमरः। उपमाऽलङ्कारः। सततं = निरन्तरम्, आवेष्टितमूलतया = आवेष्टितं (परिवृतम्) मूलम् (अधोभागः) यस्य सः, तस्य भावस्तत्ता, तया। परिवृताऽधोभागत्वेनेत्यर्थः।

जलाश्रय पम्पानामक कमलोंका तालाब है। जहाँपर विकसित नीलकमलोंकी कान्तिसे श्यामवर्णवाले पक्षोंसे युक्त इसलिए आज भी मूर्तिमान् रामशापसे ग्रस्त-सी बीचमें विचरण करनेवाली चक्रवाकोंकी जोड़ियाँ देखी जाती हैं।

वैसे पम्पासरोवरके पश्चिमके किनारेपर रामके बाणोंके प्रहारसे विदारित ह्रीबेर और अन्य वृक्षोंके समीपमें दिग्गजके सूँड़का अनुकरण (नकल) करनेवाले जीर्ण अजगरसे निरन्तर वेष्टित जड़ होनेसे महान् आलवाल (क्यारी)-

तुङ्ग-स्कन्धावलम्बिभिरनिलवेल्लितैरहिनिर्मोकैर्धृतोत्तरीय इव, दिक्चक्रवाल-परिमाणमिव गृह्णता भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन शाखासंचयेन प्रलयकाल-ताण्डव-प्रसारित-भुजसहस्रमुडुपति-शेखरमिव विडम्बयितुमुद्यतः, पुराणतया पतनभयादिव वायुस्कन्ध-लग्नः निखिलशरीरव्यापि-नीभिरतिदूरोन्नताभिर्जीर्णतया शिराभिरिव परिगतो व्रततिभिः, जरा-तिलकबिन्दुभिरिव कण्ट-कैराचिततनुः इतस्ततः परिपीतसागरसलिलैर्गगनागतैः, पत्त्ररथैरिव शाखान्तरेषु निलीयमानैः

बद्धमहाऽऽलवालं = बद्धं (विहितम्) महत् (दीर्घम्) आलवालम् (आवापः) यस्य सः, इव "शाल्मलीवृक्ष" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि, उत्प्रेक्षालङ्कारः । उपमोत्प्रेक्षयोरङ्गाऽङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः । तुङ्गस्कन्धाऽवलम्बिभिः=तुङ्गः (उन्नतः) यः स्कन्धः (प्रकाण्डः) तम् अवलम्बन्ते तच्छीलास्तैः । उन्नतप्रकाण्डाऽवलम्बनशीलैरित्यर्थः । तादृशैः अनिलवेल्लितैः = वायुसञ्चलितैः, अहि-निर्मोकैः = सर्पकञ्चुकैः, धृतोत्तरीयः = धृतम् (परिहितम्) उत्तरीयम् (संव्यानम्, ऊर्ध्ववस्त्रमिति भावः), येन सः, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । "संव्यानमुत्तरीयं च"त्यमरः । दिगिति । दिक्चक्रवालपरि-माणं = दिशां (ककुभाम्) यत् चक्रवालं (मण्डलम्) तस्य परिमाणं (परिमितिम्), गृह्णता = ग्रहणं कुर्वता, इव । भुवनाऽन्तरालविप्रकीर्णेन = भुवनानाम् (लोकानाम्) यत् अन्तरालम् (अभ्य-न्तरभागः), तस्मिन् विप्रकीर्णेन (इतस्ततः पर्यस्तेन), शाखासञ्चयेन = लतासमूहेन, "समे शाखा-लते" इत्यमरः । प्रलयेत्यादिः = प्रलयकाले (संहारसमये) यत् ताण्डवं (नृत्यविशेषः), तस्मिन् प्रसारितं (विस्तारितम्) भुजसहस्रं (बाहुसहस्रम्) येन, तं तथाविधम् उडुपतिशेखरम् = उडूनां (नक्षत्राणाम्) पतिः (स्वामी = चन्द्र इत्यर्थः । स शेखरः शिरोभूषणम्) यस्य, तं, महादेवमिति भावः, । विडम्बयितुम् = अनुकर्तुम्, अत्रोपमाऽलङ्कारः उद्यतः = कृतोद्योगः, इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । द्वयोरलङ्कारयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

पुराणतयेति । पुराणतया = प्राचीनत्वेन, जीर्णत्वेनेति भावः । पतनभयात् = स्खलनभीतेः, इव, वायुस्कन्धलग्नः = वायुपदस्य वायुसंचलनाऽवकाशे आकाशे लक्षणा, ततश्च वायोः स्कन्धे (अंसे) लग्नः (सम्बद्धः), वायुः (वातः) स्कन्धलग्नः, यस्य, स इव । पतनभयात् वायुर्यस्य शाल्मलीतरो-रुन्नते प्रकाण्डे लग्न इव प्रतीयत इति भावः उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

निखिलेति । निखिलशरीरव्यापिनीभिः = निखिलं (समस्तम्) यत् शरीरं (देहः) तद् व्याप्नुवन्तीति तच्छीलाः, ताभिः । अतिदूरोन्नताभिः = अतिदूरम् (अतिविप्रकृष्टम्) उन्नताभिः (उच्चाभिः) । जीर्णतया = पुराणतया, वार्द्धक्येनेति भावः । शिराभिः = नाडीभिः, इव "नाडी तु धमनिः शिरा" इत्यमरः । व्रततिभिः = लताभिः, परिगतः = परिवेष्टितः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

जरेति । जरातिलकबिन्दुभिः = जरायां (वार्द्धक्ये) ये तिलकबिन्दवः (तिलकालकाः), तैरिव । कण्टकैः = द्रुमतीक्ष्णाऽङ्गैः, आचिततनुः = आचिता (व्याप्ता) तनुः (शरीरम्) यस्य सः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

इतस्तत इति । इतस्ततः = यत्र तत्र । परिपीतसागरजलैः = परिपीतं (पानविषयीकृतम्) सागरस्य (समुद्रस्य) जलं (सलिलम्) यैस्तैः, गगनाऽऽगतैः = गगनात् (आकाशतलात्) आगतैः

से युक्त सा, ऊँचे प्रकाण्डोंमें लटकनेवाले वायुसे कम्पित, साँपकी केंचुलियोंसे मानो उत्तरीय धारण किया हुआ है, जो मानों दिशाओंके परिमाणको ग्रहण करता हुआ भुवनोंके भीतर बिखरे हुए शाखासमुदायसे प्रलय समयके ताण्डव नृत्यमें हजारों हाथोंको फैलाये हुए चन्द्रशेखर (महादेव) का अनुकरण करनेके लिए तत्पर है, जिसने प्राचीन होनेसे मानों गिरनेके भयसे अपने कन्धों-का आकाशमें सहारा लिया है । जो संपूर्ण शरीरको व्याप्त करनेवाली और अधिक दूर तक ऊँची लताओंसे मानों वृद्धताके कारण ऊँची नाडियों (नसों) से व्याप्त है, जो काँटोंसे मानों बुढ़ापेसे तिलकों (मस्सों) से व्याप्त शरीरवाला है, इधर उधरसे समुद्र जलको पीये हुए और आकाशमें आये हुए

क्षणमम्बुभारालसैरार्द्रीकृतपल्लवैर्जलधरपटलैरप्यदृष्टशिखरः, तुङ्गतया नन्दनवनश्रियमिवावलोकयितुमभ्युद्यतः, स्वसमीपवर्तिनामुपरि संचरतां गगनतलगमन-खेदायासितानां रविरथ-तुरङ्गमाणां सृक्कपरिस्रुतैः फेनपटलैः सन्देहित-तूलराशिभिर्धवलीकृतशिखरशाखः, वनगज-कपोलकण्डूयन-लग्नमद-निलीन-मत्तमधुकरमालेन लोहशृङ्खलाबन्धननिश्चलेनेव कल्पस्थायिना मूलेन समुपेतः, कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः स्फुरद्भिः सजीव इव मधुकरपटलैः, दुर्योधन इवोपलक्षित-शकुनिपक्षपातः, नलिननाभ इव वनमालोपगूढः, नवजलधरव्यूह इव नभसि दर्शितोन्नतिः,

---

(आयातैः), शाखान्तरेषु = शाखानाम् (लतानाम्) अन्तरेषु (अवकाशेषु), निलीयमानैः (गुप्तरूपेण तिष्ठद्भिः), पत्त्ररथैः = पक्षिभिः, इव । क्षणं = कंचित्कालं, "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति कालस्याऽत्यन्तसंयोगे द्वितीया । अम्बुभाराऽलसैः = अम्बुभारेण (पीतजलभरेण) अलसैः (आलस्ययुक्तैः, मन्दगतिभिरिति भावः), आर्द्रीकृतपल्लवैः=आर्द्रीकृतानि (क्लिन्नीकृतानि) पल्लवानि (किसलयानि) यैः, तैः । जलधरपटलैः = मेघसमूहैः, अपि, अदृष्टशिखरः = अदृष्टम् (अनवलोकितम्) शिखरम् (ऊर्ध्वभागः) यस्य सः ।

तुङ्गेति । तुङ्गतया = उन्नतत्वेन । नन्दनवनश्रियम् = देवेन्द्रोद्यानशोभाम्, अवलोकयितुं = द्रष्टुम्, अभ्युद्यतः = तत्पर इव, उत्प्रेक्षा ।

स्वसमीपेति । स्वसमीपवर्तिनाम् = स्वनिकटस्थितानाम्, उपरि = ऊर्ध्वभागे, संचरतां = संचलतां, गगनतलगमनखेदायासितानां = गगनतले (आकाशतले) यत् गमनं (गतिः), तेन यः खेदः (परिश्रमः), तेन आयासितानाम् (संजातपरिश्रमाणाम्), तादृशानां रविरथतुरङ्गमाणां = सूर्य-स्यन्दनाऽश्वानां, सृक्कपरिस्रुतैः = ओष्ठप्रान्तपतितैः, सन्देहिततूलराशिभिः = सन्देहितः (सन्देहविषयी-कृतः) तूलराशिः (कार्पाससमूहः) यैस्तैः, तादृशैः फेनपटलैः = डिण्डीरसमूहैः, धवलीकृतशिखर-शाखः = धवलीकृताः (शुक्लीकृताः) शिखरशाखाः (ऊर्ध्वस्थितवृक्षभागाः) यस्य सः । इह फेन-पटलैः शिखरशाखानां धवलीकरणसम्बन्धाऽभावेऽपि सम्बन्धोक्तेरतिशयोक्तिः, ततश्च शिखरशाखाना-मत्युन्नतत्वं व्यज्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः ।

वनेति । वनगजेत्यादिः = वनगजाः (आरण्यकहस्तिनः) तेषां कपोलयोः (गण्डयोः), कण्डूयनं (खर्जूकरणम्) तस्मिन् लग्नाः (सक्ताः) ये मदाः (दान-वारीणि), तेषु निलीना (अवस्थिता) मत्तानां (मदयुक्तानाम्) मधुकराणां (भ्रमराणाम्) माला (पङ्क्तिः) यस्मिंस्तेन । "गोस्त्रियोरुपसर्जनस्ये" त्युपसर्जनस्य ह्रस्वत्वम् । अतः लोहशृङ्खलाबन्धननिश्चलेन = लोहस्य (अयसः) या शृङ्खला (निगडः), तस्या बन्धनं (नियन्त्रणम्), तेन निश्चलेन (स्थिरेण), इव, "अथ शृङ्खला । अन्दुको निगडोऽस्त्री स्यात् ।" इत्यमरः । कल्पस्थायिना = आप्रलयं तिष्ठता, तादृशेन मूलेन = बुध्नेन, समुपेतः = संयुक्तः । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

कोटरेति । कोटराऽभ्यन्तरनिविष्टैः = कोटरस्य (निष्कुहस्य) अभ्यन्तरे (मध्यभागे) निविष्टैः (प्रविष्टैः) । स्फुरद्भिः = संचलद्भिः, मधुकरपटलैः = भ्रमरसमूहैः, सजीवः = श्वासादि-प्राणयुक्तः, इव । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

पक्षियोंके सदृश शाखाओंके भीतर छिपे हुए कुछ समय तक जलके भारसे मन्दगतिवाले, पल्लवोंको आर्द्र करनेवाले मेघसमूहोंसे भी जिसका शिखर (ऊँचाई) नहीं देखा जाता है, जो ऊँचा होनेसे मानों नन्दन काननकी शोभाको देखनेके लिए तत्पर है, अपने समीपमें रहनेवाले ऊपर चलते हुए, आकाशतलमें गमनके खेदसे परिश्रान्त सूर्यके रथके घोड़ोंके ओष्ठप्रान्तसे निकले हुए जिनमें कपासराशिका सन्देह होता था ऐसे फेनोंसे जिसकी चोटीकी शाखाएँ सफेद कर दी गई थीं । जो जङ्गली हाथीके कपोलोंको खुजलानेसे लगे हुए, मदमें स्थित और मत्त भ्रमरसमूहसे मानों लोहेकी सीकड़ीके बन्धनसे निश्चल और प्रलयकाल तक रहनेवाली जड़से युक्त है । जो कोटरके भीतर प्रविष्ट और

अखिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवतानाम्, अधिपतिरिव दण्डकारण्यस्य, नायक इव सर्ववनस्पतीनाम्, सखेव विन्ध्यस्य, शाखाबाहुभिरुपगुह्येव विन्ध्याटवीमवस्थितो महान् जीर्णः शाल्मलीवृक्षः ।

तत्र च शाखाग्रेषु कोटरोदरेषु पल्लवान्तरेषु स्कन्धसन्धिषु जीर्णवल्कलविवरेषु च

दुर्योधन इति । दुर्योधनः = धृतराष्ट्रज्येष्ठपुत्रः, इव, उपलक्षितशकुनिपक्षपातः = उपलक्षितः (दृष्टः), शकुनौ (तदाख्ये स्वमातुले) पक्षपातः (आसक्तिः) यस्य सः । दुर्योधनेन स्वमातुलस्य शकुनेः साहाय्येनैव कपटद्यूते पाण्डवाः पराजिता इति भारतीयमाख्यानम् । शाल्मलीतरुपक्षे— उपलक्षितः (दृष्टः) शकुनीनां (पक्षिणाम्) पक्षाणां (छदानाम्) पातः (पतनम्) यस्मिन्सः । उपमाऽलङ्कारः ।

नलिननाभः = पद्मनाभः, कृष्णः इव, वनमालोपगूढः = वनमालया (वनपुष्पमालया) यद्वा—

"आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला ।
मध्ये स्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता ॥"

इत्युक्तलक्षणोपेतया वनमालया, उपगूढः (आलिङ्गितः) । नलिनं (पद्मम्) नाभौ यस्य स नलिननाभः, "अच्प्रत्यन्ववपूर्वात्सामलोम्न" इत्यत्र "अच्" इति योगविभागादन्यत्राऽपि "इति वचन-सामर्थ्यात्" "नलिननाभ" इत्यत्राऽपि "पद्मनाभ" इव समासाऽन्तोऽच्प्रत्ययः । वृक्षपक्षे—वनमालया (अरण्यपङ्क्त्या) उपगूढः (आच्छादितः) । उपमा । नवजलधरव्यूहः = नवाः (नूतनाः) ये जलधराः (मेघाः) । तेषां व्यूहः (समूहः), इव, नभसि = श्रावणे, "नभः खं, श्रावणे नभा" इत्यमरः । दर्शितोन्नतिः = दर्शिता (प्रकाशिता) उन्नतिः (उच्छ्रायः) येन सः । वृक्षपक्षे—नभसि = आकाशे, दर्शितोन्नतिः । अत्राऽभङ्गश्लेषाऽलङ्कारः ।

अखिलेति । वनदेवतानां = विपिनाऽधिदेवीनाम्, अखिलेत्यादिः = अखिलं (समस्तम्) यत् भुवनतलं (लोकतलम्) तस्य निरीक्षणं (विलोकनम्) तदर्थं प्रासादः (देवगृहम्) इव उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । दण्डकाऽरण्यस्य = दण्डकवनस्य, अधिपतिः = स्वामी, इव । उत्प्रेक्षा ।

सर्ववनस्पतीनां = सर्वेषां (सकलानाम्) वनस्पतीनां (पुष्परहितानां फलमात्रयुक्तानां वृक्षाणाम्) । नायक इव=अध्यक्ष इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । "वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः" । इत्यमरः । विन्ध्यस्य = दक्षिणपर्वतस्य, सखा = मित्रम्, इव । उत्प्रेक्षा । शाखाबाहुभिः = शाखाएव बाहवः (भुजाः), तैः विन्ध्याऽटवीं = विन्ध्यवनम्: उपगुह्य = आलिङ्ग्य, इव, स्थितः = विद्यमानः, महान् = विशालः, जीर्णः = पुराणः, शाल्मलीवृक्षः = स्थिरायुतरुः, अस्तीति शेषः । "पिच्छिला पूरणी मोचा स्थिरायुः शाल्मलिर्द्वयोः" इत्यमरः ।

तत्र चेति । तत्र = तस्मिन्, शाल्मलीवृक्षे । शाखाऽग्रेषु = लताऽग्रभागेषु, कोटरोदरेषु = कोटराणाम् (निष्कुहानाम्, वृक्षरन्ध्राणामित्यर्थः), उदरेषु (मध्यभागेषु), पल्लवान्तरेषु = किसलय-

---

चलते फिरते भ्रमरसमूहसे सजीव-सा मालूम होता है, जैसे दुर्योधन शकुनि (अपने मामा) में पक्षपात युक्त देखा जाता था वैसे ही जिसमें शकुनियों (पक्षियों) का पक्षपात (पक्षका गिरना) दिखाई देता है । जैसे नलिन नाभ (कृष्ण) घुटनोंतक लटकती हुई मालासे आलिङ्गित थे वैसे ही वह वनमाला (वनकी पङ्क्ति) से युक्त है । जैसे मेघसमूहकी नभ (श्रावण) में उन्नति (वृद्धि) दिखाई पड़ती है, वैसे ही जिसकी नभ (आकाश) में उन्नति (ऊँचाई) दिखाई पड़ती है । वनदेवताओंका समस्त भुवनतल देखनेके प्रासादके समान, जो मानों दण्डकाऽरण्यका अधिपति है, जो मानों समस्त वनस्पतियोंका नायक है, जो मानो विन्ध्य पर्वतका मित्र है । शाखारूप बाहुओंसे मानों विन्ध्याऽटवीका आलिङ्गन करके रहा हुआ विशाल और जीर्ण शाल्मली (सेंमल) नामका वृक्ष है ।

वहाँ शाखाओंके अग्रभागोंमें कोटरोंके बीच, पल्लवोंके भीतर, प्रकाण्डों की सन्धियोंमें, जीर्ण वल्कलोंके

महावकाशतया विश्रब्ध-विरचित-कुलायसहस्राणि दुरारोहतया विगतभयानि नानादेशसमागतानि शुक-शकुनिकुलानि प्रतिवसन्ति स्म। यैः परिणामविरलदलसंहतिरपि स वनस्पतिरविरल-दल-निचय-श्यामल इवोपलक्ष्यते दिवानिशं निलीनैः।

ते च तस्मिन् वनस्पतावतिवाह्यातिवाह्य निशामात्मनीडेषु प्रतिदिनमुत्थायोत्थायाहारान्वेषणाय नभसि विरचितपङ्क्तयो मदकल-बलभद्र-हलधर-हलमुखाक्षेप-विकीर्णबहुस्रोतसमम्बरतले कलिन्दकन्यामिव दर्शयन्तः, सुरगजोन्मूलित-विगलदाकाशगङ्गा-कमलिनीशङ्कामुत्पादयन्तः, दिवसकर-रथतुरग-प्रभानुलिप्तमिव गगनतलं प्रदर्शयन्तः, सञ्चारिणीमिव मरकतस्थलीं

मध्येषु, स्कन्धसन्धिषु = प्रकाण्डबन्धेषु, जीर्णवल्कविवरेषु = पुरातनतरुत्वक्छिद्रेषु, महावकाशतया = प्रचुरप्रदेशत्वेन, विस्रब्धविरचितकुलायसहस्राणि = विस्रब्धं (विश्वासपूर्वकं, निर्भयमिति भावः) विरचितानि (विनिर्मितानि) कुलायानां (नीडानाम्) सहस्राणि (बहुसंख्याः) येषां तानि, "शुकशकुनकुलानि" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्रापि। दुरारोहतया = दुःखेन आरोढुं शक्यो दुरारोहः, खल् प्रत्ययः। शुकशकुनिकुलाधारः शाल्मलीतरुरिति भावः। तस्य भावस्तत्ता तया। दुरारोहतया = दुःखपूर्वकारोहणविषयत्वेनेति तात्पर्यम्। विगतभयानि = विगतम् (अपगतम्) भयं (ग्रहणभीतिः) येषां तानि। नानादेशसमागतानि = नानादेशेभ्यः (अनेकजनपदेभ्यः) समागतानि (संप्राप्तानि)। शुकशकुनिकुलानि = शुकाः (कीराः) शकुनयः (अन्यसामान्यपक्षिणः), तेषां कुलानि (सजातीयाः) प्रतिवसन्ति स्म = न्यवसन्।

यैरिति। दिवानिशम् = अहोरात्रं, विलीनैः = स्थितैः, यैः = शुकशकुनिकुलैः, परिणामविरलदलसंहतिः=परिणामेन (प्राचीनत्वेन हेतुना) विरला (अल्पा) दलसंहतिः (पत्रसमूहः) यस्य सः। तादृशोऽपि, सः = पूर्वोक्तः, वनस्पतिः = शाल्मलीतरुः, अविरलदलनिचयश्यामलः = अविरलानि (निबिडानि) यानि दलानि (पत्राणि) तेषां निचयः (समूहः) तेन श्यामलः (नीलवर्णः) इव, उपलक्ष्यते = अवलोक्यते। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

ते चेति। ते = शुकशकुनयः, अग्रे "विचरन्ति स्मे" त्यत्र सम्बन्धः, एवं परत्रापि। तस्मिन् = पूर्वोक्ते, वनस्पतौ = शाल्मलीतरौ, आत्मनीडेषु = स्वकुलायेषु, निशां = रात्रिम्, अतिवाह्य अतिवाह्य = असकृत् यापयित्वा, प्रतिदिनं=प्रत्यहम्, उत्थाय उत्थाय=असकृत् उत्थानं कृत्वा, आहाराऽन्वेषणाय=भक्ष्यपदार्थगवेषणाय, नभसि = आकाशे, विरचितपङ्क्तयः = विरचिता (कृता) पङ्क्तिः (श्रेणी) यैस्ते।

मदकलेत्यादिः। मदेन (मधुपानमत्तत्वेन) कलः (मनोहरः) यो बलभद्रः (बलरामः), तस्य यत् हलं (सीरम्) तस्य मुखम् (अग्रभागः) तेन य आक्षेपः (आकर्षणम्) तेन विकीर्णानि (विक्षिप्तानि) बहूनि (प्रचुराणि) स्रोतांसि (प्रवाहाः) यस्याः, ताम्। तादृशीं, कलिन्दकन्यां = कालिन्दीं, यमुनामित्यर्थः। अम्बरतले=आकाशतले, दर्शयन्तः = आलोकयन्तः, इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

सुरगजेत्यादिः० = सुरगजेन (देवहस्तिना) उन्मूलिता (उत्पाटिता), विगलन्त्याः (अधः पतन्त्याः) आकाशगङ्गायाः (सुरदीर्घिकायाः) या कमलिनी (पद्मिनी) तस्याः शङ्काम् (सन्देहम्), उत्पादयन्तः = जनयन्तः, तादृशाः ते = शुकशकुनयः। अत्र भ्रान्तिमदलङ्कारः।

खेदोंमें प्रचुर स्थान होनेसे विश्वासके साथ हजारों घोसलोंको बनाने वाले, पेड़में आरोहणमें कठिनता होनेसे निर्भय होकर अनेक देशोंसे आये हुए तोते और अन्य पक्षियोंके समूह निवास करते थे। जीर्ण होनेसे पत्तोंकी कमी रहनेपर भी दिनरात रहने वाले जिन पक्षियोंसे वह (शाल्मली) वृक्ष घने पत्तोंके समूहसे श्याम वर्णवाला-सा दिखाई देता है। वे पक्षी उस पेड़पर अपने घोसलोंके भीतर रातको बिता बिताकर प्रतिदिन उठ उठकर आहार ढूँढ़नेके लिए आकाश में पङ्क्ति (कतार) बनाकर मानों मदसे मनोहर बलरामके हलके अग्रभागसे आकर्षण करनेसे बिखरी हुई अनेक धाराओं वाली यमुनाको आकाश तलमें दिखलाते हुए, देवताओंके हाथी (ऐरावत) से उखाड़ी गई और

विडम्बयन्तः, शैवलपल्लवावलीमिवाम्बरसरसि प्रसारयन्तः, गगनावततैः पक्षपुटैः कदलीदलैरिव दिनकर-खरकर-निकर-परिखेदितान्याशामुखानि वीजयन्तः, वियति विसारिणीं शष्पवीथीमिवारचयन्तः, सेन्द्रायुधमिवान्तरिक्षमादधाना विचरन्ति स्म।

कृताहाराश्च पुनः प्रतिनिवृत्यात्मकुलायावस्थितेभ्यः शावकेभ्यो विविधान् फलरसान् कलममञ्जरीविकारांश्च प्रहृत-हरिण-रुधिरानुरक्त-शार्दूलनखकोटिपाटलेन चञ्चुपुटेन दत्त्वा दत्त्वा अधरीकृत-सर्वस्नेहेनासाधारणेन गुरुणाऽपत्यप्रेम्णा तस्मिन्नेव क्रोडान्तर्निहिततनयाः क्षपाः क्षपयन्ति स्म।

दिवसकरेत्यादिः। गगनतलम्=आकाशतलं, दिवसकरस्य (सूर्यस्य) यो रथः (स्यन्दनः), तस्य ये तुरगाः (अश्वाः), तेषां प्रभया (हरित कान्त्या), अनुलिप्तम् (अनुलेपयुक्तम्) इव, प्रदर्शयन्तः = प्रदर्शनं कुर्वन्तः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

सञ्चारिणीमिति। सञ्चारिणीं = सञ्चरणशीलां, मरकतस्थलीं = हरिन्मणिभुवं, "गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः।" इत्यमरः। विडम्बयन्त इव = अनुकुर्वन्त इव। उत्प्रेक्षा। **शैवलेत्यादिः०।** अम्बरसरसि = अम्बरम् (आकाशम्) एव सरः (कासारः), तस्मिन्। रूपकम्। शैवलपल्लवावलीं = शैवलस्य (शेवलस्य) या पल्लवाऽऽवली (किसलयपङ्क्तिः), ताम् इव, प्रसारयन्तः— विस्तारयन्तः, इव। अत्र रूपकमुत्प्रेक्षा चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

गगनाऽवततैरिति। कदलीदलैः = रम्भापत्रैः, इव, नीलत्वसाम्यादिति भावः। गगनाऽवततैः = गगने (आकाशे) अवततैः (विस्तृतैः), पक्षपुटैः = पत्त्रपुटैः, दिनकरखरकरनिकरपरिखेदितानि = दिनकरस्य (सूर्यस्य) खराः (तीक्ष्णाः) ये कराः (किरणाः), तेषां निकरैः (समूहैः) परिखेदितानि (परिखेदं गमितानि, संतापेनेति शेषः) तादृशानि आशामुखानि = दिग्वदनानि, वीजयन्तः = व्यजनवातपात्राणि कुर्वन्तः। **वियतीति।** वियति = आकाशे, विसारिणीं = विसरणशीलां, शष्पवीथीं = बालतृणपङ्क्तिम्, आरचयन्तः = कुर्वन्त इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

सेन्द्रायुधमिति। अन्तरिक्षम् = आकाशं, सेन्द्रायुधं = शक्रधनुः सहितम्, इव, "इन्द्रायुधं शक्रधनुः" इत्यमरः। आदधानाः = कुर्वाणाः, अनेकवर्णस्वसमूहेनेति भावः। विचरन्ति स्म = व्यचरन्, उत्प्रेक्षा। ते = शुकशकुनयः, पूर्वस्थं पदमिदं कर्तृत्वेनाऽन्वितं भवतीति बोद्धव्यम्।

कृताहारा इति। कृताऽऽहाराः = कृतः (विहितः) आहारः (भक्षणम्) यैस्ते। शुकशकुनय इति शेषः। पुनः = भूयः, प्रतिनिवर्त्य = परावृत्य, आत्मकुलायस्थितेभ्यः = आत्मनः (स्वस्य) ये कुलायाः (नीडाः) तेषु स्थितेभ्यः (विद्यमानेभ्यः), शावकेभ्यः = शिशुभ्यः, 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः।' इत्यमरः विविधान् = विविधा विधा (प्रकारः) येषां, तान्। अनेकप्रकारानित्यर्थः। फलरसान् = सस्यनिर्यासान्, कलममञ्जरीविकारान् = कलमानां (शालिधान्यानाम्) या मञ्जर्यः (वल्लर्यः) तासां विकारान् (परिपाकविशेषेण परिणतान्कणान्)।

गिरती हुई आकाशगङ्गाकी कमलिनियोंकी शङ्काको उत्पन्न करते हुए, आकाशतलको सूर्यके रथके घोड़ोंकी कान्तिसे लिप्तके सदृश दिखलाते हुए, चलती फिरती मरकतभूमि (पन्नेकी जमीन) का अनुकरण करते हुए, आकाशरूपी-तालाबमें मानों शैवालके पल्लवोंकी कतारको फैलाते हुए, आकाशमें विस्तृत पंखोंसे मानों केलेके पत्तोंसे सूर्यके तीक्ष्ण किरणसमूहसे पीड़ित दिशामुखोंको पंखा झलते हुए, मानों आकाशमें फैले हुए बालतृणों- (घास) के मार्गकी रचना करते हुए मानों आकाशको इन्द्रधनुसे युक्त बनाते हुए विचरण करते थे। आहार कर फिर लौटकर अपने घोंसलोंमें स्थित बच्चोंको मारे गये मृगके रुधिरसे लाल व्याघ्रनखके अग्रभाग (नोक) के समान गुलाबी अपने चञ्चुपुटसे अनेक फलोंके रसोंको और शालिधान्यकी मञ्जरियोंके विकारोंको देकर सबके स्नेह को मात (कम) करनेवाले असाधारण महान् सन्तानस्नेहसे उसी पेड़में भुजान्तरोंमें बच्चोंको रखकर रातोंको बिताते थे।

एकस्मिंश्च जीर्णकोटरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्त्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात् सूनुरभवम् । अतिप्रबलया चाभिभूता ममैव जायमानस्य प्रसववेदनया जननी मे लोकान्तरमगमत्। अभिमतजायाविनाशशोकदुःखितोऽपि खलु तातः सुतस्नेहादभ्यन्तरे निगृह्य पटुप्रसरमपि शोकमेकाकी मत्संवर्धनपर एवाभवत । अतिपरिणतवयाश्च कुशचीरानुकारिणीमल्पावशिष्ट-जीर्ण-पिच्छजाल-जर्जराम् अवस्रस्तांसदेशशिथिलाम् अपगतोत्पतनसंस्कारां

प्रहृतेत्यादिः० । प्रहृतः (व्यापादितः) यो हरिणः (मृगः) तस्य रुधिरं (रक्तम्) तेन अनुरक्ता (रक्तवर्णीकृता) या शार्दूलस्य (व्याघ्रस्य) नखकोटिः (नखराऽग्रभागः) सा इव पाटलं (श्वेतरक्तम्), तेन । उपमाऽलङ्कारः । तादृशेन चञ्चुपुटेन = त्रोटिसम्पुटेन, दत्त्वा = वितीर्य, अधरीकृतसर्वस्नेहेन = अधरीकृतः (न्यूनीकृतः) सर्वेषु (सकलेषु पदार्थेषु) स्नेहः (प्रणयः) येन, तेन । तादृशेन असाधारणेन = असामान्येन, गुरुणा = महता दुर्धरेण वा, अपत्यप्रेम्णा = सन्तानस्नेहेन, तस्मिन् एव = शाल्मलीतरौ एव, क्रोडाऽन्तर्निहिततनयाः = क्रोडस्य (भुजान्तरस्य), अन्तः (अभ्यन्तरे) निहिताः (न्यस्ताः) तनयाः (आत्मजाः) यैस्ते तादृशाः शुकशकुनयः, क्षपाः = रात्रीः, क्षपयन्ति स्म = यापितवन्तः, "लट् स्मे" इति "स्म" पदेन योगे भूताऽर्थे लट् । अत्र शुकशकुनीनामपत्यविषयकरतित्वेन भावकाव्यम् । "तदुक्तं = "सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः । भावः प्रोक्तः "इति साहित्यदर्पणः । "न ना क्रोडं भुजाऽन्तरम् ।" त्रियामा क्षणदा क्षपा ।" इत्युभयत्र चाऽमरः ।

एकस्मिन्निति । एकस्मिन्, जीर्णकोटरे = पुराणनिष्कुहे, "निष्कुहः कोटरं वा ना" इत्यमरः । जायया सह = भार्यया समं, निवसतः = निवासं कुर्वतः, पश्चिमे = चरमे, वयसि = अवस्थायां, वार्द्धक्य इति भावः । वर्तमानस्य = विद्यमानस्य, कथमपि = केनाऽपि प्रकारेण, महता कष्टेनेति भावः । पितुः = जनकस्य, विधिवशात् = भाग्यवशात्, अहम्, एकः = एकाकी, सूनुः = सुतः, अभवम् = अभूवम् ।

अतिप्रबलेति । मम, जायमानस्य = उत्पद्यमानस्य, "षष्ठी चाऽनादरे "इति भावलक्षणे षष्ठी । एव, अतिप्रबलया = अतिशयदृढया, प्रसववेदनया = प्रसूतिव्यथया, मे = मम, जननी = प्रसूः, परलोकं = लोकाऽन्तरम्, अगमत् = गता, गम्लृ धातोर्लुङ् । च्लेरङ् ।

अभिमतेत्यादिः । अभिमता (अभीष्टा) या जाया (भार्या) तस्या विनाशेन (मरणेन) दुःखितः = पीडितः, अपि । खलु = निश्चयेन । तातः = जनकः, सुतस्नेहात् = तनयवात्सल्यात् हेतोः । पटुप्रसरं = पटुः (तीव्रः) प्रसरः (विस्तारः) यस्य, तं, तादृशं शोकं = मन्युम्, अपि, अभ्यन्तरे = अन्तःकरणे, निरुध्य = अवरुध्य, एकाकी = एक एव, एकाकी, एक शब्दात् "एकादाकिनिच्चाऽसहाये" इति आकिनिच्प्रत्ययः । "एकाकी त्वेक एककः" । इत्यमरः । मत्संवर्द्धनपरः = मम (सुतस्य) संवर्द्धनं (पोषणम्), "प्रत्ययोत्तरपदयोश्चे"ति उत्तरपदे परेऽस्मच्छब्दस्य मदादेशः । मत्संवर्द्धने परः (तत्परः) । अभवत् = अभूत् ।

अतिपरिणतेति । अतिपरिणतवयाः = अतिपरिणतम् (अतिशयपक्वम्) वयः (अवस्था) यस्य सः, अतिवृद्ध इति भावः । कुशचीराऽनुकारिणीं = कुशं (दर्भः) चीरं (वल्कलम्) तत् अनुकरोति (विडम्बयति) तच्छीला, ताम् "पक्षसन्ततिम्" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । उपमाऽलङ्कारः । **अल्पाऽवशिष्टेत्यादिः०** = अल्पम् (स्तोकम्) अवशिष्टं (शेषयुक्तम्) यत् जीर्णं (जर्जरम्) पिच्छजालं (बर्हसमूहः) तेन जर्जरा (जीर्णा), ताम् । अवस्रस्तांऽसदेशशिथिलाम् = अवस्रस्तः (गलितः)

एक जीर्ण कोटर (वृक्षके सूराख) में भार्याके साथ निवास करते हुए वृद्धावस्थामें वर्तमान मेरे पिताका किसी प्रकार भाग्यवश मैं ही एक पुत्र हुआ । मेरे जन्मके समयमें उत्पन्न प्रबल प्रसूति-वेदनासे मेरी माता परलोक गई । अभीष्ट पत्नीके मरणके शोकसे दुःखित होकर भी मेरे पिता पुत्रके स्नेहसे फैलते हुए शोकको भी भीतर ही दबाकर अकेले ही मेरे संवर्द्धनमें तत्पर हुए । अत्यन्त वृद्ध (मेरे पिता) कुश और वृक्षके वल्कलके सदृश, थोड़ा

पक्षसन्ततिम् उद्वहन्, उपारूढकम्पतया सन्तापकारिणीमङ्गलग्नां जरामिव विधुन्वन्, अकठोरशेफालिकाकुसुम-नाल-पिञ्जरेण कलममञ्जरी-दलन-मसृणित-क्षीणोपान्त्यलेखेन स्फुटिताग्रकोटिना चञ्चुपुटेन, परनीडपतिताभ्यः शालिवल्लरीभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय वृक्षमूल-निपतितानि च शुककुलावदलितानि फलशकलानि समाहृत्य परिभ्रमितुमशक्तो मह्यमदात्। प्रतिदिवसमात्मना च मदुपभुक्तशेषम् अकरोदशनम्।

एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगनतले, कमलिनी-मधुरक्त-पक्षसम्पुटे वृद्धहंस इव मन्दाकिनीपुलिनादपर-जलनिधि-तटमवतरति चन्द्रमसि, परिणत-रङ्कु-रोम-पाण्डुनि व्रजति

योंऽसदेशः (स्कन्धप्रदेशः) तस्मिन् शिथिलाम् (श्लथाम्)। अपगतोत्पतनसंस्काराम् = अपगतः (विगतः, वार्धक्येनेति भावः) उत्पतनस्य (उड्डयनस्य) संस्कारः (वेगः) यस्यां, तां = तादृशीम् पक्षसन्तति = पत्रसमूहम्, उद्वहन् = धारयन्।

उपारूढेति। उपारूढकम्पतया = उपारूढः (प्राप्तः) कम्पः (वेपथुः) यस्य सः, तस्य भावस्तत्ता, तया हेतुना। सन्तापकारिणीं = पीडाविधायिनीम्, अङ्गलग्नां = देहाऽवयवसम्बद्धां, जराम् = वृद्धाऽवस्थाम् इव, पक्षसन्तति, विधुन्वन् = कम्पयन्, निवारणाऽर्थमिति शेषः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

अकठोरेत्यादिः = अकठोरम् (अकठिनम्, कोमलमिति भावः), यत् शेफालिकाकुसुमं (निर्गुण्डीपुष्पम्) तस्य नालः (दण्डः) स इव पिञ्जरः=पिङ्गलवर्णः, तेन। कलमञ्जरीत्यादिः० = कलमस्य (शालिविशेषस्य) या मञ्जरी (वल्लरी) तस्या दलनं (विदारणम्) तेन मसृणिता (स्निग्धीकृता) क्षीणा (प्राप्तक्षया) उपान्त्यलेखा (प्रान्तराजिः) यस्य तेन। स्फुटिताऽग्रकोटिना = स्फुटिता (विशीर्णा) अग्रकोटिः (अग्रनिशितभागः) यस्य, तेन। तादृशेन चञ्चुपुटेन। परनीडपतिताभ्यः = परेषाम् (अन्येषाम्) यानि नीडानि (कुलायाः) तेभ्यः पतिताभ्यः (स्रस्ताभ्यः) अशक्तिवशादिति भावः। शालिवल्लरीभ्यः = धान्यविशेषमञ्जरीभ्यः, तण्डुलकणान् = अन्नविशेषलेशान्, आदाय आदाय = वारं वारं गृहीत्वा। वृक्षमूलनिपतितानि = तरुमूलविस्रस्तानि, शुककुलाऽवदलितानि= शुकानां (कीराणाम्) कुलानि (सजातीयानि), तैः, अवदलितानि (खण्डितानि)। फलशकलानि= सस्यखण्डानि, च, समाहृत्य = अवचित्य, परिभ्रमितुं = परिभ्रमणं कर्तुम्, अशक्तः = असमर्थः सन्, मह्यं = तनूजाय, अदात् = दत्तवान्, "डुदाञ् दाने" इति धातोर्लुङ् "गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु" इति सिचो लुक्। एवं प्रतिदिवसं = प्रत्यहम्, आत्मना = स्वयं, च। मदुपभुक्तशेषं = मदुपभुक्तात् (मद्भक्षितात्) शेषम् (अवशिष्टम्), अशनं = भक्षणम्, अकरोत् = कृतवान्।

एकदेति। एकदा = एकस्मिन् समये, "मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत्" इत्यन्वयः। प्रभातसन्ध्यारागलोहिते = प्रभातस्य (प्रातःकालस्य) या सन्ध्या (सन्धिवेला) तस्या यो रागः (लौहित्यम्) तेन लोहिते (रक्तवर्णे), गगनतले = आकाशतले, कमलिनीमधुरक्तपक्षपुटे = कमलिन्याः (पद्मिन्याः) मधुः (रसः) तेन रक्तम् (अरुणवर्णम्) पक्षपुटं (छदसम्पुटम्) यस्य, तस्मिन्, वृद्धहंस

अवशिष्ट जीर्ण पंखसमूहसे जर्जर और शिथिल झुके हुए कन्धेमें शिथिल, उड़नेके वेगसे रहित पंखोंको धारण करते हुए कम्पयुक्त होनेसे मानो सन्ताप करने वाला अङ्गोंमें लग्न बुढ़ापेको समान पक्षपङ्क्ति को कम्पित करते हुए कोमल निर्गुण्डी पुष्पके नालके समान पीले, शालिधान्यकी मञ्जरीके विदारणसे स्निग्ध और क्षीण प्रान्तपङ्क्तिवाले टूटी हुई नोकवाले चञ्चुपुटसे अन्य घोसलोंसे गिरी हुई धान्य विशेषकी मञ्जरियोंसे चावलके दानोंको ले, लेकर पेड़के नीचे गिरे हुए शुकसमूहसे खण्डित फलोंके टुकड़ोंको इकट्ठा कर चलनेमें असमर्थ होकर मुझे देते थे। प्रतिदिन स्वयम् भी मेरे खाकर बचे हुए अंशसे भोजन करते थे।

एकबार प्रातःकालकी सन्ध्याकी लालिमामें लाल आकाशमें कमलिनीके रससे लाल पङ्खोंवाले वृद्ध हंसके समान चन्द्रमाके आकाशगङ्गाके रेतीले किनारेसे पश्चिम समुद्रके तटपर उतरनेपर वृद्ध रङ्कु (मृगविशेष) के

विशालतामाशाचक्रवाले गजरुधिर-रक्त-हरिसटा-लोहिनीभिः प्रतप्त-लाक्षिक-तन्तु-पाटलाभिरायामिनीभिः अशिशिरकिरणदीधितिभिः पद्मरागशलाकासम्मार्जनीभिरिव समुत्सार्य्यमाणे गगन-कुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे, सन्ध्यामुपासितुमुत्तराशाऽवलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले, तटगत-विघटित-शुक्ति-सम्पुटविप्रकीर्णमरुणकर-प्रेरणाधोगलितमुडुगणमिव मुक्ता-

इव = जरत्कलहंस इव । चन्द्रमसि = चन्द्रे, मन्दाकिनीपुलिनात् = आकाशगङ्गासैकतात्, अपरजल-निधितटम् = अपरः (अन्यः पश्चिम इति भावः) यो जलनिधिः (समुद्रः) तस्य, तटम् (तीरम्), अवतरति = अवरोहति सति, अत्र वृद्धहंस इवेत्यत्रोपमालङ्कारः ।

परिणतेति । परिणतरङ्कुरोमपाण्डुनि = परिणतः (वृद्धः) यो रङ्कुः (मृगविशेषः) तस्य रोम (लोम) इव पाण्डु (शुक्लम्), तस्मिन् । "पाण्डुर्ना नृपतौ सिते" इति मेदिनी । आशा-चक्रवाले = दिङ्मण्डले, "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः ।" इति "चक्रवालं तु मण्डलम्" इति चाऽमरः । विशालतां = विस्तीर्णतां, व्रजति = गच्छति सति, तिमिराऽपगमेनेति भावः । अत्र लुप्तोपमा ।

गजेति । गजरुधिरेत्यादिः० = गजरुधिरेण (हस्तिशोणितेन) रक्ताः (लोहिताः) या हरिसटाः (सिंहकेसराः) ता इव लोहिन्यः (रक्तवर्णाः) ताभिः । अत्र रुधिररक्तयोरापाततः पुनरुक्तिप्रतीत्या पुनरुक्तवदाभासः, स यथा साहित्यदर्पणे—

"आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येन भासनम् । पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः ॥" इति "हरिसटालोहिनीभिः" इत्यत्रोपमा चेत्यनयोरङ्गाऽङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः । प्रतप्तलाक्षिकतन्तु-पाटलाभिः = प्रतप्ताः (सन्तप्ताः) ये लाक्षिकाः (जतुविकारोत्पन्नाः) तन्तवः (सूत्राणि) त इव पाटलाः (रक्तवर्णाः), ताभिः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । आयामिनीभिः = विस्तारयुक्ताभिः, अशिशिर-किरणदीधितिभिः = अशिशिराः (उष्णाः) किरणाः (रश्मयः) यस्य, तस्य सूर्यस्येति भावः, दीधि-तिभिः (प्रभाभिः) । पद्मरागशलाकासम्मार्जिनीभिः = पद्मरागस्य (लोहितकमणेः) शलाकाः (इषीकाः), तासां सम्मार्जिनीभिः (शोधनीभिः) इव, "संमार्जनी शोधनी स्यात्" इत्यमरः । अत्रो-त्प्रेक्षाऽलङ्कारः । गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे = गगनम् (आकाशम्) एव कुट्टिमं (निबद्धा भूः), तस्मिन्, यः कुसुमप्रकरः (पुष्पसमूहः), तस्मिन् । तारागणे = नक्षत्रसमूहे, समुत्सार्यमाणे = दूरीक्रियमाणे सति । अत्र तारागणे कुसुमप्रकरत्वारोपस्य गगने कुट्टिमत्वारोपो निमित्तमिति परम्परितरूपकम् । "यत्र कस्यचिदारोपो परारोपस्य कारणम् । तत्परम्परितम्" इति साहित्यदर्पणः ।

सन्ध्यामिति । उत्तराशावलम्बिनि = उत्तराशाम् (उदीचीम्) अवलम्बते (आश्रयते) तच्छीलं तस्मिन्, सप्तर्षिमण्डले = मरीच्यादितारकासमूहे, सप्तर्षयो यथा—

"मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्चेति सप्तैते ज्ञेयाश्चित्रशिखण्डिनः ॥" इति ।

सन्ध्यां = प्रातः सन्ध्याम्, उपासितुम् = अभिवन्दितुम्, इव, मानससरस्तीरं = मानससरोवरतटम्, अव-तरति = अवरोहति सति ।

तटगतेति । पूर्वेतरे = पूर्वं इतरो यस्मात्तस्मिन्, पश्चिम इति भावः । बहुव्रीहित्वान्न सर्वनामता । उदन्वति = समुद्रे, तटगतेत्यादिः० = तटगतानि (तीरस्थितानि) विघट्टितानि (स्फुटितानि) यानि

लोमके समान दिशासमूहके विशालताको प्राप्त करनेपर, हाथीके रुधिरसे लाल सिंहके केसरकी समान लाल और तपाये गये लाखके तन्तुओंके समान गुलाबी लम्बी सूर्य-किरणोंसे मानों पद्मराग रत्नकी सलाइयोंकी झाड़ूसे आकाशरूप फर्शके पुष्पसमूहके समान नक्षत्रगणोंके दूर किये जानेपर सन्ध्यावन्दनके लिए उत्तर दिशामें लटके हुए सप्तर्षि मण्डलके मानससरोवरमें उतरनेपर पश्चिम समुद्रके किनारेपर स्थित फूटी हुई सीपियोंसे बिखरे गये

फलनिकरमुद्वहति धवलितपुलिनमुदन्वति पूर्वतरे, तुषारबिन्दुवर्षिणि विबुद्धशिखिकुले विजृम्भमाणकेशरिणि करिणी-कदम्बक-प्रबोध्यमान-समदकरिणि क्षपाजलजडकेसरं कुसुमनिकरमुदयगिरिशिखरस्थितं सवितारमिवोद्दिश्य पल्लवाञ्जलिभिः समुत्सृजति कानने, रासभ-रोम-धूसरासु वनदेवताप्रासादानां तरूणां शिखरेषु पारावतमालायमानासु धर्म्मपताकास्विव समुन्मिषन्तीषु तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु, अवश्यायशीकरिणि लुलितकमलवने रतिखिन्न-

---

शुक्तिसम्पुटानि (मुक्तास्फोटसम्पुटानि) तेभ्यो विकीर्णम् (इतस्ततो विक्षिप्तम्) । अरुणकरप्रेरणाऽधोगलितम् = अरुणस्य (सूर्यस्य) करैः (किरणैः) या प्रेरणा (नोदनम्), तया अधोगलितम् (निम्नपतितम्), उडुगणम् इव = नक्षत्रसमूहम् इव, मुक्ताफलनिकरं = मौक्तिकसमूहम् । धवलितपुलिनं = शुक्लीकृतसैकतं यथा तथा उद्वहति = धारयति सति, "यस्य च भावेन भावलक्षणम्" इति सप्तमी । अत्रोडुगणमिवेत्यत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

तुषारेति । अथ काननं विशेषयति । तुषारबिन्दुवर्षिणि = तुषारस्य (तुहिनस्य) ये बिन्दवः (पृषताः) तद्वर्षिणि (तद्वृष्टिकारके), विबुद्धशिखिकुले = विबुद्धं (जागरितम्) शिखिकुलं (मयूरसमूहः) यस्मिंस्तस्मिन् । विजृम्भमाणकेसरिणि = विजृम्भमाणाः (विशेषजृम्भां कुर्वन्तः) केसरिणः (सिंहाः) यस्मिंस्तस्मिन् । करिणीत्यादिः० = करिणीनां (हस्तिनीनाम्) कदम्बकं (समूहः), तेन प्रबोध्यमानाः (प्रबोधं प्राप्यमाणाः) समदाः (दानजलसहिताः) करिणः (हस्तिनः) यस्मिंस्तस्मिन् । तादृशे कानने = वने ।

क्षपेति । क्षपाजलजडकेसरं = क्षपायाः (रजन्याः) जलेन (तुषारयुक्तसलिलेन) जडानि (शीतलानि) केसराणि (किञ्जल्काः) यस्मिंस्तम् । "तद्वदर्थाः सुषीमः शिशिरो जडः । तुषारः शीतलः शीतो हिमः सप्ताऽन्यलिङ्गकाः ॥" इत्यमरः । तादृशं कुसुमनिकरं = पुष्पसमूहम्, उदयगिरिशिखरस्थितम् = उदयगिरेः (उदयपर्वतस्य) शिखरे (शृङ्गे) स्थितं (विद्यमानम्) सवितारं = सूर्यम्, उद्दिश्य इव = उद्देशं कृत्वा इव । पल्लवाञ्जलिभिः = पल्लवानि (किसलयानि) एव अञ्जलयः (हस्तसम्पुटाः), तैः । समुत्सृजति = समर्पयति सति । अत्रोद्दिश्येवेति क्रियोत्प्रेक्षा, 'पल्लवाञ्जलय' इत्यत्र रूपकं समासोक्तिश्चेत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः ।

रासभेति । रासभरोमधूसरासु = रासभस्य (गर्दभस्य) रोमाणि (लोमानि) तानि इव धूसराः (धूम्रवर्णाः), तासु । वनदेवताप्रासादानां = वनदेवतानां (काननदेवीनाम्) प्रासादाः (ऊर्ध्वभवनस्वरूपाः), तेषाम् । तरूणां = वृक्षाणां, शिखरेषु = उच्चभागेषु, पारावतमालायमानासु = पारावतानां (कपोतानाम्) मालायमानासु (मालावत् = पङ्क्तिवत् आचरन्तीषु), तपोवनाऽग्निहोत्रधूमलेखासु = तपोवनेषु (मुन्याश्रमेषु) यानि अग्निहोत्राणि (अग्न्याधानकर्माणि) तेषां धूमलेखासु (धूमश्रेणीषु), धर्मपताकासु इव = पुण्यसूचकवैजयन्तीषु इव, समुन्मिषन्तीषु = समुत्सर्पन्तीषु । अत्र रासभरोमधूसरास्वित्यत्र उपमा, पारावतमालायमानास्वित्यत्र व्यङ्ग्योपमा, धर्मपताकास्विवेत्यत्रोत्प्रेक्षा चेत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

अवश्यायेति । अवश्यायसीकरिणि = अवश्यायः (हिमम्) तत्सीकरिणि, "मातरिश्वनी" त्यस्य विशेषणानि (तदम्बुकणयुक्ते), "अवश्यायस्तु नीहारस्तुषार" इत्यमरः । लुलितकमल-

---

मोतियोंके दानोंको मानों सूर्यकी किरणोंसे नीचे गिराये हुए नक्षत्रसमूह धारण कर रहा है ऐसा प्रतीत होता था। वनमें ओसकी बूंदोंकी वृष्टि हो रही थी, मोरोंका झुण्ड जाग चुका था, हाथी जमुहाई ले रहे थे, हथिनियोंसे मदवाले हाथी जगाये जा रहे थे। वन रातके जलसे शीतल केसरवाले पुष्पसमूहको उदय पर्वतकी चोटीमें स्थित सूर्यको उद्देश्य कर मानों पल्लवरूप अञ्जलियोंसे अर्पण कर रहा है ऐसा प्रतीत होता था। वनदेवियोंके प्रासादरूप वृक्षोंकी चोटियोंमें गधेके रोओंकी समान धूसर तपोवनके अग्निहोत्रकी धूमरेखाएँ मानो कबूतरोंकी पङ्क्तिकी

शबरसीमन्तिनी-स्वेदजलकणापहारिणि वनमहिष-रोमन्थफेनबिन्दुवाहिनि चलितपल्लव-लता-लास्योपदेश-व्यसनिनि विघटमान-कमलखण्ड-मधुसीकरासारवर्षिणि कुसुमामोदतर्पितालिजाले निशावसानजातजडिम्नि मन्द-मन्दसञ्चारिणि प्रवाति प्रभातिके मातरिश्वनि, कमलवनप्रबोध-मङ्गलपाठकानाम् इभगण्डडिण्डिमानां मधुलिहां कुमुदोदरेषु घटमान-दलपुट-निरुद्धपक्ष-संहतीनामुच्चरत्सु हुङ्कारेषु, प्रभातशिशिरवाय्वाहतमुक्तप्तजतुरसाश्लिष्ट-पक्ष्ममालमिव सशेष-

वने = लुलितं (कम्पितम्) कमलवनं येन तस्मिन् । रतखिन्नेत्यादि:० = रतेन (निधुवनेन) खिन्नाः (खेदप्राप्ताः) याः शबरसीमन्तिन्यः (म्लेच्छजातिविशेषरमण्यः) तासां स्वेदजलकणान् (घर्मजल-बिन्दून्) अपहरतीति तच्छीलस्तस्मिन्, तदपहरणशील इत्यर्थः । वनमहिषेत्यादि:० = वनमहिषाणां (सैरिभाणाम्) रोमन्थः (चर्वितचर्वणम्) तस्य फेनबिन्दवः (डिण्डीरपृषताः) तान् वहतीति (धारयतीति) तच्छीलस्तस्मिन् । चलितेत्यादि:० = चलिताः (कम्पिताः) पल्लवाः (किसलयानि) यासां ताः, तादृश्यो या लता (वल्ल्यः) तासां लास्यं (नृत्यम्) तस्य उपदेशः (शिक्षणम्), तस्मिन् व्यसनिनि (आसक्ते) । विघटमानेत्यादि:० । विघटमानं (विकासं प्राप्नुवन्) यत् कमल-खण्डं (पद्मसमूहः) तस्य यत् मधु (पुष्परसः) तस्य शीकराणाम् (कणानाम्) आसारः (धारा-सम्पातः) तद्वर्षिणि (तद्वर्षणशीले) । कुसुमामोदतर्पिताऽलिजाले = कुसुमामोदेन (पुष्पसौरभेण) तर्पितम् (प्रीणितम्) अलिजालं (भ्रमरसमूहः) येन तस्मिन् । निशाऽवसानजातजडिम्नि = निशाऽ-वसानेन (रात्रिसमाप्त्या) जातः (उत्पन्नः) जडिमा (शैत्यम्) यस्य तस्मिन् । "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इति सूत्रेण जडशब्दादिमनिच्प्रत्ययः । मन्दमन्दसञ्चारिणि = शनैः शनैः सञ्चरणशीले, प्राभातिके = प्रातःकालभवे, मातरिश्वनि = वायौ, प्रवाति = प्रवहति सति । "श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मात-रिश्वा सदागतिः ।" इत्यमरः ।

कमलेति । कमलवनेत्यादि: = कमलवनस्य (पद्मकाननस्य) प्रबोधे (जागरणे, विकसन इति भावः) मङ्गलपाठकानां (स्तुतिपाठकारिणाम्), एतेन कमलवनस्य प्रभुत्वं भ्रमराणां बन्दित्वं व्यङ्ग्यम् । इभगण्डडिण्डिमानाम् = इभगण्डेषु (हस्तिकपोलेषु), डिण्डिमानाम् (वाद्यविशेष-स्वरूपाणां, डिण्डिमवच्छब्दकारिणामिति भावः), तादृशानां मधुलिहां = भ्रमराणां, कुमुदोदरेषु = कुमुदानाम् (कैरवाणां, कमलविशेषाणाम्) उदरेषु (मध्यभागेषु) । घटमानेत्यादि:० = घटमानानि (सङ्कोचं प्राप्नुवन्ति) यानि दलपुटानि (पत्त्रकोशाः) तेषु निरुद्धा (निबद्धा) पक्षसंहतिः (पतत्त्र-समूहः) येषां, तेषाम् । मधुलिहां = भ्रमराणाम् । हुङ्कारेषु = हुङ्कारध्वनिषु, उच्चरत्सु = गुञ्जत्सु । अत्र मधुलिट्सु मङ्गलपाठकत्वारोपः शाब्दः, कमलवने प्रभुत्वारोपस्त्वार्थ इत्येकदेशविवर्तिरूपकम्, इभगण्डडिण्डिमानामित्यत्र निरङ्गकेवलरूपकम्, अनयोर्मिथोऽनपेक्षया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः । "मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते" इति साहित्यदर्पणे ।

प्रभातेति । **ऊषरेत्यादि:०** । ऊषरा (तृणरहिता) या शय्या (शयनस्थानम्), तया धूसरा (धूम्रवर्णा) क्रोडरोमराजिः (भुजान्तरलोमपङ्क्तिः) येषां, तेषु । वनमृगेषु = अरण्यहरिणेषु,

समान अथवा धर्मपताकाओंकी समान प्रतीत होकर फैल रही थीं । ओसकी बूँदोंसे युक्त, कमलवनको हिलानेवाली, रतिसे खिन्न शबरस्त्रियोंके पसीनेके कणोंको सुखानेवाली, जङ्गली भैंसोंकी जुगालीके फेनकी बूँदोंको वहन करनेवाली, हिलते हुए पल्लवोंसे युक्त, लताओंके नृत्यके उपदेशमें व्यसनवाली, खिलते हुए कमलोंके मधु कणोंको लगातार बरसानेवाली, फूलोंके सौरभसे भौंरोंको तृप्त करनेवाली, रात्रिकी समाप्तिसे शीतल, मन्द-मन्द बहनेवाली प्रातःकालकी हवाके चलनेपर, कमलवनको जगानेके लिए मङ्गलपाठक, हाथियोंके कपोलोंमें डिण्डिम (वाद्य)के समान, सङ्कुचित पत्तोंके कोशोंमें बद्ध पङ्खोंवाले भौंरोंके गुञ्जन करनेपर, ऊपर (तृणरहित) शय्यासे धूसर भुजान्तरकी रोमपङ्क्तिसे युक्त वनमृगोंके प्रातःकालकी ठण्डी हवासे ताडित, मानो तपाये गये लाक्षारससे चिपकाये गये पलकोंसे युक्त,

निद्राजिह्मितारं चक्षुरुन्मीलयत्सु शनैः शनैरूषरशय्या-धूसरक्रोडरोमराजिषु वनमृगेषु, इतस्ततः सञ्चरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि पम्पासरः कलहंसकोलाहले, समुल्लसति नर्त्तितशिखण्डिनि मनोहरे वनगजकर्णतालशब्दे, क्रमेण च गगनतलमवरतो दिवसकर-वारणस्यावचूलचामरकलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैःशनैरुदिते भगवति सवितरि, पम्पासरःपर्य्यन्त-तरु-शिखर-सञ्चारिणि अध्यासित-गिरिशिखरे दिवसकर-जन्मनि हृततारे पुनरिव कपीश्वरे वनमभिपतति बालातपे, स्पष्टे जाते प्रत्यूषसि, नचिरादिव

प्रभातेत्यादिः० = प्रभातस्य (प्रातःकालस्य) यः शिशिरवायुः (शीतवातः) तेन आहतम् (ताडितं स्पृष्टमिति भावः) । उत्तप्तेत्यादिः० = उत्तप्तः (सन्तप्तः) यो जतुरसः (लाक्षाद्रवः) तेन आश्लिष्टा (आलिङ्गिता, संयोजितेति भावः), पक्ष्ममाला (नयनलोमपङ्क्तिः) यस्य तत्, इव, सशेषनिद्रा-जिह्मतारं = सशेषा (साऽवशेषा) या निद्रा (स्वापक्रिया), तया जिह्मा (वक्रा) तारा (कनी-निका) यस्य तत् । तादृशं चक्षुः = नेत्रं, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, उन्मीलयत्सु = विकासयत्सु सत्सु । अत्र क्रियोत्प्रेक्षा ।

इतस्तत इति । इतस्ततः = यत्र तत्र, वनचरेषु = अरण्यचारिषु । सञ्चरत्सु = सञ्चरणं कुर्वत्सु । श्रोत्रहारिणि = कर्णाकर्षके, मधुरतयेति भावः । पम्पासरःकलहंसकोलाहले = पम्पासरसि (पम्पाऽऽख्यकासारे) कलहंसानां (कादम्बानां, हंसविशेषाणाम्) कोलाहले (कलकले), विजृम्भमाणे = प्रसरति सति । नर्तितशिखण्डिनि = नर्तिताः (नाटिताः) शिखण्डिनः (मयूराः) येन तस्मिन् । मनोहरे = चित्ताकर्षके, वनगजकर्णतालशब्दे = वनगजानाम् (अरण्यहस्तिनाम्) कर्णतालशब्दे = (श्रोत्रताडनध्वनौ), समुल्लसति = संप्रसरति सति । अत्र गजकर्णतालशब्दं मेघध्वनिं बुद्ध्वा हर्षेण मयूरा नृत्यन्तीति भ्रान्तिमान् "साम्यादतस्मिस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान्प्रतिभोत्थितः ।" इति साहित्यदर्पणः ।

क्रमेणेति । क्रमेण = परिपाट्या, गगनतलम् = आकाशतलम्, अवतरतः = आरोहतः, दिवस-करवारणस्य = दिवसकरः (सूर्यः) वारणः (गजः) इव, तस्य, अवचूलचामरकलापे = अवनता चूला (अग्रम्) यस्य सः, डलयोरभेदात् अवचूडः (अधोमुखः) चामरकलापः (प्रकीर्णकसमूहः), तस्मिन्, इव, मञ्जिष्ठारागलोहिते = मञ्जिष्ठा (विकसा) तस्या रागः (लौहित्यम्) तेन इव लोहितम् (रक्तवर्णम्), तस्मिन् । "मञ्जिष्ठाविकसा जिङ्गी" इत्यमरः । किरणजाले = मयूख-समूहे उपलक्ष्यमाणे = दृश्यमाने सति । अत्र द्वयोरुपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः । भगवति= ऐश्वर्यसम्पन्ने, सवितरि = सूर्ये, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम् । उदिते = उदयप्राप्ते सति ।

पम्पासर इति । पम्पासर इत्यादिः० = पम्पासरसः (पम्पाऽऽख्यकासारस्य) पर्यन्ततरूणां (प्रान्तस्थितवृक्षाणाम्) शिखरेषु (ऊर्ध्वभागेषु) सञ्चरति (गच्छति) इति तच्छीलस्तस्मिन् । अध्यासितगिरिशिखरे = अध्यासितम् (आश्रितम्) गिरिशिखरं (पर्वतशृङ्गम्) येन, तस्मिन् । दिवसकरजन्मनि = दिवसकरात् (सूर्यात्) जन्म (उत्पत्तिः) यस्य, तस्मिन्, हृततारे = हृताः (दूरीभूताः) ताराः (नक्षत्राणि) येन तस्मिन्, बालातपपक्षेऽयमर्थः । सुग्रीवपक्षे तु—हृता (अप-

---

अवशेष निद्रासे तिरछी पुतलीवाले नेत्रको खोलनेपर, वनचरोंके इधर-उधर संचरण करनेपर, कानोंको आकृष्ट करनेवाले पम्पासरोवरके कलहंसोंके कोलाहलके बढ़नेपर, मयूरोंको नचाने वाले मनोहर हाथियोंके कानके ताडनका शब्द फैलनेपर मञ्जिष्ठा (मजीठ) की लालिमाके समान लाल, किरणसमूहके क्रमसे आकाशमें उतरते हुए सूर्यरूप हाथीके अधोमुख चंवरके समान दिखाई देनेपर, भगवान् सूर्यके धीरे-धीरे उगनेपर, पम्पासरोवरके प्रान्तस्थित वृक्षोंकी चोटियोंपर संचरण करनेवाले, पर्वतकी चोटीका आश्रय लेनेवाले सूर्यसे उत्पन्न, (सुग्रीव पक्षमें सूर्यपुत्र,) ताराओं (सुग्रीव पक्षमें तारा) का हरण करनेवाले, सूर्यके नव आतपके मानों फिर वानरेश्वर (सुग्रीव)

दिवसाष्टमभागभाजि स्पष्टभासि भास्वति भूते, प्रयातेषु च यथाभिमतानि दिगन्तराणि शुक-कुलेषु, कुलाय-निलीननिभृत-शुक-शावकसनाथेऽपि निःशब्दतया शून्य इव तस्मिन् वनस्पतौ, स्वनीडावस्थित एव ताते, मयि च शैशवादसञ्जातबलसमुद्भिद्यमानपक्षपुटे पितुःसमीपवर्तिनि कोटरगते, सहसैव तस्मिन् महावने संत्रासितसकलवनचरः सरभसमुत्पतत्पतत्रिपक्षपुटशब्दसन्ततः भीत-करिपोत-चीत्कारपीवरः प्रचलितलताकुल-मत्तालिकुलक्वणितमांसलः परिभ्रमदुद्घोणवन-वराह-रवघर्घरः गिरिगुहा-सुप्त-प्रबुद्ध-सिंहनादोपबृंहितः, कम्पयन्निव तरून् भगीरथावतार्य्य-माणगङ्गाप्रवाहकलकल-बहलो भीतवनदेवताकर्णितो मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत् ।

हृता) तारा (ताराख्या वालिपत्नी) येन, तस्मिन् । बालाऽऽतपे = नूतनसूर्यद्योते, कपीश्वरे = वानराऽधिपतौ, इव, पुनः = भूयः, वनम् = अरण्यम्, अभिपतति = आक्रामति सति । अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः । प्रत्यूषसि = प्रातःकाले, स्पष्टे = व्यक्ते, जाते = भूते सति ।

नचिरादिवेति । भास्वति = सूर्ये, नचिरादिव = अल्पकालेनेव, दिवसाऽष्टमभागभाजि = दिवसस्य (दिनस्य) अष्टमभागः (चतुर्घटिकात्मकांऽशः) तं भजति (आश्रयते) इति, तस्मिन् । "भजो ण्विः" इति ण्विप्रत्ययः । अत एव स्पष्टभासि = स्पष्टा (व्यक्ता) भाः (कान्तिः) यस्य तस्मिन्, भूते = संवृत्ते सति । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

प्रयातेष्विति । शुककुलेषु = कीरसमूहेषु, यथाऽभिमतानि = यथेष्टानि, दिगन्तराणि = आशा-विभागान्, प्रयातेषु = गतेषु सत्सु ।

कुलायेति । कुलायेषु (नीडेषु, "कुलायो नीडमस्त्रियाम्" इत्यमरः), निलीनाः (गुप्ताः) निभृताः (निश्चलाः) ये शुकशावकाः (कीरशिशवः) तैः सनाथेऽपि (संयुक्तेऽपि) । निःशब्दतया = नीरवत्वेन, शून्य इव = पक्षिरहित इव, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, वनस्पतौ = शाल्मलीवृक्षे । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । ताते = मत्पितरि, स्वनीडाऽवस्थित एव = निजकुलायस्थित एव, शैशवात् = बाल्यात्, असञ्जातेत्यादिः० = असञ्जातम् (अनुत्पन्नम्) बलं (शक्तिः, उत्पतनशक्तिरिति भावः) यस्य सः तथा समुद्भिद्यमानम् (समुत्पद्यमानम्) पक्षपुटं (पतत्रपुटम्) यस्य सः, तस्मिन् । मयि=वैशम्पायने, पितुः = तातस्य, समीपवर्तिनि = निकटस्थे, कोटरगते = निष्कुहप्राप्ते सति ।

सहसैवेति । सहसा = अतर्किते, एव, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, महावने = अरण्यान्यां, "मृगया-कोलाहलध्वनिरुदचरत्" इत्यत्र सम्बन्धः । संत्रासितसकलवनचरः = संत्रासिताः (त्रासं प्रापिताः) सकलाः (समस्ताः) वनचराः (अरण्यचारिणः) येन सः । सरभसेत्यादिः० = सरभसं (सवेगम्) समुत्पतन्तः (उड्डीयमानाः) ये पतत्रिणः (पक्षिणः) तेषां पक्षपुटानि (पतत्रपुटानि), तेषां शब्दैः (ध्वनिभिः) सन्ततः (विस्तीर्णः), भीतकरिपोतचीत्कारपीवरः = भीताः (त्रस्ताः) ये करिपोताः (कलभाः) तेषां चीत्काराः (भयद्योतकध्वनयः) । तैः पीवरः (पुष्टः, समृद्ध इति भावः) ।

प्रचलितेति । प्रचलिताः (कम्पिताः) या लताः (वल्ल्यः), तासु आकुलाः (व्याकुलाः) मत्ताः (क्षीबाः) ये अलयः (भ्रमराः) तेषां कुलं (समूहः) तस्य क्वणितं (गुञ्जनम्) तेन मांसलः (पुष्टः) । परिभ्रमदित्यादिः० =परिभ्रमन्तः (परितः सञ्चरन्तः) उद्घोणाः (उन्नतनासाः) ये

वनमें प्रवेश कर रहे हैं, ऐसा प्रतीति करानेपर, प्रातःकालके स्पष्ट होनेपर, अल्पकालमें ही सूर्यके दिनके अष्टम भाग-(चार घड़ी) को प्राप्त करनेपर उनकी प्रभा स्पष्ट प्रतीत होनेपर, तोतोंके अभीष्ट दिशाओंके भागोंमें जानेपर, घोसलोंमें छिपे हुए निश्चल शुक शिशुओंसे युक्त होनेपरभी निःशब्द होनेसे उस पेड़ (शाल्मली) के पक्षिरहितके समान प्रतीत होनेपर, मेरे पिताके अपने घोंसलेमेंही रहनेपर, और बचपनसे उड़नेकी शक्तिसे रहित, पर सहसा उगतेहुए पंखोंवाले मेरे, पिताके समीप कोटरमें रहनेपर, उस महावनमें समस्त वनचरोंको संत्रस्त करानेवाला, वेगपूर्वक उड़नेवाले पक्षियोंके पंखोंके शब्दोंसे व्याप्त, डरे हुए हाथियोंके बच्चोंके चीत्कार शब्दसे पुष्ट, कम्पित लतामें

आकर्ण्य च तमहमश्रुतपूर्वमुपजातवेपथुरर्भकतया जर्ज्जरित-कर्णविवरो भयविह्वलः समीपवर्त्तिनः पितुः प्रतीकारबुद्धया जराशिथिलपक्षपुटान्तरमविशम् ।

अनन्तरञ्च 'सरभसमितो गजयूथपति-लुलित-कमलिनी-परिमलः; इतः क्रोडकुल-दश्य-मान-भद्रमुस्ता-रसामोदः, इतः करिकलभ-भज्यमान-सल्लकी-कषाय-गन्धः; इतो निपतित-शुष्क-पत्रमर्म्मरध्वनिः, इतो वनमहिष-विषाण-कोटिकुलिश-भिद्यमान-वल्मीकधूलिः, इतो मृग-

---

वनवराहाः (अरण्यशूकराः) तेषां रवः (शब्दः) तेन घर्घरः (घर्घरात्मकाऽस्फुटध्वनियुक्तः)। गिरिगुहेत्यादिः० = गिरिगुहासु (शैलकन्दरासु) सुप्तप्रबुद्धाः (प्राक् सुप्ताः = निद्राणाः, पश्चात्, प्रबुद्धाः = जागरिताः), "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेन" इति समासः, तादृशाः ये सिंहाः (केसरिणः) तेषां निनादः (गर्जनशब्दः) तेन उपबृंहितः (वृद्धिगतः)। तरून् = वृक्षान्, कम्पयन् इव = कम्पयुक्तान्कुर्वन् इव ।

भगीरथेति । भगीरथेन (सूर्यवंशोत्पन्नेन राजविशेषेण) अवतार्यमाणः (अधस्तादानीयमानः) यो गङ्गाप्रवाहः (विष्णुपदीस्रोतः), तस्य यः कलकलः (कोलाहलशब्दः) तेन बहलः (प्रभूतः)। भीतवनदेवताऽऽकर्णितः = भीताः (त्रस्ताः) या वनदेवताः (अरण्यदेव्यः)। ताभिः, आकर्णितः (श्रुतः) अत्रोपमोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः । मृगयाकोलाहलध्वनिः = आखेट-कलकलशब्दः । उदचरत् = उदतिष्ठत् ।

आकर्ण्येति । अहम्, अश्रुतपूर्वम् = अनाकर्णितपूर्वं, तं = मृगयाकोलाहलध्वनिम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा । अर्भकतया = शिशुत्वेन, उपजातवेपथुः = संजातकम्पः । जर्जरितकर्णविवरः = जर्जरितं (विदीरितम्) कर्णविवरं (श्रोत्रच्छिद्रम्) यस्य सः । भयविह्वलः = त्रासविक्लवः । समीपवर्तिनः = निकटस्थितस्य, पितुः = जनकस्य, प्रतीकारबुद्धया = भयनिवारणमत्या, जराशिथिलपक्षपुटान्तरं = जरया (विस्रसया) शिथिलं (श्लथम्) यत् पक्षपुटं (पतत्रयुगलम्) तस्य अन्तरम् (अन्तः) अविशम् = प्रविष्टवान् ।

अनन्तरं = पितुः पक्षपुटाभ्यन्तरप्रवेशाऽनन्तरं, "कोलाहलमश्रृणवम्" इति पश्चाद्वर्तिपदाभ्यां, सम्बन्धः । कोलाहलप्रकारानाह—

सरभसमित्यादि । इतः = अस्मिन्प्रदेशे, सरभसं = सवेगं, गजयूथपतीत्यादिः = गजयूथपतिभिः (हस्तिसमूहश्रेष्ठैः) लुलिताः (मर्दिताः) याः कमलिन्यः (पद्मिन्यः) तासां परिमलः (विमर्दोत्पन्न-सुगन्धः)। प्रसरतीति शेषः, अतोऽत्र गजाः सन्तीतिभावः, एवमेव अन्यत्राऽपि ते तेऽनुमीयन्त इत्यूहः । इतः, क्रोडकुलेत्यादिः० = क्रोडकुलैः (वनवराहसमूहैः) दश्यमानाः (भक्ष्यमाणाः) या भद्रमुस्ताः (गुन्द्राः, भाषायां तु "नागरमोथा" इति प्रसिद्धाः), तासां रसः (द्रवः) तस्य आमोदः (सुगन्धः), अतोऽत्र वराहाः सन्तीति शेषः । "स्याद्भद्रमुस्तको गुन्द्रा" इत्यमरः । इतः, करिकलभेत्यादिः = करिकलभैः (हस्तिशावकैः) भज्यमानाः (आमर्द्यमानाः) याः सल्लक्यः (गजभक्ष्यलताविशेषाः), तासां कषायगन्धः (तुवरगन्धः), इतः, निपतितशुष्कपत्रमर्मरध्वनिः = निपतितानि (वृक्षच्युतानि)

व्याकुल और मत्त भ्रमरसमूहके गुञ्जनसे बढ़ा हुआ घूमते हुए ऊँची नासिकावाले जङ्गली सूअरोंके शब्दसे कठोर, पर्वतकी गुफाओंमें सोकर जागे हुए सिंहके गर्जनसे बढ़ाया गया, जो मानों वृक्षोंको कम्पित कर रहा था, भगीरथसे उतारी गई गङ्गाके प्रवाहके कलकलके समान घना, डरी हुई वनदेवताओंसे सुनागया शिकारका कोलाहल शब्द उत्पन्न हुआ । पहले कभी नहीं सुने गये उस शब्दको सुनकर मैं बालक होनेसे काँपकर जर्जरित कर्णविवरवाला, और भयसे विह्वल होकर प्रतीकारकी बुद्धिसे निकटमें रहे हुए पिताके बुढ़ापेसे शिथिल पंखोंके भीतर घुस गया ।

इसके वाद वेगके साथ—यहाँ हाँथियोंके स्वामीसे मर्दित कमलिनीका गन्ध है । यहाँ जङ्गली सूअरोंसे चबाई जाती हुई नागरमोथाके रसका गन्ध है, यहाँ हाथीके बच्चोंसे तोड़ी जाती हुई सल्लकी लताका कसैला गन्ध है, यहाँ

कदम्बकम्, इतो वनगजकुलम्, इतो वनवराहयूथम्, इतो वनमहिषवृन्दम्, इतः शिखण्डि-मण्डल-विरुतम्, इतः कपिञ्जल-कुल-कलकूजितम्, इतः कुररकुल-क्वणितम्, इतो मृगपतिनख-भिद्यमान-कुम्भ-कुञ्जर-रसितम्, इयमार्द्र-पङ्कमलिना वराहपद्धतिः, इयमभिनव-शष्पकवल-रस-श्यामला हरिण-रोमन्थ-फेन-संहतिः, इयमुन्मद-गन्धगजगण्ड-कण्डूयन-परिमलनिलीन-मुखरमधु-कर-विरुतिः, एषा निपतितरुधिरबिन्दुसिक्त-शुष्कपत्त्र-पाटला रुरुपदवी, एतद्द्विरद-चरण-मृदित-

---

यानि शुष्कपत्त्राणि (नीरसपलाशानि) तेषां मर्मरध्वनिः (मर्मरशब्दः), इतः, वनमहिषेत्यादिः० = वनमहिषाणां (विपिनसैरिभाणाम्) विषाणकोटयः (शृङ्गाग्राणि) कुलिशानि (वज्राणि) इव, तैः भिद्यमानं (विदार्यमाणम्) यत् वल्मीकं (वामलूरः, कीटराशीकृतमृत्तिकापुञ्जो वा) तस्य धूलिः (रजः), इतः, मृगकदम्बकं = हरिणयूथम् । इतः, वनगजकुलं = वनगजानाम्, (अरण्य-हस्तिनाम्) कुलम् (सजातीयसमूहः) । इतः, वनवराहयूथं = वनवराहाणाम् (आरण्यकशूकराणाम्) यूथम् (वृन्दम्) । इतः, वनमहिषवृन्दं = वनमहिषाणाम् (आरण्यकसैरिभाणाम्) वृन्दम् (समुदायः) । इतः, शिखण्डिमण्डलविरुतं = शिखण्डिमण्डलस्य (मयूरसमूहस्य) विरुतम् (शब्दः) । इतः कपिञ्जलकुलकलकूजितं = कपिञ्जलानां (गौरतित्तिरीणां चातकानां वा) यत् कुलं (सजातीय-समूहः), तस्य, कलकूजितम् (मधुररुतम्) । इतः, कुररकुलक्वणितम् = कुररकुलस्य (उत्क्रोशपक्षि-समूहस्य) क्वणितम् (वाशितम्), "उत्क्रोशकुररौ समौ" इत्यमरः । इतः, मृगपतीत्यादिः = मृगपतीनां (सिंहानाम्) नखाः (नखराः) तैः, भिद्यमानाः (विदार्यमाणाः) कुम्भाः (मस्तक-पिण्डाः) येषां, तेषां कुञ्जराणां (हस्तिनाम्) रसितम् (आक्रन्दितम्) । इयम् = एषा, आर्द्र-पङ्कमलिना = आर्द्रः (क्लिन्नः) यः पङ्कः (कर्दमः), तेन मलिना (मलीमसा), वराहपद्धतिः = अरण्यशूकरमार्गः । इयम्, अभिनवेत्यादिः० = अभिनवानि (अचिरोत्पन्नानि) यानि शष्पाणि (बालतृणानि) तेषां कवलः (ग्रासः) तस्य रसः (द्रवः) तेन श्यामला (कृष्णवर्णा), हरिण-रोमन्थफेनसंहतिः=हरिणानां (मृगाणाम्) यो रोमन्थः (चर्वितचर्वणम्) तस्य फेनसंहतिः (डिण्डीर-समूहः) । इयम्, उन्मदेत्यादिः० = गन्धप्रधानो गजो गन्धगजः, "शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तर-पदलोपस्योपसंख्यानम्" इति मध्यमपदलोपी समासः । गन्धगजलक्षणं पालकाप्ये यथा—

"यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः ।
तं गन्धहस्तिनं प्राहुर्नृपतेर्विजयावहम् ॥" इति ।

उन्मदाः (उत्कटमदाः) ये गन्धगजाः (गन्धयुक्तहस्तिनः), तेषां गण्डकण्डूयनेन (करटकण्डूत्या) यः परिमलः (विमर्दोत्थ आमोदः) तस्मिन् निलीनाः (अवस्थिताः) मुखराः (शब्दायमानाः) मधुकराः (भ्रमराः), तेषां विरुतिः (झङ्कारः) । एषा निपतितेत्यादिः० = निपतिताः (भुवि स्रस्ताः) ये रुधिरबिन्दवः (रक्तपृषताः) तैः सिक्तानि (उक्षितानि) यानि शुष्कपत्त्राणि (नीरसपलाशानि) तैः पाटला (श्वेतरक्ता), रुरुपदवी = रुरूणां (मृगविशेषाणाम्) पदवी (मार्गः) । एतत् समीपतरवर्ति, द्विरदेत्यादिः० = द्विरदानां (हस्तिनाम्), चरणैः (पादैः) मृदितं (संचूर्णितम्)

गिरे गये सूखे पत्तोंकी मर्मर ध्वनि हो रही है । यहाँ जङ्गली भैंसोंके सींगोंकी नोकों रूपी वज्रोंसे भेदी जाती हुई वल्मीक (मिट्टीके ढेर) की धूल है, यहाँ मृगोंका झुण्ड है, यहाँ जङ्गली हाँथियोंका गिरोह है । यहाँ जङ्गली सूअरोंका झुण्ड है, यहाँ जङ्गली भैंसोंका झुण्ड है, यहाँ मयूरसमूहकी आवाज हो रही है, यहाँ चातकोंके झुण्डका मनोहर कूजित है, यहाँ कुरर पक्षियोंके झुण्डकी ध्वनि हो रही है, यहाँ सिंहके नाखूनसे कुम्भ (मस्तकपिण्ड) के भेदे जानेसे हाँथीका चीत्कार शब्द है, यहाँ गीली कीचड़से मलिन सूअरका मार्ग है, यह नई घासको कौरके रससे सांवला मृगोंकी जुगालीका फेनसमूह है, यह उत्कट मदवाले गन्धप्रधान हाँथियोंके गण्डस्थलमें खुजलानेसे हुए सुगन्धमें लीन शोर करनेवाले भौंरोंका झङ्कार है । यह गिरे हुए रुधिर बिन्दुओंसे सींचे गये सूखे पत्तोंसे गुलाबी रुरु-

विटप-पल्लवपटलम्, एतत् खड्गिकुलक्रीडितम्, एष नखकोटि-विकटविलिखितविकट-पत्त्रलेखो रुधिरपाटलः करिमौक्तिकदन्तुरो मृगपतिमार्गः, एषा प्रत्यग्रप्रसूतवनमृगीगर्भ-रुधिर-लोहिनी भूमिः, इयमटवीवेणिकानुसारिणी पक्षचरस्य यूथपतेर्मदजलमलिना सञ्चार-वीथी, चमरीपङ्क्ति-रियमनुगम्यताम्, उच्छुष्कमृग-करीष-पांसुला त्वरिततरमध्यास्यतामियं वनस्थली, तरुशिखर-मारुह्यताम्, आलोक्यतां दिगियम्, आकर्ण्यतामयं शब्दः, गृह्यतां धनुः, अवहितैः स्थीयताम्, विमुच्यन्तां श्वानः' इत्यन्योन्यमभिवदतो मृगयासक्तस्य महतो जनसमूहस्य तरुगहनान्तरित-विग्रहस्य क्षोभितकाननं कोलाहलमशृणवम् ।

विटपपल्लवानां (वृक्षकिसलयानाम्) पटलम् (समूहः) । एतत्, खड्गिकुलक्रीडितं = खड्गि-कुलस्य (गण्डकसमूहस्य) क्रीडितम् (क्रीडास्थलम्) । क्रीडन्ति अस्मिन्निति "क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः" इति सूत्रेणाऽधिकरणे क्तप्रत्ययः । एषः, नखकोटीत्यादिः० = नखकोटिभिः (नखराऽग्रैः), विकटाः (विकृताः) विलिखिताः (चित्रिताः) पत्त्रलेखाः (पत्त्राकृतिचिह्नानि) यस्मिन् सः । रुधिरपाटलः = रुधिरेण (रक्तेन) पाटलः (श्वेतरक्तः), करिमौक्तिकदलदन्तुरः = करिणां (हस्तिनाम्) यानि मौक्तिकदलानि (मुक्ताखण्डानि) तैः दन्तुरः (उन्नताऽनतः) विषम इति भावः । मृगपतिमार्गः = सिंहपदवी । एषा = समीपतरस्थिता, प्रत्यग्रेत्यादिः० = प्रत्यग्रप्रसूता (नवप्रसविनी) या वनमृगी (अरण्यहरिणी) तस्या गर्भरुधिरेण (भ्रूणरक्तेन) लोहिनी (रक्त-वर्णा), भूमिः = पृथिवी ।

इयमिति । पक्षचरस्य = यूथसंचरणशीलस्य, यूथपतेः = स्ववर्गश्रेष्ठस्य, हस्तिन इति भावः । मदजलमलिना = दानसलिलमलीमसा, अटवीवेणिकाऽनुकारिणी = वनभूमिकेशबन्धाऽनुकरणशीला, इयम्, सञ्चारवीथी = सञ्चरणपद्धतिः । इयम् = एषा, चमरीपङ्क्तिः = चमरमृगीश्रेणी, अनुगम्यताम् = अनुव्रज्यताम् । उच्छुष्कमृगकरीषपांसुला = उच्छुष्कानि (वानानि, अतिपुरातनानीति भावः) यानि मृगकरीषाणि (हरिणपुरीषाणि), तैः पांसुला (सरजस्का), इयं, वनस्थली = अरण्याऽकृत्रिमभूमिः, त्वरिततरं = शीघ्रतरम्, अध्यास्यताम् = आश्रीयताम् । तरुशिखरं = वृक्षोर्ध्वप्रदेशः, आरुह्यताम् = आरोहणविषयीक्रियताम् । इयं = सम्मुखस्था, दिक् = दिशा, आलोक्यतां = दृश्यताम् । अयं, शब्दः = ध्वनिः, आकर्ण्यतां = श्रूयताम् । धनुः = कार्मुकं, गृह्यताम् = आदीयतां, पशुपक्ष्यादिवधायेति शेषः । अवहितैः = सावधानैः, युष्माभिः, स्थीयताम् = अवस्थानं क्रियताम् । श्वानः = कुक्कुराः, विमुच्यन्तां = बन्धनान्मुक्ताः क्रियन्ताम् । आखेटयोग्यजन्तुवधायेति शेषः । इति=पूर्वोक्तप्रकारेण, अन्योन्यं=परस्परम्, अभिवदतः = भाषमाणस्य, मृगयाऽऽसक्तस्य = आखेटक्रीडातत्परस्य, तरुगहनाऽन्तरितविग्रहस्य = तरूणां (वृक्षाणाम्) यत् गहनं (वनम्) तेन अन्तरितः (व्यवहितः) विग्रहः (शरीरम्) यस्य, तस्य । महतः = विशालस्य, जनसमूहस्य = लोकवृन्दस्य । क्षोभितकाननं = क्षोभितं (सञ्चालितम्) काननं (वनम्) येन, तम् । तादृशं कोलाहलं = कलकलम्, अशृणवम् = श्रुतवान् ।

(मृगविशेष) का मार्ग है । यह हाथीके पैरोंसे रौंदे गये वृक्षोंके पल्लवोंका समूह है । यह गैंडोंके समूहका क्रीड़ास्थान है । यह नाखूनोंकी नोकोंसे विकृत और चित्रित पत्तोंके आकारके चिह्नोंवाला, रुधिरसे गुलाबी हाथीके मोतियोंके खण्डोंसे ऊँचनीच (विषम) सिंहका मार्ग है, यह तत्क्षण ब्याई गई वनमृगीके गर्भके रुधिरसे लाल भूमि है, यह वनभूमिकी चोटीका अनुकरण करने वाला समूहमें रहने वाले हाथियोंके गरोहके मुख्य हाथीके मद जलसे मलिन सञ्चारमार्ग है । इस चमरमृगीकी पङ्क्तिका अनुगमन करो, सूखे मृगके पुरीषोंसे धूलवाली इस वनस्थलीका शीघ्र आश्रय करो, पेड़ोंकी चोटीपर चढ़ो, इस दिशाको देखलो, इस आवाजको सुनो, धनुषको ग्रहण करो । सावधान (होशियार) होकर खड़े हो जाओ, शिकारी कुत्तोंको छोड़ दो, इस प्रकार परस्पर भाषण करते हुए, शिकारमें आसक्त और पेड़ोंके वनमें छिपे हुए शरीरवाले विशाल जनसमूहकी वनको सञ्चालित करनेवाली कोलाहलध्वनिको मैंने सुना ।

अथ नातिचिरादेवानुलेपनार्द्र-मृदङ्गध्वनिधीरेण गिरिविवर-विजृम्भित-प्रतिनादगम्भीरेण, शबर-शर-ताडितानां केसरिणां निनादेन, संत्रस्त-यूथ-मुक्तानामेकाकिनाञ्च सञ्चरतामनवरत-करास्फोटमिश्रेण जलधर-रसितानुकारिणा गजयूथपतीनां कण्ठगर्जितेन, सरभस-सारमेयविलुप्यमानावयवानामालोल-तरल-तारकाणामेणकानाञ्च करुण-कूजितेन, निहितयूथपतीनां वियोगिनीनामनुगत-कलभानाञ्च स्थित्वा स्थित्वा समाकर्ण्य कलकलमुत्कर्णपल्लवानामितस्ततः परिभ्रमन्तीनां प्रत्यग्र-पतिविनाशशोकदीर्घेण करिणीनां चीत्कृतेन, कतिपय-दिवस-प्रसूतानाञ्च खड्गिधेनुकानां त्रास-परिभ्रष्ट-पोतकान्वेषिणीनामुन्मुक्तकण्ठमारसन्तीनामाक्रन्दितेन, तरुशिखर-

अथ = कोलाहलश्रवणाऽनन्तरं, नातिचिरात् एव = अल्पकालेन एव, "सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवत्" इत्यन्वयः। अनुलपेनाऽऽर्द्रमृदङ्गध्वानधीरेण = अनुलेपनेन (द्रवद्रव्यलेपेन) आर्द्रः (क्लिन्नः) यो मृदङ्गः (मुरजः) तस्य ध्वनिः (ध्वानः) स इव धीरः (गम्भीरः), तेन। गिरिविवरेत्यादिः = गिरिविवरेषु (पर्वतगुहासु) विजृम्भितः (विस्तीर्णः) यः प्रतिनादः (प्रतिध्वनिः) तेन गम्भीरः (गभीरः), तेन। शबरशरताडितानां = शबराणां (म्लेच्छविशेषाणाम्) शरैः (बाणैः) ताडितानां (प्रहृतानाम्) केसरिणां (सिंहानाम्), निनादेन = शब्देन।

संत्रस्तेति। संत्रस्तयूथमुक्तानां = संत्रस्तम् (उद्विग्नम्) यत् यूथं (समूहः), तस्मात् मुक्तानाम् (त्यक्तानाम्), एकाकिनाम् (एककानाम्) च, संचरतां = भ्रमताम्, गजयूथपतीनां = हस्तिसमूहनायकानाम्, अनवरतकरास्फोटमिश्रेण = अनवरतं (निरन्तरम्) यः करास्फोटः (शुण्डाऽऽघातः), तेन मिश्रेण (संवलितेन), जलधररसिताऽनुकारिणा = जलधरस्य (मेघस्य) यत् रसितं (गर्जितम्) तदनुकारिणा (तद्विडम्बनशीलेन, तत्तुल्येनेति भावः) कण्ठगर्जितेन = गलबृंहितेन।

सरभसेति। सरभसाः (वेगयुक्ताः) ये सारमेयाः (श्वानाः, सरमायाः = शुन्याः अपत्यानि, "स्त्रीभ्यो ढक्" इति ढक्), तैः विलुप्यमानाः (विनाश्यमानाः) अवयवाः (अङ्गानि) येषां तेषाम्। आलोलतरलतारकाणाम् = आलोले (समन्ताच्चञ्चले), तरले (भास्वरे) तारके (कनीनिके) येषां, तेषाम्। एणकानां = मृगाणां च करुणकूजितेन = शोकपूर्णध्वनिना।

निहतेति। निहतयूथपतीनां = निहताः (व्यापादिताः, आखेटशीलैरिति शेषः) यूथपतयः (समूहनायकाः) यासां, तासाम्। वियोगिनीनां = पतिविरहितानाम्, अनुगतकलभानाम् = अनुगताः (कृताऽनुगमनाः) कलभाः (करिशावकाः) यासां, तासाम्। स्थित्वा स्थित्वा, मुहुर्मुहुरवस्थानं कृत्वा। कलकलं = कोलाहलं, समाकर्ण्य = श्रुत्वा, उत्कर्णपल्लवानाम् = उन्नते कर्णपल्लवे (श्रोत्रकिसलये) यासां, तासाम्। इतस्ततः = यत्र तत्र, परिभ्रमन्तीनां = परिभ्रमणं कुर्वतीनाम्। तादृशीनां, करिणीनां = हस्तिनीनां, प्रत्यग्रपतिविनाशशोकदीर्घेण = प्रत्यग्रः (सद्योभवः) यः पतिविनाशः (स्वामिमरणम्) तेन यः शोकः (मन्युः) तेन दीर्घेण (विस्तृतेन) चीत्कृतेन = चीत्कारशब्देन।

कतिपयेति। कतिपयदिवसप्रसूतानां = कतिपये (कियन्तः) ये दिवसाः (दिनानि) तैः "अपवर्गे तृतीया" इति तृतीया। प्रसूतानां (कृतप्रसवानाम्), त्रासपरिभ्रष्टपोतकाऽन्वेषिणीनां =

तब कुछ समयके अनन्तर अनुलेपनसे गीले पखावजकी आवाजके समान गम्भीर, पर्वतकी गुफाओंमें फैली हुई प्रतिध्वनिसे गम्भीर, शबरोंके बाणोंसे ताडित सिंहोंके दहाड़से, संत्रस्त गरोहसे बिछुड़े हुए और अकेले चलते हुए लगातार सूँड़ोंके प्रहारसे मिश्रित मेघके गर्जनका अनुकरण करनेवाले हाथीके झुण्डोंके नायकोंके कण्ठके गर्जनसे, वेगवाले शिकारी कुत्तोंसे नोचे गये अङ्गोंवाले, अत्यन्त चञ्चल और चमकीली पुतलियोंवाले मृगोंके करुण शब्दसे, मारे गये हाँथियोंके झुण्डके नायकोंकी वियोगिनी एवम् बच्चोंसे अनुगत, तथा रुक रुक कोलाहल शब्द सुनकर कर्णपल्लवोंको ऊँचे करनेवाली घूमती हुई उसी क्षण पतिके विनाशके शोकसे दीर्घ हथिनियोंके चीत्कार शब्दसे, कुछ दिन आगे ब्याई हुई, त्राससे बिछुड़े हुए बच्चोंको ढूँढ़नेवाली और गला फाड़कर चिल्लाती हुई गैंड़ियोंके रोदन-

समुत्पतितानामाकुलाकुलचारिणाञ्च पत्त्ररथानां कोलाहलेन, रूपानुसार-प्रधावितानाञ्च मृगयूणां युगपदतिरभसपाद-पाताभिहताया भुवः कम्पमिव जनयता चरणशब्देन, कर्णान्ताकृष्टज्यानाञ्च मदकल-कुररकामिनी-कण्ठकूजितकलशबलितेन शरनिकरवर्षिणां धनुषां निनादेन, पवनाहृति-क्वणितधाराणामसीनाञ्च कठिन-महिष-स्कन्धपीठपातिनां रणितेन, शुनाञ्च सरभसविमुक्त-घर्घरध्वनीनां वनान्तरव्यापिना ध्वानेन सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवत् ।

त्रासेन (भयेन) परिभ्रष्टाः (नष्टाः) ये पोतकाः (शिशवः), तान् अन्विष्यन्ति (गवेषयन्ति) इति तच्छीलास्तासाम् । अतएव—उन्मुक्तकण्ठम् = उन्मुक्तः (परित्यक्तः) कण्ठः (लक्षणया—कण्ठ-स्वरः) यस्मिन् कर्मणि तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । आरसन्तीनाम् = उच्चैर्नदन्तीनां, खड्गिधेनु-कानां = गण्डकसहचरीणां, "गण्डके खड्गखड्गिनौ" इत्यमरः । आक्रन्दितेन = रोदनध्वनिना ।

तरुशिखरेति । तरुशिखरसमुत्पतितानां = तरुशिखरेभ्यः (वृक्षोर्ध्वभागेभ्यः) समुत्पतितानाम् (समुड्डीनानाम्) आकुलाकुलचारिणाम् = आकुलाकुलम् (अतिशयाकुलं) यथा तथा चरन्ति (भ्रमन्ति) तच्छीलास्तेषाम् । तादृशानां पत्त्ररथानां = पक्षिणां, "पतत्पत्त्ररथाऽण्डजाः" इत्यमरः । कोलाहलेन = कलकलशब्देन ।

रूपेति । रूपाऽनुसारप्रधावितानां = रूपाणाम् (मृगाणां, तत्तत्पशूनाम् इति भावः, "रूपं मृगेऽपि विज्ञेयम्" इति हलायुधः) अनुसारेण (अनुसरणेन) प्रधावितानां (कृतधावनानाम्), मृग-यूणां = व्याधानां, "व्याधो मृगवधाजीवो मृगयुर्लुब्धकोऽपि सः" इत्यमरः । युगपत् = एकदा एव, अतिरभसपादपाताऽभिहतायाः = अतिरभसेन (वेगाऽतिशयेन) ये पादपाताः (चरणन्यासाः), तैः अभिहतायाः (ताडितायाः), भुवः = भूमेः । कम्पम् इव = वेपथुम् इव, जनयता = उत्पादयता । चरणशब्देन = पादध्वनिना ।

कर्णान्तेति । कर्णान्ताकृष्टज्यानां = कर्णान्तम् (श्रोत्रेन्द्रियपर्यन्तम्) आकृष्टा (कृताकर्षणा) ज्या (गुणः) येषां, तेषाम् । मदकलेत्यादिः = मदेन (मत्तभावेन) कलाः (मनोहराः) याः कुरर-कामिन्यः (उत्क्रोशभार्याः) तासां कण्ठकूजितं (गलरुतम्) तदिव कलः (अव्यक्तमधुरध्वनिः) तेन शबलितेन (चित्रितेन, मिश्रितेनेति भावः) । अत्रोपमाऽलङ्कारः । शरनिकरवर्षिणां = बाणसमूह-वर्षणशीलानां, धनुषां = चापानां, निनादेन = ध्वनिना ।

पवनेति । पवनस्य (वायोः) आहृत्या (आघातेन) क्वणिता (शब्दिता) धारा (तीक्ष्ण-भागः) येषां, तेषाम् । कठिनमहिषस्कन्धपीठपातिनां=कठिनाः (कठोराः) महिषाणां (लुलायानाम्) स्कन्धाः (अंसाः) एव पीठानि (स्थलानि) तेषु पतन्तीति तच्छीलास्तेषाम् (पतनशीलानाम्), तादृशानाम् असीनां = खड्गानां, रणितेन = ध्वानेन ।

शुनामिति । सरभसविमुक्तघर्घरध्वनीनां = सरभसं (वेगपूर्वकम्) विमुक्तः (संत्यक्तः) घर्घरध्वनिः (घर्घरेति ध्वनिः) यैः, तेषाम् । शुनां = सारमेयाणां, वनान्तरव्यापिना = काननमध्य-व्यापनशीलेन, ध्वानेन = निनदेन, सर्वतः = परितः, प्रचलितम् इव = कम्पितम् इव, तत् अरण्यं = काननम् ! अभवत् = अभूत् । प्रचलितमिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा ।

शब्दसे पेड़ोंकी चोटीसे उड़े हुए अति आकुल होकर घूमनेवाले पक्षियोंके कलकल शब्दसे, पशुओंका अनुसरण कर दौड़े हुए व्याधोंके एकही वार पादन्यासोंसे ताडिता पृथिवीके मानों कम्पको उत्पन्न करनेवाली चरणध्वनिसे, कान-तक खींची गई प्रत्यञ्चावाले मदसे मनोहर कुररोंकी मादाओंके कण्ठ शब्दके समान अव्यक्त मधुरध्वनिसे मिश्रित, बाणोंको बरसानेवाले धनुषोंकी टङ्कारध्वनिसे, वायुके आघातसे बजनेवाली धारवाले भैंसोंके कठोर कन्धेके स्थानपर पड़नेवाले खड्गोंकी आवाजसे, वेगके साथ घर्घर ध्वनिको निकालने वाले शिकारी कुत्तोंकी वनके भीतर व्याप्त होने-वाली आवाजसे वह जङ्गल मानों चारों ओरसे कम्पित हुआ ।

अचिराच्च प्रशान्ते तस्मिन् मृगयाकलकले, निर्वृष्ट-मूक जलधर-वृन्दानुकारिणि मथनावसानोपशान्तवारिणि सागर इव स्तिमिततामुपगते कानने, मन्दीभूतभयोऽहमुपजातकूतूहलः पितुरुत्सङ्गादीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरां प्रसार्य्य सन्त्रास-तरल-तारकः शैशवात् किमिदमित्युपजातदिदृक्षस्तामेव दिशं चक्षुः प्राहिणवम् ।

अभिमुखमापतच्च तस्माद्वनान्तरादर्जुनभुजदण्ड-सहस्र-विप्रकीर्णमिव नर्म्मदाप्रवाहम्, अनिलचलितमिव तमालकाननम्, एकीभूतमिव कालरात्रीणां यामसङ्घातम्, अञ्जनशिलास्तम्भ-सम्भारमिव क्षितिकम्प-विघूर्णितम्, अन्धकारपुञ्जमिव रविकिरणाकुलितम्, अन्तकपरिवारमिव परिभ्रमन्तम्, अवदारित-रसातलोद्भूतमिव दानवलोकम्, अशुभ-कर्म्म-समूह-

---

अचिराच्चेति । अचिराच्च = अल्पकालेन च । तस्मिन् = पूर्ववर्णिते, मृगयाकलकले = आखेटकोलाहले, प्रशान्ते = शान्तिमुपगते, निर्वृष्टमूकजलधरवृन्दाऽनुकारिणि = निर्वृष्टं (निःशेषेण कृतवर्षम्) अत एव मूकं (स्तनितरहितम्) यत् जलधरवृन्दं (मेघसमूहः), तत् अनुकरोति (विडम्बयति) तच्छीलं, तस्मिन्, कानने = वने, मथनाऽवसानोपशान्तवारिणि = मथनस्य (विलोडनस्य) अवसानम् (अन्तः), तस्मिन् उपशान्तं (स्वस्वरूपाऽवस्थितम्) वारि (जलम्) यस्मिंस्तस्मिन्, तादृशे सागर इव = समुद्र इव, स्तिमिततां = निश्चलताम्, उपगते = प्राप्ते सति, मन्दीभूतभयः = मन्दीभूतम् (अल्पीभूतम्) भयं (भीतिः) यस्य सः, अहं, पितुः = जनकस्य, उत्सङ्गात् = अङ्कात्, ईषत् इव = स्तोकम् इव, निष्क्रम्य = निर्गत्य, वियुज्येति भावः । कोटरस्थ एव = निष्कुहस्थित एव । शिरोधरां = ग्रीवां, प्रसार्य = विस्तार्य, संत्रासतरलतारकः = संत्रासेन (भयेन, हेतुना) तरले (चञ्चले) तारके (कनीनिके) यस्य सः । शैशवात् = बाल्याद्धेतोः, इदम् = सद्यो दृश्यमानं, किम्, इति = एवम्, उपजातदिदृक्षः = उपजाता (समुत्पन्ना) दिदृक्षा (दर्शनेच्छा) यस्य सः । तादृशः सन्, तामेव, दिशं = काष्ठां, प्रति, चक्षुः = नेत्रं, प्राहिणवं = प्रेषितवान् । इहोपमालुप्तोपमयोर्मिथो नैरपेक्ष्येण स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः ।

अभिमुखमिति । तस्मात् = पूर्वोक्तात्, वनाऽन्तरात् = अरण्यमध्यभागात्, "अभिमुखमापतत् शबरसैन्यमद्राक्षम्" इति वाक्येन सम्बन्धः । अर्जुनेत्यादिः० = अर्जुनस्य (कार्तवीर्यस्य) ये भुजदण्डाः (बाहुदण्डाः) तेषां सहस्रं (दशशती) तेन विप्रकीर्णम् (इतस्ततः पर्यस्तम्) नर्मदाप्रवाहम् इव = रेवास्रोत इव, "शबरसैन्यम्" इत्यस्य विशेषणमेवं परत्राऽपि । अनिलचलितं = वायुकम्पितं, तमालकाननम् इव = तापिच्छवनम् इव । उपमाऽलङ्कारः । **एकीभूतमिति** । एकीभूतम् = एकत्रस्थितं, कालरात्रीणां = प्रलयसमयनिशानां, यामसंघातम् इव = प्रहरसमूहम् इव, उत्प्रेक्षालङ्कारः ।

अञ्जनेति । क्षितिकम्पविघूर्णितं = क्षितिकम्पेन (भूकम्पेन) विघूर्णितम् (चलितम्), अञ्जनशिलास्तम्भ-सम्भारम् इव = अञ्जनशिलानां (कज्जलपाषाणानाम्) ये स्तम्भाः (स्थूणाः) तेषां सम्भारम् (समूहम्), इव । इहोपमालङ्कारः ।

अन्धकारेति । रविकिरणाकुलितं = रविकिरणैः (सूर्यरश्मिभिः) आकुलितम् (अभिभूतम्) अन्धकारपुञ्जम् इव = तिमिरसमूहम् इव । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

थोड़े ही समयमें शिकारका शोरगुल शान्त होनेपर, वनके प्रचुर वृष्टि कर नीरव मेघसमूहका अनुकरण करनेपर, और मथनसमाप्तिमें शान्त जलवाले समुद्रके समान वनके निश्चल हो जानेपर, भयके कुछ मन्द हो जानेसे कुतूहलके कारण पिताकी गोदसे कुछ बाहर निकलकर कोटरपर ही रहकर गरदन फैलाकर त्राससे चञ्चल पुतलियोंवाला होकर बचपनके कारण यह क्या है ? इस प्रकार देखनेकी इच्छासे उसी दिशामें मैंने दृष्टि डाली । उस वनके भीतरसे कार्तवीर्यके हजारों बाहुओंसे बिखरे हुए नर्मदाप्रवाहके समान, वायुसे कम्पित तमालवनके समान, प्रलयकालकी रात्रियोंके इकट्ठे हुए प्रहरसमूहके तुल्य, भूकम्पसे चालित कज्जलशिलाओंके स्तम्भसमूहके सदृश, सूर्य किरणसे अभिभूत अन्धकारके तुल्य, भ्रमण करते हुए यमराजके परिवारके समान, विदारित पातालसे

मिवैकत्र समागतम्, अनेक-दण्डकारण्यवासि-मुनिजन-शाप-सार्थमिव सञ्चरन्तम्, अनवरत-शर-निकर-वर्षि-राम-निहत-खर-दूषण-बलनिवहमिव तदपध्यानात् पिशाचतामुपगतम्, कलिकाल-बन्धुवर्गमिवैकत्र सङ्गतम्, अवगाहप्रस्थितमिव वनमहिषयूथम्, अचल-शिखर-स्थित-केसरि-करा-कृष्टि-पतनविशीर्णमिव कालाभ्रपटलम्, अखिलरूप-विनाशाय धूमकेतुजालमिव समुद्गतम्, अन्धकारितकाननम्, अनेकसहस्रसंख्यम्, अतिभयजनकम्, उत्पात-वेतालव्रातमिव शबर-सैन्यमद्राक्षम् ।

अन्तकेति । परिभ्रमन्तं = परिभ्रमणं कुर्वन्तम्, अन्तकपरिवारम् इव = यमपरिजनम् इव । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । **अवदारितेति** । अवदारितरसातलोद्भूतम् = अवदारितं (भेदितम्) यत् रसायाः (पृथिव्याः) तलम् (अधोभागः, पातालमित्यर्थः) तस्मात् उद्भूतं (प्रकटीभूतम्) दानवलोकम् इव = दनुसन्तानसमूहम् इव, उत्प्रेक्षा । **अशुभेति** । एकत्र = एकस्मिन् स्थाने, समागतं = संमिलितम्, अशुभकर्मसमूहम् इव = पापकार्यसमुदायम् इव, उत्प्रेक्षा । **अनेकेति** । संचरन्तं = भ्रमन्तम् । अनेके-त्यादिः० = अनेके (बहवः) दण्डकारण्यवासिनः (दण्डकवनवासशीलाः) ये मुनिजनाः (तापस-लोकाः) तेषां शापसार्थम् इव = दुरेषणावाक्यसमूहम् इव, उत्प्रेक्षा ।

अनवरतेति । तदपध्यानात् = तस्य (रामस्य) अपध्यानात् (दुश्चिन्तनात्) पिशाचतां = भूतविशेषभावम्, उपगतं = संप्राप्तम्, अनवरतेत्यादिः० = अनवरतं (निरन्तरम्) ये शरनिकराः (बाणसमूहाः) तद्वर्षी (तद्वर्षणशीलः) यो रामः (श्रीरामचन्द्रः) तेन निहतौ (व्यापादितौ) यौ खरदूषणौ (तदाख्यराक्षसविशेषौ), तयोः बलनिवहम् इव (सेनासमूहम् इव), उत्प्रेक्षा ।

कलिकालेति । एकत्र = एकस्मिन् स्थाने, संगतं = मिलितम्, कलिकालबन्धुवर्गम् इव— कलिकालस्य (कलियुगस्य) बन्धुवर्गम् (बान्धवसमूहम्) इव, उत्प्रेक्षा । **अवगाहेति** । अवगाह-प्रस्थितम्=अवगाहः (मज्जनम्) तदर्थं प्रस्थितं (कृतप्रस्थानम्), वनमहिषयूथम् = अरण्यसैरिभसमूहम्, इव । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

अचलेति । अचलशिखरेत्यादिः० = अचलशिखरे (पर्वतशृङ्गे) स्थितः (विद्यमानः) यः केसरी (सिंहः) तस्य कराभ्याम् (हस्ताभ्याम्) या आकृष्टिः (आकर्षणम्) तया यत् पतनं (भ्रंशः, भूमाविति शेषः) तेन विशीर्णम् (संजातविशरणम्), कालाऽभ्रपटलं = कृष्णमेघसमूहम्, इव, उत्प्रेक्षा ।

अखिलेति । अखिलरूपविनाशाय = अखिलरूपाणां (समस्तारण्यकपशूनाम्) विनाशाय (संहा-राय), समुद्गतं (समुत्थितम्) धूमकेतुजालम् = उत्पातसूचकग्रहसमूहम्, इव, उत्प्रेक्षा । "रूपं मृगेपि विज्ञेयम्" इति हलायुधः । "धूमकेतुः स्मृतो वह्नावुत्पातग्रहभेदयोः ।" इति विश्वः । अन्धकारितम् (जाताऽन्धकारम्) अथवा—अखिलरूपविनाशाय = समस्तसौन्दर्यविघाताय, समुद्गतं, धूमकेतुजालम् = धूमरूपध्वजसमूहम् इव, उत्प्रेक्षा ।

अन्धकारितेति । अन्धकारितऽकाननम् = अन्धकारितम् (सञ्जाताऽन्धकारम्) काननं

प्रकट दानवसमूहके तुल्य, एक स्थानमें संमिलित पापकर्मके समूहके सदृश । सञ्चरण करनेवाले, अनेक दण्डकारण्य-वासी मुनिजनोंके शाप समूहके समान, रामचन्द्रके अशुभचिन्तनसे पिशाचभावको प्राप्त, लगातार बाणोंको बरसाने-वाले रामचन्द्रसे मारे गये खर और दूषण राक्षसोंके सैन्यसमूहके सदृश, एक स्थलमें मिले हुए कलियुगके बन्धुवर्गके समान, स्नानके लिए प्रस्थान करनेवाले जङ्गली भैंसोंके झुण्डके सदृश, पहाड़की चोटीमें स्थित सिंहके हाँथोंसे खींचनेसे गिरकर बिखरे गये काले मेघसमूहके समान, समस्त पशुओंके नाशके लिए उठे हुए उत्पातसूचक ग्रह-समूहके सदृश (समस्त सौन्दर्यके विनाशके लिए धूमरूप ध्वजसमूहके सदृश), वनको अन्धकारयुक्त करनेवाले हजारों संख्यासे युक्त, अतिशय भयको उत्पन्न करनेवाले, उत्पात करनेवाले वेतालोंके समूहके समान शबरोंके सैन्यको मैंने देखा ।

मध्ये च तस्य महतः शबरसैन्यस्य प्रथमे वयसि वर्त्तमानम्, अतिकर्कशत्वादायसमयमिव, एकलव्यमिव जन्मान्तरगतम्, उद्भिद्यमान-श्मश्रुराजितया प्रथम मदलेखा-मण्ड्यमान-गण्डभित्तिमिव गजयूथपतिकुमारम्, असित-कुवलय श्यामलेन देहप्रभा-प्रवाहेण कालिन्दी-जलेनेव पूरिताऽरण्यम् आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तल भारेण केसरिणमिव गजमद-मलिनीकृतेन केसरकलापेनोपेतम्, आयतललाटम्, अतितुङ्ग-घोरघोणम, उपनीतस्यैककर्णा-भरणतां भुजगफणामणेरापाटलैरंशुभिरालोहितीकृतेन पर्णशयनाभ्यासाल्लग्न-पल्लवरागेणेव

(वनम्) येन, तम् । अनेकसहस्रसंख्यम् = अनेकानि (बहूनि) सहस्राणि (दशशतीपरिमिता) संख्या (संख्यानम्) यस्य तत् । अतिभयजनकम् = अतिशयभीत्युत्पादकम्, उत्पातवेतालव्रातम् = उत्पाताय (अमङ्गलाय) ये वेतालाः (भूताऽधिष्ठितशवाः) तेषां व्रातम् (समूहम्) इव, शबरसैन्यं = म्लेच्छविशेषाऽनीकम्, अद्राक्षं = दृष्टवान् उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

अथ शबरसेनापतिं वर्णयितुमुपक्रमते—**मध्ये चेति** । महतः = विशालस्य, तस्य = पूर्वोक्तस्य, शबरसैन्यस्य = भिल्लबलस्य, मध्ये = अन्तरे, प्रथमे = पूर्वे, वयसि = अवस्थायां, वयसः पूर्वमुत्तरं चेति भागद्वयं प्रकल्प्य कथनात् यौवन इति भावः । वर्तमानं = विद्यमानं, "मातङ्गनामानं शबरसेनापतिम्" इत्यत्र सम्बन्धः, एवं परत्राऽपि । अतिकर्कशत्वात् = अतिशयकठोराऽवयवत्वात्, आयसमयम् इव = लोहविकारम् इव, उत्प्रेक्षा । निर्मितं = रचितं, जन्मान्तरगतं = अन्यजन्मप्राप्तम्, एकलव्यं = निषादाऽधिपतिम्, इव । एकलव्यो नाम महाभारते वर्णितो महावीरः, स निषादाऽधिपतेर्हिरण्यधनुषः पुत्रः, द्रोणाचार्येणाऽध्यापयितुं प्रतिषिद्धत्वेऽपि भक्त्यतिशयेन द्रोणाचार्यमूर्तिं पुरोनिधाय धनुर्विद्याऽभ्यसनशील इति महाभारतीयमाख्यानम् । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

उद्भिद्यमानेति । उद्भिद्यमानश्मश्रुराजितया = उद्भिद्यमाना (उत्पद्यमाना) श्मश्रुराजिः (मुखरोमपङ्क्तिः) यस्य, तस्य भावस्तत्ता, तया, हेतुना । **प्रथममदलेखेत्यादिः** । प्रथमा (आद्या) या मदलेखा (दानजलपङ्क्तिः), तया मण्ड्यमाने (भूष्यमाणे) गण्डभित्ती (कपोलफलकौ) यस्य, तं तादृशं, गजयूथपतिकुमारकं = गजयूथपतेः (हस्तिसङ्घनायकस्य) कुमारकम् (कलभम्) इव, उपमाऽलङ्कारः ।

असितेति । असितकुवलयश्यामलेन = असितं (नीलम्) यत् कुवलयम् (उत्पलम्) तदिव श्यामलः (कृष्णवर्णः) तेन, तादृशेन देहप्रभाप्रवाहेण = शरीरकान्तिस्रोतसा, कालिन्दीजलेन = यमुनासलिलेन, इव, पूरिताऽरण्यं = पूर्णीकृतवनम् । अत्रोपमा, उत्प्रेक्षा तथा देहप्रभाप्रवाहेणाऽरण्य-पूरणाऽसम्बन्धेऽपि सम्बन्धवर्णनादतिशयोक्तिश्चेति मिथोऽङ्गाङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः ।

आकुटिलाग्रेणेति । आकुटिलाऽग्रेण = किञ्चित्कुञ्चिताऽग्रभागेन, स्कन्धाऽवलम्बिना = अंसाऽवलम्बन-शीलेन, कुन्तलभारेण = केशकलापेन, उपेतं = सहितं, गजमदमलिनीकृतेन = व्यापादितहस्तिदानजलश्यामली-कृतेन, केसरकलापेन = सटासमूहेन, उपेतं = युक्तं, केसरिणम् इव = सिंहम् इव । अत्रोपमाऽलङ्कार ।

आयतेति । आयतललाटं = विस्तीर्णभालम्, अतितुङ्गघोरघोणम् = अतितुङ्गा (अत्युन्नता) घोरा (भीषणा) घोणा (नासिका) यस्य, तम् । "घोणा नासा च नासिका" इत्यमरः ।

उपनीतस्येति । एककर्णाभरणताम् = एकः यः कर्णः (श्रोत्रम्) तस्य आभरणताम् (भूषण-

---

उस विशाल शबरसैन्यके बीचमें युवावस्था (जवानी) में विद्यमान, अत्यन्त कठोर होनेसे लोहेसे निर्मितके सदृश, दूसरा जन्म लेनेवाले एकलव्यके सदृश, दाढ़ी और मूछोंकी रेखासे जो मानों पहली मदरेखासे शोभित कपोलभित्तिवाले गजसमूहके नायकके पुत्रके तुल्य था, नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले शरीरकान्तिके प्रवाहसे यमुनाके जलसे पूर्ण किये गये जङ्गलके सदृश, कुछ कुटिल अग्रभागवाले कन्धोंपर लटके हुए केशभारसे मानों हाथीके मदसे मलिन किये गये केसरसमूहसे युक्त सिंह था । चौड़े ललाट (लिलार) वाला, अतिशय ऊँची और

वामपार्श्वेन विराजमानम्, अचिर-प्रहृत-गज-कपोल-गृहीतेन, सप्तच्छदपरिमलवाहिना कृष्णागुरु-पङ्केनेव सुरभिणा मदेन कृताङ्गरागम्, उपरि तत्परिमलाऽन्धेन भ्रमता मायूर-पिच्छात-पत्रानुकारिणा मधुकरकुलेन तमाल-पल्लवेनेव निवारितातपम्, आलोलपल्लवव्याजेन भुजबल-निर्जितया भयप्रयुक्तसेवया विन्ध्याटव्येव करतलेनामृज्यमान-गण्डस्थल-स्वेदलेखम्, आपाटलया हरिणकुल-काल-रात्रि-सन्ध्यायमानया शोणितार्द्रयेव दृष्ट्या रञ्जयन्तमिवाशा-

---

भावम्), उपनीतस्य = प्रापितस्य, भुजगफणामणेः = भुजगस्य (सर्पस्य) फणायाः (स्फटायाः) मणेः (रत्नस्य), "स्फटायां तु फणा द्वयोः" इत्यमरः। आपाटलैः = ईषच्छ्वेतरक्तैः, अंशुभिः = रश्मिभिः, आलोहितीकृतेन = ईषद्रक्तवर्णीकृतेन, अतः पर्णशयनाऽभ्यासात् = पर्णेषु (वृक्षपत्त्रेषु), यत्, शयनं (स्वापः), तस्य अभ्यासात् (पौनःपुन्यात्)। लग्नपल्लवरागेण = लग्नः (सम्बद्धः) पल्लवानां (किसलयानाम्) रागः (आरुण्यम्), यस्मिन्, तेन इव, वामपार्श्वेन = सव्यभागेन, इव, विराजमानं = शोभमानम्। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

अचिरेति। अचिरप्रहृतेत्यादिः० = अचिरम् (अल्पकालम्) एव प्रहृतः (व्यापादितः) यो गजः (हस्ती) तस्य, कपोलाभ्यां (गण्डफलकाभ्याम्), गृहीतेन (उपात्तेन), सप्तच्छदपरिमल-वाहिना = सप्तच्छदस्य (सप्तपर्णवृक्षस्य) यः परिमलः (सौरभम्) तद्वाहिना (तद्वहनशीलेन)। कृष्णाऽगुरुपङ्केन = कृष्णाऽगुरुणः (कालाऽगुरुणः धूपप्रकृतिसुरभिद्रव्यविशेषेण), पङ्केन (द्रवेण) इव, "कालाऽगुर्वगुरु" इत्यमरः। सुरभिणा = घ्राणतर्पणगन्धेन, मदेन = दानजलेन, कृताऽङ्गरागं = कृतः (विहितः) अङ्गरागः (देहविलेपनम्) येन, तम्। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

उपरीति। तत्परिमलाऽन्धेन = तस्य (मदस्य) यः परिमलः (जनमनोहरो गन्धः) तेन अन्धेन (अन्धप्रायेण, दिग्दर्शनाऽभावेनेति भावः) अत एव, उपरि = ऊर्ध्वप्रदेशे, भ्रमता = भ्रमणं कुर्वता, मायूरपिच्छाऽऽतपत्राऽनुकारिणा=मायूरं (मयूरसम्बन्धि) यत् पिच्छं (बर्हम्) तस्य आतपत्रं (छत्त्रम्), तदनुकारिणा (तदनुकरणशीलेन) तादृशेन मधुकरकुलेन = भ्रमरसमूहेन, तमालपल्लवेन= तापिच्छकिसलयेन, इव, निवारिताऽऽतपं = निवारितः (दूरीकृतः) आतपः (सूर्यप्रभा) यस्य, तम्। अत्रोपमाऽलङ्कारः।

आलोलेति। भुजबलनिर्जितया = भुजबलेन (बाहुशक्त्या) निर्जितया (वशीकृतया) अत एव भयप्रयुक्तसेवया=भयेन (भीत्या) प्रयुक्ता (कृता) सेवा (परिचर्या) यया। तादृश्या विन्ध्याटव्या= विन्ध्यपर्वतविपिनस्थल्या, आलोलपल्लवव्याजेन = आलोलाः (समन्ततश्चञ्चलाः वायुवेगेनेतिशेषः), ये पल्लवाः (किसलयानि) तेषां व्याजेन (छलेन), करतलेन = हस्ततलेन, आमृज्यमानेत्यादिः० = आमृज्यमाना (निवार्यमाणा) गण्डस्थलयोः (कपोलफलकयोः) स्वेदलेखा (धर्मजलपङ्क्तिः) यस्य, तम्। इहाऽपह्नुत्युत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः।

आपाटलयेति। आपाटलया = ईषच्छ्वेतरक्तया, हरिणकुलेत्यादिः० = हरिणकुलानां (मृग-वंशानाम्) कालरात्रेः (विनाशरजन्याः) सन्ध्यायमानया (सन्ध्यावदाचरन्त्या) शोणितार्द्रया

भयानक नाकवाला, जो एक कानके अलङ्कारभावको प्राप्त सर्पकी फणामणिकी कुछ गुलाबी किरणोंसे कुछ लाल किये गये वाम पार्श्वसे शोभित था मानों पत्तोंपर सोनेके अभ्याससे पल्लवोंकी लाली लग गई हो, कुछ समय पहले मारे गये हाथीके कपोलसे लिये गये सप्तच्छद की गन्धसे युक्त सुगन्धित मदसे मानों कृष्णाऽगुरुके पङ्कसे अङ्गों पर लेप किया था, ऊपर उसकी सुगन्धसे अन्धे हुए घूमते हुए, मयूरपङ्खोंके छत्रका अनुकरण करनेवाले भ्रमरसमूहसे मानों तमालपल्लवसे जिसकी धूप रोकी जा रही थी, चञ्चल पल्लवके बहानेसे मानों बाहुबलसे जीती गई अतः भयसे सेवा करने वाली विन्ध्यवन भूमिसे करतलसे जिसके कपोलफलककी पसीनेकी रेखा पोंछी जा रही थी, कुछ गुलाबी मानों मृगवंशकी कालरात्रिकी सन्ध्या होती हुई और मानों रुधिरसे आर्द्र दृष्टिसे दिशाके

विभागानां, जानुलम्बेन कुञ्जर-करप्रमाणमिव गृहीत्वा निर्म्मितेन चण्डिका-रुधिरबलि-प्रदानायाऽसकृन्निशितशस्त्रोल्लेख-विषमित-शिखरेण भुजयुगलेनोपशोभितम्, अन्तरान्तरा लग्नाश्यान-हरिण-रुधिरबिन्दुना स्वेदजल-कणिका-चितेन गुञ्जाफलमिश्रैः करिकुम्भमुक्ता-फलैरिव रचिताभरणेन विन्ध्यशिला-विशालेन वक्षःस्थलेनोद्भासमानम्, अविरतश्रमा-भ्यासादुल्लिखितोदरम्, इभ-मद-मलिनमालान-स्तम्भयुगलमुपसहन्तमिवोरुदण्डद्वयेन लाक्षा-लोहित-कौशेयपरिधानम्, अकारणेऽपि क्रूरतया बद्धत्रिपताकोदग्रभ्रुकुटीकराले ललाटफलके

इव = रुधिरक्लिन्नया इव, दृष्टया = नयनेन, आशाविभागानां = दिग्विभागानाम्, दिग्विभागानिति भावः कर्मणः शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । रञ्जयन्तं = रक्तवर्णान् कुर्वन्तम् । अत्र सन्ध्यायमानयेत्यत्र लुप्तो-पमा, शोणितार्द्रयेवेत्यत्र, रञ्जयन्तमिवेत्यत्र च उत्प्रेक्षे, तथा च मिथ एतेषामलङ्काराणामङ्गाङ्गि-भावेन सङ्करः ।

जानुलम्बेनेति । जानुलम्बेन = ऊरुपर्वपर्यन्तायतेन, अत एव कुञ्जरकरप्रमाणं = कुञ्जरः (हस्ती), तस्य करः (शुण्डादण्डः) तस्य प्रमाणं (परिमाणम्), गृहीत्वा इव = आदाय इव, निर्मि-तेन = रचितेन, चण्डिकारुधिरबलिप्रदानाय = चण्डिका (काली) तस्यै रुधिरबलेः (रक्तपूजायाः) दानाय (समर्पणाय), असकृत् = वारं वारम् । निशितशस्त्रोल्लेखविषमितशिखरेण = निशितानि (तीक्ष्णानि) यानि शस्त्राणि (आयुधानि, खड्गादीनीति भावः), तेषाम् उल्लेखः (घर्षणम्), तेन विषमितम् (उन्नताऽवनतीकृतम्) शिखरम् (अग्रभागः) यस्य, तेन, तादृशेन भुजयुगलेन = बाहुयुग्मेन, उपशोभितं=विराजमानम् । अत्रोत्प्रेक्षा । अन्तरेति । अन्तराऽन्तरा=मध्ये मध्ये । लग्नाश्यानेत्यादिः०= लग्नाः (सक्ताः) आश्यानाः (ईषच्छुष्काः) हरिणस्य (मृगस्य) रुधिरबिन्दवः (रक्तपृषताः) यस्मिन्, तेन । स्वेदजलकणिकाचितेन = स्वेदजलस्य (घर्मसलिलस्य) कणिकाः = अल्पबिन्दवः, ताभिः आचितेन (व्याप्तेन) । अत एव गुञ्जाफलमिश्रैः = कृष्णलासंयुक्तैः, करिकुम्भमुक्ताफलैः = हस्तिमस्त-कपिण्डस्थमौक्तिकफलैः, रचिताऽऽभरणेन = रचितम् (निर्मितम्) आभरणं (भूषणम्) यस्य, तेन, इव । विन्ध्यशिला (विन्ध्यपर्वतपाषाणः), सा इव विशालं (विस्तीर्णम्), तेन, तादृशेन वक्षःस्थलेन= उरःस्थलेन, उद्भासमानं=संशोभमानम् । अत्रोपमोत्प्रेक्षयोर्निरपेक्षतया स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः ।

अविरतेति । अविरतश्रमाऽभ्यासात् = अविरतः (सन्ततः) यः श्रमाऽभ्यासः (परिश्रम-नैरन्तर्यम्), तस्मात् । उल्लिखितोदरम् = उल्लिखितम् (उल्लेखविषयीकृतं, तनूकृतमिति भावः) उदरं (जठरम्) यस्य तम् ।

इभमदेति । ऊरुदण्डद्वयेन = ऊरुदण्डयोः (सक्थिदण्डयोः) द्वयेन (युगलेन), "सक्थि क्लीबे पुमानूरुः" इत्यमरः । इभमदमलिनम् = इभमदेन (हस्तिदानजलेन) मलिनम् (मलीमसं, श्याममिति भावः), आलानस्तम्भयुगलम् = आलानस्तम्भयोः (गजबन्धनस्थूणयोः) युगलम् (युग्मम्), उपह-सन्तम् इव = तिरस्कुर्वन्तम् इव । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

लाक्षेति । लाक्षालोहितकौशेयपरिधानं = लाक्षया (जतुना) लोहितं (रक्तवर्णीकृतम्) कौशेयं (कृमिकोशोत्पन्नम्, "कोशाड्ढञ्" इति ढञ्) परिधानम् (अधोंऽशुकम्) यस्य, तम् ।

विभागों को रंग रहा था, घुटनों तक लटकते हुए मानों हाथीके सूँड़के प्रमाण (मांप) को लेकर बनाये गये, चण्डिका-को रुधिरबलि देनेके लिए वारंवार तेज शस्त्रोंके घर्षणसे विषमित ऊर्ध्वभागवाले बाहुयुग्मसे शोभित, जो बीच बीचमें लगे हुए हरिणके शुष्क रुधिर बिन्दुवाले और पसीनेके बिन्दुओंसे व्याप्त, मानों गुञ्जाफलोंसे मिले हुए हाथीके मस्तक पिण्डमें विद्यमान मोतियोंसे बने हुए भूषणवाले विन्ध्य पर्वतके चट्टानके समान विशाल वक्षःस्थलसे शोभित था, निरन्तर परिश्रमके अभ्याससे कृश पेटवाला था, जो दो ऊरुदण्डोंसे मानों हाथीके मदसे मलिन दो बन्धनस्तम्भोंका उपहास कर रहा था, लाखसे लाल किये गये रेशमी वस्त्र पहना हुआ था, कारणके न रहनेपर भी क्रूर होनेसे त्रिवलि

प्रबलभक्त्याराधितया 'मत्परिग्रहोऽयमि'ति कात्यायन्या त्रिशूलेनेवाङ्कितम्, उपजातपरिचयैरनुगच्छद्भिः, श्रमवशाद् दूरविनिर्गताभिः स्वभाव-पाटलतया शुष्काभिरपि हरिण-शोणितमिव क्षरन्तीभिर्जिह्वाभिरावेद्यमानखेदैः विवृतमुखतया स्पष्ट-दृष्ट-दन्तांशून् दंष्ट्रान्तराल-लग्न-केसरिसटानिव सृक्वभागानुद्वहद्भिः, स्थूलवराटक-मालिका-परिगत-कण्ठैर्महावराह-प्रहार-जर्जरैः अल्पकायैरपि महाशक्तित्वादनुपजात-केसरैरिव केसरिकिशोरकैः, मृगवधू-वैधव्य-दीक्षादान-दक्षैरनेकवर्णैः श्वभिः, अतिप्रमाणाभिश्च केसरिणामभयप्रदान-याचनार्थमागताभिः

अकारणेऽपीति । अकारणेऽपि = कारणाऽभावेऽपि, क्रूरतया = घातुकत्वेन, बद्धेत्यादिः० = बद्धा (नद्धा) त्रिपताका (त्रिपताका इव त्रिरेखा) याभ्यां ते, तादृश्यौ उदग्रे (उन्नते) ये भ्रुकुट्यौ (भ्रूकुट्यौ) ताभ्यां करालं (भीषणम्), तस्मिन् । तादृशे ललाटफलके = भालपट्टे, प्रबलभक्त्या = उत्कृष्टाराधनया, आराधितया = सेवितया, कात्यायन्या = गौर्या, अयं = शबरपतिः, मत्परिग्रहः = मम (कात्यायन्याः) परिग्रहः (परिजनः), "पत्नीपरिजनाऽऽदानमूलशापाः परिग्रहाः ।" इत्यमरः । इति = एवं, त्रिशूलेन = आयुधविशेषेण, अङ्कितं = चिह्नितम् इव । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

उपजातेति । उपजातपरिचयैः = उपजातः (उत्पन्नः) परिचयः (संस्तवः) येषां, तैः, परिचितैरिति भावः । तादृशैः श्वभिः, कौलेयककुटुम्बिनीभिरनुगम्यमानम् 'इत्यागामिभिः पदैः सम्बन्धः । अनुगच्छद्भिः = अनुगमनं कुर्वद्भिः, शबरसेनापतेरिति शेषः ।

श्रमवशादिति । श्रमवशात् = परिश्रमवशात्, दूरगमनादिति शेषः । दूरविनिर्गताभिः = विप्रकृष्ट-निःसृताभिः, वदनादिति शेषः । "जिह्वाभिः" इत्यस्य विशेषणम् । स्वभावपाटलतया = स्वभावेन (निसर्गेण) पाटलतया (श्वेतरक्तत्वेन), शुष्काभिरपि = शोषयुक्ताभिरपि, हरिणशोणितं = मृगरुधिरं, क्षरन्तीभिः इव = स्रवन्तीभिः इव, तादृशीभिः जिह्वाभिः = रसनाभिः, आवेद्यमानखेदैः = आवेद्यमानः (बोध्यमानः) खेदः (श्रमः) यैस्तैः । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

विवृतेति । विवृतमुखतया = विदीर्णवदनत्वेन, हेतुना, स्पष्टदृष्टदन्तांशून् = स्पष्टं (स्फुटम्) दृष्टाः (अवलोकिताः) दन्तांऽशवः (दशनकिरणाः) येषु, तान्, "सृक्वभागान्" इत्यस्य विशेषणम् । अत एव दंष्ट्रान्तराललग्नकेसरिसटान् इव = दंष्ट्राणां (बृहद्दशनानाम्) अन्तरालेषु (मध्यभागेषु) लग्नाः (संसक्ताः) केसरिसटाः (सिंहस्कन्धवालाः) येषु, तान् इव, सृक्वभागान् = ओष्ठप्रान्त-प्रदेशान्, "प्रान्तावोष्ठस्य सृक्वणी" इत्यमरः । उद्वहद्भिः = धारयद्भिः । अत्राऽप्युत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

स्थूलेति । स्थूलवराटकेत्यादिः = स्थूलाः (पीवराः) ये वराटकाः (कपर्दकाः), तेषां मालिकाभिः (मालाभिः) परिगतः (सहितः) कण्ठः (गलः) येषां, तैः । महावराहेत्यादिः० = महान्तः (विशालाः) ये वराहाः (आरण्यकशूकराः) तेषां दंष्ट्राप्रहाराः (विशालदशनाघाताः), तैः जर्जरैः (जीर्णैः) ।

अल्पकायैरपि । अल्पकायैरपि = ह्रस्वशरीरैरपि, महाशक्तित्वात् = प्रचुरसामर्थ्याद्धेतोः । अनुप-जातकेसरैः = अनुत्पन्नसटैः, केसरिकिशोरकैः इव = सिंहशावकैः इव । अत्रोपमाऽलङ्कारः ।

मृगवध्विति । मृगवध्वित्यादिः० = मृगवधूनां (मृगीणाम्) वैधव्यदीक्षादाने (विगतभर्तृ-

---

बांधने वाली ऊँची भ्रुकुटीसे भयङ्कर उसके ललाट फलकमें मानों उत्कट भक्तिसे आराधित दुर्गाजीने "यह मेरा भक्त है" इस प्रकार त्रिशूलसे अङ्कित कर दिया था, परिचयवाले (पालित) पीछे लगने वाले परिश्रमसे दूर तक निकली हुई स्वभावसे ही गुलाबी होनेसे शुष्क होनेपर भी मानों मृगके रुधिरको चुआती हुई जीभसे परिश्रम जनाते हुए मुखके खुला रहनेसे स्पष्ट देखी जाती हुई दाँतोंकी किरणोंको मानों दाढ़ोंके भीतर लगे हुए सिंहके केसर (स्कन्धवाल) वाले होठोंके प्रान्तभागोंको धारण करते हुए, मोटी कौडियोंकी मालासे युक्त कण्ठवाले, विशाल सूअरोंके डाढ़ोंके प्रहारसे जर्जर, छोटे शरीरवाले होकर भी अधिक सामर्थ्य होनेसे अनुत्पन्न केसरवाले सिंहके बच्चोंके

सिंहीभिरिव कौलेयककुटुम्बिनीभिरनुगम्यमानम्, कैश्चिद्गृहीत-चमर-बालगजदन्तभारैः, कैश्चिदच्छिद्र-पर्ण-बद्ध-मधुपुटैः कैश्चिन्मृगपतिभिरिव गज-कुम्भ-मुक्ताफलनिकर-सनाथ-पाणिभिः, कैश्चिद्यातुधानैरिव गृहीतपिशितभारैः, कैश्चित् प्रमथैरिव केसरिकृत्तिधारिभिः, कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छधारिभिः, कैश्चिच्छिशुभिरिव काकपक्षधरैः, कैश्चित् कृष्णचरितमिव दर्शयद्भिः, समुत्खात-विधृत-गजदन्तैः, कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छायामलिनाम्बरैः,

---

कात्वव्रतवितरणे) दक्षैः (निपुणैः), अनेकवर्णैः = अनेके (बहवः) वर्णाः (शुक्लनीलादयः) येषां, तैः । तादृशैः, श्वभिः = सारमेयैः अनुगम्यमानम् ।

अतीति । अतिप्रमाणाभिः = अधिकपरिमाणाभिः, केसरिणां = सिंहानाम्, अभयप्रदानयाचनाऽर्थम्=अभयप्रदानं (निर्भयतावितरणम्), तस्य या याचना (प्रार्थना) तदर्थम्, आगताभिः, सिंहीभिः इव = सिंहवधूभिः इव, कौलेयककुटुम्बिनीभिः = सारमेयवधूभिः, अनुगम्यमानम् = अनुस्रियमाणम् । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

कैश्चिदिति । गृहीतचमरेत्यादिः०=गृहीताः (आत्ताः) चमरवालानां (चमरमृगवालधीनाम्) गजदन्तानां (हस्तिदशनानाम्) भाराः (समूहाः) यैस्तैः, कैश्चित्=कतिपयैः, शबरवृन्दैः, परिवृतम्=परिवेष्टितम् । एवं परत्राऽपि अन्वयः ।

कैश्चिदिति । अच्छिद्रपर्णबद्धमधुपुटैः = अच्छिद्राणि (छिद्ररहितानि) यानि पर्णानि (वृक्षपत्राणि) तेषु बद्धानि (नद्धानि) मधुपुटानि (क्षौद्रपुटकानि) यैस्तैः, कैश्चित् शबरवृन्दैः ।

कैश्चिदिति । मृगपतिभिरिव = सिंहैरिव, गजकुम्भेत्यादिः० = गजकुम्भानां (हस्तिमस्तकपिण्डानाम्) यानि मुक्ताफलानि (मौक्तिकानि) तेषां निकरः (समूहः) तेन सनाथः (युक्तः) पाणिः (हस्तः) येषां, तैः, कैश्चित् = शबरवृन्दैः । अत्रोपमा ।

कैश्चिदिति । यातुधानैरिव = राक्षसैरिव, गृहीतपिशितभारैः = गृहीतः (धृतः) पिशितभारः (मांसभारः) यैस्तैः, कैश्चित् शबरवृन्दैः । अत्रोपमाऽलङ्कारः । 'यातुधानः पुण्यजनो नैर्ऋतो यातुरक्षसी ।" इत्यमरः ।

कैश्चिदिति । प्रमथैरिव = शिवगणैरिव, केसरिकृत्तिधारिभिः = सिंहचर्मधारणशीलैः, कैश्चित् शबरवृन्दैः । अत्रोपमाऽलङ्कारः ।

कैश्चिदिति । क्षपणकैरिव = जैनसंन्यासिभिरिव, मयूरपिच्छधारिभिः = बर्हिणबर्हधारणशीलैः, कैश्चित् शबरवृन्दैः । उपमाऽलङ्कारः । "गजकुम्भे" त्यारभ्य "मयूरपिच्छधारिभिः" इति यावदभङ्गश्लेषश्च ।

कैश्चिदिति । शिशुभिरिव=बालकैरिव, काकपक्षधरैः=शिखण्डकधारकैः, "काकपक्षः शिखण्डकः" इत्यमरः । शबरवृन्दपक्षे—काकानां (वायसानाम्) पक्षाणाम् (छदानाम्) धराः, तैः । उपमाऽलङ्कारः ।

कैश्चिदिति । समुत्खातविधृतगजदन्तैः = प्राक् समुत्खाताः (समुत्पाटिताः) पश्चात् विधृताः

समान, मृगोंकी वधूओंको वैधव्य दीक्षाके दानमें निपुण, अनेक वर्णोंवाले शिकारी कुत्तोंसे और विस्तृत प्रमाणवाली, सिंहोंके अभयदानको प्रार्थनाके लिए आईहुई सिंहियोंकी समान शिकारीकुत्तोंकी मादाओंसे अनुगमन किया गया था । और जो अनेक शबर समूहोंसे घिरा गया था । उनमें कुछ चमरमृगके बाल और हाथी दाँत इनके समूहको लिये हुए थे, कुछ छिद्ररहित पत्तोंमें शहद रखे हुए थे, कुछ सिंहोंके समान हाथीके मस्तकपिण्डस्थित मोतियोंको हाथमें लिये हुए थे, कुछ राक्षसोंके समान मांसभारको लिये हुए थे, कुछ प्रमथों (शिवगणों) के समान सिंहचर्मको लिये हुए थे, कुछ दिगम्बर जैन भिक्षुओंके समान मयूरके पङ्खोंको लिये हुए थे, कुछ बालकोंके समान काकपक्षोंको लिये हुए थे, कुछ मानों कृष्णचरितको दिखलाते हुए उखाड़ कर हाथी दांतों को लिये हुए थे । कुछ वर्षा ऋतु के दिनोंके

अनेकवृत्तान्तैः शबरवृन्दैः परिवृतम्, अरण्यमिव सखड्गधेनुकम्, अभिनव-जलधरमिव मयूर-पिच्छ-चित्र-चापधारिणम्, बकराक्षसमिव गृहीतैकचक्रम्, अरुणानुजमिवोद्धृतानेक-महानाग-दशनम्, भीष्ममिव शिखण्डि-शत्रुम्, निदाघदिवसमिव सततविभूत-मृगतृष्णम्, विद्या-

---

(धारिताः), "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेन" इति पूर्वकालसमासः। समुत्खातविधृताः गजदन्ताः (हस्तिदशनाः) यैस्तैः, अत एव कृष्णचरितं=केशवचरित्रं, दर्शयद्भिः = प्रदर्शितं कुर्वद्भिः। कैश्चित् शबरवृन्दैः, भगवता श्रीकृष्णेन कंसस्य कुवलयापीडनामकं गजं व्यापाद्य तस्य दन्तो गृहीत इति श्रीमद्भागवतकथा द्रष्टव्या। उपमा।

कैश्चिदिति। जलदागमदिवसैः = जलदागमस्य (वर्षर्तोः) दिवसैः = वासरैः इव, जलधरच्छायया (मेघकान्त्या) मलिनम् (मलीमसम्) अम्बरम् (आकाशम्) येषु ते। शबरवृन्दपक्षे— जलधरच्छाया इव मलिनम् अम्बरं (वस्त्रम्) येषां, तैः। श्लेष उपमा च द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। तादृशैः शबरवृन्दैः, परिवृतं = परिवेष्टितम्।

अरण्यमिति। अरण्यं = वनम्, इव, सखड्गधेनुकं = खड्गः (गण्डकः) धेनुका (करिणी) च ताभ्यां सहितम्। "गण्डके खड्गखड्गिनौ" इति "करिणी धेनुका वशा" इति चाऽमरः। शबरसेनापतिपक्षे—खड्गः (करवालः), धेनुका (छुरिका) च ताभ्यां सहितम्। "खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासाऽसिरिष्टयः।" इति "छुरिका चाऽसिधेनुका" इत्यमरः।

अभिनवेति। अभिनवजलधरम् = नूतनमेघम्, इव, मयूरपिच्छचित्रचापधारिणं = मयूरपिच्छम् (बर्हिणबर्हम्) इव चित्रम् (अनेकवर्णम्) चापं (धनुः, इन्द्रायुधमिति भावः) तद्धारिणम् (तद्धारणशीलम्)। शबरसेनापतिपक्षे—मयूरपिच्छानि (बर्हिणबर्हाणि) तैः चित्रं (विचित्रम्) यच्चापं (धनुः) तद्धारिणम्। उपमाऽलङ्कारः।

बकराक्षसमिति। बकराक्षसं = बकः (बकनामकः) यो राक्षसः (यातुधानः), तम् इव, गृहीतैकचक्रं = गृहीता (स्वाऽधीनीकृता) एकचक्रा (एकचक्रा नामिका पुरी) येन, तम्। शबरसेनापतिपक्षे— गृहीतम् (धृतम्) एकम् (अद्वितीयम्) चक्रम् (शस्त्रविशेषः) येन तम्। पुरा पाण्डवाः समातृका एकचक्राख्यायां पुर्यां न्यवसन्, तत्र मात्रनुरोधेन एकस्य ब्राह्मणस्य रक्षणार्थं नरभक्षकं बकाऽभिधानं राक्षसं निहत्य भीमसेनस्तत्पुरीवासिनः सर्वानपि समुद्धारेति महाभारतीया कथाऽनुसन्धेया।

अरुणाऽनुजमिति। अरुणाऽनुजम् = गरुडम्, इव, उद्धृताऽनेकमहानागदशनम् = उद्धृताः (उत्पाटिताः) अनेकेषां (बहूनाम्) महानागानां (विशालनागानाम्) दशनाः (दन्ताः) येन, तम्। शबरसेनापतिपक्षे—महानागानां (विशालगजानाम्) दशनाः येन तम्। "मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी—।" इत्यमरः।

भीष्ममिति। भीष्मं = देवव्रतम्, इव, शिखण्डिशत्रुं = शिखण्डिनः (द्रुपदपुत्रस्य) शत्रुम् (रिपुम्)। शबरसेनापतिपक्षे—शिखण्डिनां (मयूराणाम्) शत्रुं, तद्विनाशकत्वादिति भावः। "शिखण्डी ना कलापे स्याद्गङ्गयाऽरि-मयूरयोः।" इति मेदिनी।

समान, मेघोंकी छायाके समान मलिन अम्बर (वस्त्र) वाले थे, वर्षा ऋतुके दिन भी मेघोंकी छायासे मलिन अम्बर (आकाश) वाले होते हैं। ऐसे अनेक वृत्तान्तोंवाले शबरसमूहसे घिरा गया, खड्ग (गैंड़ा) और धेनुका (हथिनी)-से युक्त वनके समान वह (सेनापति) खड्ग (तलवार) और धेनुका (छुरी) से युक्त था, मयूरके पङ्खके समान रंगविरंगे धनु (इन्द्रायुध) को धारण करने वाले नये मेघके समान वह मयूरके पङ्खोंसे विचित्र धनुको लिया हुआ था, एकचक्रापुरीको वशमें करनेवाले बक राक्षसके समान वह एक चक्र (शस्त्र विशेष) को लिया हुआ था। अनेक विशाल नागोंके दाँतोंको उखाड़ने वाले गरुडके समान वह अनेक विशाल नागों (हाथियों) के दाँतोंको लिया हुआ था। शिखण्डी (द्रुपदराजके पुत्र) के शत्रु भीष्मके समान वह शिखण्डियों (मयूरों) का शत्रु था।

धरमिव मानसवेगम्, पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्, घटोत्कचमिव भीमरूपधारिणम्, **अचलराजकन्यका**-केशपाशमिव नीलकण्ठ-चन्द्रकाभरणम्, हिरण्याक्ष-दानवमिव महावराह-दंष्ट्रा-**विभिन्न-वक्षःस्थलम्**, अतिरागिणमिव कृत-बहु-बन्दी-परिग्रहम्, पिशिताशनमिव रक्तलुब्धकम्,

पुरा काशिराजसुताऽम्बालिका देवव्रतेनाऽस्वीकृतत्वात्तद्वधार्थं तपश्चरित्वा जन्मान्तरे द्रुपददुहिता **बभूव**, तदनु गन्धर्वस्य पुंभावं गृहीत्वा शिखण्डिरूपेण ख्यातिं जगामेति महाभारतकथा ।

निदाघदिवसमिति । निदाघदिवसं = ग्रीष्मदिनम्, इव, सततसाविर्भूतमृगतृष्णं = सततम् (निरन्तरम्) आविर्भूता (प्रादुर्भूता) मृगतृष्णा (मरीचिका सूर्यकिरणेषु सलिलभ्रम इति भावः), यस्य **तम्** । शबरसेनापतिपक्षे—सततम् आविर्भूता मृगेषु (हरिणेषु) तृष्णा (हननाऽभिलाषः) यस्य, तम् ।

विद्याधरमिति । विद्याधरं = देवयोनिविशेषम्, इव, मानसवेगं = मानेन (अहङ्कारेण) **सवेगम्** (**वेगसहितम्**), अथवा मानसस्य (मनसः) इव वेगः (जवः) यस्य तम् ।

पराशरमिति । पराशरं = व्यासजनकमृषिविशेषम् इव, योजनगन्धाऽनुसारिणं = **योजनगन्धा** (**धीवरराजकुमारी सत्यवती**) ताम् अनुसरति (अनुरुणद्धि) तच्छीलस्तम् । शबरसेनापतिपक्षे—**योजनात्** (**क्रोशचतुष्टयात्**) गन्धम् (आखेटपश्वामोदम्) अनुसरतीति तच्छीलस्तम् । पुरा किल पराशरमुनिर्धीवरराजदुहितरं योजनगन्धां दृष्ट्वा तस्यामासक्तो जातस्ततः कुहकं निर्माय **रमणप्रसक्तो जातः कृष्णद्वैपायनं** चाऽजीजनदिति महाभारतकथा द्रष्टव्या ।

घटोत्कचमिति । घटोत्कचं = हिडिम्बासुतं भीमसेनपुत्रम्, इव, भीमरूपधारिणं = भीमस्य (**भीमसेनस्य**) रूपं धारयति तच्छीलस्तम् पुत्रः पितुः सादृश्यं प्राप्नोति । शबरसेनापतिपक्षे—भीमं (**भयङ्करम्**) यत् रूपम् (आकारम्) तद्धारणशीलम् । उपमाऽलङ्कारः ।

अचलराजेति । अचलराजेत्यादिः० = अचलराजस्य (पर्वतराजस्य, हिमालयस्येति भावः) **कन्यका** (कुमारी, पार्वतीति भावः), तस्याः केशपाशम् (कचकलापम्) इव, नीलकण्ठ चन्द्रकाभरणं = नीलकण्ठस्य (महादेवस्य) चन्द्रकः (इन्दुः) स एव आभरणम् (आभूषणम्) यस्य तम् । शबरसेनापतिपक्षे—नीलकण्ठस्य (मयूरस्य) चन्द्रकः (मेचकः) स एव आभरणं यस्य, तम् । उपमाऽलङ्कारः ।

हिरण्याक्षदानवमिति । हिरण्याक्षदानवं=हिरण्याक्षः (हिरण्यकशिपुसोदरः) स चाऽसौ दानवः (दनुपुत्रः), तम् इव । महावराहेत्यादिः० = महावराहस्य (आदिवराहस्य, श्रीविष्णोस्तृतीयाऽवतारस्य) दंष्ट्राभिः (विशालदशनैः) विभिन्नं (विदारितम्) वक्षःस्थलम् (उरःस्थलम्) यस्य, **तम्** । शबरसेनापतिपक्षे=महावराहाणाम् (विशालवनशूकराणाम्), अन्यत्पूर्ववत् । भगवता श्रीविष्णुना **वराहरूपमास्थाय स्वदंष्ट्राभिर्हिरण्याक्षं** व्यापाद्य सलिलमग्नायाः पृथिव्या उद्धारो विहित इति श्रीमद्भागवतस्था **कथा** द्रष्टव्या । उपमाऽलङ्कारः ।

अतिरागिणमिति । अतिरागिणम् = अतिशयविषयाऽभिलाषिणम्, इव, कृतबहुबन्दीपरिग्रहं =

निरन्तर मृगतृष्णा (मरीचिका) को प्रकट करनेवाले ग्रीष्मके दिनके समान वह निरन्तर मृगोंकी तृष्णा (लालसा) को प्रकट करनेवाला था। मानस (मानससरोवर) में वेगवाले विद्याधरके समान वह अभिमानसे वेगवाला था। योजनगन्धा (सत्यवती) का अनुसरण करनेवाले पराशर ऋषिके समान वह योजन (चारकोसों) से आखेट पशुके गन्धका अनुसरण करनेवाला था, भीम (भीमसेन) पिताके रूप (आकृति) को धारण करनेवाले घटोत्कच राक्षसके समान वह भीम (भयङ्कर) रूप (आकार) को धारण करनेवाला था, पार्वतीका केशपाश जैसे नीलकण्ठ (महादेवके चन्द्ररूप आभरणसे युक्त था वैसे ही वह नीलकण्ठ (मयूर) के चन्द्रक (पङ्ख) के आभरण-(अलङ्कार) से युक्त था। जैसे हिरण्याक्ष दानव महावराह (आदिवराह, भगवान् विष्णुके तृतीय अवतार) के दाढ़ीसे विदीर्ण वक्षःस्थलवाला था वैसे ही वह महावराह (विशाल सूअर) के दाढ़ोंसे विदीर्ण वक्षःस्थलवाला था। जैसे अतिरागी (अतिविषयाऽभिलाषी) बहुत-सी बन्दी बनाई गई स्त्रियोंका संग्रह करता है वैसे ही वह

गीतकलाविन्यासमिव निषादानुगतम्, अम्बिका-त्रिशूलमिव महिष-रुधिरार्द्रकायम्, अभिनव-यौवनमपि क्षपित-बहुवयसम्, कृत-सारमेय-संग्रहमपि फलमूलाशनम्, कृष्णमप्यसुदर्शनम्, स्वच्छन्दचारमपि दुर्गैकशरणम्, क्षितिभृत्पादानुवर्त्तिनमपि राजसेवानभिज्ञम्, अपत्यमिव

कृत: (विहित:) बहुबन्दीनाम् (प्रचुरनिरुद्धमहिलानाम्) परिग्रह: (स्वीकार:) येन, तम् । शबर-सेनापतिपक्षे—कृत: बहूनां (प्रचुराणाम्) बन्दिनां (स्तुतिपाठकानाम्) परिग्रहो येन, तम् । अत्र वन्दीत्यत्र ह्रस्वत्वमनुसन्धेयम् । उपमाऽलङ्कार: ।

पिशिताऽशनमिति । पिशितम् (मांसम्) अशनं (भक्षणम्) यस्य, तं, मांसभक्षकम्, इव । रक्तलुब्धकं = रक्ते (रुधिरे) लुब्धकम् (लोलुपम्) । शबरसेनापतिपक्षे—रक्ता: (अनुरक्ता:) लुब्धका: (व्याधा:) यस्मिन्, तम् ।

गीतकलेति । गीतकलाविन्यासं = गानशिल्पविशेषस्थितिम्, इव, निषादाऽनुगतं = निषादेन (षड्जादिस्वरान्यतमेन) अनुगतम् (अनुसृतम्) । शबरसेनापतिपक्षे—निषादै: (मातङ्गै:) अनुगतम् । "निषाद: स्वरभेदे स्याच्चण्डाले धीवरान्तरे ।" इति मेदिनी । उपमाऽलङ्कार: ।

अम्बिकेति । अम्बिकात्रिशूलम् = अम्बिकाया: (गौर्या:) त्रिशूलम् (शस्त्रविशेष:) तत् इव, महिषरुधिरार्द्रकायं = महिषस्य (महिषाऽसुरस्य) रुधिरं (रक्तम्) तेन आर्द्र: (क्लिन्न:) काय: (शरीरम्) यस्य तम् । शबरसेनापतिपक्षे—महिषाणां (सैरिभाणाम्) रुधिरेण आर्द्रकायम् । उपमा ।

अभिनवेति । अभिनवयौवनम् = अभिनवं (नूतनम्) यौवनं (तारुण्यम्) यस्य, तम् । तादृशमपि क्षपितबहुवयसं = क्षपितानि (क्षयीकृतानि) बहूनि (अधिकानि) वयांसि (बाल्ययौवनाद्यवस्था:) येन, तम् । शबरसेनापतिपक्षे—क्षपितानि बहूनि वयांसि (पक्षिण:) येन, तम् । "खगबाल्यादिनोर्वय" इत्यमर: । विरोधाभासोऽलङ्कार: । तल्लक्षणं यथा—"आभासत्वं विरोधस्य विरोधाभास इष्यते" इति ।

कृतेति । कृतसारमेयसंग्रहम् = कृत: (विहित:) सारस्य (धनस्य) मेयस्य (मातुं योग्यस्याऽन्नादे:) संग्रह: (सञ्चय:) येन, तम् अपि, फलमूलाशनं = फलमूलम् एव अशनं (भक्षणम्) येन, तम् । परिहारपक्षे—कृत: सारमेयाणां (शुनाम्) संग्रहो येन, तम् ।

कृष्णमिति । कृष्णं = विष्णुम्, अपि, "विष्णुर्नारायण: कृष्ण:" इत्यमर: । असुदर्शनम् = अविद्यमानं सुदर्शनं (चक्रम्) यस्य तम्, अत्राऽपि विरोध:, परिहारपक्षे—कृष्णं = श्यामवर्णम्, अत एव—असुदर्शनं = सुन्दरदर्शनरहितं, भयङ्करमिति भाव: । विरोधाभासोऽलङ्कार: ।

स्वच्छन्देति । स्वच्छन्दचारम् = स्वच्छन्देन (स्वाशयेन) चार: (सञ्चरणम्) यस्य, तम्, अपि, दुर्गैकशरणं=दुर्गम् (दुर्गमस्थानं, गिर्यादिकमितिभाव) एव एकम् (एकमात्रम्) शरणं (रक्षणस्थानम्) यस्य तं, "शरणं गृहरक्षित्रो:" इत्यमर: । अत्राऽपि विरोध:, परिहारस्तु—दुर्गा (गौरी) एव एकं (मुख्यम्) शरणं (रक्षित्री) यस्य, तम् । विरोधाभास: ।

क्षितीति । क्षितिभृत्पादाऽनुवर्तिनं = क्षितिं (पृथिवीं) बिभर्ति (पुष्णाति) इति क्षितिभृत्

भी बहुत-से बन्दिजनों (स्तुतिपाठकों) का संग्रह करता था । जैसे गानकला का विन्यास निषाद (स्वरविशेष)-से अनुगत होता है वैसे ही वह निषादों (व्याधों) से अनुगत था । जैसे दुर्गाका त्रिशूल महिष—(महिषाऽसुर) के रुधिरसे आर्द्र था वैसे ही वह महिषों (जङ्गली भैंसों) के रुधिरसे आर्द्र शरीरवाला था । नये यौवनवाला होकर भी उसने बहुत वयस् (उम्र) का क्षय किया था (विरोध) । परिहार-बहुतसे वयस् (पक्षियों) का क्षय किया था । बहुतसा सार-मेय (धन-धान्य) का संग्रह किया हुआ होकर भी वह फलमूल खानेवाला था (विरोध) । परिहार—बहुत-से सारमेयों (कुत्तों) का संग्रह किया हुआ था । कृष्ण (वासुदेव) होता हुआ भी असुदर्शन = सुदर्शन-(चक्र) से रहित, (विरोध) । परिहार—कृष्ण = कालावर्णवाला, असुदर्शन = सुन्दर दर्शनसे रहित=भयङ्कर था । स्वच्छन्दतासे चलनेवाला होकर भी दुर्ग (किला) का मात्र आश्रय करनेवाला, (विरोध) । परिहार—केवल दुर्गाका शरण (आश्रय) लेनेवाला था । क्षितिभृत् (राजा) के पादाऽनुवर्ती (चरणका अनुवर्तन करनेवाला)

विन्ध्याचलस्य, अंशकाऽवतारमिव कृतान्तस्य, सहोदरमिव पापस्य, सारमिव कलिकालस्य भीषणमपि महासत्त्वतया गभीरमिवोपलक्ष्यमाणम्, अनभिभवनीयाकृतिम्, मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यम्। अभिधानन्तु तस्य पश्चादहमश्रौषम्।

आसीच्च मे मनसि—'अहो! मोहप्रायमेतेषां जीवितम्, साधुजन-गर्हितञ्च चरितम्। तथाहि-पुरुष-पिशितोपहारे धर्म्मबुद्धिः, आहारः साधुजनविगर्हितो मधुमांसादिः, श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवारुतम् उपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः,

---

(राजा), तत्पादौ (तच्चरणौ) अनुवर्तते (अनुसरति) तच्छील इति, तम्। तथाविधोऽपि राजसेवाऽनभिज्ञं = राजसेवायाम् (नृपपरिचर्यायाम्) अनभिज्ञम् (अज्ञातारम्) अत्राऽपि विरोधः। परिहारपक्षे—क्षितिं (पृथिवीम्) बिभर्ति (धारयति) इति क्षितिभृत् (पर्वतः) तस्य पादाः (प्रत्यन्तपर्वताः) तान् अनुवर्तते तच्छीलस्तम्, अत एव राजसेवाऽनभिज्ञम्। विरोधाभासः।

अपत्यमिति। विन्ध्याऽचलस्य=विन्ध्यपर्वतस्य, अपत्यम् इव=सन्तानम् इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। **अंशकेति**। कृताऽन्तस्य = यमराजस्य, अंशकाऽवतारम् = एकभागाऽवतारम् इव, "कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड् यमः।" इत्यमरः। उत्प्रेक्षा। **सहोदरमिति**। पापस्य = कलुषस्य, सहोदरं = सोदरम्, इव, उत्प्रेक्षा।

सारमिति। कलिकालस्य = चतुर्थयुगस्य, सारं=स्थिरांशतम्, इव। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। **भीषणमिति**। भीषणम् अपि = भयानकम् अपि, महासत्त्वतया=उदात्तस्वभावत्वेन, गम्भीरम् इव = गभीरम् इव, अस्फुटाशयमिवेति भावः। उपलक्ष्यमाणं = परिदृश्यमानम्। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

अनभिभवनीयाकृतिमिति। अनभिभवनीया (अभिभवितुम् = तिरस्कर्तुम्) अशक्या (अशक्तिविषया) आकृतिः (आकारः) यस्य, तम् तादृशं, मातङ्गनामानं = मातङ्गसंज्ञकं, शबरसेनापतिं = शबरसैन्याऽध्यक्षम्, अपश्यं = व्यलोकयम्। तस्य = शबरसेनापतेः अभिधानं तु = नामधेयं तु, अहं, पश्चात् = अनन्तरम् = अश्रौषं = श्रुतवान्।

आसीदिति। मे = मम, मनसि = चित्ते, आसीत्=अभवत्, विचार इति शेषः। तमुपन्यस्यति—अहो इत्यादिना। अहो = आश्चर्यम्। एतेषां = शबराणां, जीवितं=जीवनं, मोहप्रायम्=अज्ञानप्रचुरम्। चरितम् = आचरणं च, साधुजनगर्हितं = साधुजनैः (शिष्टजनैः), गर्हितं (निन्दितम्) च। एतदुपपादयति—**तथाहीति**। पुरुषपिशितोपहारे = पुरुषस्य (पुंसः) यत् पिशितं (मांसम्) तस्य उपहारे (देव्यै नैवेद्यरूपेण समर्पणे) धर्मबुद्धिः = इदं पुण्यमिति ज्ञानम्। साधुजनगर्हितः = सज्जननिन्दितः, मधुमांसादिः = मद्यपिशिताऽऽदिः, आहारः = भक्ष्यपदार्थः। श्रमः = व्यायामः, मृगया = आखेटक्रीडा। शास्त्रम् = अनुशासनवचनं, शिवारुतं = शृगालध्वनिः, "स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः।" इत्यमरः। सदसतां = शुभाऽशुभानाम्, "उपदेष्टारः" इति कृदन्तपदयोगे "कर्तृकर्मणोः कृति" इति कर्मणि षष्ठी। उपदेष्टारः = उपदेशकाः। कौशिकाः = उलूकाः, तेषां घूत्कारश्रवणेन कार्याऽकार्यनिर्णया-

---

होकर भी राजसेवामें अनभिज्ञ (विरोध), परिहार—क्षितिभृत् (पर्वत) के पाद-(प्रत्यन्तपर्वत) का अनुवर्ती अतः राजसेवामें अनभिज्ञ। जो मानों विन्ध्यपर्वतका पुत्र था। वह मानो यमराजका अंशाऽवतार था। मानों पापका सहोदर भाई था, कलिकालका मानों सार था। भीषण (भयङ्कर) होकर महान् सत्त्वगुण होनेसे गम्भीर-सा देखा जानेवाला था, जिसका आकार तिरस्कारयोग्य नहीं था। ऐसे मातङ्ग नामके शबर सेनापतिको मैंने देखा। उसका नाम तो मैंने पीछे सुन लिया।

मेरे मनमें (ऐसा विचार) हुआ—इन (शबरों) का जीवन अज्ञानसे पूर्ण है और चरित्र सज्जनोंसे निन्दित है। जैसे कि—ये लोग नरमांसको समर्पण करनेमें धर्म समझते हैं। इनका आहार सज्जनोंसे निन्दित मद्य मांस आदि है। शिकार खेलना व्यायाम है। गीदड़ोंकी चीख शास्त्र है, शुभ और अशुभके उपदेश करने-

राज्यं शून्यास्वटवीषु, आपानकमुत्सवः, मित्राणि क्रूरकर्मसाधनानि धनूंषि, सहाया विषदिग्ध-मुखा भुजङ्गा इव सायकाः, गीतमुत्साहकारि मुग्धमृगाणाम्, कलत्राणि बन्दी-गृहीताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः, पशुरुधिरेण देवतार्च्चनम्, मांसेन बलिकर्म, चौर्य्येण जीवनम्, भूषणानि भुजङ्गमणयः, वनकरि-मदैरङ्गरागः, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति, तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वते।

इति चिन्तयत्येव मयि स शबर-सेनापतिरटवीभ्रमण-समुद्भवं श्रममपनिनीषुरागत्य तस्यैव शाल्मलीतरोरधश्छायायामवतारित-कोदण्डस्त्वरितपरिजनोपनीत-पल्लवासने समुपाविशत्।

दिति भावः। "महेन्द्रगुग्गुलूकव्यालग्राहिषु कौशिकाः" इत्यमरः। प्रज्ञा = विवेकबुद्धिः, शकुनिज्ञानं = पक्षिनिरूपणम्। श्वानः = कुक्कुराः, परिचिताः = संस्तुताः, विश्वासपात्राणीति भावः। शून्यासु = जनरहितासु, अटवीषु = वनभूमिषु, राज्यं = स्वामित्वम्। आपानकं = संभूय मद्यपानम्, उत्सवः = प्रमोदः। मित्राणि = सुहृदः, क्रूरकर्मसाधनानि = वधादिघातुककृत्योपकरणानि, धनूंषि = कार्मुकाणि। सहायाः = साहाय्यकारकाः, भुजङ्गा इव = सर्पा इव, विषदिग्धमुखाः = विषदिग्धं (गरललिप्तम्) मुखम् (आननम्, पक्षे अग्रभागः) येषां ते, तादृशाः सायकाः = बाणाः, "शरे खड्गे च सायकः" इत्यमरः। मुग्धमृगाणां = मुग्धाः (मूढाः) ये मृगाः (हरिणाः), तेषाम्। उत्साहकारि = उत्साहं (श्रवणोत्साहम्) करोतीति तच्छीलं, माधुर्यातिशयादिति भावः। "उत्सादकारी"ति पाठान्तरं, तस्य विनाशकारीत्यर्थः। गीतं = गानम्। गीतेनाकृष्टास्तेमृगाः स्तब्धाः सन्तः मृगयूणां लक्ष्यतां गच्छन्तीति भावः। "मुग्धः सुन्दरमूढयोः" इत्यमरः। कलत्राणि = भार्याः, बन्दीगृहीताः = बन्धः (हठात् हृताः) गृहीताः (स्वीकृताः), परयोषितः = अन्यस्त्रियः। क्रूरात्मभिः = क्रूरः (घातुकः) आत्मा (स्वभावः) येषां, तैः, "नृशंसे घातुकः क्रूरः" इति "आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म चे"त्यमरः। शार्दूलैः = व्याघ्रैः, सह = समं, संवासः = सहाऽवस्थितिः। पशुरुधिरेण = पशूनां (महिषादीनाम्) रुधिरेण (रक्तेन), देवताऽर्चनं = सुरपूजनम्। मांसेन = पिशितेन, बलिकर्म = उपहारकृत्यं, यक्षभूताद्यर्थमिति शेषः। "करोपहारयोः पुंसि बलिः, प्राण्यङ्गजे स्त्रियाम्" इत्यमरः। चौर्येण = परद्रव्याऽपहारेण, जीवनं = प्राणधारणम्। भूषणानि = अलङ्काराः, भुजङ्गमणयः = सर्परत्नानि। वनकरिमदैः = वनकरिणाम् (अरण्यगजानाम्) मदैः (दानजलैः), अङ्गरागः = देहावयवविलेपनम्। **यस्मिन्निति**। यस्मिन् एव, कानने=वने, निवसन्ति=निवासं कुर्वन्ति, तदेव=तत्काननम् एव। अशेषतः = समस्ततः, उत्खातमूलम् = उत्पाटितमूलं, कुर्वते = विदधति।

इतीति। इति = पूर्वोक्तप्रकारेण, मयि, चिन्तयति = ध्यायति, एव, शबरसेनापतिः = शबर-चमूनायकः, अटवीभ्रमणसमुद्भवम् = अटव्यां (वने) भ्रमणम् (इतस्ततः संचरणम्) तत्समुद्भवं (तदुत्पन्नम्) श्रमम् (परिश्रमम्) अपनिनीषुः = अपनेतुम् (निवारयितुम्) इच्छुः (अभिलाषुकः) सन्, "सनाशंसभिक्ष उः" इत्युप्रत्ययः। तस्यैव = पूर्वोक्तस्यैव, शाल्मलीतरोः = शाल्मलीवृक्षस्य, अधः=

वाले उल्लू हैं, चिड़ियोंका ज्ञान विवेक बुद्धि है, कुत्ते परिचित हैं, शून्य जङ्गलोंमें राज्य है, मित्रोंके साथ मद्य पीना उत्सव है, क्रूर कर्मके साधन धनुष मित्र हैं, विषलिप्त मुखवाले सर्पोंके समान नोकमें विषवाले बाण सहाय हैं, ज्ञानहीन मृगोंको सुननेमें उत्साह करनेवाला गाना है, अपहृत परस्त्रियाँ इनकी भार्याएं हैं, क्रूर स्वभाववाले व्याघ्रोंसे इनका सहवास है, पशुओंके रक्तसे देवताओंकी पूजा है, ये मांससे यक्षभूत आदिको उपहार देते हैं, चोरीसे इनका जीवन है। सर्पकी मणियां अलङ्कार है। ये जङ्गली हाथियोंके मदसे अङ्गका लेप करते हैं, जिस जङ्गलमें रहते हैं उसीको सब तरहसे निर्मूल करते हैं, इस प्रकार मैं चिन्ता कर ही रहा था शबर सेनापति जङ्गलमें घूमनेसे उत्पन्न थकावटको मिटानेकी इच्छासे आकर उसी सेमलके पेड़के नीचे छायामें धनुष्को उतारकर

अन्यतरस्तु शबरयुवा ससम्भ्रममवतीर्य्य तस्मात् करयुगल-परिक्षोभिताम्भसः सरसो एक वैदूर्य्यद्रवानुकारि प्रलय-दिवसकर-किरणोपतापादम्बरैकदेशमिव विलीनम्, इन्दुमण्डलादिव प्रस्यन्दितम्, द्रुतमिव मुक्ताफल-निकरम्, अत्यच्छतया स्पर्शानुमेयं हिमजडम्, अरविन्दकोश-रजः-कषायमम्भः कमलिनीपत्त्रपुटेन प्रत्यग्रोद्धृताश्च धौतपङ्कनिर्म्मला मृणालिकाः समुपाहरत्।

आपीत-सलिलश्च सेनापतिस्ता मृणालिकाः शशिकला इव सैंहिकेयः क्रमेणादशत्। अपगतश्रमश्चोत्थाय परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबर-सैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैरभिमतं दिगन्तरमयासीत्।

निम्नभागे, छायायाम् = अनातपप्रदेशे, आगत्य = आगमनं कृत्वा, अवतारितकोदण्डः = अवतारितम् (अवरोपितं, स्वस्कन्धादिति शेषः) कोदण्डं (धनुः) येन सः। "धनुश्चापो धन्वशरासनकोदण्ड-कार्मुकम्।" इत्यमरः। त्वरितेत्यादिः० = त्वरितः (त्वरायुक्तः) परिजनः (सेवकः) तेन उपनीतं (समीपप्रापितम्) यत् पल्लवाऽऽसनम् (किसलयोपवेशनाधारः), तस्मिन्, समुपाविशत् = समुपविष्टः।

अन्यतरस्त्विति। अन्यतरस्तु = अनिर्दिष्टनामा कश्चित्, शबरयुवा = शबरतरुणः, ससम्भ्रमं = सत्वरम्, अवतीर्य = सरस्यवतरणं कृत्वा करयुगलपरिक्षोभिताऽम्भसः = करयुगलेन (हस्तयुग्मेन) परिक्षोभितं (संचालितं, शैवलाद्यपनयनाऽर्थमिति भावः) अम्भः (जलम्) यस्य, तस्मात्। सरसः=पम्पाऽभिधानात्, कासारात्, कमलिनीपत्त्रपुटेन = पद्मिनीदलपुटेन, वैदूर्यद्रवाऽनुकारि=वैदूर्यस्य (वालवायजमणेः) द्रवः (द्रुतिः) तदनुकारि (तदनुकरणशीलम्)। विदूरात् (वालवायपर्वतात्) प्रभवतीति वैदूर्यम्, "विदूराञ्ञः" इति ञ्यप्रत्ययः। "वैदूर्यं वालवायजम्" इति विश्वः। प्रलयेत्यादिः० = प्रलये (कल्पाऽन्तकाले) यो दिवसकरः (सूर्यः) तस्य किरणानाम् (कराणाम्) उपतापः (सन्तापः), तस्मात्। विलीनम्=क्षरितम्, अम्बरैकदेशम् इव = आकाशैकभागम् इव, अत्रोत्प्रेक्षा। इन्दुमण्डलात्—चन्द्रबिम्बात्, प्रस्यन्दितं = प्रक्षरितं, द्रुतं = द्रवीभूतं, मुक्ताफलनिकरम् इव = मौक्तिकफलसमूहम् इव, उत्प्रेक्षा। अत्यच्छतया = अतिशयनिर्मलत्वेन, स्पर्शाऽनुमेयं = स्पर्शेन (आमर्शनेन) अनुमेयम् अनुमातुं योग्यं, सलिलत्वेनेति शेषः। हिमजडं = हिमम् (तुहिनम्) इव, जडम् (शीतम्)। उपमाऽलङ्कारः। अरविन्दकोशरजःकषायम् = अरविन्दस्य (कमलस्य) यः कोशः (कर्णिकाऽऽधारः) तस्य रजः (परागः) तेन कषायम् (सौरभयुक्तम्)। तादृशम् अम्भः = सलिलम्, प्रत्यग्रोद्धृताः = सद्यउत्पाटिताः, धौतपङ्कनिर्मलाः = धौतः (क्षालितः) पङ्कः (कर्दमः) यासां ताः अत एव निर्मलाः (स्वच्छाः), मृणालिकाः = अल्पानि मृणालानि, तानि। अल्पानि मृणालानि मृणाल्यः, अवयवाऽपचयविवक्षायां "षिद्गौरादिभ्यश्चे"ति ङीष्। मृणाल्य एव मृणालिकास्ताः। "स्त्री स्यात्काचिन्मृणाल्यादिर्विवक्षाऽपचये यदि।" इत्यमरः। समुपाहरत् = समानयत्।

आपीतेति। आपीतसलिलम् = आपीतं (पानविषयीकृतम्) सलिलं (जलम्) येन सः। सेनापतिः = शबरचमूनायकः, ताः = पूर्वोक्ताः, मृणालिकाः = अल्पानि मृणालानि, सैंहिकेयः = राहुः,

---

फुर्तीले नौकरसे लाये गये पल्लवोंके आसनपर बैठ गया। अन्य एक युवा शबर शीघ्रतापूर्वक पम्पासरोवरमें उतरकर दोनों हाँथोंसे विलोडित जलवाले उस सरोवरसे कमलके पत्तोंको दोनोंसे वैदूर्यमणिके द्रवके समान, मानों प्रलय-कालके सूर्यकी किरणोंके सन्तापसे पिघले हुए आकाशके एक हिस्सेके समान, चन्द्रमण्डलसे चुवा हुआ, मानों पिघले हुए मोतियोंके समान, अत्यन्त निर्मल होनेसे स्पर्शसे अनुमानका विषय, बर्फके समान ठण्डा, कमलके कोशके परागसे सुगन्धित जल और उसी समय उखाड़े गये, कीचड़के धोनेसे निर्मल छोटे-छोटे मृणालखण्डोंको ले आया। सेनापतिने इच्छाके अनुसार पानी पीकर उन मृणालिकाओं (मृणालखण्डों) को जैसे राहु चन्द्रकलाको खाता है उसी प्रकार क्रमसे खा लिया। थकावट जानेपर जल पीनेवाले समस्त उन शबरसैन्यसे अनुगत होकर वह अभीष्ट दिशाके भागमें चला गया।

एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मात् पुलिन्द-वृन्दादनासादितहरिण-पिशितः-पिशिताशन इव विकृतदर्शनः पिशितार्थी तस्मिन्नेव तरुतले मुहूर्त्तमिव व्यलम्बत। अन्तरिते च तस्मिन् शबरसेनापतौस जीर्णशबरः पिबन्निवास्माकमायूंषि रुधिरबिन्दुपाटलया कपिलभ्रूलता-परिवेष-भीषणया दृष्ट्या गणयन्निव शुककुल-कुलायस्थानानि श्येन इव विहगामिषस्वाद-लालसः सुचिर-मारुरुक्षुस्तं वनस्पतिमा मूलादपश्यत्।

उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकन-भीतानां शुककुलानामसुभिः।

सिंहिकाया अपत्यं पुमान्, "स्त्रीभ्यो ढक्" इति ढक्, "तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः।" इत्यमरः। शशिकला इव = चन्द्रकला इव, क्रमेण = सलिलपानानन्तर्येण, अदशत् = अभक्षयत्। उपमाऽलङ्कारः। अपगतश्रमः = अपगतः (निवृत्तः) श्रमः (मृगयाजनितखेदः) यस्य सः। उत्थाय = उत्थानं कृत्वा। परिपीताम्भसा = विहितसलिलपानेन, सकलेन = निखिलेन, तेन = पूर्वकथितेन, शबर-सैन्येन = शबरसेनया, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः सन्, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, अभिमतम् = अभीष्टं, दिगन्तरम् = अन्याम् आशाम्, अयासीत् = प्रापत्। "या प्रापणे" इति धातोर्लुङ् "यमरमन-मातां सक् च" इति सगिटौ।

एकतमस्त्विति। एकतमस्तु = अन्यतमस्तु, जरच्छबरः = वृद्धशबरः, तस्मात् = पूर्वोक्तात्, पुलिन्दवृन्दात् = शबरसमूहात्, अनासादितहरिणपिशितः = अनासादितम् (अप्राप्तम्) हरिणपिशितं (मृगमांसम्) येन सः, पिशिताऽशनः = मांसभक्षकः, व्याघ्रादिः, राक्षसादिः, इव, विकृतदर्शनः = विकृतं (विकारयुक्तं, भयङ्करमिति भावः) दर्शनम् (अवलोकनम्) यस्य सः, उपमा। पिशिताऽर्थी = मांसार्थी सन्। तस्मिन्नेव = पूर्वोक्त एव, तरुतले = शाल्मलीवृक्षमूले, मुहूर्तम् इव = कञ्चित्कालम् इव, व्यलम्बत = विलम्बम् अकरोत्।

अन्तरित इति। शबरसेनापतौ = पुलिन्दसैन्यनायके। अन्तरिते च = व्यवहिते च, वृक्षलतादि-नेति शेषः। सः = पूर्वोक्तः, जीर्णशबरः = वृद्धपुलिन्दः, अस्माकं = पक्षिणाम्, आयूंषि = जीवनकालान्, पिबन् इव = पानविषयाणि कुर्वन् इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। रुधिरबिन्दुपाटलया = रुधिरबिन्दुरिव (रक्तपृषत इव) पाटला (श्वेतरक्ता) तया। कपिलेत्यादिः० = कपिला (पिङ्गला) या भ्रूलता (नयनलोमवल्ली) तस्याः परिवेषः (परिधिः) तेन भीषणा (भयङ्करी), तया, तादृश्या दृष्ट्या = नयनेन, शुककुलकुलायस्थानानि = शुककुलस्य (कीरसमूहस्य) कुलायस्थानानि (नीडस्थलानि), गणयन् इव = गणनां कुर्वन् इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। श्येन इव = पत्त्री इव, विहगाऽऽमिषस्वादलालसः = विहगानाम् (पक्षिणाम्) यत् आमिषं (मांसम्) तस्य स्वादः (आस्वादनम्) तस्मिन् लालसः (अत्यभिलाषुकः) सन्, उपमा। तं = पूर्वोक्तं, वनस्पतिं = शाल्मलीवृक्षम्, आरुरुक्षुः (आरोढुम् इच्छुः), आमूलात् = मूलपर्यन्तम्। सुचिरं = बहुकालं यावत्, अपश्यत् = व्यलोकयत्।

उत्क्रान्तमिवेति। तस्मिन्, क्षणे = अवसरे, "क्षणः पर्वोत्सवव्यापारेषु मानेऽप्यनेहसः।" इति मेदिनी। तदालोकनभीतानां = तस्य (जरच्छबरस्य) यत् आलोकनं (दर्शनम्) तस्मात् भीतानाम् (त्रस्तानाम्) शुककुलानां = कीरसमूहानाम्, असुभिः = प्राणैः, उत्क्रान्तम् इव = निर्गतम् इव, अत्रो-त्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

उनमें भयानक आकृतिवाला एक बुड्ढा शबर उस शबरसमूहसे मृगमांसको नहीं पानेसे मांसभक्षक-(राक्षस आदि) के समान होकर मांसकी इच्छा करता हुआ उसी पेड़ (शाल्मली) के नीचे कुछ समय तक ठहरा। शबरसेनापतिके आँखोंसे ओट होनेपर मानों हमारी आयुको पीता हुआ और रक्त बिन्दुके समान लाल और भूरी भ्रूलताके परिवेषसे भयङ्कर दृष्टिसे शुकसमूहोंके घोंसलोंको गिनता हुआ बाजके समान पक्षीके मांसका आस्वादन करनेके लिए लोलुप होता हुआ उस पेड़पर चढ़नेके लिए इच्छा कर उस पेड़को जड़से देखने लगा।

किमिव हि दुष्करमकरुणानाम् ? यतः स तमनेक-ताल-तुङ्गमभ्रङ्कष-शाखाशिखरमपि सोपानैरिवायत्नेनैव पादपमारुह्यताननुपजातोत्पतनशक्तीन्, कांश्चिदल्पदिवस-जातान् गर्भच्छवि-पाटलाञ् शाल्मली-कुसुमशङ्कामुपजनयतः,कांश्चिदुद्भिद्यमानपक्षतया नलिन-संवर्तिकानुकारिणः, कांश्चिदर्कफलसदृशान्, कांश्चिल्लोहितायमान-चञ्चुकोटीन् ईषद्विघटित-दल-पुट-पाटलमुखानां कमलमुकुलानां श्रियमुद्वहतः, कांश्चिदनवरत-शिरःकम्प-व्याजेन निवारयत इव प्रतीकारा-समर्थान्, एकैकतयाः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखाऽन्तरेभ्यश्च शुक-शावकानग्रहीत्, अपगता-सूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत् ।

किमिवेति । हि = यस्मात् कारणात्, "हि हेतावधारणे" इत्यमरः । अकरुणानां = निर्दयानां, दुष्करं = दुर्विधेयं, किमिव ? न किमपीति भावः । ते सर्वमपि क्रूरकर्माऽनुतिष्ठन्तीति भावः, अर्थापत्तिः । यतः = यस्मात्कारणात्, सः = जरच्छबरः, अनेकतालतुङ्गम् = अनेके (बहवः) ये तालाः (तालवृक्षाः, उपर्युपरिसंयोजिता इति शेषः) त इव तुङ्गः (उन्नतः), तम् । अभ्रङ्कषशाखाशिखरम् अपि= अभ्रं (मेघम्) कषन्ति (विलिखन्ति) इति अभ्रङ्कषाणि, "सर्वकूलाऽभ्रकरीषेषु कषः" इति खच्, "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इति मुमागमः । अभ्रङ्कषाणि (मेघस्पर्शीनि, अत्युन्नतानीति भावः) शाखानां (स्कन्धानाम्) शिखराणि (अग्रभागाः) यस्य तम् । तादृशमपि पादपं=वृक्षम् । सोपानैरिव = आरोहणैरिव, उत्प्रेक्षा । अयत्नेनैव = अनायासेनैव, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, अनुपजातोत्पतनशक्तीन् = अनुपजाता (अनुत्पन्ना) उत्पतनशक्तिः (उड्डयनसामर्थ्यम्) येषां, तान् । तादृशान्, कांश्चित्, अल्पदिवसजातान् = स्तोकदिनोत्पन्नान्, अत एव गर्भच्छविपाटलान् = गर्भस्य (भ्रूणस्य) या छविः (कान्तिः), तया पाटलान् (श्वेतरक्तान्), अतः शाल्मलीकुसुमशङ्कां=शाल्मलीकुसुमस्य (पिच्छिलापुष्पस्य) शङ्काम् (सन्देहम्), उपजनयतः = उत्पादयतः, "पिच्छिला पूरणी मोचा स्थिरायुः शाल्मलिर्द्वयोः ।" इत्यमरः । अत्र काव्यलिङ्गं भ्रान्तिमांश्च । कांश्चित्—उद्भिद्यमानपक्षतया = उद्भिद्यमानौ (उत्पद्यमानौ) पक्षौ (पतत्रे) येषां, ते, तेषां भावस्तत्ता, तया । नलिनसंवर्तिकाऽनुकारिणः = नलिनानां (कमलानाम्) संवर्तिकाः (नवदलानि), ता अनुकुर्वन्ति (विडम्बयन्ति) तच्छीलास्तान् एतेनाऽतिनैर्मल्यं गम्यते । उपमा । "संवर्तिका नवदलम्" इत्यमरः । कांश्चित्—अर्कफलसदृशान् = मन्दारफलतुल्यान्, कांश्चित्—लोहितायमानचञ्चुकोटीन् = अलोहिता लोहिता यथा सम्पद्यन्त इति लोहितायमानाः, "लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्" इति क्यषन्ताल्लटः शानच् । लोहितायमानाः (रक्तीभवन्तः) चञ्चूनां (त्रोटीनाम्) कोटयः (अग्रभागाः) येषां, तान् । अत एव ईषद्विघटितेत्यादिः० = ईषद्विघटितं (स्तोकविकसितम्) यत् दलपुटं (पत्त्रपुटम्), तेन पाटलं (श्वेतरक्तम्) मुखम् (अग्रभागः) येषां, तेषाम् । तादृशानां कमलमुकुलानां = पद्मकुड्मलानां, श्रियं = शोभाम्, उद्वहतः= धारयतः, अत्र निदर्शनाऽलङ्कारः । कांश्चित्—अनवरतशिरःकम्पव्याजेन = अनवरतं (निरन्तरम्) यः शिरःकम्पः (मस्तकवेपथुः), तस्य व्याजेन (छलेन) निवारयत इव = "वयम् अर्भका अत एव

उस समय उसको देखनेसे डरे हुए शुकसमूहोंका प्राण मानों निकल गया । निर्दयोंको दुष्कर कर्म क्या है ? जो कि उस वृद्ध शबरने अनेक ताड़के पेड़ोंके समान ऊँचे, आकाशको स्पर्श करनेवाले शाखा-शिखरोंवाले उस पेड़पर मानों सीढ़ियोंसे ही प्रयासके विना ही चढ़कर उन शुकशिशुओंको, जिनमें उड़नेकी शक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी । कुछ थोड़े ही दिनोंके पहले उत्पन्न थे, अतः गर्भकी कान्तिसे गुलाबी होनेसे सेमलके फूलोंकी शङ्का उत्पन्न करते थे । कुछ पङ्खोंके उगनेसे कमलके नये पत्तोंके समान थे । कुछ अर्कवृक्षके फलके समान थे । कुछ चोंचके अग्रभागके लाल होनेसे कुछ पत्तोंके विकसित होनेसे गुलाबी अग्रभागवाली कमलकी कलियोंकी शोभाको धारण कर रहे थे—और कुछ प्रतीकारमें असमर्थ होनेसे लगातार शिर हिलानेके बहानेसे मानों (उस वृद्धशबरको) निवारण कर रहे थे । एक एक करके उस शाल्मलीकी शाखाओंके भीतरसे ऐसे उन शुकशावकोंको उस वृक्षके फलोंके समान पकड़ लिया और उनको, मारकर जमीनपर पटक दिया ।

तातस्तु तं महान्तमकाण्ड एव प्राणहरमप्रतीकारमुपप्लवमुपनतमालोक्य द्विगुणतरोपजातवेपथुर्मरणभयादुद्भ्रान्त-तरल-तारको विषादशून्यामश्रुजलप्लुतां दृशमितस्ततो दिक्षु विक्षिपन्, उच्छुष्कतालुरात्मप्रतीकाराक्षमः त्रास-स्रस्त-सन्धि-शिथिलेन पक्षपुटेनाच्छाद्य मां तत्कालोचितं प्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशो मद्रक्षणाकुलः किंकर्त्तव्यताविमूढः क्रोडविभागेन मामवष्टभ्य तस्थौ ।

असावपि पापः क्रमेण शाखान्तरैः सञ्चरमाणः कोटरद्वारमागत्य जीर्णासित-भुजङ्गभोगभीषणं प्रसार्य्य विविध-वन-वराह-वसा-विस्रगन्धिकरतलं कोदण्ड-गुणा-कर्षण-

---

नो हन्तव्या" इति निवारणं कुर्वत इव, अत्रोत्प्रेक्षाऽपह्नुतिश्च । प्रतीकाराऽसमर्थान् = प्रतिकरणं प्रतीकारः, "उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्" इति बाहुल्येन दीर्घत्वम् । प्रतीकारे (वधनिवृत्त्युपाये) असमर्थान् (अशक्तान्), एकैकतयाः = एकम् एकं कृत्वा, फलानि इव = सस्यानि इव, उपमा । तस्य = पूर्वोक्तस्य, वनस्पतेः = शाल्मलीवृक्षस्य, शाखान्तरेभ्यश्च = स्कन्धाऽभ्यन्तरेभ्यश्च, चकारपाठेन अवरोहणाऽनन्तरं कोटराऽन्तरेभ्यश्च = निष्कुहाऽभ्यन्तरेभ्यश्च इति ज्ञायते शुकशावकान् = कीरशिशून्, अग्रहीत् = गृहीतवान्, अपगताऽसूंश्च = विगतप्राणांश्च, कृत्वा = विधाय, क्षितौ = भूमौ, अपातयत् = अक्षिपत् ।

तातस्त्विति । तातस्तु = पिता तु, महान्तम् = उत्कटम्, अकाण्डे एव = अनवसरं एव, "काण्डोऽस्त्री दण्डबाणाऽर्ववर्गाऽवसरवारिषु ।" इत्यमरः । प्राणहरं = जीवनहारिणम्, अप्रतीकारं = निवारणोपायरहितम्, उपप्लवम् = उपद्रवम्, उपनतं = प्राप्तम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, द्विगुणतरोपजातवेपथुः = द्विगुणतरम् (वारद्वयं यथा तथा) उपजातः (उत्पन्नः) वेपथुः (कम्पः) यस्य सः । मरणभयात् = मृत्युभीतेः, उद्भ्रान्ततरलतारकः = उद्भ्रान्ते (चञ्चले) तरले (भास्वरे) तारके (कनीनिके) यस्य सः, "तरले भास्वरे चले" इति हैमः, "तारकाऽक्ष्णः कनीनिका" इत्यमरः । विषादशून्यां = विषादेन (खेदेन) शून्याम् (हतप्रभाम्), अश्रुजलप्लुताम् = अश्रुजलेन (अस्रसलिलेन) प्लुतां (व्याप्ताम्), तादृशीं दृशम् (नेत्रम्) इतस्ततः = यत्र तत्र, दिक्षु = आशासु, विक्षिपन् = प्रेरयन्, उच्छुष्कतालुः = उच्छुष्कम् (अतिशयशोषयुक्तम्) तालु (काकुदम्) यस्य सः । आत्मप्रतीकाराऽक्षमः = आत्मनः (स्वस्य) प्रतीकारः (आपन्निवृत्त्युपायः) तस्मिन् अक्षमः (असमर्थः) सन्, त्रासस्रस्तसन्धिशिथिलेन = त्रासात् (भयात्) स्रस्ताः (शिथिलाः) ये सन्धयः (अस्थिबन्धाः) तैः शिथिलेन (श्लथेन), तादृशेन पक्षसम्पुटेन = छदसम्पुटेन, माम्, आच्छाद्य = आवृत्य, तत्कालोचितं = तत्समययोग्यं, विधिमितिशेषः । मन्यमानः = जानानः, स्नेहपरवशः = प्रेमवश्यः, मद्रक्षणाकुलः = मद्रक्षणे (मद्गोपने) आकुलः (व्यग्रः), किंकर्तव्यताविमूढः = किंकर्तव्यतायाम् (इदानीं किं कर्तव्यमिति विधेयतायाम्) विमूढः (अत्यनभिज्ञः), तात्कालिककर्तव्यनिश्चयाऽसमर्थ इति भावः । क्रोडभागेन = भुजाऽन्तरांऽशेन, माम्, अवष्टभ्य = अवलम्ब्य, तस्थौ = स्थितः ।

असावपीति । असौ = जरच्छबरः, अपि । पापः = अपुण्यकर्मा, शाखान्तरैः = विटपान्तरैः, संचरमाणः = संचरणं कुर्वन्, कोटरद्वारं = निष्कुहद्वारम्, आगत्य = एत्य, "तातं गताऽसुम् अकरोत्" इत्यत्र सम्बन्धः । जीर्णाऽसितेत्यादिः० = जीर्णः (जरठः) असितः (कृष्णवर्णः) यो

पिताजी महान् प्राणहारी तथा प्रतीकारसे रहित उस उपद्रवको अकस्मात् आये हुए देखकर द्विगुण कम्पवाले होकर मृत्युके भयसे चञ्चल और चमकीली पुतलियोंवाले होकर खेदसे कान्तिहीन आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंको दिशाओंमें इधर-उधर डालते हुए अत्यन्त शुष्क तालुवाले होकर अपनी आपत्तिको हटानेमें असमर्थ होते हुए त्राससे शिथिल सन्धिबन्धोंसे शिथिल अपने पंखोंसे मुझे ढककर उस समयके योग्य विधि समझकर स्नेहके अधीन होकर मेरे रक्षणमें आकुल होते हुए किंकर्तव्यतामें विमूढ़ होते हुए बाहोंके मध्यभागसे मुझे ढककर स्थित हुए । उसे हत्यारे पापीने भी शाखाओंके बीचसे चलकर कोटरके द्वारमें आकर जीर्ण कृष्ण सर्पके शरीरके समान, भयङ्कर-अनेक जङ्गली सूअरों

व्रणाङ्कित-प्रकोष्ठम् अन्तक-दण्डानुकारिणं वामबाहुमतिनृशंसो मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चु-प्रहारमुत्कूजन्तमाकृष्य तातं गतासुमकरोत्। मान्तु स्वल्पत्वाद् भयसम्पिण्डिताङ्गत्वात् सावशेषत्वाच्चायुषः कथमपि पक्षसंपुटान्तर-गतं नालक्षयत्। उपरतञ्च तमवनितले शिथिलशिरोधरमधोमुखममुञ्चत्।

अहमपि च्चरणान्तरे निवेशितशिरोधरो निभृतमङ्क-निलीनस्तेनैव सहापतम्। अवशिष्टपुण्यतया तु पवनवशसंपुञ्जितस्य महतः शुष्कपत्त्रराशेरुपरि पतितमात्मानमपश्यम्। अङ्गानि येन मे नाशीर्य्यन्त।

भुजङ्गः (सर्पः) तस्य भोगः (शरीरम्) स इव भीषणः (भयङ्करः) तम्। उपमा। "अहेः शरीरं भोगः स्यात्" इत्यमरः। विविधेत्यादिः० = विविधाः (अनेकप्रकाराः) ये वनवराहाः (अरण्यशूकराः) तेषां वसा (वपा) तया विस्रगन्धि (आमगन्धि) करतलं (हस्ततलम्) यस्य, तम्। "मेदस्तु वपा वसा।" इति, "विस्रं स्यादामगन्धि यत्" इति चाऽमरः। कोदण्डेत्यादिः० = कोदण्डगुणस्य (धनुर्ज्यायाः) यत् आकर्षणम् (आक्षेपः), तेन यो व्रणः (ईर्मम्) तेन अङ्कितः (चिह्नितः) प्रकोष्ठः (कूर्पराऽधोभागः) यस्य तम्। गुणपदस्य "प्रत्यञ्चे"ति व्याख्यातॄणां भाषाशब्दे संस्कृतभ्रान्तिः। "मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः" इति व्रणोऽस्त्रियामीर्ममरुः क्लीबे" इति चाऽमर। "कक्षान्तरे प्रकोष्ठः स्यात् प्रकोष्ठः कूर्परादधः।" इति शाश्वतः। अन्तकदण्डाऽनुकारिणम् = अन्तकस्य (यमस्य) यो दण्डः (लगुडः) तदनुकारिणम् (तदनुकरणशीलम्) उपमाऽलङ्कारः। तादृशं वामबाहुं = सव्यभुजम्, प्रसार्य = विस्तार्य, मुहुर्मुहुः = वारंवारम्। दत्तचञ्चुप्रहारं = दत्तः (वितीर्णः) चञ्चुप्रहारः (त्रोटयाघातः) येन, तम्। उत्कूजन्तम् = उच्चैःस्वरेण शब्दायमानं, तादृशं तातं = मज्जनकम्, आकृष्य = आनीय, नीडाद्बहिरिति शेषः। गताऽसुं = प्राणरहितम्। अकरोत् = व्यदधात्।

मां त्विति। स्वल्पत्वात् = अतिसूक्ष्मत्वात्, भयसंपिण्डिताऽङ्गत्वात् = भयात् (त्रासात्) संपिण्डितानि (सङ्कुचितानि) अङ्गानि (शरीराऽवयवाः) यस्य, तस्य भावस्तत्त्वं, तस्मात्। आयुषः = जीवनकालस्य, साऽवशेषत्वाच्च = अवशिष्टत्वाच्च, कथमपि = केनाऽपि प्रकारेण, महता क्लेशनेति भावः। पक्षसंपुटाऽन्तरगतं = पक्षसंपुटस्य (छदभागस्य पितुरितिशेषः)। अन्तरगतम् (अभ्यन्तरप्राप्तम्), मां तु = वैशम्पायनं तु, न अलक्षयत् = न अपश्यत्।

उपरतमिति। उपरतं = मृतम्, अत एव शिथिलशिरोधरं = शिथिला (श्लथा) शिरोधरा (कन्धरा) यस्य, तम्। अधोमुखम्=अवाङ्मुखम्। तं=मज्जनकम्, अवनितले=भूतले, अमुञ्चत्=अक्षिपत्।

अहमपीति। अहम् अपि, तच्चरणाऽन्तरे = तस्य (पितुः) चरणयोः (पादयोः) अन्तरे (मध्ये), निवेशितशिरोधरः = निवेशिता (स्थापिता) शिरोधरा (ग्रीवा) येन सः। निभृतं = निश्चलं यथा तथा। अङ्कनिलीनः = अङ्के (उत्सङ्गे) निलीनः (अन्तर्हितः) सन्, तेनैव सह = तातेनैव समम्। अपतम् = पतितः।

अवशिष्टेति। अवशिष्टपुण्यतया = अवशिष्टं (साऽवशेषम्) पुण्यं (सुकृतम्) यस्य सः, तस्य

की चर्बीसे कच्चे मांसके दुर्गन्ध हाथोंवाले, धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचनेसे हुए व्रणसे चिह्नित केहुनाके अधोभागवाले और यमदण्डका अनुकरण करनेवाले बाएँ बाहुको फैलाकर बारंबार चोंचोंसे प्रहारकर ऊँचे स्वरसे चीखते हुए मेरे पिताजीको खींचकर मार डाला। परन्तु अतिशय छोटा शरीर होनेसे डरसे सिकुड़े हुए अङ्गोंवाला होनेसे और मेरी आयु शेष होनेसे भी किसी प्रकार पिताजीके पंखोंके भीतर रहे हुए मुझे नहीं देखा। मरे हुए और शिथिल गरदनवाले और अधोमुख पिताजी को भूतलपर छोड़ दिया। अपनी ग्रीवा को पिताजीके चरणोंके बीचमें रखकर निश्चल होकर उनकी गोदमें छिपा हुआ मैं भी उन्हींके साथ गिर पड़ा। पुण्यके अवशेष होनेसे वायुवश इकट्ठे हुए सूखे पत्तोंके ढेरपर गिरे हुए अपनेको मैंने देखा। जिससे मेरे अङ्ग चूर-चूर नहीं हुए।

यावच्चासौ तस्मात्तरुशिखरान्नावतरति तावदहमवशीर्ण-पत्र-सवर्णत्वादस्फुटोपलक्ष्य-माण-मूर्त्तिः पितरमुपरतमुत्सृज्य नृशंस इव प्राणपरित्यागयोग्येऽपि काले बालतया कालान्तर-भुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञो जन्मसहभुवा भयेनैव केवलमभिभूयमानः किञ्चिदुपजाताभ्यां पक्षा-भ्यामीषत्कृतावष्टम्भो लुठन्नितस्ततः कृतान्तमुख-कुहरादिव विनिर्गतमात्मानं मन्यमानो नाति-दूरवर्त्तिनः, शबरसुन्दरी-कर्णपूर-रचनोपयुक्त-पल्लवस्य, सङ्कर्षण-पट-नील-च्छाययोपहसत इव गदाधर-देहच्छविम्, अच्छैः कालिन्दी-जल-च्छेदैरिव विरचितच्छदस्य, वनकरिमदोपसिक्त-

---

भावस्तत्ता, तया तु। पवनवशपुञ्जितस्य = पवनवशात् (वायुवशात्) पुञ्जितस्य (संघातरूपेणाऽव-स्थितस्य) महतः = विपुलस्य शुष्कपत्त्रराशेः = नीरसपर्णसमूहस्य। उपरि = ऊर्ध्वभागे, पतितं = स्रस्तम्, आत्मानं = स्वदेहम्, अपश्यं = व्यलोकयं, येन = शुष्कपत्त्रराश्युपरिपतनेन हेतुना, मे = मम, अङ्गानि = देहाऽवयवाः। न अशीर्यन्त = न चूर्णितानि अभवन्।

यावदिति। यावत् = यत्कालपर्यन्तम्, असौ = जरच्छबरः, तस्मात् = पूर्वोक्तात्, तरुशिखरात् = शाल्मलीवृक्षोर्ध्वभागात्, न अवतरति = न अवरोहति। तावत् = तत्कालम् एव, अहम्, अवशीर्णपत्त्र-सवर्णत्वात् = अवशीर्णानि (पतितानि) यानि पत्त्राणि (पर्णानि), तेषां सवर्णत्वात् (समानवर्णत्वात्), "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु" इति समानस्य सभावः। अस्फुटोप-लक्ष्यमाणमूर्तिः = अस्फुटम् (अप्रकटं यथा तथा) उपलक्ष्यमाणा (दृश्यमाना) मूर्तिः (शरीरम्) यस्य सः। "मूर्तिः काठिन्यकाययोः" इत्यमरः। नृशंस इव = क्रूर इव, उपरतं = मृतं, पितरं = जनकम्, उत्सृज्य = त्यक्त्वा, प्राणपरित्यागयोग्ये=प्राणपरित्यागस्य (असुमोचनस्य) योग्ये (उचिते), काले अपि = समये अपि, बालतया = शिशुत्वेन, कालान्तरभुवः = अन्यसमयभाविनः, प्रौढावऽऽस्थायां भविष्यत इति भावः। तादृशस्य स्नेहरसस्य = वात्सल्यास्वादस्य, अनभिज्ञः = ज्ञानरहितः, जन्मसह-भुवा = जन्मनः (उत्पत्तिकालात्) सहभुवा (सहजन्मना), भयेन एव=भीत्या एव, केवलम्=एकमात्रम्, अभिभूयमानः=अधिक्रियमाणः, किञ्चित्=स्तोकम्, उपजाताभ्याम्=उत्पन्नाभ्याम्, पक्षाभ्यां=छदाभ्याम्, ईषत् = स्तोकं, कृताऽवष्टम्भः = विहिताऽवलम्बः, इतस्ततः = यत्र तत्र, लुठन् = प्रतीघातं कुर्वन्, आत्मानं = स्वं, कृतान्तमुखकुहरात् = कृतान्तस्य (यमराजस्य) मुखकुहरात् (वदनविवरात्), विनि-र्गतम् इव = विनिःसृतम् इव, मन्यमानः = जानन्, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। नाऽतिदूरवर्तिनः = नाऽति-विप्रकृष्टस्थानस्थितस्य, "तमालविटपिन" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि। शबरसुन्दरीत्यादिः० = शबरसुन्दरीणां (शबररमणीनाम्) कर्णपूराणि (श्रोत्राभरणानि) तेषां रचना (निर्माणम्) तस्याम् उपयुक्तानि (उपयोगयुक्तानि) पल्लवानि (किसलयानि) यस्य, तस्य। संकर्षणेत्यादिः० = संकर्षणः (बलभद्रः), तस्य पटः (वस्त्रम्,) तस्य नीलच्छायया (नीलकान्त्या), गदाधरदेहच्छविं = गदा-धरस्य (श्रीकृष्णस्य) देहच्छविम् (शरीरकान्तिम्), उपहसत इव = उपहासं कुर्वत इव, अच्छैः = निर्मलैः, कालिन्दीजलच्छेदैः इव = यमुनासलिलखण्डैः इव। विरचितच्छदस्य = विरचिताः (निर्मिताः) छदाः (पर्णानि) यस्य, तस्य। वनकरीत्यादिः० = वनकरिणाम् (अरण्यगजानाम्) मदैः (दान-जलैः) उपसिक्तानि (उक्षितानि) किसलयानि (पल्लवानि) यस्य, तस्य। विन्ध्याऽटवीकेशपाश-

---

जबतक वह (वृद्धशबर) उस पेड़की चोटीसे नहीं उतरा, तबतक गिरे हुए पत्तोंके सदृश होनेसे स्पष्ट नहीं देखे जानेवाले शरीरवाला मैं मरे हुए पिताजीको छोड़कर क्रूर-सा होता हुआ प्राण छोड़नेके लिए उचित समयमें भी बालक होनेसे यौवन आदिमें होनेवाले स्नेह रसका जानकार न होकर जन्मके साथ होनेवाले केवल भयसे अभिभूत होता हुआ कुछ उगे हुए पंखोंका कुछ सहारा लेकर इधर-उधर लोट-पोट करता हुआ अपनेको मानो यमराजके मुखके छिद्रसे निकला हुआ समझकर कुछ समीपमें रहे हुए शबरसुन्दरीके कर्णभूषणकी रचनामें उपयुक्त पल्लववाले, बलरामके वस्त्रके नीलेवस्त्रके समान नील कान्तिके श्रीकृष्णके देहकी कान्तिको मानों उपहास करते हुए,

किसलयस्य, विन्ध्याटवी-केशपाश-श्रियमुद्वहतः, दिवाप्यन्धकारितशाखान्तरस्य, अप्रविष्ट-सूर्य्य-किरणमतिगहनपरस्येव पितुरुत्सङ्गमतिमहतस्तमालविटपिनो मूलदेशमविशम् ।

अवतीर्य्य च स तेन समयेन क्षितितल-विप्रकीर्णान् संहृत्य तान् शुकशिशूननेकलता-पाश-संयतानाबद्धय पर्णपुटेऽतित्वरित-गमनः सेनापतिगतेनैव वर्त्मना तामेव दिशमगच्छत् ।

मान्तु लब्ध-जीविताशं प्रत्यग्र-पितृमरण-शोक-शुष्क-हृदयम् अतिदूरापातादायासितशरीरं सन्त्रास-जाता सर्वाङ्गोपतापिनी बलवती पिपासा परवशमकरोत् ।

अनया च काल-कलया सुदूरमतिक्रान्तः स पापकृदिति परिकलय्य किञ्चिदुन्नमितकन्धरो

श्रियं = विन्ध्याटव्याः (विन्ध्यपर्वतवनभूमेः) केशपाशः (कुन्तलकलापः), तस्य श्रियम् (शोभाम्) उद्वहतः = धारयतः, अत्र निदर्शना । दिवाऽपि = दिवसेऽपि अन्धकारितशाखाऽन्तरितस्य = अन्धकारितानि (संजाताऽन्धकाराणि, भास्करकरप्रवेशाऽभावादिति शेषः) शाखान्तराणि (विटपाऽभ्यन्तर-प्रदेशाः) यस्य, तस्य । अतिमहतः = अतिशयविशालस्य, तमालविटपिनः = तापिच्छतरोः, अप्रविष्ट-सूर्यकिरणम् = अप्रविष्टाः (अकृतप्रवेशाः) सूर्यकिरणाः (भास्करकराः) यस्मिंस्तम् । अतिगहनं = दुर्गमवनाऽतिशायि, अपरस्य = अन्यस्य, पितुः = जनकस्य, उत्सङ्गम् इव = अङ्कम् इव, अत्रोत्प्रेक्षा । मूलदेशं = बुध्नप्रदेशम्, अविशं = प्रविष्टः । अत्रोपमोत्प्रेक्षयोः सङ्कराऽलङ्कारः ।

अवतीर्य = अवरुह्य च, सः = वृद्धशबरः, तेन, समयेन = कालेन, क्षितितलविप्रकीर्णान् = क्षितितले (भूतले) विप्रकीर्णान् (इतस्ततः पर्यस्तान्) तान्, शुकशिशून्=कीरशावकान्, संहृत्य=एकीकृत्य, एकलतापाशसंयतान्=एका (एकका) या लता (वल्ली) तस्याः पाशः (बन्धनरज्जुः), तेन संयतान् (बद्धान्) कृत्वेति शेषः । पर्णपुटे = पत्त्रपुटे, आबद्धच = बन्धनं कृत्वा, अतित्वरितगमनः = अतित्वरितम् (अतिशयशीघ्रं) गमनं (गतिः) यस्य सः । तादृशः सन्, सेनापतिगतेन एव = शबर-पृतनानायकयातेन एव, वर्त्मना = मार्गेण, ताम् एव दिशं = सेनापतिगताम् एव काष्ठाम्, अगच्छत् = अव्रजत् ।

मां त्विति । लब्धजीविताऽऽशं=लब्धा (प्राप्ता) जीविताऽऽशा (जीवनसंभावना) येन, तम् । प्रत्यग्रेत्यादिः० = प्रत्यग्रः (अभिनवः, सद्योभव इति भावः) यः पितृमरणशोक (जनकनिधनमन्युः), तेन शुष्कं (प्राप्तशोषम्) हृदयं (चित्तम्) यस्य, तम् । अतिदूरपातात् = अतिविप्रकृष्टस्थलपतनात् । आयासितशरीरम् = आयासितं (परिश्रान्तम्) शरीरं (देहः) यस्य, तम् । तादृशं माम् । संत्रास-जाता = अतिशयभयोत्पन्ना । सर्वाऽङ्गोपतापिनी = सकलदेहाऽवयवसन्तापकारिणी । बलवती = शक्ति-सम्पन्ना, पिपासा = जलतृष्णा, परवशं = स्वायत्तम्, अकरोत् = व्यदधात् ।

अनयेति । अनया = एतया, निकटप्रतिपादितयेति भावः । कालकलया=समयैकदेशेन, सुदूरम्= अतिविप्रकृष्टप्रदेशम्, अतिक्रान्तः = प्रयातः, सः = पूर्वोक्तः, पापकृत् = दुष्कृताचारः, इति = एवं, परि-कलय्य = परिकलनां कृत्वा, किञ्चित् = स्तोकम्, उन्नमितकन्धरः = उन्नमिता (ऊर्ध्वीकृता) कन्धरा

मानों निर्मल यमुनाके जलके खण्डोंसे रचित पत्तोंवाले, जङ्गली हाथीके मदसे सिक्त पल्लवोंवाले, विन्ध्यवनभूमिके केशपाशकी शोभाको धारण करते हुए, दिनमें भी जिसकी शाखाका भीतरी भाग अन्धकार युक्त था । और जिसमें सूर्यकी किरणोंका प्रवेश नहीं होता था । ऐसे अत्यन्त गहन, दूसरे पिताकी गोदके समान तमालवृक्षके मूल प्रदेशमें मैंने प्रवेश किया ।

उसी समय उतरकर वह (वृद्ध शबर) जमीनपर बिखरे हुए शुकशावकोंको इकट्ठा कर एक लतापाशमें बाँधकर पत्तोंके दोनोंमें बाँधकर अतिशय शीघ्रगतिसे सेनापतिके गये हुए मार्गसे उसी दिशामें चला गया । जीनेकी आशासे युक्त, नये पितृमरणके शोकसे सूखा हृदयवाले, अति दूरसे गिरनेसे परिश्रान्त शरीरवाले, मुझको अत्यन्त भयसे उत्पन्न, समस्त अङ्गोंको सन्तप्त करनेवाली जबर्दस्त प्यासने अधीन कर डाला ।

इसी समयमें वह पापात्मा बहुत दूर गया है ऐसा विचार कर गरदनको कुछ ऊँचाकर भयभीत दृष्टिसे

भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्त इति तमेव पदे पदे पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरुमूलात् सलिल-समीपं सर्त्तुं प्रयत्नमकरवम्।

अजातपक्षतया नातिस्थिरतर-चरण-सञ्चारस्य मुहुर्मुहुर्मुखेन पततो मुहुस्तिर्यङ्निपतन्तमात्मानमेकया पक्षपाल्या सन्धारयतः क्षितितलसंसर्पण-भ्रमातुरस्य अनभ्यासवशादेकमपि दत्त्वा पदमनवरतमुन्मुखस्य, स्थूलस्थूलं श्वसतो धूलिधूसरस्य संसर्पतो ममाभून्मनसि-अतिकष्टास्ववस्थास्वपि जीवित-निरपेक्षा न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां प्रवृत्तयः। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्। एवमुपरतेऽपि सुगृहीतनाम्नि ताते यदहमवि-

---

(ग्रीवा) येन सः। भयचकितया = भयात् (भीतेः) चकितया (त्रस्तया), दृशा = दृष्टया, दिशः = काष्ठाः, अवलोक्य = दृष्ट्वा, तृणेऽपि = अर्जुनेऽपि, "तृणमर्जुनम्" इत्यमरः। चलति = कम्पमाने सति, पुनः = भूयः, प्रतिनिवृत्तः = प्रत्यायातः स वृद्धशबर इति शेषः। इति = एवं विमृश्य, पदे पदे = प्रतिपदं, तम् एव = पूर्वोक्तम् एव, पापकारिणं = दुष्कृताचारं, वृद्धशबरमिति भावः। उत्प्रेक्षमाणः = संभावयन्, तस्मात् = पूर्वोक्तात्, तमालतरुमूलात् = तापिच्छवृक्षनिम्नभागात्, निष्क्रम्य = निर्गत्य, सलिलसमीपं = जलनिकटं, सर्तुं = गन्तुं, प्रयत्नं = प्रयासम्, अकरवं = कृतवान्।

अजातेति। मम मनसि समभूदिति सम्बन्धः। अजातपक्षतया=अनुत्पन्नच्छदत्वेन, नाऽतिस्थिरतरचरणसञ्चारस्य = नाऽतिस्थिरतरः (नाऽतिदृढतरः) चरणसञ्चारः (पादन्यासः) यस्य, तस्य। अत एव, मुहुर्मुहुः = वारं वारं, मुखेन = आननेन, पततः = पतनं कुर्वतः। मुहुः = भूयोऽपि, तिर्यक् = तिरश्चीनं यथा तथा, निपतन्तं = भ्रश्यन्तं, तादृशम्, आत्मानं = स्वम्, एकया = केवलया, "एके मुख्याऽन्यकेवलाः" इत्यमरः। पक्षपाल्या = छदपङ्क्त्या, "पालिः कर्णलताग्रेऽश्रौ पङ्क्तावङ्कप्रभेदयोः।" इति मेदिनी। संधारयतः = पतनाद्रक्षां विदधतः, क्षितितलेत्यादिः० = क्षितितले (भूतले) यत् संसर्पणं (गमनम्), तेन यो भ्रमः (भ्रान्तिः) तेन आतुरस्य (पीडितस्य), अनभ्यासवशात् = अभ्यासाऽभाववशात्, एकम् अपि, पदं = चरणं, दत्त्वा = निवेश्य, अनवरतं = निरन्तरम्, उन्मुखस्य = ऊर्ध्ववदनस्य, श्रमादिति शेषः। स्थूलस्थूलं = दीर्घं दीर्घं यथा तथा, श्वसतः = श्वासमोक्षं कुर्वतः, धूलिधूसरस्य = पांसुधूम्रवर्णस्य, संसर्पतः = संसर्पणं कुर्वतः, मम, मनसि = चित्ते, समभूत् = एतादृशो वक्ष्यमाण प्रकारो विचारनिचयोऽजायत इति भावः।

तमेव प्रतिपादयति—**अतिकष्टास्विति**। जगति = लोके, प्राणिनां = जन्तूनां, प्रवृत्तयः = प्रवर्तनरूपाः क्रियाः, अतिकष्टासु = अतिशयकठिनासु, अवस्थासु = दशासु, अपि, जीवितनिरपेक्षाः = जीविते (जीवने) निरपेक्षाः (अपेक्षारहिताः, निःस्पृहा इति भावः) न भवन्ति = नो विद्यन्ते।

नास्तीति। इह = अस्मिन्, जगति = लोके। सर्वजन्तूनां = सकलप्राणिनां, जीवितात् = जीवनात्, अन्यत् = अपरम्, अभिमततरम् = अभीष्टतरम्, नाऽस्ति = नो विद्यते। उक्ताऽर्थमुपपादयति—**एवमिति**। एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण, सुगृहीतनाम्नि = प्रातःस्मरणीयनामधेये, "अथ यः प्रातः स्मर्यते शुभकाम्यया। स सुगृहीतनामा स्या" दिति त्रिकाण्डशेषः। ताते = पितरि, उपरतेऽपि = मृतेऽपि,

---

दिशाओं को निहारकर पत्तेके चलनेपर भी वह (पापी) फिर लौट आ गया इस प्रकार पग-पगमें संभावना करता हुआ मैं उस तमालके पेड़के अधोभागसे जलके समीप जानेका प्रयत्न करने लगा। पंखोंके न उगनेसे और पैरोंसे चलनेमें भी अति स्थिरता न होनेसे वारंवार मुँहसे गिरते हुए और वारंवार तिरछा गिरते हुए अपनेको एकमात्र पक्षपङ्क्ति सँभालता हुआ जमीनपर सरकनेसे भ्रमसे आकुल, अभ्यास न होनेसे एक पग चलकर भी लगातार ऊपर मुख किये हुए लम्बा-लम्बा श्वास लेते हुऐ और धूलसे धूसर और सरकते हुए मेरे मनमें ऐसा विचार हुआ—"अत्यन्त कष्टपूर्ण अवस्थाओंमें लोकमें प्राणियोंकी चेष्टाएँ जीवनमें निरपेक्ष (परवाह न करनेवाली) नहीं होती हैं। लोकमें समस्त जन्तुओंको जीवनसे अधिक अभीष्ट कुछ भी नहीं होता है। इस प्रकार प्रातःस्मरणके योग्य पिताके मरने-

कलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि। धिङ्मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्। अहो! सोढपितृमरणशोक-दारुणं येन मया जीव्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते। खलं हि खलु मे हृदयम्। अहं हि लोकान्तर-गतायामम्बायां नियम्य शोकावेगमा प्रसव-दिवसात् परिणतवयसापि सता तातेन तैस्तैरुपायैः संवर्द्धनक्लेशमतिमहान्तमपि स्नेहवशादगणयता यत् परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्। 'अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः, यदुपकारिणमपि तातं क्वापि गच्छन्तमद्यापि नानुगच्छन्ति। सर्वथा न कञ्चिन्न खलीकरोति जीवित-तृष्णा, यदीदृगवस्थमपि मामयमायासयति जलाभिलाषः। मन्ये चागणित-पितृमरण-शोकस्य निर्घृणतैव केवलमियं मम सलिलपानबुद्धिः। अद्यापि दूर एव

यत्, अहं = पुत्रः, अविकलेन्द्रियः = अविकलानि (प्रातिस्विकविषयग्रहणसमर्थानि) इन्द्रियाणि (हृषी-काणि) यस्य सः। तादृशः सन्, पुनरेव = भूय एव, प्राणिमि = श्वसिमि। अकरुणं = दयारहितम्, अतिनिष्ठुरम्=अतिशयकठोरम्, अकृतज्ञम्=अकृतवेदिनं, कृतघ्नमिति भावः। तादृशं मां, धिक्, "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इति धिग्योगे "माम्" इत्यत्र द्वितीया।

अहो इति। अहो = आश्चर्यम्। येन, मया, **सोढेत्यादिः०** = सोढः (मर्षितः) यः पितृशोकः (जनकमरणमन्युः), तेन दारुणं (भीषणं, यथा तथा) जीव्यते = प्राणधारणं क्रियते, उपकृतम् अपि = पितृकृतोपकारोऽपि, न अपेक्ष्यते = नाऽपेक्षाविषयीक्रियते। हि = यतः, मे = मम, हृदयं = चित्तं, खलं = कृतघ्नमिति भावः।

स्वहृदयस्य खलत्वं साधयति—**मयेति**। हि = यतः, अम्बायां = मम जनन्यां, लोकान्तर-गतायां = लोकान्तरम् (परलोकम्) गतायां (प्राप्तायाम्) सत्यां, शोकवेगं = मन्युजवं, नियम्य = निरुध्य, आ प्रसवदिवसात् = जन्मदिनात् आरभ्य, परिणतवयसा = परिणतं (पक्वं, जीर्णमित्यर्थः) वयः (अवस्था) यस्य, तेन, वृद्धेन, इति भावः, सता अपि = भवता अपि, तातेन, तैस्तैः = अनेक-प्रकारैः, उपायैः = जीवनधारणप्रकारैः, स्नेहवशात् = वात्सल्यवशात्, अतिमहान्तम् अपि = अतिशया-ऽधिकम् अपि, संवर्द्धनक्लेशं = मत्सम्पोषणदुःखम्, अगणयता = क्लेशत्वेन अचिन्तयता, तातेन = पित्रा, यत्, अहं, परिपालितः = परिरक्षितः, तत् सर्वं=तत् सकलम् एकपदे=अकस्मात्, विस्मृतं=विस्मृतं कृतम्।

अतिकृपणा इति। अमी = एते, प्राणाः = मम असवः, अतिकृपणाः = अत्यन्तमनुदाराः, खलु= निश्चयेन। यत् उपकारिणम् अपि = उपकारशीलम् अपि। अद्य = अस्मिन् दिने क्वाऽपि = कुत्राऽपि स्थाने, गच्छन्तम् अपि = व्रजन्तम् अपि तातं=पितरम्, न अनुगच्छन्ति = न अनुव्रजन्ति। सर्वथा=सर्वैः प्रकारैः, जीविततृष्णा = जीवनाऽभिलाषः, कञ्चित् = कमपि पुरुषं, न खलीकरोति (इति) न = न दुर्जनी-करोति इति न "द्वौ नञौ एकं प्रकृताऽर्थं द्योतयतः" इति नयेन जीविततृष्णा सर्वमपि जनं दुर्जनी-करोत्येवेतिभावः। अखलः खलः यथा सम्पद्यते तथा करोति खलीकरोति, "कृभ्वस्तियोगे संपद्य कर्तरि च्विः" इति अभूततद्भावे च्विः। यत् = यस्मात् हेतोः, ईदृगवस्थम् अपि = एतादृशदशास्थितम् अपि, जनकनिधनेन शोकपरवशमपीतिभावः, मां, जलाऽभिलाषः = सलिलपानतर्षः। आयासयति = आयास-युक्तं करोति।

मन्य इति। अगणितपितृमरणशोकस्य – अगणितः (अचिन्तितः) पितृमरणशोकः (जनक-

---

पर भी जो अविकल (स्वकार्यमें समर्थ) इन्द्रियोंवाला मैं जी रहा हूँ। निर्दय अति निष्ठुर और कृतघ्न मुझे धिक्कार है। जो मैं पितृमरणका शोक भी सहकर अतिशय कठोरतासे जी रहा हूँ, उनके उपकारकी भी अपेक्षा नहीं कर रहा हूँ। मेरा हृदय दुष्ट है। मेरी माताके परलोक जानेपर भी शोकवेगको दबाकर वृद्धावस्थामें रहते हुए भी उन-उन उपायोंसे पुत्रको बढ़ानेमें अत्यधिक क्लेशकी भी स्नेहवश परवाह न करनेवाले पिताजीने जो मेरा परिपालन किया वह सब मैं एकबारगी ही भूल गया। ये मेरे प्राण अत्यन्त ही अनुदार हैं, जो कि उपकारी पिताजीके कहीं (लोकान्तरमें) जानेपर भी जो अनुगमन नहीं करते हैं। जीवनकी तृष्णा किसीको भी दुर्जन नहीं

सरस्तीरम् । तथाहि—जलदेवतानुपूर-रवानुकारि दूरेऽद्यापि कलहंस-विरुतम् अस्फुटानि श्रूयन्ते सारससितानि, अयं च। विप्रकर्षादाशामुखविसर्पण-विरलः सञ्चरति नलिनी-षण्डपरिमलः। दिवसस्य चेय कष्टा दशा वर्तते। तथाहि—रविरम्बरतलमध्यवर्ती स्फुरन्तमातपमनवरतमनल-धूलि-निकरमिव विकिरति करैः, अधिकामुपजनयति तृषम्। सन्तप्त-पांसु-पटल-दुर्गमा भूः, अतिप्रबल-पिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैव उपपादयेत ?

निधनमन्युः) येन सः तस्य। मम, केवलम् = एकमात्रं यथा, इयम् = एषा, सलिलपानबुद्धिः = जलपानाऽभिलाषः, निर्घृणता = निरनुकम्पा, एव। अद्याऽपि = अधुनाऽपि, सरस्तीरं = कासारतटम्, दूरे एव = विप्रकृष्टप्रदेश एव, अस्तीति शेषः।

दूरत्वमुपपादयति—**तथाहीति**। तथा हि, जलदेवतेत्यादिः० = जलदेवतानां (सलिलाऽधिष्ठात्रीणां देवीनाम्) नूपुराणां (पादाऽङ्गदानाम्) यो रवः (ध्वनिः) तदनुकारि (तदनुकरणशीलम्), "पादाऽङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम्।" इत्यमरः। तादृशं कलहंसविरुतं = कलहंसानां (कादम्बानाम्) विरुतम् (कूजितम्)। अद्याऽपि = अधुनाऽपि, दूरे = विप्रकृष्टप्रदेशे। अस्फुटानि = अव्यक्तानि, सारसरसितानि = सारसानां (पुष्कराह्वानां) रसितानि (कूजितानि), "पुष्कराह्वस्तु सारसः" इत्यमरः। श्रूयन्ते = आकर्ण्यन्ते। विप्रकर्षात् = दूरात्, आशामुखविसर्पणविरलः = आशामुखेषु = दिङ्मुखेषु, यत् विसर्पणं (प्रसरणम्) तेन विरलः (न्यूनः), नलिनीखण्डपरिमलः = नलिनीखण्डानां (कमलिनीसमूहानाम्) परिमलः (विमर्दनजनितो गन्धः), सञ्चरति = प्रसरति। दिवसस्य = दिनस्य च, इयम् = एषा, कष्टा = दुःखरूपा, दशा = अवस्था, वर्तते = विद्यते, मध्याह्नसमयोऽस्तीति भावः। एतदुपपादयति—**तथाहीति**। अम्बरतलमध्यवर्ती = अम्बरतलस्य (आकाशतलस्य) मध्यवर्ती (मध्यगामी) सन्। रविः = सूर्यः, अनवरतम् = निरन्तरम्। स्फुरन्तं = दीप्यमानम्, आतपं = तेजः, अनलधूलिनिकरम् इव = अग्निचूर्णसमूहम् इव, करैः = किरणैः, हस्तैश्च, "बलिहस्तांऽशवः कराः" इत्यमरः, उपमा। विकिरति = विक्षिपति। अधिकां = प्रबलां, तृषं = पिपासाम्, उपजनयति = प्रकटयति। भूः = भूमिः, सन्तप्तपांसुपटलदुर्गमा = सन्तप्तम् (उष्णम्) यत् पांसुपुटलं (धूलिसमूहः) तेन दुर्गमा (दुःखेन गन्तुं शक्या) अस्तीति शेषः।

अतिप्रबलेति। अतिप्रबला (अत्यधिका) या पिपासा (तृष्णा)। तया अवसन्नानि (क्लान्तानि), मे = मम, अङ्गकानि = देहाऽवयवाः, अल्पम् अपि = स्तोकम् अपि, गन्तुं = चलितुं, न अलं = नो समर्थानि। किं बहुना—आत्मनः = देहेन्द्रियसंघातस्य, अपि, अप्रभुः = असमर्थः, अस्मि, आत्मनो हस्तपादादि चालयितुमपि असमर्थोऽस्मीति भावः। मे = मम, हृदयं = चित्तं, सीदति = अवशीर्यते।

बनातीहै यह बात नहीं है (अर्थात् दुर्जन बनाती है), जो कि ऐसी दशावाले मुझको भी जलका अभिलाष आयासयुक्त बनाता है। पितृमरणके शोककी भी परवाह न करनेवाले मेरी यह जल पीनेकी इच्छा केवल निर्दयता है, मैं ऐसा मानता हूँ। अभी तालाबका किनारा दूर ही है। जैसे कि जलदेवताके नूपुर (छागल) के शब्दके सदृश हंसकी आवाज अभी भी दूर ही है। सारसके अस्पष्ट शब्द सुने जा रहे हैं। यह दूरसे दिशामुखोंमें फैलनेसे न्यून कमलसमूहकी सुगन्ध फैल रही है। दिनकी यह दुःखरूप दशा (मध्याह्न समय) है। जैसे कि सूर्य आकाशमण्डलके मध्यस्थित होकर चमकती हुई धूपको अग्निचूर्णके समूहके समान करों (किरणों) और हाथोंसे बिखेर रहे हैं, अत्यन्त पिपासाको पैदा कर रहे हैं। सन्तप्त धूलिसमूहसे भूमि दुर्गम हो रही है। अतिशय जबर्दस्त प्याससे क्लान्त मेरे अङ्ग कुछ भी चलनेके लिए समर्थ नहीं हैं। मैं अपने शरीरको संभालनेमें असमर्थ हूँ। मेरा हृदय विशीर्ण हो रहा है। नेत्र अन्धकार भावको प्राप्त कर रहा है। आज ही इच्छा न करनेपर भी दुर्जन विधाता मेरी मृत्यु कर डालेगा क्या ?

एवं चिन्तयत्येव मयि तस्मात् सरसोनाऽतिदूरवर्त्तिनि तपोवने जाबालिर्नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म । तत्तनयश्च हारीतनामा मुनिकुमारकः सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः, सवयोभिरपरैस्तपोधन-कुमारकैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा द्वितीय इव भगवान् विभावसुरतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्त्तिः, उद्यतो दिवसकर-मण्डलादिवोत्कीर्णः तडिद्भिरिव रचितावयवः, तप्त-कनक-द्रवेणेव बहिरुपलिप्त-मूर्त्तिः, पिशङ्गावदातया देह-प्रभया स्फुरन्त्या सबालातपमिव दिवसं सदावानलमिव वनमुपदर्शयन् उत्तप्त-लौहलोहिनीनामनेक-तीर्थाभिषेकपूतानाम-

---

चक्षुः = नेत्रम्, अन्धकारतां = तिमिरताम्, उपयाति = संप्राप्नोति, अन्धकाराकुलं भवतीति भावः । खलः = दुर्जनः, विधिः = विधाता, अनिच्छतोऽपि = असमीहमानस्य अपि, मे = मम, अद्यैव = अस्मिन्नेव दिने, मरणं=मृत्युम्, उपपादयेत् अपि=कुर्यात् किम् ?, "गर्हासमुच्चय-प्रश्न-शङ्का-संभावनास्वपि ।" इत्यमरः । नामेति "नाम प्राकाश्य-संभाव्य-क्रोधोपगम-कुत्सने ।" इत्यमरः ।

एवमिति । एवम् = इत्थं, मयि, चिन्तयति = चिन्तां कुर्वति सति, तस्मात् = पूर्वोक्तात्, सरसः=कासारात्, नाऽतिदूरवर्तिनि = नाऽधिकविप्रकृष्टवर्तिनि, समीपवर्तिनीतिभावः । तपोवने = तपःकानने, जाबालिर्नाम = नाम्ना जाबालिरिति, महातपाः = महातपस्वी मुनिः = मननशीलः, ऋषिरिति भावः । प्रतिवसति स्म = निवासं चकार "लट् स्मे" भूताऽर्थे लट् ।

तत्तनय इति । तत्तनयः = तस्य (जाबालेः) तनयः (पुत्रः), हारीतनामा = हारीतनामकः, मुनिकुमारकः = तपस्विमाणवकः, सनत्कुमार इव = ब्रह्मपुत्र इव, "सनत्कुमारो वैधात्र" इत्यमरः । सर्वविद्याऽवदातचेताः = सर्वविद्यासु (समस्तवेदादिविद्यासु) अवदातं (शुद्धम्) चेतः (चित्तम्) यस्य सः । सवयोभिः = समवयस्कैः, समानं वयः (अवस्था) येषां, तैः । "ज्योतिर्जनपदे"—त्यादिसूत्रेण समानस्य सभावः । अपरैः = अन्यैः, तपोधनकुमारकैः = तपस्विदारकैः, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः, सन् । "तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमन्" इत्यागामिभिः पदैः सम्बन्धः । तेनैव पथा = तेनैव मार्गेण, द्वितीयः = अपरः, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, विभावसुरिव = अग्निरिव । उत्प्रेक्षाङ्लङ्कारः । अतितेजस्वितया = अधिकतेजःसम्पन्नत्वेन हेतुना, दुर्निरीक्ष्यमूर्तिः = दुर्निरीक्ष्या (दुःखेन निरीक्षितुं योग्या) मूर्तिः (शरीरम्) यस्य सः । उद्यतः = उदयं प्राप्नुवतः, दिवसकरमण्डलात् = सूर्यबिम्बात्, उत्कीर्ण इव=उल्लिखित इव, उत्प्रेक्षा । तडिद्भिः = विद्युद्भिः, रचिताऽवयव इव = निर्मिताऽङ्ग इव, उत्प्रेक्षा तप्तकनकद्रवेण इव = सन्तप्तसुवर्णरसेन इव, बहिः = बाह्यभागे, उपलिप्तमूर्तिः = उपलिप्ता = (उपदिग्धा) मूर्तिः (शरीरम्) यस्य ।

पिशङ्गेति । स्फुरन्त्या = दीप्यमानया, पिशङ्गाऽवदातया = पिशङ्गा (पीतवर्णा) चाऽसौ अवदाता (सिता), तया, तादृश्या = देहप्रभया = शरीरकान्त्या, सबालातपम् इव = नूतनद्योतम् इव, दिवसं = दिनं, सदावाऽनलम् = दावाऽग्निसहितम् इव, वनं = काननम्, उपदर्शयन् = प्रकाशयन् । उभयत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

उत्तप्तेति । उत्तप्तलौहलोहिनीनाम् = उत्तप्ताः (उत्तापयुताः) ये लौहाः (कालायसानि) "लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसाऽयसी । अश्मसार" इत्यमरः । ते इव लोहिन्यः (रक्त-

---

मेरे ऐसे सोचते रहनेपर उस तालाबके कुछ दूरपर रहे हुए तपोवनमें जाबालि नामक बड़े तपस्वी मुनि रहते थे, उनके पुत्र हारीत नामक मुनिकुमार सनत्कुमारके समान समस्त विद्याओंसे शुद्ध चित्तवाले अन्य समवयस्क मुनिकुमारोंसे अनुगत होते हुए उसी मार्गसे अतिशय तेजस्वी होनेसे दूसरे भगवान् अग्निदेवके समान दुःखसे देखे जानेवाले शरीरसे युक्त होकर मानों उगते हुए सूर्यमण्डलसे गढ़कर बने हुएके सदृश, उनके शरीरके अवयव मानों बिजलीसे रचे गये थे, मानों सन्तप्त सोनेके द्रवसे उनके बाह्य शरीरमें मुलम्मा किया गया था, पीली, उज्ज्वल और चमकती हुई शरीरकान्तिसे मानों दिनको सूर्यकी नई धूपसे युक्त और वनको दावानलसे युक्त

सस्थलावलम्बिनीनां जटानां निकरेणोपेतः, स्तम्भितशिखा-कलापः, खाण्डववन-दिधक्षया कृत-कपट बटु वेष इव भगवान् पावकः, तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा धर्मशासन-कटकेनेव स्फाटि-केनाक्षवलयेन दक्षिणश्रवणविलम्बिना विराजमानः, सकल-विषयोपभोग-निवृत्यर्थमुपपादितेन ललाटपट्टके त्रिसत्येनेव भस्मत्रिपुण्ड्रकेणालङ्कृतः, गगन-गमनोन्मुखबलाकानुकारिणा स्वर्ग-मार्गमिव दर्शयता सततमुद्ग्रीवेण स्फटिक-मणि-कमण्डलुनाध्यासित-वामकरतलः, स्कन्धदेशाव-

---

वर्णाः), तासाम् । उपमाऽलङ्कारः । अनेकतीर्थाऽभिषकपूतानाम् = अनेकानि (बहूनि) यानि तीर्थानि (गङ्गादिपवित्रस्थानानि) तेषु अभिषेकेण (स्नानेन) पूतानाम् (पवित्राणाम्)। अंसस्थलाऽव-लम्बिनीनाम् = अंसस्थलम् (स्कन्धस्थानम्) अवलम्बन्ते (आलम्बन्ते) तच्छीलाः, तासाम् । तादृ-शीनां जटानां = सटानां, "व्रतिनस्तु जटा सटा" इत्यमरः । निकरेण = समूहेन, उपेतः = युक्तः ।

स्तम्भितेति । स्तम्भितशिखाकलापः = स्तम्भितः (बद्धः) शिखानां (चूडानाम्) कलापः (समूहः) येन सः । "शिखा चूडा केशपाशी"त्यमरः । खाण्डववनदिधक्षया = खाण्डववनस्य (खाण्डवनामककाननस्य) दिधक्षया (दाहेच्छया), दग्धुमिच्छा दिधक्षा । "दह् भस्मीकरण" इति धातोः सन्नन्तात् "अ प्रत्ययात्" इति अप्रत्यये, "अजाद्यतष्टाप्" इति टाप् । पुरा श्वेतकिनामधेयस्य राज्ञो द्वादशवार्षिके यज्ञे निरन्तराज्यमक्षणादुदररोगपीडितः पावको धृतविप्ररूपः सन् श्रीकृष्णाऽर्जुन-साहाय्येन खाण्डववनं ददाहेति महाभारतीया कथा दर्शनीया । कृतकपटबटुवेषः = कृतः (विहितः) कपटेन (छद्मना) बटुवेषः (ब्राह्मणरूपम्) येन सः । भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, पावक इव = अग्निरिव, प्रदीप्त इति शेषः । उपमाऽलङ्कारः ।

तपोवनेति । तपोवनदेवतानूपुरानुकारिणा = तपोवनस्य (तपश्चरणकाननस्य) या देवता (अधिष्ठात्री देवी) तन्नूपुराऽनुकारिणा (तत्पादाङ्गदाऽनुकरणशीलेन) धर्मशासनकटकेन = धर्म-शासनानि (विधिनिषेधरूपा धर्मोपदेशाः) तेषां कटकेन (सैन्येन, रक्षकरूपेणेति शेषः) उपमा उत्प्रेक्षा चाऽनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । दक्षिणश्रवणविलम्बिना = दक्षिणं (वामे तरत्) च तत् श्रवणं (श्रोत्रम्) तद्विलम्बिना (तद्विलम्बनशीलेन), स्फाटिकेन = स्फटिकमणिनिर्मितेन, अक्षवलयेन = अक्षमालया, विराजमानः = शोभमानः ।

सकलेति । सकलाः (समस्ताः) ये विषयाः (स्रक्चन्दनादयो भोग्यपदार्थाः) तेषामुपभोगः (निर्वेशः, "निर्वेश उपभोगः स्यात्" इत्यमरः), तस्य निवृत्यर्थम् (निवारणाऽर्थम्) उपपादितेन = सम्पादितेन, ललाटपट्टके = भालफलके । त्रिसत्येन = मनोवाक्कायलक्षणेन सत्येन, इव, उत्प्रेक्षा भस्मत्रिपुण्ड्रकेण = भसितरेखात्रितयेन, अलङ्कृतः = भूषितः । उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

गगनेति । गगने (आकाशे) गमनं (यानम्) तत्र उन्मुखो (उन्नतवदना) या बलाका (बिसकण्ठिका) ताम् अनुकरोति (विडम्बयति) तच्छीलेन । स्वर्गमार्गं = त्रिदिवपथं, दर्शयता = प्रकाशयता, इव सततं = निरन्तरम्, उद्ग्रीवेण = उन्नतकन्धरेण, स्फटिकमणिकमण्डलुना, स्फटिक-रत्नकरकेण । अध्यासितवामकरतलः = अध्यासितम् (आश्रितम्) वामं (दक्षिणेतरत्) करतलं (हस्ततलम्) यस्य सः ।

दिखलाते हुए, सन्तप्त लोहेसे लाल और अनेक तीर्थोंमें स्नान करनेसे पवित्र, कन्धोंपर लटकनेवाली जटाओंके समूहसे युक्त, ज्वालासमूहको स्तब्धकर मानों खाण्डव वनको जलानेकी इच्छासे कपटसे ब्राह्मणवेषको लेनेवाले अग्निके समान, तपोवनकी देवीके नूपुरका अनुकरण करनेवाले मानों धर्मशासनकी सेनाके समान दक्षिण कर्णमें लटकनेवाली स्फटिक मणियोंकी अक्षमालासे शोभित होते हुए, मानों समस्त विषयोंके उपभोगकी निवृत्तिके लिए सम्पादित ललाट (लिलार) में मन, वचन और शरीररूप तीन सत्योंके समान भस्मके त्रिपुण्ड्रक (तीन रेखाओं)—से अलङ्कृत, आकाशमें जानेके लिए उन्मुख बगलेका अनुकरण करनेवाले मानों स्वर्ग मार्गको दिखलाते

लम्बिना कृष्णाजिनेन नीलपाण्डुभासा तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्पतता धूम-पटलेनेव परीत-मूर्त्तिः, अभिनव-बिससूत्र-निर्मितेनेव परिलघुतया पवनलोलेन निर्म्मांस-विरलपार्श्वकपञ्जरमिव गणतया वामांसावलम्बिना यज्ञोपवीतेनोद्भासमानः, देवतार्च्चनार्थमागृहीत-वनलता-कुसुम-परिपूर्णपर्णपुट-सनाथ-शिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृत-सव्येतरपाणिः, विषाणोत्खातामुद्वहता स्नानमृदमुपजात-परिचयेन नीवारमुष्टि-संवर्द्धितेन कुश-कुसुम-लतायास्यमान-लोल-दृष्टिना तपोवनमृगेणानुगम्यमानः, विटप इव कोमल-वल्कलावृत-शरीरः, गिरिरिव समेखलः,

स्कन्धेति । तपस्तृष्णानिपीतेन = तपसि (तापसाऽऽचरणे) या तृष्णा (वृद्धिलालसा), तया निपीतेन (पानविषयीकृतेन), अतः अन्तः = शरीराऽभ्यन्तरात् । निष्पतता = निष्क्रामता, धूम-पटलेन = धूमसमूहेन, इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । स्कन्धदेशाऽवलम्बिना = स्कन्धदेशम् (अंसभागम्) अवलम्बते (आश्रयते) तच्छीलं, तेन । नीलपाण्डुभासा = नीला (कृष्णा) पाण्डुः (पाण्डुरा) भाः (कान्तिः) यस्य, तेन, तादृशेन—कृष्णाऽजिनेन = कृष्णसारमृगचर्मणा, परीता (व्याप्ता) मूर्तिः (शरीरम्) यस्य सः ।

अभिनवेति । अभिनवबिससूत्रनिर्मितेन=अभिनवानि (नूतनानि) यानि बिससूत्राणि (कमल-नालतन्तवः) तैः निर्मितेन (रचितेन) इव, परिलघुतया = अतिलाघवयुक्तत्वेन, अणुत्वेनेति भावः, उत्प्रेक्षा । पवनलोलेन=पवनेन (वायुना) लोलेन (चञ्चलेन) । निर्मांसेत्यादिः०=निर्मांसम् (अधिक-मांसरहितम्) अतएव विरलम् (असङ्कीर्णम्) पार्श्वकपञ्जरम् (पार्श्वाऽस्थिसञ्चयः), तद् गणयता इव = तत्संख्यां कुर्वता इव, उत्प्रेक्षा । अत्र द्वयोरुत्प्रेक्षयोर्निरपेक्षत्वेन स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः । वामांऽसाऽवलम्बिना = वामांऽसम् (दक्षिणेतरस्कन्धम्) अवलम्बते (आश्रयते) तच्छीलं-तेन । तादृशेन यज्ञोपवीतेन = ब्रह्मसूत्रेण, उद्भासमानः = उद्दीप्यमानः ।

देवतेति । देवताऽर्चनाऽर्थं = देवपूजनाऽर्थम्, आगृहीतेत्यादिः० = आगृहीतानि (समन्तत आत्तानि) यानि वनलताकुसुमानि (विपिनवल्लीपुष्पाणि), तैः परिपूर्णं (परिपूरितम्) यत् पर्णपुटं (पत्त्रपुटम्), तेन सनाथं (युक्तम्) शिखरम् (ऊर्ध्वभागः), यस्य, तेन, तादृशेन आषाढ-दण्डेन = पालाशदण्डेन, "पालाशो दण्ड आषाढ" इत्यमरः । व्यापृतसव्येतरपाणिः = व्यापृतः (संलग्नः) सव्येतरः (दक्षिणः) पाणिः (हस्तः) यस्य सः ।

विषाणोत्खातामिति । विषाणेन (शृङ्गेण) उत्खाताम् (अवदारिताम्), स्नानमृदं = मज्जन-मृत्तिकाम्, उद्वहता = धारयता, उपजातपरिचयेन = उपजातः (उत्पन्नः) परिचयः (संस्तवः) यस्य, तेन परिचितेनेति भावः । अत एव नीवारमुष्टिसंवर्द्धितेन = नीवाराणां (मुन्यन्नानाम्) मुष्टिना (मुष्टिमितपरिमाणेन) संवर्द्धितेन (संवृद्धि प्रापितेन), कुशेत्यादिः० = कुशानि (दर्भाः) कुसुमानि (पुष्पाणि), लताः (वल्ल्यः), ताभिः आयास्यमाने (आकृष्यमाणे) अत एव लोले (चञ्चले) दृष्टी (नेत्रे) यस्य तेन । तादृशेन तपोवनमृगेण = तपःकाननहरिणेन, अनुयातः = अनुसृतः ।

विटप इति । विटपः = स्तम्बः शाखा वा, इव, "विटपः पल्लवे षिड्गे विस्तारे स्तम्ब-

हुए निरन्तर ऊँची ग्रीवावाले स्फटिकमणिके कमण्डलुसे युक्त वाम करतलवाले, मानों तपस्याकी तृष्णासे पीये गये और शरीरके भीतरसे निकलते हुए धूमसमूहके समान कन्धेपर लटके हुए नीली और सफेद कान्तिवाले कृष्णसार मृगके चर्मसे आच्छादित शरीरवाले नये मृणालसूत्रोंसे बने हुए हलका होनेसे वायुसे चञ्चल, मानों अधिक मांस न होनेसे विरल पार्श्वपञ्जर (पसलियों) को गिनते हुए, बाएँ कन्धेपर लटकनेवाले यज्ञोपवीत (जनेऊ) से शोभित होते हुए, देवपूजाके लिए लिये हुए वनलताओंके पुष्पोंसे परिपूर्ण पत्तोंके दोनोंसे युक्त ऊर्ध्वभागवाले पलाशके दण्डसे युक्त दाहिने हाथवाले, सींगसे खोदी गई स्नानकी मिट्टीको लेते हुए परिचयवाले, मुष्टि परिमित नीवारों-(मुन्यन्नों) से बढ़ाये गये, कुशों, फूलों और लताओंसे आकृष्ट और चञ्चल दृष्टिवाले तपोवनके मृगसे अनुगत,

राहुरिवासकृदास्वादित-सोमः, पद्मनिकर इव दिवसकर-मरीचिपः, नदी-तट-तरुरिव सततजल-क्षालन-विमलजटः, करि-कलभ इव विकच-कुमुद-दल-शकलसित-दशनः, द्रौणिरिव कृपानुगतः, नक्षत्रराशिरिव चित्रमृग-कृत्तिकाश्लेषोपशोभितः, घर्म्मकाल-दिवस इव क्षपितबहुदोषः, जलधर-समय इव प्रशमितरजःप्रसरः, वरुण इव कृतोदवासः, हरिरिवापनीतनरकभयः, प्रदोषारम्भ इव

शाखयोः ।" इति विश्वः । कोमलवल्कलावृतशरीरः = कोमलं (मृदुलम्) यत् वल्कलं (वल्कम्) तेन आवृतम् (आच्छादितम्) शरीरं (देहः) यस्य सः उभयत्र साम्यम् । पूर्णोपमाऽलङ्कारः, एवं परत्राऽपि । गिरिरिव = पर्वत इव, समेखलः = समध्यभाग इव, "मेखलाऽद्रिनितम्बे स्याद्रशनाखड्ग-बन्धयोः ।"इति हैमः । हारीतपक्षे = मौञ्ज्या मेखलया सहितः । राहुरिव = सैंहिकेय इव, असकृदा-स्वादितसोमः = असकृत् (निरन्तरम्) आस्वादितः (ग्रासविषयीकृतः) सोमः (चन्द्रः) येन सः । हारीतपक्षे—असकृत्, आस्वादितः (पीतः) सोमः (सोमलतारसः) येन सः । "सोमस्त्वोषधीतद्र-सेन्दुषु" इति हैमः । पद्मनिकरः = पद्मानां (कमलानाम्) निकरः (समूहः), इव, दिवसकर-मरीचिपः = दिवसकरस्य (सूर्यस्य) मरीचीन् (किरणान्) पिबतीति । हारीतपक्षे—पञ्चाऽग्नि-सेवनतपसि चतुर्ष्वग्निषु मध्ये ऊर्ध्वस्थितस्य सूर्यरूपाऽग्नेः किरणपानकर इति भावः । "ग्रीष्मे पञ्चाऽग्नि-मध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ।" इति याज्ञ० स्मृतिः ३–५२ । नदीतटतरुः = नद्याः (सरितः) तटे (तीरे) तरुः (वृक्षः), इव, सततजलेत्यादिः० = सततं (निरन्तरम्), त्रिसन्ध्यमिति भावः । जलेन (अम्बुना) यत् क्षालनं (मज्जनम्), तेन विमला (निर्मला) जटा (शिफा) यस्य सः । हारीत-पक्षे—विमला जटा (सटा) यस्य सः । "शिफाजटे" इति "व्रतिनस्तु जटा सटा" इत्यप्यमरः । करिकलभः = करिशावकः, इव, अत्र "कलभ" इति पदेनैव करिशावकरूपाऽर्थबोधेऽपि पुनः करिपदो-पादानं प्राशस्त्यबोधनाऽर्थमतो न पुनरुक्तिः । "कलभः करिशावकः" इत्यमरः । विकचकुमुदेत्यादिः० = विकचानि (विकसितानि) यानि कुमुदानि (कैरवाणि) तेषां दलानि (पत्त्राणि) तेषां शकलानि (खण्डानि) तानि इव सिताः (शुभ्राः) दशनाः (दन्ताः) यस्य सः । उभयत्र साम्यं स्फुटमेव । द्रौणिः = द्रोणपुत्रः, अश्वत्थामा इति भावः, स इव, कृपाऽनुगतः = कृपेण (कृपाचार्येण) अनुगतः (अनुसृतः) युद्धादाविति शेषः । हारीतपक्षे—कृपया (दयया, परदुःखप्रहाणेच्छयेति भावः) अनुगतः । नक्षत्रराशिः = तारासमूहः, इव चित्रमृगकृत्तिकाश्लेषोपशोभितः = चित्रं (चित्रानक्षत्रम्) मृगः (मृगशीर्षं) "नामैकदेशे नामग्रहणम्" इति न्यायेन) कृत्तिका आश्लेषा च, एतैर्नक्षत्रैः, उपशो-भितः (उपशोभां प्रापितः) । हारीतपक्षे—चित्रमृगस्य (कर्बुरहरिणस्य) या कृत्तिका (चर्म) तया आश्लेषः (सम्बन्धः), तेन उपशोभितः । घर्मकालदिवसः=घर्मकालस्य (ग्रीष्मसमयस्य) दिवसः=दिनम्, इव क्षपितबहुदोषः = क्षपितानि (क्षयं प्रापितानि, क्षयितानि" इति पाठेऽप्ययमेवाऽर्थः) बहूनि (अने-कानि) दोषा (रात्रयः) येन सः, "सामान्ये नपुंसकम्" । दोषापदस्याऽव्ययत्वात् तस्य विशेषणाऽर्थं

स्तम्ब वा शाखाके समान कोमल वल्कलसे आच्छादित शरीरवाले, जैसे पर्वत मेखला (मध्यभाग) से युक्त होता है वैसे ही मूँजकी मेखलासे युक्त, जैसे राहु सोम (चन्द्रमा) का आस्वादन करता है वैसे ही सोम (सोमलताके रस)-का आस्वादन किये हुए, जैसे कमलसमूह सूर्यकिरणका पान करता है वैसे ही पञ्चाऽग्निसाध्य तपमें सूर्यकिरणोंको पीये हुए, जैसे नदीके तटके वृक्षकी जटा निरन्तर जलके प्रक्षालनसे निर्मल होती है वैसे ही निरन्तर जलमें प्रक्षालनसे निर्मल जटावाले, हाथीके बच्चेके समान विकसित कुमुदके खण्डोंके सदृश सफेद दाँतोंवाले, जैसे अश्वत्थामा कृप (कृपाचार्य) से अनुगत होते हैं वैसे ही कृपा (दया) से अनुगत (दयालु) । जैसे नक्षत्र-समूह चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका और आश्लेषासे उपशोभित होता है वैसे चित्र (चितकबरे) मृगकी कृत्ति (चर्म) के आश्लेष (सम्बन्ध) से उपशोभित । जैसे ग्रीष्मका दिन दोषा (रात) को क्षीण करता है वैसे ही दोष (काम-क्रोध आदि) को क्षीण किये हुए, वर्षाकाल जैसे रज (धूलि) के प्रसरको हटाता है वैसे ही रज (रजोगुण) के व्यापारको हटानेवाले, वरुणके समान जलमें वास किये हुए, हरि (कृष्ण) ने जैसे नरक (नरकाऽसुर) के

सन्ध्या-पिङ्गलतारकः प्रभातकाल इव बालातप-कपिलः, रविरथ इव दृढनियमिताक्षचक्रः, सुराजेव निगूढ-मन्त्रसाधन-क्षपित-विग्रहः, जलधिरिव कराल-शङ्खमण्डलावर्त्त-गर्त्तः, भगीरथ इव दृष्ट-गङ्गावतारः, भ्रमर इवासकृदनुभूतपुष्कर-वनवासः, वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः,

---

स्त्रीलिङ्गभ्रान्त्या क्षपिता बह्वो" इति लिखन्तः बह्वष्टीकाकारा भ्रान्ताः। हारीतपक्षे—क्षपिता बहवो दोषाः (रागादयः) येन सः। जलधरसमयः = प्रावृट्कालः, इव, प्रशमितरजःप्रसरः = प्रशमितः (प्रशमं प्रापितः) रजसां धूलीनाम्) प्रसरः (प्रसरणम्) येन सः। हारीतपक्षे—प्रशमितः रजसः (रजोगुणस्य) प्रसरः (व्यापारः) येन सः। "रजो रेणौ परागे स्यादार्तवे च गुणान्तरे।" इति मेदिनी। वरुणः = प्रचेताः, इव, "प्रचेता वरुणः पाशी यादसां पतिरप्पतिः।" इत्यमरः, कृतोदवासः = कृतः (विहितः) उदके (जले) वासः (निवासः) येन सः, "पेषं वासवाहनधिषु च" इति उदकस्योदादेशः। हारीतपक्षे—उदवासो व्रतविशेषः। हरिः = कृष्णः, इव, अपनीतनरकभयः = अपनीतं (निवारितम्) नरकात् (नरकाऽसुरात्, प्राग्ज्योतिषपुराऽधिपतेः) भयं (त्रासः) येन सः। हारीतपक्षे—सत्कर्माऽनुष्ठानेन निवारितनिरयभय इत्यर्थः। प्रदोषारम्भः = प्रदोषस्य (रजनीमुखस्य) आरम्भः (उपक्रमः) इव, सन्ध्यापिङ्गलतारकः = सन्ध्या (दिनरात्रिसन्धिकालः) सा इव पिङ्गल-तारकः = पिङ्गलाः (पीतवर्णाः) तारकाः (नक्षत्राणि) यस्मिन् सः। हारीतपक्षे—सन्ध्या इव पिङ्गले (पीतवर्णे) तारके (कनीनिके) यस्य सः। इदं महापुरुषलक्षणं, तदुक्तं सामुद्रिके—क्षुद्रोऽपि चक्रवर्ती स्यात् पीततारकचक्षुषि।" इति। तारकाऽक्ष्णः कनीनिका" इत्यमरः। प्रभातकालः= प्रभातं (प्रत्यूषम्) तस्य कालः (समयः), स इव, बालातपकपिलः = बालाऽतपेन (नूतनद्योतेन) कपिलः (पीतवर्णः), "प्रकाशो द्योत आतपः" इत्यमरः। हारीतपक्षे—बालातप इव कपिलः। रविरथः = सूर्यस्यन्दनः, इव, दृढनियमिताऽक्षचक्रः = दृढं (गाढं यथा तथा) नियमितं (बद्धम्) अक्षः (मध्यदण्डः) चक्रं (रथाऽङ्गम्) यस्य सः। हारीतपक्षे—दृढनियमितं (गाढनिरुद्धम्) अक्षाणाम् (इन्द्रियाणाम्) चक्रं (समूहः) येन सः। सुराजा = उत्तमो नृपः, इव, "न पूजनात्" इति समासाऽन्तटच्प्रत्ययनिषेधः। निगूढेत्यादिः० = निगूढः (अतिगुप्तः) यो मन्त्रः (सन्धिविग्रहादि-विचारः) तत्साधनेन (तदनुष्ठानेन) क्षपितः (क्षयं प्रापितः) विग्रहः (युद्धम्) येन सः। हारीत-पक्षे—निगूढदेवमन्त्रसाधनेन क्षपितः (क्षयं प्रापितः) विग्रहः (शरीरम्) येन सः। "विग्रहः कायविस्तारविभागे ना रणेऽस्त्रियाम्।" इति मेदिनी।

जलनिधिः = समुद्रः इव, करालशङ्खमण्डलावर्तगर्तः = करालानि (दन्तुराणि) शङ्खमण्डलानि (कम्बुमण्डलानि) आवर्ताः (अम्भसां भ्रमाः) गर्ताः (अवटाः) यस्मिन् सः, "स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः" इति "गर्ताऽवटौ भुवि श्वभ्रे" इति चाऽमरः। हारीतपक्षे—करालम् (उन्नताऽवनतम्) यत् शङ्खमण्डलम् (ललाटाऽस्थिमण्डलम्) आवर्तः (भ्रमिरेखा) गर्तः (अवटः) यस्य सः। तादृशावर्तश्च महातपस्विलक्षणम्। "शङ्खो निधौ ललाटाऽस्थ्नि कम्बौ न स्त्री" त्यमरः। भगीरथः = सगरप्रपौत्रः, सूर्यवंशोत्पन्नो राजा, इव, दृष्टगङ्गाऽवतारः = दृष्टः (अवलोकितः) गङ्गायाः (विष्णुपद्याः) अवतारः

भयको हटाया था वैसे ही नरकके भयको हटाये हुए, जैसे रात्रिके आरम्भमें सन्ध्यामें पीली तारकाएँ होती हैं वैसे ही सन्ध्याकी समान पीली तारकाएँ (पुतलियाँ) वाले, जैसे प्रातःकाल बालसूर्यके प्रकाशसे पीला होता है वैसे ही पीले, सूर्यका रथ जैसे दृढ़तासे बद्ध अक्ष (रथका अवयव) और चक्रसे युक्त होता है वैसे ही अक्षचक्र-(इन्द्रियसमूह) को दृढ़तासे रोकनेवाले। जैसे उत्तम राजा गुप्त मन्त्र (सन्धि विग्रह आदिके विचार) से विग्रह-(युद्ध) को क्षीण करता है वैसे गुप्त देवमन्त्रसाधनसे विग्रह (शरीर) को क्षीण किये हुए, जैसे समुद्र उन्नत अवनत शङ्खमण्डल, भँवर और गड्ढासे युक्त होता है वैसे ही कराल शङ्ख (ललाटकी अस्थि) आवर्त और गर्तसे युक्त, जैसे राजा भगीरथने गङ्गाका अवतार (उद्गमस्थान) देखा था वैसे ही गङ्गाके अवतार (घाट) को देखे हुए, जैसे भ्रमर वारंवार पुष्कर (कमल) के वनमें वासका अनुभव करता है वैसे ही पुष्करतीर्थमें निवास किये हुए,

असंयतोऽपि मोक्षार्थी, सामप्रयोगपरोऽपि सततावलम्बितदण्डः, सुप्तोऽपि प्रबुद्धः, सन्निहित-नेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनस्तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत् ।

(प्रभवः) येन सः, हारीतपक्षे—इष्टो गङ्गाया अवतारः (घट्टः) येन सः । "घट्टस्तीर्थाऽवतार" इति कोषः । भ्रमरः = मधुकरः, इव, असकृत् = वारं वारम्, अनुभूतपुष्करवनवासः = अनुभूतः (अनुभवविषयीकृतः) पुष्करवने (कमलवने) वासः (निवासः) येन सः । हारीतपक्षे—अनुभूतः पुष्करवने (पुष्करतीर्थजले अथवा पुष्करतीर्थतपोवने) वासो येन सः । "पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम् ।" इत्यमरः । पुष्कररतीर्थमाहात्म्यं यथा महाभारते—"यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु मधुसूदनः । तथैव पुष्करं राजंस्तीर्थानामादिरुच्यते ॥" इति । सर्वत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः । वनचरोऽपि = अरण्यचारी अपि, वने चरतीति "चरेष्ट" इति टप्रत्ययः । कृतमहालयप्रवेशः = कृतः (विहितः) महाऽऽलयेषु (विशालभवनेषु) प्रवेशो येन स इति विरोधस्तत्परिहारस्तु—कृतो महालये (परमात्मनि) प्रवेशः (स्वस्वरूपनिवेशः) येन सः । "महालयो विहारे स्यात् तीर्थे च परमात्मनि ।" इति मेदिनी । असंयतोऽपि = संयमरहितोऽपि, "त्रयमेकत्र संयमः" (योगसूत्रम् ३–४) इत्यतो धारणा-ध्यान-समाधीनामेकत्र स्थितौ "संयम" इत्युच्यते । तेषां लक्षणानि च—"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" (३–१), "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्" (३–२), "तदेवाऽर्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः" (३–३) मोक्षार्थी = मुक्त्यर्थी । अत्र च तादृशसंयमाऽभावे कथं मोक्षार्थित्वमिति विरोधस्तत्परिहारस्तु—असंयतोऽपि = अबद्धोऽपि' वासनापाशैरिति शेषः । मोक्षाऽर्थी = अपवर्गाऽभिलाषी, वासनापाशैरबद्धः श्रवणाऽदिपरायणत्वेन मुक्त्यभिलाषुक इति भावः । सामप्रयोगपरः = साम (सान्त्वम्) तस्य प्रयोगः (अनुष्ठानम्) तस्मिन् परः (उद्युक्तः) अपि, सतताऽवलम्बितदण्डः = सततम् (निरन्तरं यथा तथा) अवलम्बितः (आश्रितः) दण्डः (दमः = उपायेषु चतुर्थः) येन सः, अत्र सामदण्डावुपायौ मिथोविरुद्धावतस्तयोः कथमेकत्राऽवस्थितिरिति विरोधस्तत्परिहारस्तु सामप्रयोगपरः=सामवेदाऽनुष्ठानपरः, सतताऽवलम्बितदण्डः = सततं यथा तथा अवलम्बितः (गृहीतः) दण्डः (पालाशलगुडः) येन सः । सुप्तोऽपि = निद्राणोऽपि, प्रबुद्धः = जागरितः, अत्र विरोधः, परिहारस्तु सुप्तः, प्रबुद्धः = प्रकृष्टज्ञानसम्पन्नः । भानुचन्द्रस्तु—सुप्तः = शोभना सा (जटा) यस्य सः । "सा जटायां च राक्षस्याम्" इति हैमः । सन्निहितनेत्रद्वयः = सन्निहितं (संस्थापितम्) नेत्रद्वयं (लोचनद्वितयम्) यस्य सः, तादृशोऽपि, परित्यक्तवामलोचनः = परित्यक्तं (परिवर्जितम्) वामं (दक्षिणेतरत्) लोचनं (नेत्रम्) येन सः । अत्र विरोधस्तत्परिहारस्तु—परित्यक्ता वामलोचना (कामिनी) येन सः, "विशेषास्त्वङ्गना भीरुः कामिनी वामलोचना ।" इत्यमरः । अत्र सामान्यपदे प्रयोक्तव्ये विशेषपदोपादानात्सामान्यपरिवृत्तिर्दोषः, परं विरोधाभासे दोषाङ्कुशत्वेन दोषाऽभावः । एवमुपवर्णितो हारीतो नाम मुनिकुमारकः, तदेव = पूर्वोक्तमेव कमलसरः = पद्मप्रचुरकासारं, पम्पासर इति भावः । सिस्नासुः = स्नातुमिच्छुः सन्, सन्नन्तात् "ष्णा शौचे" इति धातोरुप्रत्ययः उपागमत् = समीपं गतः ।

वनचर होकर भी महान् आलयमें प्रवेश किये हुए (विरोध) । विरोधपरिहार—महालय (परमात्मा) में स्वस्वरूपका निवेश करनेवाले, संयम (धारणा, ध्यान और समाधि) के न रहने पर भी मोक्षकी इच्छा करनेवाले (विरोध) वि० प०—वासनाके पाशसे बद्ध न होकर मोक्षकी इच्छा रखनेवाले । साम (मेल) के प्रयोगमें तत्पर होकर भी निरन्तर दण्ड (विग्रह) का अवलम्बन करनेवाले (विरोध) । वि० प०—साम (सामवेद) के प्रयोग (अनुष्ठान) में तत्पर और निरन्तर पलाशके दण्डका अवलम्बन करनेवाले सुप्त (सोते हुए) भी प्रबुद्ध (जागरित), (विरोध) । वि० प०—प्रबुद्ध (प्रकृष्ट ज्ञानसे सम्पन्न) अथवा सुप्त (सुन्दर सा = जटासे युक्त) । दोनों नेत्रोंके निकटस्थित होनेपर भी बाएँ नेत्रका परित्याग करनेवाले (विरोध), वि० प०—वामलोचना (कामिनी) का परित्याग करनेवाले । ऐसे मुनिकुमार हारीत उसी कमलके तालाबमें स्नानकी इच्छा करते हुए आये ।

प्रायेणाकारण-मित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स मां तदवस्थमालोक्य समुपजातकरुणः समीपवर्त्तिनमृषिकुमारकमन्यतममब्रवीत्—'अयं कथमपि शुक-शिशुरसञ्जात-पक्षपुट एव तरुशिखरादस्मात् परिच्युतः। श्येन-मुख-परिभ्रष्टेन वाऽनेन भवितव्यम्। तथाहि—अतिदवीयस्तया प्रपातस्याऽल्पशेषजीवितोऽयमामीलित-लोचनो मुहुर्मुहुर्मुखेन पतति, मुहुर्मुहुरत्युल्बणं श्वसिति, मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति, न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम्। तदेहिष। यावदेवायमसुभिर्न विमुच्यते तावदेव गृहाणेमम् अवतारय सलिल-समीपम्' इत्यभिधाय तेन मां सरस्तीरमनाययत्।

उपसृत्य च जल-समीपमेकदेश-निहित-दण्ड-कमण्डलुरादाय स्वयं मा मुक्तप्रयत्न-

---

प्रायेणेति। प्रायेण = बाहुल्येन, सतां = सज्जनानां चेतांसि = चित्तानि, सदा = सर्वदा, अकारणमित्राणि = अकारणेऽपि (हेत्वभावेऽपि) मित्राणि (सौहार्दयुक्तानि), एवं च अतिकरुणाऽऽर्द्राणि च = अतिशयदयाक्लिन्नानि च, भवन्ति = विद्यन्ते। यतः = यस्मात्कारणात्, सः = हारीतः, मां, तदवस्थं = सा (तादृशी) अवस्था (दशा) यस्य, तम्, कष्टपूर्णाऽवस्थाऽऽपन्नमिति भावः। आलोक्य = दृष्ट्वा, समुपजातकरुणः = समुपजाता (समुत्पन्ना) करुणा (दया) यस्य सः। समीपवर्तिनं = निकटस्थायिनम्, अन्यतमम् = एकम्, ऋषिकुमारं = मुनिसुतम्, अब्रवीत् = अवदत्।

अयमिति। अयं = सन्निकृष्टस्थः, असंजातपक्षपुटः = असमुत्पन्नच्छदपुटः, एव शुकशिशुः = कीरशावकः, कथमपि = केनाऽपि प्रकारेण। अस्मात् = निकटस्थात्, तरुशिखरात् = वृक्षोर्ध्वभागात्, परिच्युतः = परिस्रस्तः। वा = अथवा अनेन = शुकशिशुना, श्येनमुखभ्रष्टेन = श्येनस्य (पतत्रिणः, आखेटशीलपक्षिविशेषस्य) "पत्त्री श्येन" इत्यमरः। श्येनो हिन्दीभाषायां "बाज" इति नाम्ना विख्यातः। मुखं (वदनम्), तस्मात्, परिभ्रष्टेन (परिच्युतेन), भवितव्यं = भाव्यम्।

तदेवोपपादयति—तथा हीति। प्रपातस्य = प्रपतनस्थानस्य, अतिदवीयस्तया = अतिशयदूरत्वेन, अयं = शुकशिशुः, अल्पशेषजीवितः = अल्पशेषं (स्तोकाऽवशिष्टम्) जीवितं (जीवनम्) यस्य सः। "शेषोऽनन्ते वधे सीरिण्युपयुक्तेतरेऽपि च"ति हैमः अतएव आमीलितलोचनः = आमीलिते (ईषन्मुद्रिते) लोचने (नेत्रे) यस्य सः। मुहुर्मुहुः = वारं वारं, मुखेन = वदनेन करणेन, पतति = निपतति, मुहुर्मुहुः, अत्युल्बणं = प्रव्यक्तं, "स्पष्टं स्फुटं प्रव्यक्तमुल्बणम्" इत्यमरः। श्वसिति=प्राणिति, मुहुर्मुहुः चञ्चुपुटं = त्रोटिपुटं, विवृणोति = विकासयति। शिरोधरां=ग्रीवां, धारयितुं = स्थिरीकर्तुं, न शक्नोति = न समर्थो भवति। तत् = तस्मात्कारणात्। एहि = आगच्छ। यावत् एव = यत्कालम् एव, अयं = सन्निकृष्टस्थः, शुकशिशुः, असुभिः = प्राणैः, न विमुच्यते = न परित्यज्यते, तावत् एव = तत्कालम् एव, इमं = शुकशिशुं, गृहाण = धारय। सलिलसमीपं = जलनिकटम्, अवतारय=प्रापय, इति = एवम्, अभिधाय= उक्त्वा, तेन = ऋषिकुमारकेण, प्रयोज्यकर्त्रा, मां, सरस्तीरं = कासारतटम्, अनाययत् = प्रापयत्।

उपसृत्येति। जलसमीपं = सलिलाऽन्तिकम्, उपसृत्य = प्राप्य, च, एकदेशेत्यादिः० = एकदेशे (एकभागे) निहितौ (स्थापितौ) दण्डकमण्डलू (पालाशदण्डकरकौ) येन सः। आमुक्तप्रयत्नम् =

प्रायः सज्जनोंके चित्त विना कारणके ही मित्र और अतिशय करुणासे सदा आर्द्र होते हैं। क्योंकि उन्होंने (हारीतने) वैसी अवस्थावाले मुझे देखकर करुणा उत्पन्न होनेसे समीपमें स्थित दूसरे मुनिकुमारको कहा—नहीं उगे हुए पंखोंवाला "यह तोतेका बच्चा किसी प्रकार इस पेड़की चोटीसे गिर पड़ा है, अथवा यह बाजके मुखसे गिरा होगा। जैसे कि—गिरनेका स्थान अतिदूर होनेसे अल्पशेष जीवनवाला यह आँखोंको मूँदकर वारंवार मुँहसे गिरता है, वारंवार अत्यन्त जोरसे श्वास लेता है, वारंवार चञ्चुपुट खोलता है। गरदनको नहीं संभाल पाता है। इसलिए आओ—जब तक यह प्राणोंसे छोड़ा नहीं जाता है तब तक इसे पकड़ो और जलके समीप उतारो।" ऐसा कहकर उन्होंने उस मुनिकुमारके द्वारा मुझे तालाबके किनारेपर पहुँचाया। जलके समीप जाकर एक ओर दण्ड और कमण्डलुको रखकर शरीर धारणके प्रयत्नको छोड़नेवाले और मुखको ऊँचा करनेवाले मुझको स्वयम्

मुत्तानित-मुखमङ्गुल्या कतिचित् सलिल-बिन्दूनपाययत्। अम्भःक्षोदकृतसेकश्चोपजातनवीन-प्राणमुपतट-प्ररूढ-नवनलिनीदलस्य जलशिशिरायां छायायां निधाय स्वोचितमकरोत् स्नान-विधिम्। अभिषेकावसाने चानेकप्राणायामपूतो जपन्नघमर्षणानि प्रत्यग्रभग्नैरुन्मुखो रक्तार-विन्दैर्नलिनीपत्त्र-पुटेन भगवते सवित्रे दत्त्वार्घमुदतिष्ठत्। आगृहीत-धौत-धवल-वल्कलश्च सहज्योत्स्न इव सन्ध्यातपः करतल-निर्धूनन-विशद-सटः प्रत्यग्रस्नानार्द्र-जटेन सकलेन तेन मुनिकुमार-कदम्बकेनानुगम्यमानो मां गृहीत्वा तपोवनाभिमुखं शनैः शनैरगच्छत्।

आमुक्तः (परित्यक्तः) प्रयत्नः (शरीरस्थितिप्रयासः) येन, तम्। उत्तानितमुखम् = उत्तानितम् (ऊर्ध्वीकृतम्) मुखं (वदनम्) येन तं, तादृशं मां, स्वयम् = आत्मना, आदाय = गृहीत्वा, कतिचित् = कांश्चित्, सलिलबिन्दून् = जलपृषतान्, अपाययत् = पीतान् अकारयत्।

अम्भःक्षोदेति। अम्भःक्षोदकृतसेकम् = अम्भसः (जलस्य) क्षोदैः (कणिकाभिः) कृतः (विहितः) सेकः (सेचनम्) यस्य, तम्। अतएव उपजातनवीनप्राणम् = उपजाताः (उत्पन्नाः) नवीनाः (नूतनाः) प्राणाः असवः (यस्य), तम्, मामिति शेषः। उपतटप्ररूढस्य = तटस्य समीपं उपतटं, समीपार्थेऽव्ययीभावः, प्ररूढस्य (उत्पन्नस्य)। नवनलिनीदलस्य = नवा (नूतना) या नलिनी (पद्मिनी) तस्या दलस्य (पत्त्रस्य)। जलशिशिरायां = जलेन (सलिलेन) शिशिरायां (शीतलायाम्) छायायाम् (अनातपे), निधाय = स्थापयित्वा। स्वोचितं = स्वस्य (आत्मनः) उचितं (योग्यम्), स्नानविधिं = मज्जनविधानम्। अकरोत् = व्यदधात्।

अभिषेकावसान इति। अभिषेकावसाने = अभिषेकस्य (स्नानस्य) अवसाने (अन्ते), च अनेकप्राणायामपूतः = अनेके (बहवः) ये प्राणायामाः (पूरकादीनि योगस्य चतुर्थाङ्गानि), तैः पूतः (पवित्रः) सन्, अघमर्षणानि = अघं मृष्यन्तीति, ल्युट् = पापनाशकान् "आयङ्गौ"रित्यादि मन्त्रान्, "सर्वैनसामपध्वंसि जप्यं त्रिष्वघमर्षणम्।" इत्यमरः। जपन् = जपं कुर्वन्। उन्मुखः = ऊर्ध्ववदनः सूर्योन्मुखः सन्निति भावः। प्रत्यग्रभग्नैः = सद्योऽवचितैः, रक्तारविन्दैः = रक्तकमलैः, नलिनीपत्त्रपुटेन = नलिन्याः (कमलिन्याः) पत्त्रपुटेन (दलपुटेन, आधारभूतेनेतिभावः)। भगवते = षड्विधैश्वर्यसम्पन्नाय, सवित्रे = सूर्याय, अर्घं = पूजां, दत्त्वा = वितीर्य, उदतिष्ठत् = उत्थितः।

आगृहीतेति। आगृहीतं (स्वीकृतं, स्नानाऽनन्तरमिति शेषः), धौतं (क्षालितम्) धवलं (शुक्लम्) वल्कलं (वल्कम्) येन सः। अत एव सहज्योत्स्नः = ज्योत्स्नया (चन्द्रिकया) सहितः "तेन सहेति तुल्ययोगे" इति तुल्ययोगबहुव्रीहिः, "वोपसर्जनस्ये" त्यनेन विकल्पत्वात्सहस्य सा-देशाऽभावः। सन्ध्यातप इव = सायङ्कालिकद्योत इव। करतलेत्यादिः० = करतलेन (हस्ततलेन) यत् (निर्धूननं (सञ्चालनम्) तेन विशदा (निर्मला) सटा (जटा) यस्य सः। प्रत्यग्रस्नानाऽऽर्द्र-जटेन = प्रत्यग्रं (सद्यः सम्पन्नम्) यत् स्नानं (मज्जनम्) तेन आर्द्रा (क्लिन्ना) जटा (सटा) यस्य, तेन। सकलेन = समस्तेन तेन = पूर्वकथितेन, मुनिकुमारकदम्बकेन = ऋषिसुतसमूहेन, अनुगम्य-मानः = अनुस्रियमाणः सन्, मां गृहीत्वा = आदाय, शनैः = मन्दं मन्दं, तपोवनाऽभिमुखं = स्वाश्रम-सम्मुखम्, अगच्छत् = गतः।

लेकर अँगलीसे कुछ जलबिन्दुओंको पिलाया। जलबिन्दुओंसे सेचन किये गये और उत्पन्न नये प्राणोंवाले मुझको किनारेके समीप उत्पन्न नये कमलिनीके पत्तोंकी जलसे ठण्डी छायामें रखकर अपने योग्य स्नानकी विधिको कर लिया। स्नानकी समाप्तिमें अनेक प्राणायामोंसे पवित्र होकर पवित्र अघमर्षण मन्त्रोंको जपते हुए ऊपर मुखकर तत्क्षण तोड़े गये लाल कमलोंसे कमलिनीके दोनोंसे भगवान् सूर्यको अर्घ देकर उठ गये। सफेद और धोये गये वल्कलको लेकर चांदनीवाले सन्ध्याके सूर्यप्रकाशके समान होकर हाथोंसे फटकारनेसे उज्ज्वल जटावाले वे सद्यः स्नानसे आर्द्र जटावाले समस्त उन मुनिकुमारोंसे अनुगत होते हुए मुझे लेकर धीरे-धीरे तपोवनके पास चले गये।

अनतिदूरमिव गत्वा दिशि-दिशि सदासन्निहित-कुसुमफलैः ताल-तिलकतमाल-हिन्ताल-बकुलबहुलैः, एलालताकुलित-नालिकेरी-कलापैः लोल-लोध्र-लवली-लवङ्ग-पल्लवैः, उल्लसित-चूत-रेणु-पटलैः, अलिकुल-झङ्कार-मुखर-सहकारैः, उन्मद-कोकिल-कुल-कलाप-कोलाहलिभिः, उत्फुल्ल-केतकी-रजःपुञ्ज-पिञ्जरैः, पूगीलता-दोलाधिरूढ-वनदेवतैः, तारकावर्षमिवा-धर्म्म-विनाश-पिशुनं कुसुम-निकरमनिल-चलितमनवरतमतिधवलमुत्सृजद्भिः, संसक्तपादपैः कानतेरुपगूढम्, अचकित-प्रचलित-कृष्णसार-शत-शबलाभिः, उत्फुल्ल-स्थलकमलिनी-लोहिनीभिः,

---

अनतिदूरमिति । अनतिदूरमिव=कियद्दूरमिव, गत्वा = प्राप्य, "आश्रममपश्यमिति दूरस्थाभ्यां पदाभ्यां सम्बन्धः । दिशि दिशि = प्रतिदिशं, सदा = सर्वदा, सन्निहितकुसुमफलैः = सन्निहितानि (विद्यमानानि) कुसुमानि (पुष्पाणि) फलानि (सस्यानि) येषु, तैः । तालेत्यादिभिः = तालाः (तृणराजाः) तिलकाः (क्षुरकाः), तमालाः (तापिच्छाः) हिन्तालाः (वृक्षविशेषाः) बकुलाः (केसराः), एते बहुलाः (प्रचुराः), येषु, तानि, तैः, "काननैः" इत्यस्य विशेषणम् । एवं परत्राऽपि । एलालताऽऽकुलितनालिकेरीकलापैः = एलालताभिः (चन्द्रबालावल्लीभिः) आकुलिताः (व्याप्ताः), नालिकेरीकलापाः (लाङ्गलीसमूहाः) येषु तैः । "नालिकेरस्तु लाङ्गली"त्यमरः । लोललोध्रलवलीलवङ्गपल्लवैः = लोलाः (चञ्चलाः) लोध्र-लवली-लवङ्गानां (गालव-लताविशेष-देवकुसुमानाम्) पल्लवाः (किसलयानि) येषु, तैः । "लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञम्" इत्यमरः । उल्लसितचूतरेणुपटलैः = उल्लसितानि (उद्दीप्तानि) चूतरेणूनाम् (आम्रकुसुमपरागाणाम्) पटलानि (समूहाः) येषु, तैः । अलिकुलझङ्कारमुखरसहकारैः = अलिकुलानां (भ्रमरसमूहानाम्) झङ्कारेण (झङ्कृत्या, झमिति ध्वनिनेति भावः) मुखराः (शब्दायमानाः) सहकाराः (अतिसौरभयुक्ताम्र-वृक्षाः), येषु, तैः । उन्मदेत्यादिः० = उन्मदाः (उत्कटमदाः) ये कोकिलाः (पिकाः), तेषां कुलं (सजातीयवर्गः), तस्य कलापः (समूहः), तेन कोलाहलिभिः (कलकलशब्दयुक्तैः), उत्फुल्लकेतकी-रजःपुञ्जपिञ्जरैः = उत्फुल्लाः (विकसिताः) याः केतक्यः (क्रकचच्छदवृक्षाः) तासां रजःपुञ्जाः (परागसमूहाः) तैः पिञ्जरैः (पीतवर्णैः) । पूगीलतेत्यादिः० = पूगीलताः (क्रमुकवल्ल्यः) एव दोलाः (प्रेङ्खाः), ता अधिरूढाः (आश्रिताः) वनदेवताः (अरण्याऽधिदेव्यः) येषु, तैः । "दोला प्रेङ्खादिका स्त्रियाम्" इत्यमरः । अधर्मविनाशपिशुनम् = अधर्मस्य (पापस्य) विनाशः (ध्वंसः) तस्य पिशुनम् (सूचकम्), सुरपूजोपयोगित्वेनेति भावः । अनिलचलितं = वायुकम्पितम्, अतिधवलम् = अतिशयशुक्लं, कुसुमनिकरं = पुष्पसमूहं, तारकावर्षम् इव = नक्षत्रवृष्टिम् इव, अनवरतं = निरन्तरम्, उत्सृजद्भिः = विकिरद्भिः, संसक्तपादपैः = संसक्ताः (अन्योन्यं मिलिताः) पादपाः (वृक्षाः) येषु, तैः । तादृशैः काननैः = वनैः, उपगूढं = परितो व्याप्तम् ।

अचकितेति । अचकितेत्यादिः० = अचकिताः (अत्रस्ताः) प्रचलिताः (प्रसृताः) ये कृष्णसाराः (मृगविशेषाः) तेषां शतं (दशशती, बाहुल्यमिति भावः), तेन शबलाभिः (चित्राभिः) "दण्ड-कारण्यस्थलीभिः" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । उत्फुल्लकमलिनीलोहिनीभिः = उत्फुल्लाः (विकसिताः) याः कमलिन्यः (पद्मिन्यः), ताभिः लोहिनीभिः (रक्तवर्णाभिः) । मारीचेत्यादिः० =

कुछ दूर जाकर दिशा दिशामें सदा वासवाले फूल और फलोंसे युक्त, पर्याप्त ताड़, तिन्तक, तापिच्छ हिन्ताल और मौलसिरीके पेड़ोंसे सम्पन्न, इलायचीके लताओंसे व्याप्त नारियलके पेड़ोंवाले, चञ्चल, लोध्र, लवली और लवङ्गों-के पल्लवोंसे युक्त, शोभित आमकी मञ्जरीके परागोंवाले, भौंरोंके झङ्कारसे शब्दायमान सहकारोंसे युक्त, मदवाले, कोयलोंके कोलाहलसे सम्पन्न, विकसित केतकी (केवड़ा) के परागोंसे पीले, जिनमें सुपारीकी लतारूप झूलेमें वन-देवताएँ आरूढ थीं, ताराओंकी वृष्टिके समान अधर्मनाशके सूचक, हवासे हिलते हुए अतिशय पुष्पसमूहको निरन्तर बिखेरते हुए, परस्पर सटे हुए वृक्षोंसे युक्त जङ्गलोंसे व्याप्त, निर्भय होकर चले हुए सैकड़ों कृष्णसार मृगोंसे रंग-

मारीचमायामृगावलून-प्ररूढ-वीरुद्दलाभिः, दाशरथि-चाप-कोटि-क्षत-कन्द-गर्त्तविषमित-तलाभिः, दण्डकारण्यस्थलीभिरुपशोभितप्रान्तम्, आगृहीतसमित्कुशकुसुममृद्भिः अध्ययन मुखर-शिष्यानुगतैः सर्वतः प्रविशद्भिः मुनिभिरशून्योपकण्ठम्, उत्कण्ठितशिखण्डिमण्डल-श्रूयमाणजल-कलश-पूरणध्वानम्, अनवरताज्याहुतिप्रीतैश्चित्रभानुभिः सशरीरमेव मुनिजनममरलोकं निनीषुभिः, उद्धूयमान-धूम-लेखाच्छलेनाबद्धयमान-स्वर्गमार्ग-गमन-सोपान-सेतुमिवोपलक्ष्यमाणम्, आसन्न-वर्त्तिनीभिस्तपोधन-सम्पर्कादिवापगतकालुष्याभिः, तरङ्ग-परम्परा-संक्रान्त-रविबिम्ब-

---

मारीचः (राक्षसविशेषः, ताडकापुत्रः) एव मायामृगः (कपटहरिणः, हरिणवेषधारीति भावः), तेन प्राक् अवलूनानि (छिन्नानि) पश्चात् रूढानि (उत्पन्नानि) वीरुधां (प्रतानिनीनां लतानाम्) दलानि (पत्त्राणि) यासु, ताभिः । दाशरथीत्यादिः०—दाशरथिः (दशरथपुत्रो रामः, दशरथस्याऽपत्यं पुमान्, "अत इञ्" इति सूत्रेण इञ्प्रत्ययः) । तस्य (दाशरथेः) या चापकोटिः (धनुरग्रभागः) तया क्षताः (उत्खाताः) ये कन्दाः (मूलानि) तेषां गर्ताः (भूमिविवराणि), तैः विषमितम् (उन्नताऽऽनतम्) तलम् (अधोभागः) यासु, ताभिः । तादृशीभिः दण्डकारण्यस्थलीभिः = दण्डकवनाऽकृत्रिमभूमिभिः । उपशोभितप्रान्तम् = उपशोभितः (उपशोभां प्रापितः) प्रान्तः (पश्चाद्भागः) यस्य तम् ।

आगृहीतेति । आगृहीताः (आत्ताः) समिधः (इन्धनानि) कुशाः (दर्भाः) कुसुमानि (पुष्पाणि) मृदः (मृत्तिकाः) यैस्तैः, "मुनिभिः" इत्यस्य विशेषणम् । अध्ययनमुखरशिष्याऽनुगतैः= अध्ययनेन (वेदपारायणेन) मुखराः (शब्दायमानाः) ये शिष्याः (छात्राः) तैः अनुगतैः (अनुसृतैः), सर्वतः = अभितः, प्रविशद्भिः = प्रवेशं कुर्वद्भिः, मुनिभिः = मननशीलैः तपस्विभिः, अशून्योपकण्ठम् = अशून्यः (अरहितः, युक्त इति भावः) उपकण्ठः (समीपदेशः) यस्य, तम् । उत्कण्ठितेत्यादिः० = उत्कण्ठिताः (मेघध्वनिभ्रान्त्या उत्कण्ठायुक्ताः) एतादृशा ये शिखण्डिनः (मयूराः) तेषां मण्डलं (समूहः) तेन श्रूयमाणः (आकर्ण्यमानः) जलेन (सलिलेन) कलशपूरणस्य (कुम्भपूरणस्य) ध्वानः (शब्दः) यस्मिस्तम् ।

अनवरतेति । अनवरतम् (निरन्तरं यथा तथा) या आज्याहुतिः (घृतहवनम्) तया प्रीतैः (तर्पितैः) चित्रभानुभिः (अग्निभिः, दक्षिणाऽग्नि-गार्हपत्याऽऽहवनीयनामकैरिति भावः) सशरीरम् (सदेहम्) एव, मुनिजनम् = तापसवर्गम्, अमरलोकं = स्वर्गं, निनीषुभिः = नेतुमिच्छद्भिः, उद्धूयमानेत्यादिः० = उद्धूयमाना (संचार्यमाणा, वायुवशादिति शेषः) या धूमलेखा (अग्निध्वजपङ्क्तिः) तस्याश्छलेन (कपटेन), आबद्धयमानेत्यादिः० = आबद्धयमानम् (विरच्यमानम्) स्वर्गमार्गे (देवलोकपथे) गमनस्य (प्राप्तेः) सोपानसेतुम् (आरोहणालिम्) इव, उपलक्ष्यमाणं = व्यज्यमानम्, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

आसन्नेति । आसन्नवर्तिनीभिः = समीपस्थायिनीभिः, तपोधनसंपर्कात् = तपोधनानां (तपस्विनाम्) संपर्कात् (सम्बन्धात्) इव, अपगतकालुष्याभिः — अपगतं (दूरीभूतम्) कालुष्यं (पापभावः) यासां, ताभिः, तरङ्गेत्यादिः०=तरङ्गपरम्परासु (ऊर्मिपङ्क्तिषु) संक्रान्ता (प्रतिबिम्बिता) रविबिम्बस्य

बिरंगी, खिली हुई कमलिनीसे लाल, मायामृगसे चर्वित और उगे हुए फैली हुई लताओंके पत्तोंसे युक्त, रामचन्द्रके धनुष्की नोंकसे उखाड़े गये कन्दोंके गड्ढोंसे विषमित तलवाली ऐसी दण्डकारण्यकी स्थलियों (अकृत्रिम भूमियों)-से शोभित प्रान्त (पिछल भाग) वाला, जिसका समीपस्थान समिधा, कुश और मिट्टीको लिये हुए अध्ययनसे मुखर (शब्द करनेवाले) शिष्योंसे अनुगत, सब ओरसे प्रवेश करनेवाले मुनियोंसे अशून्य (सहित) था, उत्कण्ठित मयूरोंसे जहांपर जलसे कलशके भरनेका शब्द सुना जा रहा था, निरन्तर घीकी आहुतिसे प्रसन्न, मानों मुनिजनोंको शरीरके साथ देवलोकको पहुंचानेकी इच्छा करनेवाले, हवासे फहराई गई धूमपङ्क्तिके बहानेसे स्वर्ग-मार्गमें जानेकी सीढ़ियोंका पुल बांधते हुएसे दक्षिणाग्नि आदि अग्नियोंसे युक्त देखा जा रहा था, निकटमें रहनेवाली मानों तपस्वियोंके सम्पर्कसे जिसकी कलुषता (अस्वच्छता वा पाप) नष्ट हो गई है, तरङ्गोंकी पङ्क्तिमें संक्रान्त सूर्य-

पङ्क्तिभिः, तापसदर्शनागतसप्तर्षि-मालाविगाह्यमानाभिरिव, विकच-कुमुदवनमृषिजन-मुपासितुमवतीर्णं ग्रहगणमिव निशासूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्, अनिलावनमित-शिखराभिः प्रणम्यमानमिव वनलताभिः, अनवरतमुक्तकुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आबद्ध-पल्लवाञ्जलिभिरुपास्यमानमिव विटपैः, उटजाजिर-प्रकीर्ण-शुष्यच्छ्यामाकम्, उपसंगृहीता-मलक-लवली-लवङ्ग-कर्कन्धू-कदली-लकुच-चूत-पनस-तालफलम्, अध्ययनमुखर-बटुजनम्, अन-वरत-श्रवण-गृहीत-वषट्कार-वाचालशुककुलम्, अनेक-सारिकोद्घुष्यमाण-सुब्रह्मण्यम्, अरण्य-

(सूर्यमण्डलस्य) पङ्क्तिः (आवलिः) यासु, ताभिः। "दीर्घिकाभिः" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि। तापसेत्यादिः० = तापसानां (तपस्विनां, जाबालिप्रभृतीनामिति भावः)। दर्शनाय (विलोकनाय) आगता (प्राप्ता) या सप्तर्षिमाला (कश्यपादिसप्तर्षिपङ्क्तिः) तया विगाह्यमानाभिः, (विलोड्यमा-नाभिः) इव, एतेन सप्तर्षीणां रविप्रतिबिम्बसादृश्यं निरूपितम्। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। तथा निशासु = रात्रिषु, ऋषिजनं = जाबाल्यादिमुनिगणम्, उपासितुं=सेवितुम्, अवतीर्णं=कृताऽवतरणम्, उपरिष्टादागत-मित्यर्थः। ग्रहगणम् इव = खेटसमूहम्, इव सूर्यादिकमिवेति भावः। उत्प्रेक्षा। विकचकुमुदवनं = विकचानि (विकसितानि) यानि कुमुदानि (कैरवाणि) तेषां वनम् (समूहम्) उद्वहन्तीभिः = धारयन्तीभिः, दीर्घिकाभिः = वापीभिः, परिवृतं = परिवेष्टितम्।

अनिलेति। अनिलाऽवनमितशिखराभिः = अनिलेन (वायुना) अवनमितानि (नम्रीभूतानि) शिखराणि (ऊर्ध्वभागाः) यासां ताभिः। तादृशीभिः वनलताभिः = अरण्यवल्लीभिः, प्रणम्यमानं = नमस्क्रियमाणम्, इव, उत्प्रेक्षा।

अनवरतेति। अनवरतं (निरन्तरं यथा तथा) मुक्तानि (त्यक्तानि) कुसुमानि (पुष्पाणि) यैः, तैः, पादपैः = वृक्षैः, अभ्यर्च्यमानम् = पूज्यमानम्, इव। उत्प्रेक्षा।

आबद्धेति। आबद्धाः (रचिताः) पल्लवाः (किसलयानि) एव अञ्जलयः (हस्तसम्पुटाः) यैः, तैः, तादृशैः विटपैः = शाखाभिः, उपास्यमानं = सेव्यमानम्, इव। रूपकम्, उत्प्रेक्षा चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

उटजेति। उटजानाम् (पर्णशालानाम्) अजिरेषु (प्राङ्गणेषु), प्रकीर्णाः (प्रसारिताः) अतः शुष्यन्तः (शोषं प्राप्नुवन्तः) श्यामाकाः (धान्यविशेषाः) यस्मिन्, तम्।

उपसंगृहीतेति। उपसंगृहीतानि (उपसंग्रहविषयीकृतानि) आमलकानि (धात्रीफलानि) लवल्यः (लताविशेषाः, लक्षणया तत्फलानि)। कर्कन्ध्वः (बदर्यः लक्षणया बदरीफलानि) कदल्यः रम्भाः, लक्षणया कदलीफलानि, भाषायां "केला" नामकानि, लकुचानि (लिकुचानि, भाषायां "बड़हर" नामकफलानि) चूतानि (आम्रफलानि) पनसानि (पनसफलानि, भाषायां "कटहर" नामकफलानीति भावः) तालीफलानि (तृणराजफलानि, भाषायां ताडनामकानीति भावः), यस्मि-स्तम्। "कर्कन्धूर्बदरी कोलिः" "लकुचो लिकुचो डहुः" इति "पनसः कण्टकिफल" इति चाऽमरः। अध्ययनमुखरबटुजनम् = अध्ययनेन (वेदादिशास्त्रपठनेन) मुखराः (शब्दायमानाः) बटुजनाः (ब्रह्मचारिजनाः) यस्मिन्, तम्।

मण्डलकी पङ्क्तिसे युक्त, अतः मानों जहां तपस्वियोंके दर्शनके लिए आये हुए सप्तर्षि-परम्परा प्रवेश कर रही है। रातमें खिले हुए कुमुदसमूहको मानों ऋषियोंकी उपासना करनेके लिए उतरते हुए ग्रहगणको धारण करती हुई बावलियोंसे घिरा हुआ, वायुसे जिसका अग्रभाग झुकाया गया है ऐसी वनलताओंसे प्रणाम किया गया-सा, पल्लव-रूप अञ्जलिको जोड़े हुए वृक्षोंसे उपासना किये गयेके समान, जहां पर्णशालाके आंगनमें सांवाधान्य सुखाया जा रहा था, जहांपर आंवला, लवली, बेर, केला, बड़हर, आम, कटहर और ताड़ ये सब फल संगृहीत थे, अध्ययनसे मुखर (शब्द करनेवाले) बटुजनोंसे युक्त, जहांपर लगातार सुननेसे ग्रहण किये गये वषट् (शब्द) से वाचाल शुकसमूह

कुक्कुटोपभुज्यमान-वैश्वदेवबलिपिण्डम्, आसन्न-वापी-कलहंसपोत-भुज्यमान-नीवारबलिम्, एणी-जिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनिबालकम्, अग्निकार्य्यार्द्धदग्धमिसमिसायमान-समित्कुश-कुसुमम्, उपल-भग्ननालिकेर-रसस्निग्धशिलातलम्, अचिर-क्षुण्ण-वल्कल-रस-पाटलभूतलम्, रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डल-निहित-करवीर-कुसुमम्, इतस्ततो विक्षिप्त-भस्मलेखा-कृतमुनि-जनभोजन-भूमिपरिहारम्, परिचित-शाखामृग-कराकृष्टि-निष्कास्यमान-प्रवेश्यमान-जरदन्ध-

---

अनवरतेत्यादिः० = अनवरतं (निरन्तरम्) श्रवणगृहीताः (आकर्णनस्वीकृताः) ये वषट्काराः (हविर्दानोच्चारणशब्दाः) तैः वाचालं (जल्पाकम्) शुककुलं (कीरसमूहः) यस्मिन्, तम् ।

अनेकेति । अनेकसारिकाभिः (बहुपीतपादाभिः पक्षिणीभिः, भाषायां "मैना" नामधेयाभिरिति भावः) उद्घुष्यमाणम् (उच्चस्वरेण पठ्यमानम्) सुब्रह्मण्यं (मन्त्रविशेषः) यस्मिन्, तम् ।

अरण्येति । अरण्यकुक्कुटैः (वनचरणायुधैः, पक्षिविशेषैः) उपभुज्यमानः (भक्ष्यमाणः) वैश्वदेवबलिपिण्डः (विश्वदेवोद्देशेन दीयमानः पूजान्नपिण्डः) यस्मिन्, तम् ।

आसन्नेति । आसन्ना (निकटवर्तिनी) या वापी (दीर्घिका) तस्यां ये कलहंसपोताः (कादम्बपक्षिशावकाः) तैः भुज्यमानः (भक्ष्यमाणः) नीवारबलिः (मुन्यन्नपूजापदार्थः) यस्मिन्, तम् ।

एणीति । एणीनां (हरिणीनाम्) जिह्वापल्लवैः (रसनारूपकिसलयैः) उपलिह्यमानाः (संस्पृश्यमानाः) मुनिबालकाः (तपस्विकुमाराः) यस्मिन्, तम् ।

अग्नीति । अग्निकार्ये (होमे) अर्धदग्धानि (सामिभस्मीभूतानि) अतः मिसमिसायमानानि (मिसमिसेतिध्वनिं कुर्वाणानि) समित्कुशकुसुमानि (इन्धनदर्भपुष्पाणि) यस्मिन्, तम् ।

उपलभग्नेति । उपलैः (पाषाणैः) भग्नानि (आमर्दितानि) यानि नालिकेराणि (लाङ्गली-फलानि) तेषां रसः (द्रवः), तेन स्निग्धानि (स्नेहयुक्तानि, चिक्कणानीति भावः) शिलातलानि (प्रस्तरतलानि) यस्मिन्, तम् ।

अचिरेति । अचिरक्षुण्णानि (तत्कालचूर्णितानि, वृक्षेभ्यो निःसारितानीति भावः) यानि वल्कलानि (वल्कानि, वृक्षत्वच इति भावः) तेषां रसः (निर्यासः) तेन पाटलं (श्वेतरक्तम्) भूतलं (भूमितलम्) यस्मिन्, तम् ।

रक्तेति । रक्तचन्दनेन (पत्त्राङ्गेन) उपलिप्तम् (उपलेपनविषयीकृतम्) यत् आदित्यमण्डलं (सूर्यमण्डलम्) तस्मिन् निहितानि (स्थापितानि) करवीरकुसुमानि (हयमारकपुष्पाणि) यस्मिन्, तम् ।

इतस्तत इति । इतस्ततः = यत्र तत्र, सार्वविभक्तिकस्तसिः । विक्षिप्तेत्यादिः० = विक्षिप्ता (रचिता) या भस्मलेखा (भूतिपङ्क्तिः), तया कृतः (विहितः) मुनिजनानां (तापसजनानाम्) भोजनभूमेः (भक्षणस्थानस्य) परिहारः (निषेधः, अन्यजनप्रवेशस्येति भावः) यस्मिंस्तम् । परि-चितेत्यादिः० = परिचिताः (संस्तुताः) ये शाखामृगाः (वानराः), तेषां कराकृष्ट्या (हस्ता-कर्षणेन) केचित् निष्कास्यमानाः (वहिर्नीयमानाः) केचिच्च प्रवेश्यमानाः (क्रियमाणप्रवेशाः) जरन्तः (जीर्णाः, वृद्धा इति भावः) अन्धाः (दर्शनविकलाः) तापसाः (तपस्विनः) यस्मिन्, तम् ।

थे, अनेक मैनाओंसे जहांपर सुब्रह्मण्य (मन्त्रविशष) पढ़ा जा रहा था, जहाँपर जङ्गली मुर्गे वैश्वदेवका बलिपिण्ड खा रहे थे, पासकी बावलीमें कलहंसके बच्चे नीवारबलि खा रहे थे । मृगियां पल्लवकी समान जीभसे मुनिबालकोंको चाट रही थीं, अग्निकार्य (हवन) में आधा जले हुए समिधा, कुश और फूलोंका "मिस मिस" शब्द हो रहा था, पत्थरोंसे तोड़े गये नारियलके रससे शिलातल स्निग्ध (चिकना) था, थोड़ी देर पहले छोड़े गये वल्कलके रससे भूतल गुलाबी हो गया था, रक्त चन्दनसे उपलिप्त सूर्यमण्डलमें करवीरके फूल चढ़ाये गये थे । यत्र तत्र रचित भस्मरेखासे तपस्वियोंकी भोजनभूमिमें औरोंके आनेमें निषेध कर दिया था, परिचित (पालतू) बन्दरोंके हाथके आकर्षणसे कुछ बुड्ढे और अन्धे तपस्वी निकाले जा रहे थे और कुछ प्रवेश कराये जा रहे थे, हाथीके बच्चोंसे आधा

तापसम्, इभ-कलभार्द्धोपभुक्तपतितैः सरस्वती-भुजलता-विगलितैः शङ्खवलयैरिव मृणाल-शकलैः कल्माषितम्, ऋषिजनार्थमेणकैर्विषाण-शिखरोत्खन्यमानविविध-कन्दमूलम्, अम्बु-पूर्णपुष्कर-पुटैर्वनकरिभिरापूर्य्यमाण-विटपालवालकम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराहदंष्ट्रान्त-राल-लग्न-शालूकम्, उपजात-परिचयैः कलापिभिः पक्षपुटपवन-सन्धुक्ष्यमाणमुनिहोम-हुताशनम्, आरब्धामृत-चरु-चारुगन्धम्, अर्द्धपक्व-पुरोडाश-परिमलामोदितम्, अविच्छिन्नाज्यधाराहुति-हुत-भुग्झङ्कार-मुखरितम्, उपचर्य्यमाणातिथिवर्गम्, पूज्यमानपितृ-दैवतम्, अर्च्यमान-हरि-हर-पिता-

इभेति । इभकलभानाम् (हस्तिशावकानाम्), अत्र कलभपदेनैव हस्तिशावकरूपाऽर्थबोधेऽपि पुनरिभपदस्य "विशिष्टवाचकानां पदानां सति पृथग्विशेषणवाचकपदसमवधाने विशेष्यमात्रपरत्वम्" इति न्यायेन शावकरूपाऽर्थपरत्वाद्दोषाऽभाव इत्यवधेयम् । अर्धोपभुक्तेभ्यः (सामिभक्षितेभ्यः) पतितानि (स्रस्तानि) तैः, "मृणालशकलैः" इत्यस्य विशेषणम् । सरस्वतीभुजलताविगलितैः = सरस्वत्याः (शारदायाः) भुजलते (बाहुवल्ल्यौ) ताभ्यां, विगलितैः (स्रस्तैः), शङ्खवलयैः (कम्बुकङ्कणैः) इव, मृणालशकलैः (बिसखण्डैः) । कल्माषितम् (चित्रितम्) । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

ऋषीति । ऋषिजनाऽर्थं = मुनिजनाऽर्थम्, एणकैः = मृगैः, विषाणेत्यादि = विषाणशिखरैः (शृङ्गप्रान्तैः) उत्खन्यमानानि (अवदार्यमाणानि) विविधानि (अनेकप्रकाराणि) कन्दमूलानि (शस्यमूलशिखाः) यस्मिंस्तम् ।

अम्बुपूर्णेति । अम्बुपूर्णपुष्करपुटैः = अम्बुपूर्णानि (जलपूरितानि) पुष्करपुटानि (शुण्डाऽ-ग्राणि) येषां, तैः, "पुष्करं करिहस्ताऽग्रे वाद्यभाण्डमुखे जले ।" इत्यमरः । वनकरिभिः = अरण्य-गजैः, आपूर्यमाणविटपालवालकम् = अपूर्यमाणानि (संभ्रियमाणानि) विटपानाम् (वृक्षाणाम्) आलवालकानि (आवापाः) यस्मिन्, तम् ।

ऋषीति । ऋषिकुमारकैः (मुनिमाणवकैः) आकृष्यमाणानि । (क्रियमाणाकर्षणानि) वनवराहाणाम् (अरण्यशूकराणाम्) दंष्ट्राऽन्तराललग्नानि (दीर्घदशनाभ्यन्तरसंबद्धानि) शालूकानि (कमलकन्दाः) यस्मिन्, तम् । "शालूकमेषां कन्दः स्यात्" इत्यमरः ।

उपजातेति । उपजातपरिचयैः=सञ्जातसंस्तवैः, पूर्वपरिचितैरितिभावः । कलापिभिः = मयूरैः, पक्षपुटेत्यादिः० = पक्षपुटयोः (पतत्रपुटयोः) पवनेन (वायुना) संधुक्ष्यमाणः (सन्दीप्यमानः) मुनीनां (तापसानाम्) होमहुताऽशनः (हवनाऽग्निः) यस्मिंस्तम् ।

आरब्धेति । आरब्धः (विहितः) यः अमृतचरुः (हुतशेषौदनः) तस्य चारुगन्धः (मनोहरा-मोदः) यस्मिंस्तम् ।

अर्द्धपक्वेति । अर्द्धपक्वः (सामिजातपाकः) यः पुरोडाशः (हविर्विशेषः) तस्य परिमलः (जनमनोहरो गन्धः) तेन आमोदितम् (संजातगन्धम्) ।

अविच्छिन्नेति । अविच्छिन्ना (विच्छेदरहिता, अत्रुटितेति भावः) या आज्यधारा (घृतद्रव-परम्परा) तस्या आहुतिः (हवनम्) तया हुतभुजः (अग्नेः) झंकारः (झमित्याकारको ध्वनिः) तेन मुखरितम् (ध्वनितम्) । उपचर्यमाणेत्यादिः० = उपचर्यमाणः (उपास्यमानः) अतिथिवर्गः (प्राघु-णिकसमूहः) यस्मिंस्तम् । पूज्यमानपितृदैवतं = पूज्यमानानि (अर्च्यमानानि) पितृदैवतानि (पित्रादयः

खाकर गिरे हुए मृणालके टुकड़ोंसे मानों सरस्वतीकी बाहुलतासे शङ्खोंके कङ्कणोंसे चित्रित था, जहां ऋषिजनोंके लिए मृगोंके सींगकी नोकसे अनेक कन्दमूल खोदे जा रहे थे । जहां जङ्गली हाथी जलसे भरे हुए सूंड़के अग्रभागसे पेड़ोंकी क्यारियोंको भर रहे थे, कहीं ऋषिकुमारोंसे जङ्गली सूअरोंकी डाढ़ोंके बीचमें लगे कमलोंके कन्द खींचे जा रहे थे, कहींपर परिचित (पालतू) मृग पङ्खोंकी हवासे मुनियोंके होमके लिए आग सुलगा रहे थे । कहीं हुतशेष चरुकी गन्ध आ रही थी, आधे पके पुरोडाशके परिमलसे सुगन्धित, लगातारकी गई घृतधाराकी आहुतिसे अग्निके झङ्कारसे

महम्, उद्दिश्यमान-श्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमानयज्ञविद्यम्, आलोच्यमान-धर्म्मशास्त्रम्, वाच्यमान-विविध-पुस्तकम्, विचार्य्यमाण-सकलशास्त्रार्थम्, आरभ्यमाण-पर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्, उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, आबध्यमानध्यानम्, साध्यमान-मन्त्रम्, अभ्यस्यमान-योगम्, उपहूयमान-वनदेवताबलिम्, निर्वर्त्त्यमान-मौञ्जमेखलम्, क्षाल्यमान-वल्कलम्, उपसंगृह्यमाण-समिधम्, उपसंस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्, गृह्यमाण-गवेधुकम्, शोष्यमाण-पुष्करबीजं ग्रथ्यमानाक्षमालम्, गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्, न्यस्यमान-वेत्रदण्डम्, सत्क्रियमाण परिव्राजकम्, आपूर्य्यमाण-कमण्डलुम्,

---

देवताश्च) यस्मिंस्तम् । अर्च्यमानहरिहरपितामहम् = अर्च्यमानाः (पूज्यमानाः) हरिः (विष्णुः) हरः (शिवः) पितामहः (ब्रह्मा) यस्मिंस्तम् । उद्दिश्यमानश्राद्धकल्पम्=उद्दिश्यमानः (उद्देशपूर्वकं क्रियमाणः) श्राद्धकल्पः (श्राद्धविधिः) यस्मिंस्तम् । व्याख्यायमानयज्ञविद्यं=व्याख्यायमाना (साऽर्थकं निरूप्यमाणा) यज्ञविद्या (यागप्रतिपादकशास्त्रम्) यस्मिंस्तम् । आलोच्यमानधर्मशास्त्रम्=आलोच्यमानानि (आलोचनाविषयीकृतानि) धर्मशास्त्राणि (मन्वादिस्मृतयः) यस्मिंस्तम् । वाच्यमानविविधपुस्तकं=वाच्यमानानि (परिभाष्यमाणानि) विविधानि (अनेकप्रकाराणि) पुस्तकानि (शास्त्रग्रन्थाः) यस्मिंस्तम् । विचार्यमाणसकलशास्त्राऽर्थं = विचार्यमाणाः (विमृश्यमानाः) सकलाः (समस्ताः) शास्त्राऽर्थाः (वेदादिशास्त्रविषयाः) यस्मिंस्तम् । आरभ्यमाणपर्णशालम् = आरभ्यमाणाः (उपक्रम्यमाणाः) पर्णशालाः (उटजाः) यस्मिंस्तम् । उपलिप्यमानाऽजिरम्=उपलिप्यमानानि (गोमयादिना उपलेपविषयीकृतानि) अजिराणि (अङ्गनानि) यस्मिंस्तम् । "अङ्गणं चत्वराऽजिरे" इत्यमरः ।

उपेति । उपमृज्यमानानि (संशोध्यमानानि) उटजानाम् (पर्णशालानाम्) अभ्यन्तराणि (अन्तर्भागाः) यस्मिंस्तम् । आबध्यमानध्यानम् = आबध्यमानं (क्रियमाणम्) ध्यानम् (चिन्तनम्, उपास्यदेवस्येति शेषः) यस्मिंस्तम् । साध्यमानमन्त्रं = साध्यमानाः (सिद्धिविषयीक्रियमाणाः) मन्त्राः (मनवः, तत्तद्देवतानामिति शेषः) यस्मिंस्तम् । अभ्यस्यमानयोगम् = अभ्यस्यमानः (वारं-वारं क्रियमाणः) योगः (चित्तवृत्तिनिरोधः) यस्मिंस्तम् । उपहूयमानवनदेवताबलिम् = उपहूयमानाः (हवनविषयीक्रियमाणा) वनदेवताभ्यः (अरण्याऽधिष्ठातृदेवेभ्यः) बलयः (पूजाद्रव्याणि) यस्मिंस्तम् । निर्वर्त्यमानमौञ्जमेखलं = निर्वर्त्यमाना (निष्पाद्यमाना) मौञ्जमेखला (मुञ्जतृणनिर्मितरसना) यस्मिंस्तम् । क्षाल्यमानवल्कलं = क्षाल्यमानानि (शोध्यमानानि, जलेनेतिशेषः) वल्कलानि (वल्कानि, वृक्षत्वच इत्यर्थः) । यस्मिंस्तम् । उपसंगृह्यमाणसमिधम् = उपसंगृह्यमाणाः (उपादीयमानाः) समिधः (इन्धनानि) यस्मिंस्तम् । उपसंस्क्रियमाण कृष्णाऽजिनम् = उपसंस्क्रियमाणं (शुद्धीक्रियमाणं, प्रक्षालनादिनेति शेषः) कृष्णाऽजिनं (कृष्णसारमृगचर्म) यस्मिंस्तम् । गृह्यमाणगवेधुकं = गृह्यमाणाः (आदीयमानाः) गवेधुकाः (गवेधवः, भाषायां "बाजड़ा" इति प्रसिद्धा धान्यविशेषाः) यस्मिंस्तम् । शोष्यमाणपुष्करबीजं = शोष्यमाणानि (शोषं नीयमानानि) पुष्करबीजानि (वराटकाः) यस्मिंस्तम् । ग्रथ्यमानाऽक्षमालं = ग्रथ्यमाना (गुम्फ्यमाना) अक्षमाला (रुद्राक्षमाला) यस्मिंस्तम् । न्यस्य-

---

शब्दयुक्त, कहीं अतिथियोंका सत्कार हो रहा था, पितृदेवताओंकी पूजा हो रही थी, विष्णु, शिव, और ब्रह्माकी पूजा हो रही थी, कहींपर उद्देश्यपूर्वक श्राद्धविधान हो रहा था, कहीं यज्ञविद्याकी व्याख्या हो रही थी । कहीं धर्मशास्त्रोंकी आलोचना हो रही थी, कहीं अनेक पुस्तकोंका पाठ हो रहा था, कहीं समस्त वेदादि शास्त्रविषयोंका विचार हो रहा था, कहीं पर्णशाला बनाई जा रही थी, आंगनमें गोमयादिसे लेपन हो रहा था, कहीं पर्णशालाके भीतर मार्जन (सफाई) हो रहा था, कहीं ध्यान किया जा रहा था, कहीं मन्त्रोंका साधन हो रहा था, कहीं योगका अभ्यास हो रहा था, कहीं वनदेवताओंकी पूजाके पदार्थोंका हवन हो रहा था । कहीं मूँजकी मेखला बनाई जा रही थी, कहीं समिधाओंका संग्रह हो रहा था । कहीं कृष्णसार मृगके चर्मका उपसंस्कार हो रहा था, कहीं गवेधुका (बजड़ा)-का ग्रहण किया जा रहा था, कहीं कमलबीज सुखाये जा रहे थे, कहीं रुद्राक्षमालाएँ गूंथी जा रही थीं, कहीं

अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य, अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य, अब्जयोनिमिव त्रिभुवन-वन्दितम्, असुरारिमिव प्रकटितनरहरिवराहरूपम्, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्, मथुरोपवनमिव बलावलीढ-दर्पितधेनुकम्, उदयनमिवानन्दितवत्स-कुलम्, किम्पुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीत-कलशाभिषिच्यमान-द्रुमम्, निदाघसमयावसानमिव प्रत्यासन्न-जलप्रपातम्, जलधरसमयमिव

मानवेत्रदण्डं = न्यस्यमानः (स्थाप्यमानः) वेत्रदण्डः (वेतसदण्डः) यस्मिस्तम् । सत्क्रियमाणपरिव्राजकं सत्क्रियमाणाः (आद्रियमाणाः) परिव्राजकाः (संन्यासिनः) यस्मिंस्तम् । आपूर्यमाणकमण्डलुम् = आपूर्यमाणाः (संभ्रियमाणाः, जलेनेति शेषः) कमण्डलवः (कुण्ड्यः) यस्मिंस्तम् । "अस्त्री कमण्डलुः कुण्डी" त्यमरः । कलिकालस्य = चतुर्थयुगसमयस्य, अदृष्टपूर्वम् = अनवलोकितपूर्वं, पातकाऽभावादिति शेषः । अनृतस्य = असत्यस्य, अपरिचितम् = असंस्तुतं परिचयरहितमितिभावः । अनङ्गस्य = कामदेवय, अश्रुतपूर्वम् = अनाकर्णितपूर्वं, मदनविकाररराहित्यादिति शेषः ।

अब्जयोनिम् इव = ब्रह्मदेवम् इव, त्रिभुवनवन्दितं=त्रिभुवनेन (लोकत्रयेण, स्वर्गमर्त्यपातालात्म-केनेत्यर्थः) वन्दितम् (अभिवादितम्) । अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः, एवं परत्राऽपि । असुराऽरिम् इव = दैत्यारिम्, विष्णुमिवेति भावः । प्रकटितनरहरिवराहरूपं=प्रकटिते (प्रकाशिते) नरहरिवराहयोः (नृसिंह-सूकरयोः) रूपे (स्वरूपे) येन, तम् । आश्रमपक्षे तु—प्रकटितानि (प्रकाशितानि) नराः (मनुष्याः) हरयः (सिंहाः) वराहाः (सूकराः) रूपाणि (मृगाः) येन, तम् । "रूपं मृगेऽपि विज्ञेयम्" इति हलायुधः । सांख्यम् इव = कपिलदर्शनम् इव, कपिलाऽधिष्ठितं = कपिलेन (कर्दमपुत्रेण) अधिष्ठितम् (आश्रितम्), आश्रमपक्षे—कपिलाभिः (गोविशेषैः) अधिष्ठितम् । "कपिला रेणुकायां च शिंशपा गोविशेषयोः ।" इति मेदिनी ।

मथुरोपवनम् = मथुरायाः ("अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका । पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।" इति पुरीसप्तकमध्ये द्वितीयपुर्याः) उपवनम् (आरामः) इव, बलाऽवलीढेत्यादि० = बलेन (शक्त्या) अवलीढः (व्याप्तः) अत एव दर्पितः (गर्वयुक्तः) धेनुकः (धेनुकनामा दैत्यः), यस्मिंस्तम् । आश्रमपक्षे—बलाऽवलीढा दर्पिता धेनवः (नवप्रसूता गावः) यस्मिंस्तम् । "शेषाद्विभाषा" इति समासाऽन्तो वैकल्पिकः कप् । उदयनम् इव = तन्नामकं राजानम् इव, वत्सदेशाऽधिपते राज्ञ उदयनस्य कथा बृहत्कथामञ्जर्यां द्रष्टव्या । आनन्दितवत्सकुलम्=आनन्दितं (प्रमोदाऽन्वितम्) वत्सकुलं (वत्सदेशप्रजावर्गः) येन, तम् । आश्रमपक्षे—आनन्दितं वत्सानां (तर्ण-कानाम्) कुलं (समूहः) यस्मिंस्तम् । किम्पुरुषाऽधिराज्यम् = किम्पुरुषाणाम् (किन्नराणाम्) अधि-राज्यम् (अधिराष्ट्रम्) इव, मुनिजनेत्यादिः० = मुनिजनैः (ऋषिसमूहैः) गृहीताः (आत्ताः) ये कलशाः (जलपूर्णकुम्भाः), तैः अभिषिच्यमानः (अभ्युक्ष्यमाणः) द्रुमः (पुरुषविशेषः) यस्मिंस्तम् । आश्रमपक्षे—······अभिषिच्यमानाः द्रुमाः (वृक्षाः) यस्मिंस्तम् । द्रुमस्याऽभिषेककथाऽपि बृहत्कथा-मञ्जर्यां द्रष्टव्या ।

निदाघसमयाऽवसानं = निदाघसमयस्य (ग्रीष्मकालस्य) अवसानम् (शेषभागम्), इव,

वेत्रदण्ड रक्खे जा रहे थे, कहीं सन्यासियोंका सत्कार हो रहा था, कहीं कमण्डलु जलसे भरे जा रहे थे, जहांपर कलियुग पहले कभी नहीं देखा गया था, असत्य का अपरिचित, जहांपर कामदेव पहले नहीं सुना गया था, जो ब्रह्माके समान तीनों लोकोंसे अभिवादित था, असुराऽरि (विष्णु) के समान नृसिंह और वराहके रूपको प्रकट करनेवाला, आश्रमपक्षमें—मनुष्य, सिंह (शेर) वराह (सूअर) और मृगको प्रकट करनेवाला, सांख्यके समान कपिल (मुनि) से आश्रित, आश्रमपक्षमें—कपिला (गो विशेष) से आश्रित, मथुराके उपवन (बगीचे) के समान बलशाली अभिमानी धेनुक दैत्यसे युक्त, आश्रमपक्षमें—शक्तिशालिनी दर्पयुक्त गायोंसे युक्त, उदयन (वत्सदेशके राजा) के समान वत्सकुल (वत्सदेशके जनसमूह) को आनन्दित करनेवाला, आश्रमपक्षमें—वत्सकुल (बछड़ोंके समूह) को आनन्दित करनेवाला, किन्नरोंके अधिराज्यके समान ऋषियोंसे ग्रहण किये गये कलशोंसे अभिषेक

वनगहन-मध्य-सुख-सुप्त-हरिम्, हनूमन्तमिव शिला-शकल-प्रहार-सञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम्, खाण्डव-विनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्य्यम्, सुरभिविलेपनधरमपि सतताविर्भूतधूमगन्धम्, मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्, उल्लसित-धूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम् परिपूर्णद्विजपति-

प्रत्यासन्नजलप्रपातं = प्रत्यासन्नः (निकटस्थः) जलप्रपातः (सलिलवृष्टिः) यस्मिंस्तम्। आश्रमपक्षे—जलप्रपातः (सलिलनिर्झरः) यस्मिंस्तम्। "प्रपातो निर्झरे तटे" इति मेदिनी। जलधरसमयं=मेघकालं, वर्षर्तुमिति भावः। इव, वनगहनेत्यादिः = वनस्य (जलस्य) गहनं (वनं, समूह इत्यर्थः, समुद्र इति भावः) तस्य मध्यं (मध्यभागः) तस्मिन् सुखेन (आनन्देन) सुप्तः (निद्राणः) हरिः (विष्णुः) यस्मिंस्तम्। हरिर्वर्षाप्रारम्भे क्षीरसागरे स्वपितीति पौराणिक समयः। "पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्।" इत्यमरः। आश्रमपक्षे—वनस्य (विपिनस्य) यत् गहनं (गह्वरम्) तस्य मध्ये सुखसुप्ताः हरयः (सिंहाः) यस्मिंस्तम्। "गहनं गह्वरे दुःखे वने" इति त्रिकाण्डशेषः। "सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः।" इत्यमरः।

हनूमन्तम् इव = अञ्जनीसुतम् इव, शिलेत्यादिः० = शिलाशकलानां (पाषाणखण्डानाम्) प्रहारेण (ताडनेन) संचूर्णितः (चूर्णीकृतः) अक्षस्य (अक्षकुमारस्य रावणपुत्रस्य) अस्थिसंचयः (कीकससमूहः) येन, तम्। आश्रमपक्षे—शिलाशकलप्रहारसंचूर्णितः अक्षाणां (बिभीतकानाम्) अस्थिसंचयः (मध्यभागसमूहः) यस्मिंस्तम्। अक्षकुमारवधकथा वाल्मीकिरामायणस्य सुन्दरकाण्डे द्रष्टव्या।

खाण्डवेत्यादिः० = खाण्डवस्य (खाण्डवनामकवनस्य) विनाशः (ध्वंसः, भस्मीकरणरूपः), तस्मिन् उद्यतम् (उद्योगयुक्तम्) अर्जुनम् (किरीटिनं, मध्यमपाण्डवमिति भावः) इव, प्रारब्धाऽग्निकार्यं = प्रारब्धम् (प्रक्रान्तम्) अग्निकार्यम् (अनलकृत्यं, तत्तर्पणरूपमिति शेषः), येन तम्। आश्रमपक्षे—प्रारब्धम् अग्निकार्यम् (अनलकृत्यं, हवनरूपमिति भावः) यस्मिंस्तम्। वनगहनेत्यादौ पुनरुक्तवदाभासः पूर्णोपमा चेति द्वयोरलङ्कारयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। सुरभिविलेपनधरं = सुरभि (सुगन्धि) यत् विलेपनम् (अङ्गरागद्रव्यम्) तस्य धरम् (धारकम्) अपि, सतताविर्भूतहव्यधूमगन्धं = सततम् (निरन्तरम्) आविर्भूतः (प्रादुर्भूतः) हव्यधूमस्य (हवनीयपदार्थ-धूमस्य) गन्धः (घ्राणग्राह्यो गुणविशेषः) यस्मिंस्तमत्र विरोधः। तत्परिहारस्तु—सुरभेः (गोः) विलेपनं (गोमयम्, विपूर्वात् "लिपउपदेहे" इति धातोः विलिप्यते अनेन भूरिति विलेपनं, करणे ल्युट्, इति व्युत्पत्तेः) तस्य धरं (धारकम्), "सुरभिर्गवि च स्त्रियाम्" इत्यमरः। सुरभेर्विलेपनं यस्यां, तादृशी धरा यस्यामिति व्यधिकरणबहुव्रीहिकल्पना क्लिष्टा गौरवयुक्तेत्यवधेयम्।

मातङ्गेति। मातङ्गकुलाऽध्यासितं = मातङ्गकुलेन (चाण्डालवंशेन) अध्यासितम् (आश्रितम्),

किये गये द्रुम (किन्नरविशेष) के समान, आश्रमपक्षमें—ऋषियोंसे गृहीत घटोंसे जहाँपर वृक्ष सींचे जा रहे थे, ग्रीष्मऋतुके समाप्तिकालके समान जहाँपर वृष्टिसमय निकटवर्ती था, आश्रमपक्षमें—जहाँपर जलप्रपात (झरना) निकट था। मेघकाल (वर्षाऋतु) के समान वनगहन (समुद्र) के मध्यभागमें सुखसे सोये हुए हरि (विष्णु) से युक्त, आश्रमपक्षमें—वनगहन (जङ्गलकी गुफा) के बीचमें सुखसे सोये हुए हरि (सिंहों) से युक्त, जैसे हनूमान्ने पत्थरके टुकड़ोंके प्रहारसे अक्ष (रावणपुत्र) के अस्थिसमूहको चूर किया था, वैसे ही जो पत्थरके टुकड़ोंके प्रहारसे चूर्णित अक्ष (बहेड़ा) के समूहसे युक्त था, खाण्डव वनके विनाशके लिए तत्पर अर्जुनके समान जहाँ अग्निके कार्य (दाह—आश्रमपक्षमें हवन) का आरम्भ किया गया था, सुरभि द्रव्यके विलेपनको धारण करनेपर भी निरन्तर हवनीय (चरु आदि) के धूम गन्धसे युक्त, यहाँ विरोध है, परिहार—सुरभि (गाय) के विलेपन (लेपनद्रव्य = गोबर) धारण करनेवाले, मातङ्ग (चाण्डाल) कुलसे आश्रित होकर भी पवित्र, यहाँ विरोध है, परिहार—मातङ्ग कुल (हाथियोंके गरोह) से आश्रित। उद्दीप्त सैकड़ों धूमकेतुओं (उत्पातके सूचक ग्रहों) के होनेपर भी जहाँपर उपद्रव शान्त था, यहाँ विरोध है, परिहार—उद्दीप्त सैकड़ों धूमकेतुओं (अग्नियों) के

मण्डल-सनाथमपि सदा-सन्निहित-तरु-गहनान्धकारम्, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रमम-पश्यम् ।

यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु,

---

अपि, पवित्रं = पूतम्, अत्र विरोधः । तत्परिहारस्तु—मातङ्गकुलेन (हस्तिसमूहेन) अध्यासितम् । "मातङ्गः श्वपचे गजे ।" इति मेदिनी ।

उल्लसितेति । उल्लसितधूमकेतुशतम् = उल्लसितम् (उद्दीप्तम्) धूमकेतूनाम् (उत्पातसूचक-ग्रहाणाम्) शतम् (समूहः) यस्मिंस्तमपि प्रशान्तोपद्रवं = प्रशान्तः (निवृत्तः) उपद्रवः (उत्पातः) यस्मिंस्तम् । अत्र विरोधः, तत्परिहारस्तु—उल्लसितं, धूमकेतूनाम् (अग्नीनाम्, धूमः केतुः = चिह्नम् येषां त इति विग्रहेणेति भावः) शतं यस्य तम् । "वह्न्युत्पातौ धूमकेतू" इत्यमरः । "धूमकेतुः स्मृतो वह्नावुत्पातग्रहभेदयोः ।" इति विश्वः । परिपूर्णेत्यादिः० = परिपूर्णं (परिपूरितं, षोडशकला-युक्तमिति भावः) यत् द्विजपतिमण्डलं (चन्द्रमण्डलम्) तेन सनाथम् (युक्तम्) अपि, सदेत्यादिः० = सदासन्निहितं (सर्वदाऽऽसन्नस्थितम्) तरुगहनेषु (वृक्षवनेषु) अन्धकारं (तिमिरम्) यस्मिंस्तम्, अत्र विरोधः । परिहारस्तु—परिपूरितं (परिपूर्णं, ज्ञानेनेति शेषः) द्विजपतीनां (श्रेष्ठब्राह्मणानाम्) यत् मण्डलं (समूहः) तेन सनाथम् । अतिरमणीयम् = अतिशयमनोहरम्, अपरम् = अन्यं, ब्रह्मलोकम् इव = सत्यलोकम् इव, आश्रमं = तपोवनम्, अपश्यं = व्यलोकयम् । उत्प्रेक्षा ।

यत्र चेति । यत्र = यस्मिन् आश्रमे, मलिनता = मालिन्यं, चरितपक्षे पापकालुष्यं, हविर्धूमेषु = चरुपुरोडाशादिधूमेषु, चरितेषु = चरित्रेषु, आचारेष्विति भावः, न = नो मालिन्यमित्यर्थः । लोक-व्यवहारेषु नाऽधर्माचरणमिति भावः । अत्र श्लेषपरिसंख्ययोरङ्गाऽङ्गिभावेन सङ्करः । परिसंख्यालक्षणं—

"प्रश्नादप्रश्नतो वाऽपि कथिताद्वस्तुनो भवेत् । तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ॥
परिसंख्या" (सा० द०) ६–८१ ।

अत्र शाब्दी परिसंख्या । एवं परत्राऽपि । मुखरागः = मुखे (वदने) रागः (लौहित्यम्) शुकेषु = कीरेषु, कोपेषु = क्रोधेषु, न = नो मुखरागः, क्रोधजनितमारुण्यमिति भावः । तीक्ष्णता = निशितता, कुशाग्रेषु=दर्भमूलेषु, स्वभावेषु = प्रकृतिषु, न तीक्ष्णता = न क्रूरता । चञ्चलता = चपलता, कदलीदलेषु = रम्भापत्रेषु, मनःसु न = चित्तेषु चञ्चलता न, आश्रमे सर्वेषां मनसि स्थिरताऽस्तीति भावः । चक्षूरागः = चक्षुषोः (नेत्रयोः) रागः (लौहित्यम्), कोकिलेषु = पिकेषु, परकलत्रेषु न = परमार्यासु चक्षूरागः (नयनाऽनुरागः, दर्शनाऽभिलाष इति भावः) न = नो वर्तते । "रागस्तु मात्सर्ये लोहितादिषु । क्लेशादावनुरागे च गान्धारादौ नृपेऽपि च ।" इति मेदिनी । कण्ठग्रहः = कण्ठे (ऊर्ध्वभागे) ग्रहः (ग्रहणम्) कमण्डलुषु = कुण्डीषु, सुरतेषु = मैथुनेषु, कण्ठग्रहः (कण्ठालिङ्गनम्), न = नाऽस्ति, तापसानां जितेन्द्रियत्वादिति भावः । मेखलाबन्धः = मेखलाया (मौञ्ज्यादेः) बन्धः

होनेपर… । परिपूर्ण (षोडशकलासंपन्न) चन्द्रमण्डलसे युक्त होकर भी जहाँपर वृक्षोंके वनका अन्धकार निकटस्थित है, यहाँ भी विरोध है, परिहार—ज्ञानपरिपूर्ण द्विजपतिमण्डल (ब्राह्मण समूह) से होनेपर… । अतिशय मनोहर दूसरे ब्रह्मलोकके समान (पूर्वोक्त गुणसंपन्न) आश्रमको मैंने देखा ।

जिस आश्रममें मलिनता (कालिमा) चरु आदि हविके धूएँमें थी चरित्रोंमें मलिनता (पापका आचरण) नहीं, मुखका राग (लालिमा) तोतोंमें थी क्रोधोंमें नहीं, तीक्ष्णता (तीखापन) कुशोंकी नोकोंमें थी स्वभावोंमें तीक्ष्णता (क्रूरता) नहीं, चञ्चलता केलेके पत्तोंमें थी, मनोंमें नहीं, (मनमें स्थिरता थी) । नेत्रका राग (लालिमा) कोयलोंमें थी, पराई स्त्रियोंमें नेत्रका राग (दर्शनका अभिलाष) नहीं था, कण्ठग्रह (गलेमें पकड़ना) कमण्डलुओंमें था, सुरतों (स्त्रीप्रसङ्गों) में कण्ठग्रह (आलिङ्गन) नहीं था, मेखलाबन्ध (मूँज आदि मेखलाका बन्धन) उपनयन

पक्षपातः कृकवाकुषु न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणासु, न शास्त्रेषु, वसुसङ्कीर्त्तनं दिव्य-कथासु न तृष्णासु, गणना रुद्राक्ष-वलयेषु न शरीरेषु, मुनि-बाल-नाशः क्रतु-दीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन ।

यत्र च महाभारते शकुनि-वधः, पुराणे वायु-प्रलपितम्, वयःपरिणामेन द्विज-पतनम्,

---

(बन्धनम्), व्रतेषु = उपनयनादिकर्मसु, ईर्ष्याकलहेषु=ईर्ष्यया (परसंसर्गजनितया अक्षान्त्या) कलहेषु (विग्रहेषु), मेखलाबन्धः (रसनया बन्धनम्) न । यथोक्तं कुमारसंभवे रतिविलापे—"स्मरसि स्मर ! मेखलागुणैः०" (४–८) इत्यादिपद्येन । स्तनस्पर्शः = कुचामर्शनं, होमधेनुषु = हवनाऽर्थक-नवप्रसूतासु गोषु, दोहनप्रसङ्ग इति शेषः । कामिनीषु = रमणीषु, रमणप्रसङ्ग इति शेषः । पक्षपातः = पक्षाणां (पतत्राणाम्) पातः (पतनम्), कृकवाकुषु = कुक्कुटेषु, "कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणा-युधः ।" इत्यमरः । विद्याविवादेषु = वेदादिशास्त्राऽर्थेषु, पक्षपातः = पक्षद्वये एकतटपक्षासक्तिः, न, तटस्थताऽऽश्रयणादिति भावः । भ्रान्तिः = भ्रमणम्, अनलप्रदक्षिणासु = अग्निप्रदक्षिणासु, शास्त्रेषु = वेदादिशास्त्रेषु, भ्रान्तिः = मिथ्याज्ञानं, न, निर्भ्रान्तज्ञानसंपन्नत्वादिति भावः । वसुसंकीर्तनं = वसूनां (ध्रुवाद्यष्टवसूनां देवानाम्) कीर्तनं (वर्णनम्) दिव्यकथासु = देवाख्यानेषु, दिवि (स्वर्गे भवाः दिव्याः = देवाः, दिव्शब्दात् "द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्" इति यत्, तेषां कथासु । तृष्णासु = स्पृहासु, विषयाणामिति शेषः, वसुसंकीर्तनं = धनप्रशंसनं न, "देवभेदेऽनले रश्मौ वसू रत्ने धने वसु ।" इति "तृष्णा स्पृहापिपासे द्वे" इति चाऽमरः । गणना = संख्याकरणं, रुद्राक्षवलयेषु = रुद्राक्षसमूहेषु, शरीरेषु = देहेषु, शरीरादिपरिग्रहविशेषेषु, गणना = आदरः, न, तपस्विनां देहगेहादिविषयेषु ममत्वा-भावादिति भावः । मुनिबालनाशः = तपस्विकेशध्वंसः, मुण्डनमिति भावः । "चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः ।" इत्यमरः । क्रतुदीक्षया = यज्ञनियमेन, मृत्युना = मरणेन हेतुना, बालनाशः = शिशुनाशः, न, अत्र "वाल" इत्यत्र वबयोरभेदः—"यमकादौ भवेदैक्यं डलोर्बवोर्लरोस्तथा ।" इति नियमेन बोद्धव्यः । आदिपदेन श्लेषादिपरिग्रहः । रामाऽनुरागः = रामे (दाशरथौ) अनुरागः (भक्तिः), रामायणेन = रामचरित्रवर्णनात्मकग्रन्थेन, यौवनेन = तारुण्येन हेतुना रामाऽनुरागः = रामायाम् (स्त्रियाम्) अनुरागः (प्रणयः) न । "रामा योषाहिङ्गुनद्योः" इति मेदिनी । मुखभङ्गविकारः = मुखे (वदने) भङ्गविकारः (भेदविकृतिः, बलिरूप इति भावः) जरया = वार्द्धक्येन, धनाऽभिमानेन= द्रव्यगर्वेण, मुखभङ्गविकारः (वदनभेदविकृतिः) न, "भङ्गो जयविपर्यये । भेदरोगतरङ्गेषु" इति मेदिनी ।

यत्र = यस्मिन् आश्रमे, महाभारते = जयनामक इतिहासविशेषे, शकुनिवधः = शकुनेः (दुर्योधनमातुलस्य) वधः (विनाशः), अस्मिंस्तु शकुनिवधः = शकुनेः (पक्षिणः) वधः (विनाशः) न, आश्रमे हिंसाऽभावादिति भावः । "शकुनिः पुंसि विहगे सौबले करणान्तरे ।" इति मेदिनी । अत्राऽऽर्थी परिसंख्याऽलङ्कारः, एवं परत्राऽपि । पुराणे=पञ्चलक्षणे वाय्वादिके, "पुराणं पञ्चलक्षणम्"

आदि व्रतोंमें न कि ईर्ष्या-कलहोंमें, स्तनोंका स्पर्श होमकी गायोंमें न कि रमणियोंमें, पक्षपात (पंखोंका गिरना) मुर्गोंमें, पक्षपात (विवादमें एक पक्षमें पड़ना) विद्याके विवादोंमें नहीं, भ्रान्ति (भ्रमण करना) अग्निकी प्रदक्षिणाओंमें, भ्रम = मिथ्याज्ञान, शास्त्रोंमें नहीं, वसु (ध्रुव आदि देवविशेष) का कीर्तन देवताओंकी कथाओंमें, वसु (धन) का कीर्तन तृष्णाओं (विषयोंके अभिलाषों) में नहीं, गणना रुद्राक्षोंकी मालाओंमें, शरीरोंमें गणना (आदर) नहीं, मुनियोंकी वालों (केशों) का ध्वंस यज्ञदीक्षासे, मृत्युसे मुनिबालनाश=मुनियोंका बालनाश नहीं, रामाऽनुराग (राममें प्रीति) रामायणसे, रामाऽनुराग (रामा-स्त्री) में अनुराग (प्रेम) यौवन (जवानी) से नहीं, मुखमें भङ्ग विकार भेदसे झुर्रीरूप विकार) बुढ़ापासे, मुखके भेदका विकार धनके अभिमानसे नहीं ।

जहाँ (आश्रममें) महाभारतमें शकुनि (दुर्योधनके मामा) का वध, शकुनि (पक्षी) का वध आश्रममें नहीं, पुराणमें वायुका प्रवचन, आश्रममें वायुरोगसे प्रलाप (अनर्थवचन,) नहीं, द्विजों (दाँतों) का पतन

उपवन-चन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतश्रवणव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः ।

तस्य चैवंविधस्य मध्यभागमलङ्कुर्वाणस्य, अलक्तकालोहित-पल्लवस्य मुनिजनालम्बित-कृष्णाजिन-जल-करक-सनाथशाखस्य तापसकुमारिकाभिरालवाल-दत्त-पीत-पिष्ट पञ्चाङ्गु-

---

इत्यमरः । वायुप्रलपितं = वायोः (वायुदेवस्य) प्रलपितं (जल्पितम्, व्याख्यातृत्वेनेतिशेषः) श्रूयते = आकर्ण्यते, वायुप्रलपितं = वायुना (वातव्याधिना, उन्मादादिनेति भावः) प्रलपितम् (अनर्थकं वचः) न = न श्रूयते ।

द्विजपतनं = द्विजानां (दन्तानाम्) पतनं (भ्रंशनम्), वयः परिणामेन=वयसः (अवस्थायाः) परिणामेन (परिपाकेन, वार्द्धक्येनेति भावः), न तु आश्रमे द्विजपतनं = द्विजानां (ब्राह्मणानाम्) पतनं (पातित्यावहं कर्म) न, "दन्तविप्राऽण्डजा द्विजाः" इत्यमरः । जाड्यं = शैत्यम्, उपवन-चन्दनेषु = उपवने (आरामे) चन्दनेषु (श्रीखण्डवृक्षेषु), न तु आश्रमे जाड्यं = जडत्वम् अज्ञत्व-मिति भावः । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यं, ष्यञ्प्रत्ययः । "जडोस्त्रियाम् । शूकशिम्ब्यां, हिमग्रस्त-मूकाऽप्रज्ञेषु च त्रिषु ।" इति विश्वमेदिन्यौ । भूतिमत्त्वं = भस्मवत्त्वम्, अग्नीनां = वह्नीनाम्, आश्रमे तु न कस्याऽपि भूतिमत्त्वम् = ऐश्वर्यवत्त्वं, तापसानामपरिग्रहादिति भावः । "भूतिर्भस्मनि सम्पदि" इत्यमरः । गीतश्रवणव्यसनं = गीतस्य (गानस्य) श्रवणम् (आकर्णनम्) एव व्यसनम् (आसक्तिः, कामजो दोषविशेषः) एणकानां = मृगाणां, न तु आश्रमे तापसानामिति शेषः, तेषां व्यसन-राहित्यादिति भावः । नृत्यपक्षपातः = नृत्ये (नर्तने) पक्षपातः (आसक्तिः) शिखण्डिनां = मयूराणां, न त्वाश्रमे तपस्विनामिति शेषः । नृत्यस्य कामजदोषत्वात्तपस्विभिर्वर्जनादिति भावः । भोगः (शरीरम्), भुजङ्गमानां = सर्पाणां, सर्पाणामेव भोगो न तु आश्रमे तापसानां भोगः (सुखसाक्षात्कारः) इति शेषः, तेषां भोगनिःस्पृहत्वादिति भावः । "भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः ।" इत्यमरः । श्रीफलाऽभिलाषः = श्रीफलस्य (बिल्वफलस्य) अभिलाषः (मनोरथः) कपीनां = वानराणां, न तु आश्रमे तापसानां श्रीफलस्य (लक्ष्मीफलस्य विलासरूपस्य) अभिलाषः, तेषां विलासनिरपेक्ष-त्वादिति भावः । "बिल्वे शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि ।" इत्यमरः । अधोगतिः = निम्नभाग-गमनं, मूलानां = शिफानाम्, न त्वाश्रमे तापसानाम् अधोगतिः = अधस्ताद्गमनं, नरकपातः इति शेषः । "गमनमधस्तादधर्मेणे"ति वचनात् । तापसानां धर्मशीलत्वान्नाऽधस्ताद्गमनमिति भावः । श्लेषः शाब्दी परिसंख्या चेति द्वयोः सङ्करः इति पूर्वमेव प्रतिपादितम् ।

तस्येति । एवंविधस्य = एतादृशस्य, तस्य = आश्रमस्य, मध्यभागमण्डलं = मध्यांऽशमण्डलम्, अलङ्कुर्वाणस्य = अलङ्कृतं कुर्वतः, "रक्ताऽशोकतरोः" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । अलक्त-काऽऽलोहितपल्लवस्य = अलक्तकाः (यावाः) इव आलोहितानि (रक्तानि) पल्लवानि (किसलयानि) यस्य, तस्य । "लाक्षा राक्षा जतु क्लीबे यावोऽलक्तो द्रुमाऽऽमयः ।" इत्यमरः । मुनीत्यादिः० =

(गिरना) अवस्थाके परिणाम (बुढ़ापे) से, आश्रममें द्विजों (ब्रह्मणों) का कुकर्मसे पतन नहीं, जाड्य (शीतलता) बागीचेके चन्दनोंमें, आश्रममें जाड्य (मूर्खता) नहीं, भूति (राख) होना अग्नियोंमें था, आश्रममें भूति (ऐश्वर्य) नहीं, गीत सुननेका व्यसन (लत) मृगोंमें, आश्रममें नहीं, नृत्यमें पक्षपात (आसक्ति) मयूरोंका, आश्रममें नहीं, भोग (सर्पशरीर) सर्पोंका, आश्रममें भोग (विषयका उपभोग नहीं, श्रीफल (बेलके फल) में अभिलाष बन्दरोंका, श्री (लक्ष्मी) का फल (विलास) आश्रममें नहीं, अधोगति (नीचे जाना) मूलों (जड़ों)में, आश्रमके तपस्वियोंका नहीं ।

इस तरह उस आश्रमके मध्यभागको अलङ्कृत करते हुए लाखके समान लाल पल्लववाले मुनियोंसे लटकाये गये कृष्णसारमृगका चर्म (चमड़ा) जलपूर्ण कमण्डलुसे युक्त डालोंसे युक्त, तपस्वियोंकी कन्याओंने जिसके

लस्य हरिणशिशुभिः पीयमानालवालकसलिलस्य मुनिकुमारकाबद्ध-कुशचीरदाम्नो हरित-गोमयोपलेपन-विविक्ततलस्य, तत्क्षण-कृत-कुसुमोपहार-रमणीयस्य नातिमहतः परिमण्डलतया विस्तीर्णावकाशस्य रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम्, उग्रतपोभिर्भुवनमिव सागरैः, कनकगिरिमिव कुलपर्वतैः, क्रतुमिव वैतानिक-वह्निभिः, कल्पान्तदिवसमिव रविभिः, कालमिव कल्पैः, समन्तान्महर्षिभिः परिवृतम्, उग्र-शाप कम्पितदेहया, प्रणयिन्येव विहित-केशग्रहया,

---

मुनिजनैः (तापसलोकैः) आलम्बिताः (अवलम्बिताः) कृष्णाऽजिनानि (कृष्णसारमृगचर्माणि) जलकरकाः (सलिलाऽऽधारकमण्डलवः), तैः सनाथाः (युक्ताः) शाखाः (विटपाः) यस्य, तस्य । तापसकुमारिकाभिः = तपस्विकन्यकाभिः, आलवालेत्यादिः० = आलवाले (आवापे) दत्ताः (वितीर्णाः निहिता इति भावः), पीतपिष्टस्य (हरिद्राचूर्णस्य) पञ्चाऽङ्गुलयः (विस्तारितहस्तबिम्बाः) यस्मिन्, तस्य । हरिणशिशुभिः = मृगशावकैः, पीयमानाऽऽलवालकसलिलस्य = पीयमानम् (धीयमानम्, आस्वाद्यमानमिति भावः) आलवालकस्य (आवापस्य) सलिलं (जलम्) यस्य, तस्य । मुनिकुमारकाबद्धकुशचीरदाम्नः=मुनिकुमारकैः (तापसबालकैः) आबद्धम् (आनद्धम्) कुशचीरदाम (दर्भवस्त्ररज्जुः) यस्मिन्, तस्य । हरितेत्यादि० = हरितं (हरिद्वर्णम्) यत् गोमयं (गोपुरीषं, "गोश्च पुरीषे" इति मयट्) तेन उपलेपनम् (उपलेपकरणम्) तेन विविक्तं (पूतम्) तलं (स्वरूपम्) यस्य, तस्य । तत्क्षणेत्यादि० = तत्क्षणं (तत्कालम्) कृतः (विहितः) यः कुसुमोपहारः (पुष्पोपायनम्) तेन रमणीयः (मनोहरः), तस्य । नाऽतिमहतः = नाऽतिदीर्घस्य, परिमण्डलतया = परितो विस्तृततया, विस्तीर्णाऽवकाशस्य = अतिदीर्घस्थानस्य, रक्ताऽशोकतरोः = लोहितवञ्जुलवृक्षस्य, अधश्छायायां = निम्नाऽनातपप्रदेशे, उपविष्टं = निषण्णं, "भगवन्तं जाबालिमपश्यम्" इत्यागामिभिः पदैः सम्बन्धः, एवं परत्राऽपि । उग्रतपोभिः = कठोरतपश्चरणैः, "महर्षिभिः इत्यस्य विशेषणं, सागरैः = समुद्रैः, भुवनं = लोकम्, इव, कुलपर्वतैः = कुलाऽचलैः, महेन्द्रादिभिरिति भावः । कुलपर्वताश्च सप्त, ते यथा—"महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ।" इति । कनकगिरि = सुमेरुपर्वतम्, इव, वैतानिकवह्निभिः = यज्ञसम्बन्ध्यग्निभिः, दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयैरिति भावः वितानं = यज्ञः, तस्मिन्भवा वैतानिकाः, "तत्र भव" इति ठञ् । क्रतुं = यज्ञम्, इव, रविभिः = सूर्यैः, कल्पाऽन्तदिवसम् = प्रलयाऽवसानदिनम्, इव, कल्पैः = युगान्तैः, कालं = समयम्, इव । समन्तात् = परितः, महर्षिभिः = महामुनिभिः, परिवृतं = परिवेष्टितम् । अत्रैकस्योपमेयस्य जाबालेर्बहूनामुपमानानां दर्शनान्मालोपमा नामाऽलङ्कारः । तल्लक्षणं यथा साहित्यदर्पणे—

"मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते ।" इति ।

उग्रेति । उग्रशापकम्पितदेहया = उग्रः (कठोरः) यः शापः (आक्रोशः) तेन कम्पितः (सञ्जातकम्पः) देहः (शरीरम्) यया, तया । पक्षे यस्यास्तया । प्रणयिन्या=प्रणयवत्या नायिकया, इव, विहितकेशग्रहया = विहितः (कृतः) केशग्रहः (शिरोरुहाकर्षणम्) यया, तया । पूर्णोपमा, एवं परत्रापि । प्रणयिन्यपि रतिकलहे केशग्रहं करोति । जराऽपि पलितोत्पादनार्थं केशग्रहं विदधाति । क्रुद्धया=

आलवाल (क्यारी) को हल्दीके पिष्टके पाँच उँगलियोंके चिह्नसे युक्त किया था, जिसकी क्यारीका जलमृगके बच्चोंसे पीया जा रहा था, जिसको मुनिकुमारोंने कुशरज्जुसे बांधा था, जिसका अधोभाग हरे गोबरके उपलेपसे पवित्र था, उसी क्षण मुनिकुमारोंसे किये गये फूलोंके उपहारोंसे रमणीय, जो ज्यादा बड़ा नहीं था, चारों ओरसे विस्तृत होनेसे विस्तीर्ण स्थानवाले ऐसे लाल अशोक वृक्षकी छायामें बैठे हुए भगवान् जाबालिको मैंने देखा । जो समुद्रोंसे घिरे हुए भुवनके समान, महेन्द्र आदि कुलपर्वतोंसे घिरे हुए सुमेरु पर्वतके समान, अग्निहोत्रके दक्षिणाऽग्नि आदि अग्नियोंसे यज्ञके समान, सूर्योंसे घिरे हुए प्रलयकालके दिनके समान, कल्पोंसे घिरे हुए समयके समान, उग्रतपस्या-वाले मुनियोंसे चारों ओरसे घिरे हुए थे । उग्रशापसे कम्पित शरीरवाली प्रणयिनीके समान केशग्रहण करनेवाली,

क्रुद्धयेव कृत-भ्रूभङ्गया, मत्तयेवाकुलितगमनया, प्रसाधितयेव प्रकटित-तिलकया जरया, गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया धवलीकृत-विग्रहम्, आयामिनीभिः पलित-पाण्डुराभिस्तपसा विजित्य मुनिजनमखिलं धर्म्मपताकाभिरिवोच्छ्रिताभिरमरलोकमारोढुं पुण्य-रज्जुभिरिवोपसंगृहीताभिरतिदूर-प्रवृद्धस्य पुण्यतरोः कुसुम-मञ्जरीभिरिवोद्गताभिर्जटाभिरुपशोभितम्, उपरचित-भस्म-त्रिपुण्ड्रकेण तिर्य्यक्प्रवृत्त-त्रिपथगा-स्रोतस्त्रयेण हिमगिरि-शिलातलेनेव ललाटफलकेनोपेतम्, अधोमुखचन्द्र-कलाकाराभ्यामवलम्बित-बलि-शिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्य-

---

कोपाविष्टया नायिकया, इव, कृतभ्रूभङ्गया = कृतः (विहितः) भ्रूभङ्गः (अक्षिलोमकौटिल्यं, जरापक्षे—अक्षिलोमरोगः) यया । क्रुद्धा नायिका यथा भ्रूभङ्गं करोति तथैव जराऽपि भ्रूविकारं प्रदर्शयतीति भावः । मत्तया = मदिराऽऽदिमदयुक्तया, इव, आकुलितगमनया = आकुलितं (विषमीकृतम्) गमनं (गतिः) यया तया, मदिरया यथा गतिः स्खलिता भवति तथैव जरयाऽपीति भावः । प्रसाधितया = अलङ्कृतया, इव, प्रकटिततिलकया = प्रकटितं (प्रकाशितम्) तिलकं (विशेषकम्) यया, तया, पक्षे प्रकटितः तिलकः (तिलकालकः, तिलकसदृशं चिह्नम्) यया, तया । यथा प्रसाधिता स्ववदने तिलकं (विशेषकम्) रचयति तथैव जराऽपि तिलसदृशं कृष्णचिह्नं शरीरे प्रकाशयतीति भावः । "तिलको द्रुमरोगाश्वभेदेषु तिलकालके । क्लीबं सौवर्चलक्लोम्नोर्न स्त्रियां तु विशेषके ।" इति मेदिनी । गृहीतव्रतया=गृहीतं (स्वीकृतम्) व्रतं (नियमविशेषः) यया, तया, इव अत एव भस्मधवलया = भस्मना (भूत्या) धवला (शुभ्रा) तया, तादृश्या नार्या इव, जरापक्षे = भस्म इव धवला, तया । तादृश्या जरया = वृद्धाऽवस्थया, धवलीकृतविग्रहं = धवलीकृतः (शुक्लीकृतः) विग्रहः (शरीरम्) यस्य, तम् ।

आयामिनीभिरिति । आयामिनीभिः = दैर्घ्ययुक्ताभिः, "जटाभि"रित्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । पलितपाण्डुराभिः = पलितेन (जरसा शुक्लत्वेन) पाण्डुराभिः (शुक्लाभिः), तपसा = तपस्यया, अखिलं = समस्तं, मुनिजनं = तापसलोकं, विजित्य = वशीकृत्य, उच्छ्रिताभिः = उन्नताभिः । धर्मपताकाभिः = पुण्यध्वजैः, इव, उत्प्रेक्षा । अमरलोकं = सुरभुवनं, स्वर्गमिति भावः । आरोढुम् = आरोहणं कर्तुम्, पुण्यरज्जुभिः=पवित्ररश्मिभिः, इव, उत्प्रेक्षा । उपसंगृहीताभिः=स्वीकृताभिः, अतिदूरप्रवृद्धस्य = अतिदूरम् (अतिविप्रकृष्टम्) प्रवृद्धस्य (वृद्धिं प्राप्तस्य), पुण्यतरोः = धर्मवृक्षस्य, रूपकाऽलङ्कारः । कुसुममञ्जरीभिः = पुष्पवल्लरीभिः, इव, उत्प्रेक्षा । उद्गताभिः = प्रादुर्भूताभिः, जटाभिः = सटाभिः, उपशोभितम् = अलङ्कृतम् । अत्रोत्प्रेक्षारूपकयोरेकाश्रयाऽनुप्रवेशात्सङ्कराऽलङ्कारः ।

उपरचितेति । उपरचितभस्मत्रिपुण्ड्रकेण = उपरचितानि (उपनिर्मितानि) भस्मना (भूत्या) त्रीणि (त्रिसंख्यकानि) पुण्ड्रकाणि (तिलकविशेषाः), यस्मिन्, तेन । तिर्यगित्यादिः० = तिर्यक्प्रवृत्तं (वक्रभावप्रवृत्तम्) स्रोतस्त्रयं (प्रवाहत्रितयम्) यस्मिन्, तेन । हिमगिरिशिलातलेन = हिमगिरेः (हिमालयस्य) शिलातलेन (प्रस्तरतलेन) इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । ललाटफलकेन = भालपट्टेन, उपेतं = युक्तम् ।

अधोमुखेति । अधोमुखी (निम्नगता) या चन्द्रकला (इन्दुभागः) तस्या इव आकारः

कुपित स्त्रीके समान भौंहोंको कुटिल करनेवाली, जरा (बुढ़ापा) के पक्षमें—नेत्रके लोमोंमें रोगोंसे युक्त । मत्त स्त्रीके समान विषमगमनवाली, अलङ्कृत स्त्रीके समान तिलकको प्रकट करनेवाली, जराके पक्षमें—तिलक सदृश चिह्नसे युक्त । भस्म धारण करनेसे श्वेतवर्णवाली व्रतलेनेवाली स्त्रीके समान, भस्मके समान सफेद जरा (बुढ़ापा) से सफेद शरीरवाले, जो (जाबालिमुनि) विस्तीर्ण, बुढ़ापासे सफेद, समस्त मुनियोंको तपस्यासे जीतकर उन्नत धर्मपताकाओंसे मानों स्वर्गमें चढ़नेके लिए संगृहीत पवित्र रस्सियोंके समान, मानों अत्यन्त दूरतक बढ़े हुए पुण्यवृक्षकी उत्पन्न पुण्यमञ्जरियोंकी समान उगी हुई जटाओंसे शोभित थे । जो भस्मसे रचे हुए त्रिपुण्ड्रकसे युक्त, तिरछी चली हुई गङ्गाजीके तीन प्रवाहवाले हिमालयके चट्टानके समान ललाटफलकसे युक्त, अधोमुख चन्द्रकलाके आकारवाली

मान-दृष्टिम्, अनवरतमन्त्राक्षराऽभ्यास-विवृताधरपुटतया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रिय-वृत्तिभिरिव करुणारस-प्रवाहैरिव दशनमयूखैर्धवलित-पुरोभागम्, उद्वमद-मलगङ्गा-प्रवाहमिव जह्नुम्, अनवरतसोमोद्गारसुगन्धिनिश्वासावकृष्टैर्मूर्त्तिमद्भिः शापाक्षरैरिव सदा मुखभाग-सन्निहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतर-गण्ड-गर्त्तम् उन्नततर-हनु-घोणम् आकराल-तारकम् अवशीर्य्यमाण-विरल-नयन-पक्ष्ममालम् उद्गत-

---

(स्वरूपम्) ययोस्ते, ताभ्याम् उपमालङ्कारः। अवलम्बितबलिशिथिलाभ्याम् = अवलम्बिता (आलम्बिता) या बलिः (शिथिलचर्म) तया शिथिले (श्लथे) ताभ्याम्। तादृशीभ्यां भ्रूलताभ्यां= नयनरोमवल्लीभ्याम्, अवष्टम्यमानदृष्टिम् = अवष्टम्यमाना (अवलम्ब्यमाना) दृष्टिः (दर्शनक्रिया) यस्य, तम्।

अनवरतेति। अनवरतं (निरन्तरं, यथा तथा) मन्त्राऽक्षराऽभ्यासः (मन्त्रवर्णोच्चारणबाहुल्यम्) तेन विवृतम् (अनावृतम्) अधरपुटम् (ओष्ठपुरम्) यस्य, तस्य भावस्तत्ता, तया। निष्पतद्भिः = निष्क्रामद्भिः, अतिशुचिभिः = अतिपवित्रैः, सत्यप्ररोहैः = ऋताऽङ्कुरैः इव, स्वच्छेन्द्रियवृत्तिभिः = स्वच्छाः (अतिनिर्मलाः) या इन्द्रियवृत्तयः (हृषीकव्यापाराः), ताभिः, इव उत्प्रेक्षा करुणारसप्रवाहैः = करुणायाः (दयायाः) यो रसः (द्रवः), तस्य प्रवाहैः (स्रोतोभिः) इव। तादृशैः दशनमयूखैः = दन्तकिरणैः, धवलितपुरोभागं = धवलितः (शुक्लीकृतः) पुरोभागः (अग्रप्रदेशः) यस्य, तम्। उद्वमदमलगङ्गाप्रवाहम् = उद्वमन् (उद्गिरन्) अमलः (निर्मलः) गङ्गाप्रवाहः (जाह्नवी स्रोतः) यस्मात्, तं, तादृशं जह्नुम् = तन्नामकं राजर्षिम् इव। पुरा भगीरथपथप्रवाहिता गङ्गा यजमानस्य जह्नुनामकभूपालस्य यज्ञवाटं प्लावयामास। ततः कुपितो राजा तामपिबत्। ततश्च भगीरथप्रार्थनया श्रोत्रद्वारेण तामुमुचत्, सा च जाह्नवीत्याख्यां प्रापेति पौराणिकी कथा।

अनवरतेति। अनवरतं (निरन्तरं, यथा तथा) यः सोमः (लक्षणया पीतसोमरसः) तस्य उद्गारः (निगारः, ऊर्ध्ववायुजनितशब्द इति भावः), तस्य यः सुगन्धिः (सुगन्धयुक्तः) निःश्वासः (निःश्वसनवातः) तेन अवकृष्टाः (आकृष्टाः), तैः। "निगारोद्गारविक्षावोद्ग्राहास्तु गरणादिषु।" इत्यमरः। मूर्तिमद्भिः = शरीरिभिः, शापाऽक्षरैः = आक्रोशवर्णैः, इव उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः। सदा = सर्वदा, मुखभागसन्निहितैः = वदनप्रदेशनिकटस्थितैः, परिस्फुरद्भिः = संचलद्भिः, अलिभिः = भ्रमरैः, अविरहितम् = अवियुक्तं, सहितमिति भावः। अतिकृशतया = अतिशयदुर्बलत्वेन, निम्नतरगण्डगर्तं = निम्नतरौ (गम्भीरतरौ) गण्डगर्तौ (कपोलाऽवटौ, कपोलाऽधःप्रदेशाविति भावः) यस्य तत्। उन्नततरहनुघोणम् = उन्नततरम् (उच्चतरम्) हनुघोणं (कपोलपरभाग-नासिकम्) यस्मिंस्तत्। हनू च घोणा च हनुघोणं, "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाऽङ्गानाम्" इति समाहारद्वन्द्वः। आकरालतारकम् = आकराले (अतिशयभीषणे) तारके (कनीनिके) यस्मिंस्तत्। "करालं दन्तुरे तुङ्गे भीषणे चाऽभिधेयवत्।" इति मेदिनी। "तारकाऽक्ष्णः कनीनिका।" इत्यमरः।

अवशीर्यमाणेत्यादिः० = अवशीर्यमाणा (क्षीयमाणा) अत एव विरला (अनिबिडा) नयनयोः (नेत्रयोः) पक्ष्ममाला (लोमराजिः) यस्मिन्, तत्। उद्गतेत्यादिः = उद्गतानि (आविर्भूतानि)

लटकी हुई बलि (झुर्री) से शिथिल भ्रूलताओंसे अवलम्बन की गई दर्शन क्रियासे युक्त थे, जो निरन्तर मन्त्रके अक्षरोंके अभ्याससे अधर खुले रहनेसे निकलते हुए अत्यन्त पवित्र सत्यके अङ्कुरोंके समान, स्वच्छ इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके समान और करुणारसके प्रवाहोंके समान दाँतोंकी किरणोंसे जिनका आगेका भाग सफेद था, निर्मल गङ्गा-प्रवाहको उगलते हुए जह्नुके समान, निरन्तर पीये गये सोमलता रसके उद्गारसे सुगन्धित निश्वाससे आकृष्ट और सदा मुखभागके निकटस्थित चलते हुए भौरोंसे मानों मूर्तिमान् शापाक्षरोंसे सहित थे। अत्यन्त दुर्बल होनेसे अधिक निम्न कपोलके गड्ढेवाले, ऊँचे हनु (जबड़े) और नासिकासे युक्त, अत्यन्त भयङ्कर आँखोंकी पुतलियोंवाले, क्षीण

दीर्घरोम-रुद्ध-श्रवण-विवरम् आनाभिलम्बित-कूर्च्चकलापमाननमादधानम्, अतिचपलानामिन्द्रियाश्वानाम् अन्तःसंयमन-रज्जुभिरिवातताभिः कण्ठनाडीभिनिरन्तरावनद्ध-कन्धरम्, समुन्नत-विरलास्थि-पञ्जरम्, अंसालम्बि-यज्ञोपवीतम्, वायु-वशजनित-तनु-तरङ्ग-भङ्गम् उत्प्लवमान-मृणालमिव मन्दाकिनीप्रवाहम्, अकलुषमङ्गमुद्वहन्तम्, अमल-स्फटिक-शकल-घटितमक्षवलयमत्युज्ज्वलस्थूल-मुक्ताफल-प्रथितं सरस्वतीहारमिव चलदङ्गुलि-विवर-गतमावर्त्तयन्तम्, अनवरतभ्रमित-तारकाचक्रमपरमिव ध्रुवम्, उन्नमता शिरा-जालकेन

यानि दीर्घरोमाणि (आयतलोमानि) तैः रुद्धे (आवृते) श्रवणविवरे (कर्णच्छिद्रे) यस्मिंस्तत् । आनाभिलम्बकूर्चकलापम् = आनाभि (नाभिपर्यन्तम्) लम्बः (अवस्रस्तः) कूर्चकलापः (मुखलोमसमूहः) यस्मिंस्तत् । तादृशम् आननं = मुखं, दधानं = धारयन्तम् ।

अतिचपलानाम् = अतिशयचञ्चलानाम्, इन्द्रियाऽश्वानाम् = इन्द्रियाणि (हृषीकाणि, श्रोत्रादीनीति भावः) एव अश्वाः (हयाः), तेषाम् । नराणां विषयान्प्रत्याकर्षणहेतुत्वादिन्द्रियाणि हयपदेन व्यपदिष्टानि, तथा च कठोपनिषदि—"इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् १-३-४ ।" इति । रूपकाऽलङ्कारः । अन्तःसंयमनरज्जुभिः = अन्तः (मध्ये) संयमनरज्जुभिः (नियन्त्रणरश्मिभिः) इव, उत्प्रेक्षा, रूपकोत्प्रेक्षयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । आतताभिः = अतिशयदीर्घाभिः । कण्ठनाडीभिः = गलशिराभिः, निरन्तराऽवनद्धकन्धरं = निरन्तरम् (अनवरतं यथा तथा) अवनद्धा (सम्बद्धा) कन्धरा (ग्रीवा) यस्मिन्, तत्, "अङ्गम्" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि । समुन्नतेत्यादिः० = समुन्नतम् (अत्युच्चम्) विरलम् (अनिबिडम्) अस्थिपञ्जरं (कङ्कालम्) यस्मिंस्तत् । अंसाऽवलम्बियज्ञोपवीतम् = अंसे (स्कन्धे) अवलम्बते (आलम्बते) तच्छीलं, तादृशं यज्ञोपवीतम् (ब्रह्मसूत्रम्) यस्मिंस्तत् । अत एव—वायुवशेत्यादिः = वायुवशेन (अनिलवशेन) जनिताः (उत्पादिताः) तनुः (सूक्ष्मः) तरङ्गभङ्गः (ऊर्मिकौटिल्यम्) यस्मिन् तम् । उत्प्लवमानमृणालम् = उत्प्लवमानानि (संवहमानानि) मृणालानि (बिसानि) यस्मिन्, तम् । उपमाऽलङ्कारः । मन्दाकिनीप्रवाहं = वियद्गङ्गास्रोतः, इव, अकलुषम् = निर्मलम्, अङ्गं = देहाऽवयवम्, उद्वहन्तं = धारयन्तम् ।

अमलस्फटिकेति । अमलानि (निर्मलानि) यानि स्फटिकशकलानि (सूर्यकान्तमणिखण्डानि) तैः घटितं (संयोजितम्), अत्युज्ज्वलेत्यादिः = अत्युज्ज्वलानि (अतिशयविशदानि) स्थूलानि (पृथुलानि) यानि मुक्ताफलानि (मौक्तिकानि) तैः ग्रथितं (गुम्फितम्) सरस्वतीहारं = भारतीमुक्तामाल्यम् इव, उपमाऽलङ्कारः । चलदङ्गुलिविवरगतं = चलन्त्यः (संचलन्त्यः) अङ्गुलयः (करशाखाः) तासां विवराणि (छिद्राणि) तानि गतम् (प्राप्तम्) । एतादृशम् अक्षवलयम् = रुद्राक्षमालाम्) आवर्तयन्तम् (भ्रमयन्तम्), अत एव अनवरतेत्यादिः=अनवरतं (निरन्तरम्) भ्रमितं (पर्यटितम्) तारकाचक्रं (नक्षत्रमण्डलम्) यस्मिन्, तम् । तादृशं ध्रुवम् = औत्तानपादिम्, इव अत्र स्फाटिकाऽक्षवलयतारकाणां शुचिवर्तुलत्वमेव साम्यम्, उपविष्टस्य मुनेः स्थिरत्वाद्ध्रुवसाम्यमिति भानुचन्द्रः । अत्रोपमोत्प्रेक्षयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

उन्नमतेति । उन्नमता = उपरि स्फुरता, शिराजालकेन=धमनिसमूहेन "नाडिस्तु धमनिः शिरा"

और विरल आँखोंकी पलकोंको पङ्क्तिसे युक्त, उगे हुए लम्बेरोमोंसे घिरे हुए कर्णच्छिद्रवाले । नाभितक लटकी हुई दाढ़ियोंसे युक्त, ऐसे मुखको धारण किये हुए, अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियरूप अश्वोंको भीतर रोकनेको रज्जुके समान विस्तीर्ण कण्ठनाडियोंसे निरन्तर सम्बद्ध ग्रीवा (गर्दन) वाले, उन्नत और विरल अस्थिपञ्जर (ठठरी) वाले, कन्धेपर लटके यज्ञोपवीत (जनेऊ) से युक्त, वायुवश उत्पन्न सूक्ष्मतरङ्गोंवाले, तैरते हुए मृणालसे युक्त गङ्गाप्रवाहके समान अकलुष (निर्मल वा पापरहित) अङ्गको धारण करते हुए, जो चलती हुई उँगलियोंके विवरमें स्थित निर्मल स्फटिकके टुकड़ोंसे बनाई गई अक्षमालाको मानों अतिशय उज्ज्वल बड़े-बड़े मोतियोंसे गूँथी हुई सरस्वतीकी मुक्तामालाके समान घुमा रहे थे, जो मानों लगातार घूमते हुए नक्षत्र मण्डलसे युक्त दूसरे ध्रुव थे । जो उठी हुई शिराओंसे परिणत

जरत्कल्पतरुमिव परिणतलतासञ्चयेन निरन्तर-निचितम्, अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुणसन्तान-तन्तुभिरिव निर्म्मितेन मानस-सरो-जलक्षालनशुचिना दुकुलवल्कलेनाऽद्वितीयेनेव जराजालकेन संच्छादितम्, आसन्नवर्त्तिना मन्दाकिनीसलिल-पूर्णेन त्रिदण्डोपविष्टेन स्फाटिक-कमण्डलुना विकचपुण्डरीकराशिमिव राजहंसेनोपशोभमानम्, स्थैर्येणाचलानां, गाम्भीर्य्येण सागराणां, तेजसा सवितुः, प्रशमेन तुषाररश्मेः, निर्म्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्व्वाणम्, वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्त-द्विजाधिपत्यम्, कमलासनमिवाश्रमगुरुम्, जरच्चन्दनतरुमिव भुजङ्ग-निर्म्मोक-धवलजटाकुलम्, प्रशस्त-वारणपतिमिव प्रलम्ब-कर्णबालम्, बृहस्पतिमिवाजन्म-

---

इत्यमरः। परिणतलतासञ्चयेन = परिणतानां (पाकं प्राप्तानाम्) लतानां (वल्लीनाम्) सञ्चयेन (समूहेन) निरन्तरनिचितम् (अनवरतव्याप्तम्) जरत्कल्पतरुं—जीर्णं कल्पवृक्षम्, इव अत्रोपमाऽलङ्कारः।

अमलेनेति। अमलेन = निर्मलेन, चन्द्रांऽशुभिः = इन्दुकिरणैः, इव, उत्प्रेक्षा अमृतफेनैः = पीयूषडिण्डीरैः इव, उत्प्रेक्षा। गुणसन्तानतन्तुभिः = गुणानां (विद्यातपश्चरणादीनाम्) सन्तानाः (परम्पराः) एव तन्तवः (सूत्राणि), तैः, रूपकाऽलङ्कारः। तैरिव निर्मितेन = रचितेन। उत्प्रेक्षा। मानसेत्यादिः० = मानससरः (मानसकासारः) तस्य जलं (सलिलम्) तेन क्षालितं (धौतम्), अतएव शुचि (पवित्रम्), तेन। अद्वितीयेन = अपूर्वेण, जराजालकेन = विस्रसासमूहेन, इव, उत्प्रेक्षा। दुकूलवल्कलेन = क्षौमसदृशवल्केन, संछादितम् = आच्छादितम्।

आसन्नेति। आसन्नवर्तिना = निकटस्थेन, मन्दाकिनीसलिलपूर्णेन = मन्दाकिनी (सुरदीर्घिका) तस्या यत् सलिलं (जलम्), तेन पूर्णेन (पूरितेन) त्रिदण्डोपविष्टेन = त्रिदण्डः (त्रिपादिका) तत्र उपविष्टेन (स्थितेन), स्फाटिककमण्डलुना = स्फटिकमयकरकेण, राजहंसेन = मरालेन विकचपुण्डरीकराशिं – विकसितश्वेतकमलसमूहम्, इव, उपशोभमानं = विराजमानम्। उपमा।

स्थैर्येणेति। स्थैर्येण = स्थिरतया। अचलानां = पर्वतानाम्, "संविभागं कुर्वाणम् इवे" त्यत्र सम्बन्धः, एव परत्राऽपि। गाम्भीर्येण = गम्भीरत्वेन गुणेन, सागराणां = समुद्राणाम्, तेजसा = प्रतापेन, सवितुः = सूर्यस्य। प्रशमेन = प्रशान्त्या, तुषाररश्मेः = चन्द्रस्य, निर्मलतया = स्वच्छत्वेन, अम्बरतलस्य = आकाशतलस्य। संविभागं = संविभज्यप्रदानं, कुर्वाणं = विदधानम् इव, अतिशयोक्तेरुत्प्रेक्षायाश्चाऽङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः। वैनतेयम् = गरुडम्, इव, विनताया अपत्यं पुमान् वैनतेयः तम्। "स्त्रीभ्यो ढक्" इति ढक्। स्वेत्यादिः = स्वस्य (आत्मनः) प्रभावः (सामर्थ्यम्) तेन उपात्तं (समर्जितम्) द्विजानाम् (पक्षिणां, जाबालिपक्षे—ब्राह्मणानाम्) आधिपत्यं (प्रभुत्वम्), येन तम्। "दन्तविप्राण्डजा द्विजाः" इत्यमरः। पूर्णोपमाऽलङ्कारः, एवं परत्राऽपि। कमलासनं = ब्रह्माणम्, इव- "धाताऽब्जयोनिर्द्रुहिणो विरञ्चिः कमलासनः।" इत्यमरः। आश्रमगुरुम् = आश्रमस्य (ब्रह्मचर्याद्याश्रमसमूहस्य जाबालिपक्षे तपोवनस्थानस्य), गुरुः (नियामकः), तम्।

जरच्चन्दनतरुं = जीर्णश्रीखण्डवृक्षम्, इव, भुजङ्गेत्यादिः० = भुजङ्गनिर्मोकैः (सर्पकञ्चुकैः) धवला (शुभ्रा) या जटा (शिफा) तया आकुलं (व्याप्तम्), जाबालिपक्षे—भुजङ्गनिर्मोक इव

लताओंसे निरन्तरव्याप्त पुराने कल्पवृक्षके समान थे। जो मानों चन्द्रकिरणोंसे और मानों अमृतके फेनोंसे मानों विद्या तपस्या आदि गुण पङ्क्तिरूप तन्तुओंसे निर्मित, मानस सरोवरके जलसे प्रक्षालन करनेसे पवित्र रेशमी वस्त्रके सदृश थे, बुढ़ापेके समूहकी आच्छादित निकटमें स्थित गङ्गाजीके जलसे पूर्ण, तिपाईपर स्थित स्फटिकके कमण्डलुसे मानों राजहंससे शोभित विकसित श्वेतकमल समूहके समान, जो स्थिरतासे पर्वतोंका, गम्भीरतासे समुद्रोंका, तेजसे सूर्यका, शान्तिसे चन्द्रमाका, निर्मलतासे मानों आकाशतलका संविभाग (हिस्सा) कर रहे थे, गरुडके समान अपने सामर्थ्यसे द्विजों (पक्षियों, मुनिपक्षमें ब्राह्मणों) का स्वामित्व किये हुए थे, जो ब्रह्माके समान आश्रम (ब्रह्मचर्य आदिके, मुनिपक्षमें तपोवनके) गुरु थे, जीर्ण चन्दन वृक्षके समान सर्पके केंचुलसे, मुनिपक्षमें-केंचुलके समान सफेद जटाओंसे व्याप्त थे, श्रेष्ठ गजनायकके समान लम्बे कर्ण और पुच्छसे युक्त, मुनिपक्षमें—लम्बे कर्णोंके लोमवाले थे,

वर्द्धित-कचम्, दिवसमिवोद्यदर्क-बिम्ब-भास्वर-मुखम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्, शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, अम्बिका-करतलमिव रुद्राक्ष-वलय-ग्रहण-निपुणम्, शिशिर-समयसूर्य्यमिव कृतोत्तरासङ्गम्, वडवानलमिव संतत-पयोभक्ष्यम्, शून्यनगरमिव दीनाऽनाथविपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्म-पाण्डु-रोमाश्लिष्ट-शरीरम्, भगवन्तं जाबालिमपश्यम् ।

धवला (शुभ्रा) या जटा (सटा) तया आकुलम् । "समौ कञ्चुकनिर्मोकौ" इति "व्रतिनस्तु जटा सटा" इत्युभयत्राऽप्यमरः ।

प्रशस्तेति । प्रशस्तवारणपतिं = प्रशस्तः (प्रशस्यलक्षणयुक्तः) यो वारणपतिः (हस्तिनायकः) तम् इव, प्रलम्बकर्णवालं = प्रलम्बाः (दीर्घाः) कर्णौ (श्रोत्रे) वालाः (लाङ्गूलानि) यस्य, तम् । जावालिपक्षे—प्रलम्बाः कर्णवालाः (श्रोत्रलोमानि) यस्य, तम् । "वालो ना कुन्तलेऽश्वस्य गजस्याऽपि च वालधौ । इति मेदिनी ।

बृहस्पतिमिति । बृहस्पतिम् = सुराचार्यम्, इव, आजन्मवर्द्धितकचम् = आ जन्म (जन्मन आरभ्य) वर्द्धितः (वृद्धि प्रापितः) कचः (तन्नामकः स्वपुत्रः) येन सः । जाबालिपक्षे—आजन्म वर्द्धिताः कचाः (केशाः) यस्य, तम् । "कचः केशे गुरोः सुते" इति मेदिनी ।

दिवसमिति । दिवसं = दिनम्, इव । उद्यदर्केत्यादिः० = उद्यत् (उदयं प्राप्नुवत्) यत् अर्क-मण्डलं (सूर्यमण्डलम्), जाबालिपक्षे—उद्यदर्कमण्डलम् इव, भास्वरं (दीप्तिसंपन्नम्) मुखम् (आरम्भ-भागः, जाबालिपक्षे—आननम् । यस्य, तम् ।

शरत्कालमिति । शरत्कालं = शरदृतुम्, इव, क्षीणवर्षं = क्षीणं (क्षयं प्राप्तम्) वर्षं (वृष्टिः) यस्य, तम्, जाबालिपक्षे—क्षीणाः (व्यतीताः) वर्षाः (हायनानि) यस्य, तम् । "स्याद्वृष्टौ लोक-धात्वंशे वत्सरे वर्षमस्त्रियाम् ।" इत्यमरः ।

शन्तनुमिति ।शन्तनुं = भीष्मजनकम्, इव, प्रियसत्यव्रतं = प्रियः (दयितः) सत्यव्रतः (सत्य-व्रतनामकः पुत्रः) यस्य सः, तम् । जाबालिपक्षे प्रियम् (इष्टम्) सत्यं (तथ्यम्) एव व्रतं (नियमः) यस्य, तम् ।

अम्बिकेति । अम्बिकाकरतलम् = अम्बिकायाः (भवान्याः) करतलम् (हस्ततलम्) इव, रुद्राक्षेत्यादिः० = रुद्राक्षाणां (शिवाक्षाणां, फलविशेषाणाम्) वलयं (मण्डलम्) तस्य ग्रहणम् (उपा-दानं, पत्युः कृते मालागुम्फनार्थमितिशेषः) तस्मिन् निपुणं (प्रवीणम्), जाबालिपक्षे—जपसंख्या-परिगणनार्थमितिभावः ।

शिशिरेति । शिशिरसमयसूर्यं = शिशिरसमये (शीतकाले माघ इति भावः) सूर्यः (भास्करः), तम् इव, कृतोत्तरासङ्गं = कृतः (विहितः) उत्तरस्याः (उदीच्याः दिशः) सङ्गः (सम्पर्कः) येन, तम् । जाबालिपक्षे—कृतः (धृत इति भावः) उत्तरासङ्गः (प्रावारः) येन, तम् । "द्वौ प्रावारोत्तरा-सङ्गौ समौ बृहतिका तथा ।" इत्यमरः ।

वडवाऽनलम् = बाडवाऽग्निम् इव, सन्ततपयोभक्ष्यं = सन्ततं (निरन्तरम्) पयः (जलं, मुनिपक्षे—दुग्धम्) एव भक्ष्यं (भक्षणीयं वस्तु) यस्य सः । "पयः क्षीरं पयोऽम्बु चे" त्यमरः ।

शून्येति । शून्यनगरं = जनहीनपुरम्, इव, दीनाऽनाथविपन्नशरणं = दीनाः (दरिद्राः)

जो बृहस्पतिके समान जन्मसे कच (अपने पुत्र) को, मुनिपक्षमें-कच (केश) को बढ़ाये हुए थे, जो दिनके समान उगे हुए सूर्यमण्डल-से, मुनिपक्षमें—सूर्यमण्डलके समान चमकीले मुखवाले थे, जो शरत् ऋतुके समान क्षीण वर्ष (वृष्टि, मुनिपक्षमें साल) वाले थे, जो शन्तनुके समान सत्यव्रत (भीष्म) को, मुनिपक्षमें—सत्यरूप व्रत (नियम) को प्यार करनेवाले थे, जो पार्वतीके करतलके समान रुद्राक्षमालाके गुम्फनमें, मुनिपक्षमें—जपसंख्याके परिगणनके लिए रुद्राक्षमालाको लेनेमें निपुण थे, शीतकालके समान उत्तरदिशाका सम्पर्क मुनिपक्षमें—उत्तरीय-

अवलोक्य चाहमचिन्तयम्—'अहो ! प्रभावस्तपसाम् । इयमस्य शान्तापि मूर्त्तिरुत्तप्तकनकावदाता परिस्फुरन्ती सोदामनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि, सततमुदासीनापि महाप्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्यशुष्क-नल-काश-कुसुम-निपतितानल । चटुल-वृत्ति नित्यमसहिष्णु तपस्विनां तनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या दुःसहं भवति, किमुत सकल-भुवन-वन्दित-चरणानामनवरत-तपःसलिल-क्षपितमलानां कर-तलामलकवदखिलं जगदालोकयतां

अनाथाः (स्वामिरहिताः) विपन्नाः (प्राप्तविपत्तयः, रोगाद्यभिभूता इति भावः) तेषां शरणं (गृहं, वासस्थानमिति भावः, मुनिपक्षे—तादृशानां = रक्षकम्) "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः । पशुपतिं = शिवम्, इव, भस्मेत्यादिः = भस्म (भूतिः) इव पाण्डुरा (शुक्लवर्णा) या उमा (पार्वती) तया आश्लिष्टम् (आलिङ्गितम्) शरीरं (देहः) यस्य सः, तम् । मुनिपक्षे—भस्म इव पाण्डुराणि बार्धक्यादिति भावः, यानि रोमाणि (लोमानि) तैः आश्लिष्टं (व्याप्तम्) शरीरं यस्य तम् । तादृशं भगवन्तं = लोकोत्तरज्ञानसम्पन्नं, जाबालिं = एतदाख्यं मुनिम्, अपश्यं = व्यलोकयम् ।

अवलोक्येति । अवलोक्य = दृष्ट्वा, च = पुनः, अहम्, अचिन्तयं = चिन्तितवान् । चिन्ताप्रकारामाह— अहो इति । अहो = आश्चर्यम् । तपसां = तपस्यानां, प्रभावः = सामर्थ्यम् । इयं = निकटस्थिता, शान्ता = शान्तियुक्ता, अपि, अस्य=जाबालिमुनेः, मूर्तिः = शरीरं, "मूर्तिः काठिन्यकाययो"रित्यमरः । उत्तप्तकनकाऽवदाता = उत्तप्तं (सन्तप्तम्) उत् कनकं (सुवर्णम्), तदिव अवदाता = निर्मला, उपमाऽलङ्कारः । परिस्फुरन्ती = देदीप्यमाना, सौदामनी = विद्युत्, इव, सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक् (समाना दिक्) सौदामनी "तेनैकदिक्" इति अकारप्रत्ययः । "तडित्सौदामनी विद्युत्" इत्यमरः । "सौदामिनी" त्यपपाठः । चक्षुषः = नयनस्य, तेजांसि = ज्योतींषि, प्रतिहन्ति = प्रतिहतानि करोति । इदं स्वभाववर्णनम् ।

सततमिति । सततं = निरन्तरम्, उदासीना = तटस्था, अपि, महाप्रभावतया = अतिशयसामर्थ्येन, प्रथमोपगतस्य = अपूर्वागतस्य जनस्य, भयं = भीतिम्, उपजनयति इव = उत्पादयति इव, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

शुष्केति । तनुतपसां = तनु (अल्पम्) तपः (तपस्या) येषां, तेषाम्, अपि, तपस्विनां = तापसानां, शुष्कनलेत्यादिः० = शुष्काणि (प्राप्तशोषाणि, नीरसानीति भावः) यानि नलकाशकुसुमानि (धमन-पोटगल-पुष्पाणि) तेषु निपतितः (संप्राप्तः) योऽनलः (अग्निः) तस्य इव चटुला (चञ्चला) वृत्तिः (व्यापारः, प्रसरणस्येति शेषः) यस्य तत्, "नड (ल) स्तु धमनः पोटगलः" इति "अथो काशमस्त्रियाम् । इक्षुगन्धा पोटगल" इति चाऽमरः । तेजः = प्रभावः, नित्यं = सततं, प्रकृत्या = स्वभावेन, असहिष्णु = असहनशीलं, भवति = विद्यते, सकलेत्यादिः० = सकलभुवनतलेषु (समस्तलोकतलेषु) वन्दितचरणानाम् (अभिवादितपादानाम्), अनवरतेत्यादिः० = अनवरतं (सततम्) यत् तपः (तपस्या) तेन क्षपितं (क्षीणीकृतम्) मलं (पापम्) यैः, तेषाम् । "मलोऽस्त्री पापविट्-

---

वस्त्रको धारण करनेवाले थे, जो बडवाऽग्निके समान पय (जल, मुनिपक्षमें—दूध) भक्ष्य पदार्थवाले थे । जो शून्य नगरके समान दीन अनाथ और विपत्ति पाये हुए जनका आश्रय, मुनिपक्षमें—वैसे दीन आदि जनोंके रक्षक थे । शिवजीके समान भस्म (विभूति) की सदृश शुक्लवर्णवाली पार्वतीसे आलिङ्गित शरीरवाले, मुनिपक्षमें—भस्मके समान सफेद रोमोंसे व्याप्त शरीरवाले थे, ऐसे भगवान् जाबालिको मैंने देखा ।

"मुनिको देखकर मैंने विचार किया—अहो ! तपका (कैसा) प्रभाव है ? इनकी यह मूर्ति शान्त होती हुई भी तपाये गये सोनेके समान, चमकती हुई बिजलीके समान, नेत्रके तेजको रोक देती है । निरन्तर उदासीन होकर भी अतिशय प्रभावके होनेसे पहले पहल आये हुए जनको भय-सा उत्पन्न कर देती है । सूखे हुए नरकुल और काशकुसुमोंमें पड़े हुए अग्निके समान चञ्चल वृत्तिवाला होकर थोड़ी तपस्यासे युक्त तपस्वियोंका भी तेज स्वभावसे नित्य असहनशील होता है, तो फिर सकल भुवनतलसे वन्दित चरणोंवाले, निरन्तर तपस्या रूप जलसे

दिव्येन चक्षुषा भगवतामेवंविधानामघक्षयकारिणाम्। पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां, किं पुनर्दर्शनानि। धन्यमिदमाश्रमपदमयमधिपतिर्यत्र। अथवा भुवनतलमेव धन्यमखिलमनेनाधिष्ठितमवनितल-कमलयोनिना। पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरमिव नलिनासनमपगतान्यव्यापारा मुखावलोकननिश्चलदृष्टयः पुण्याः कथाः शृण्वन्तः समुपासते। सरस्वत्यपि धन्या, याऽस्य तु सततमतिप्रसन्ने करुणाजलनिस्यन्दिन्यगाधगाम्भीर्ये रुचिरद्विजपरिवारा मुखकमलसम्पर्कमनुभवन्ती निवसति हंसीव मानसे। चतुर्मुखकमलवासि-

---

किट्टे कृपणेत्वमिधेयवत्।" इति मेदिनी। दिव्येन = लोकोत्तरेण, ज्ञानरूपेण। चक्षुषा = नेत्रेण, करतलाऽऽमलकवत् = करतले (हस्ततले) यत् आमलकं (धात्रीफलम्), तद्वत्, अखिलं = समस्तं, जगत् = लोकम्, आलोकयतां = पश्यताम्, एवंविधानाम् = एतादृशानाम्, अघक्षयकारिणां = पापनाशविधायिनां, भगवतां = षड्विधैश्वर्यसम्पन्नानां, किमुत = को वितर्कः, न कोऽपीति भावः। "आहो उताहो किमुत विकल्पे किं किमूत चे"त्यमरः।

पुण्यानीति। हि = यतः, महामुनीनां = महातपस्विनां, नामग्रहणानि = अभिधानोच्चारणानि, अपि, पुण्यानि = धर्मोत्पादकानि, दर्शनानि = अवलोकनानि, किं पुनः = किं वक्तव्यम्, अर्थापत्तिरलङ्कारः।

धन्यमिति। इदं = पुरःस्थितम्, आश्रमपदं = मुनिस्थानं, धन्यं = पुण्यवत्, "सुकृती पुण्यवान् धन्य" इत्यमरः। यत्र = यस्मिन्, अयं = समीपस्थः, जाबालिमुनिरिति भावः) अधिपतिः = अध्यक्षः।

अथवेति। अथवा = यद्वा, अवनितलेत्यादिः० = अवनितलस्य (भूतलस्य) कमलयोनिना (अब्जयोनिना, ब्रह्मदेवेनेति भावः), रूपकाऽलङ्कारः। अनेन = जाबालिना, अधिष्ठितम् = आश्रितं, भुवनतलं = लोकतलम्, एव, धन्यं = पुण्यवत्। भुवनतलस्य जाबाल्याधिष्ठिताश्रमपदस्याधारभूतत्वादिति भावः।

पुण्यभाज इति। अमी = एते, मुनयः = तपस्विनः, पुण्यभाजः = सुकृतवन्तः, खलु = निश्चयेन, यत्, अहर्निशम् = अहोरात्रम्, अपरम् = अन्यं, नलिनाऽऽसनं = कमलासनं, ब्रह्माणमिति भावः, इव, उत्प्रेक्षा। एनं = जाबालिम्, अपगताऽन्यव्यापाराः = अपगतः (दूरीभूतः) अन्यः (अपरः) व्यापारः (कार्यम्) येषां ते, अतः मुखाऽवलोकनेत्यादिः० = मुखस्य (वदनस्य, जाबालेरिति शेषः) अवलोकने (दर्शने) निश्चले (अचञ्चले, निमेषरहिते इति भावः) दृष्टी (नेत्रे) येषां ते, तादृशाः सन्तः, पुण्याः = पवित्राः, कथाः = कथनानि, शृण्वन्तः = आकर्णयन्तः, समुपासते = समुपासनां कुर्वन्ति।

सरस्वतीति। सरस्वती = भारती, अपि, धन्या = सुकृतिनी, या = सरस्वती तु, अस्य = समीपस्थस्य मुनेः, अतिप्रसन्ने = अतिशयप्रसादयुक्ते, हंसीपक्षे = अतिशयस्वच्छे, करुणाजलनिस्यन्दिनि = करुणा (दया, परदुःखप्रहाणेच्छेति भावः) एव जलं (सलिलम्), हंसीपक्षे—करुणा इव जलम्, द्रवीभावसाम्यादिति भावः। करुणाजलस्य निस्यन्दिनि (स्राविणि)। अगाधगाम्भीर्ये = अगाधम् (अतलस्पर्शम्) गाम्भीर्यं (गम्भीरता) यस्मिंस्तस्मिन्। तादृशे मानसे = चित्ते, हंसीपक्षे—मानस-

---

मलोंको क्षीण करनेवाले और दिव्य नेत्रसे संपूर्ण जगत्को करतलमें रखे गये आँवलेके समान देखनेवाले तथा पापोंको नष्ट करनेवाले ऐसे महात्माओंका क्या कहना है। महामुनियोंका नाम लेना भी पुण्यका उत्पादक होता है तो दर्शनका क्या कहना है? यह आश्रमस्थान धन्य है, जहाँपर ये अधिपति हैं। अथवा भूतलके ब्रह्मदेव इनसे अधिष्ठित संपूर्ण भूतल ही धन्य है। ये मुनिलोग पुण्यसम्पन्न हैं जो कि दिनरात अन्य कार्योंको छोड़कर दूसरे ब्रह्माके समान इनके मुख देखनेमें दृष्टिको निश्चल कर पवित्र कथाओंको सुनते हुए सेवा करते रहते हैं। सरस्वती भी धन्य है जो इनके अत्यन्त प्रसन्न (मानससरोवरके पक्षमें निर्मल) करुणारूप जलको (मानसके पक्षमें करुणाके समान जलको) प्रवाहित करनेवाले अगाध गम्भीरतासे युक्त मानस (चित्त वा मानससरोवर) में हंसीके समान सुन्दर दाँतोंके (हंसीके पक्षमें—सुन्दर पक्षियोंके) परिवारसे युक्त होकर मुखरूप कमलों (हंसी पक्षमें मुखोंके समान कमलों)-

भिश्चतुर्वेदैः सुचिरादिव वेदमपरमुचितमासादितं स्थानम्। एनमासाद्य शरत्कालमिव कलि-जलद-समय-कलुषिताः प्रसादमुपगताः पुनरपि जगति सरित इव सर्वविद्याः। नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूत-कलिकाल-विलसितेन धर्म्मेण न स्मर्य्यते कृत-युगस्य। धरणितलमनेनाधिष्ठितमालोक्य न वहति नूनमिदानीं सप्तर्षिमण्डल-निवासाभिमान-

---

सरोवरे, "मानसं सरसि स्वान्ते," इति मेदिनी। हंसी इव = मराली इव उपमाऽलङ्कारः। रुचिर-द्विजपरिवारा = रुचिराः (सुन्दराः) द्विजाः (दन्ताः, हंसीपक्षे—पक्षिणः) परिवाराः (परिजनाः) यस्याः सा तादृशी सती, मुखकमलसम्पर्कं = मुखम् (वदनम्) एव कमलं (पद्मं) हंसीपक्षे—मुखानि इव कमलानि, तेषां सम्पर्कसुखम् (सम्बन्धानन्दम्) अनुभवन्ती = अनुभवं कुर्वती, सततं = निरन्तरं निवसति = निवासं करोति। उपमाऽलङ्कारः।

चतुर्मुखेति। चत्वारि (चतुःसंख्यकानि) यानि मुखकमलानि (वदनपद्मानि) तद्वासिभिः (तन्निवासशीलैः), चतुर्वेदैः = चतुर्भिर्वेदैः (ऋग्यजुः-सामाऽथर्वसंज्ञकैः)। सुचिरात् = बहुकालात्, इव, उत्प्रेक्षा। इदम् = निकटस्थं, अपरम् = अन्यत्, द्वितीयमितिभावः। उचितं=योग्यं, स्थानं = वासस्थानम्, आसादितं = प्राप्तम्। अत्रोत्प्रेक्षया जाबालिमुखस्य ब्रह्ममुखतुल्यत्वं तपोवनस्य पवित्रत्वं ध्वन्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः।

एनमिति। शरत्कालम् इव = शरदृतुम् इव, एनं = जाबालिमुनिम्, आसाद्य = प्राप्य, कलि-जलदसमयकलुषिताः = कलिः (चतुर्थयुगम्) एव जलदसमयः (मेघकालः, वर्षर्तुरिति भावः) तेन कलुषिताः (मलिनीकृताः)। सरित्पक्षे—कलिरिव जलदसमयः "उपमानानि सामान्यवचनैः" इति समासः। जगति=लोके, सरितः=नद्यः, इव, सर्वविद्याः = सकलाः वेदादिविद्याः, पुनरपि = भूयोऽपि, प्रसादं = निर्दोषत्वं, पठनपाठनादिव्यापारसातत्येनेति भावः, सरित्पक्षे—प्रसादं = नैर्मल्यम्, उपगताः= प्राप्ताः। विद्या अष्टादश, ता यथा विष्णुपुराणे—

"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्याय एव च।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव च॥" इति।

सरित्पक्षे शरदि अगस्त्योदये जलं प्रसन्नं भवतीति प्रसिद्धम्। पूर्णोपमाऽलङ्कारः।

नियतमिति। इह = अस्मिन् आश्रमे, सर्वात्मना = सकलयत्नेन, नियतं = निश्चितं यथा तथा, कृताऽवस्थितिना = कृता (विहिता) अवस्थितिः (अवस्थानम्) येन, तेन। परिभूतेत्यादि॰=परिभूतं (तिरस्कृतम्) कलिकालस्य (चतुर्थयुगसमयस्य) विलसितं (विलासः, चेष्टारूप इति भावः) येन, तेन। भगवता = ऐश्वर्यसम्पन्नेन। धर्मेण = सुकृतेन, कृतयुगस्य = सत्ययुगस्य, सत्ययुगमिति भावः। "अधीगर्थदयेषां कर्मणि" इति कर्मणि षष्ठी। न स्मर्यते = न चिन्त्यते। कलियुगे सत्यपि तपोवनेऽस्मिन्धर्मस्य सर्वतो भावेन विलासो वर्तत इति भावः।

धरणितलमिति। अनेन = जाबालिमुनिना, अधिष्ठितम् = आश्रितं, धरणितलं=भूतलम्, आलो-

---

के सम्पर्क सुखका निरन्तर अनुभव करती हैं। ब्रह्माजीके चार मुखरूप कमलोंमें रहनेवाले चार वेदोंने बहुत समयके अनन्तर यह दूसरा उचित स्थान पा लिया। शरत्ऋतुके समान इनको पाकर वर्षाऋतुके समान कलियुगसे कलुषित सकल विद्याओंने जैसे वर्षासे कलुषित (मलिन) नदियां शरत्को प्राप्त कर स्वच्छता पाती हैं वैसे ही जगत्में निर्मलताको पा लिया है। निश्चित रूपसे इस (आश्रम) में सब यत्नसे निवास करनेवाला और कलियुगके विलास-को तिरस्कृत करनेवाला ऐश्वर्य संपन्न धर्म सत्ययुगका स्मरण नहीं करता है। इन (मुनि) से आश्रित भूतलको देखकर आकाश-मण्डल सप्तर्षियोंके निवासका अभिमान नहीं करता होगा, ऐसा मालूम होता है। अहो! यह जरा

मम्बरतलम् । अहो ! महासत्त्वेयं जरा, यास्य प्रलय-रवि-रश्मि-निकर-दुर्निरीक्ष्ये रजनिकर-किरण-पाण्डु-शिरोरुहे जटाभारे फेनपुञ्ज-धवला गङ्गेव पशुपतेः क्षीराहुतिरिव शिखाकलापे विभावसोर्निपतन्ती न भीता । बहुलाज्य-धूम-पटल-मलिनीकृताश्रमस्य भगवतः प्रभावाद्भीत-मिव रवि-किरणजालमपि दूरतः परिहरति तपोवनम् । एते च पवन-लोल-पुञ्जीकृत-शिखा-कलापा रचिताञ्जलय इवात्र मन्त्रपूतानि हवींषि गृह्णन्ति एतत्प्रीत्याशुशुक्षणयः । तरलित-दुकूलवल्कलोऽयञ्चाश्रमलता-कुसुम-सुरभि-परिमलो मन्दमन्दचारी सशङ्क इवास्य समीपमुपस-

क्य = दृष्ट्वा, अम्बरतलम् = आकाशमण्डलम्, इदानीम् = अधुना । सप्तर्षिमण्डलेत्यादि० = सप्तर्षीणां (कश्यपादीनां, मरीच्यादीनां वा) यत् मण्डलं (समूहः) तस्य निवासः (अवस्थानम्), तेन अभिमानम् (अहङ्कारम्), न वहति = नो धारयति, नूनम् = इव । अस्य मुनेः सप्तर्षिसमत्वादिति भावः । अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः ।

अहो इति । अहो = आश्चर्यम् । इयम् = एषा, अस्य = मुनेः, जरा = विस्रसा, वार्द्धक्यमिति भावः । महासत्त्वा = महाबला, या, अस्य = निकटस्थितस्य, मुनेः, प्रलयेत्यादिः० = प्रलयः (कल्पान्तः) तस्मिन् यो रविः (सूर्यः) तस्य रश्मिनिकरः (किरणसमूहः) स इव दुर्निरीक्ष्ये (दुःखेन निरीक्षणीयः, द्रष्टुमशक्य इति भावः), उपमा, तस्मिन् रजनिकरेत्यादिः० = रजनिकरस्य (चन्द्रमसः) किरणाः (मयूखाः) त एव पाण्डवः (श्वेताः) शिरोरुहाः (केशाः) यस्य, तस्मिन् । उपमा, तादृशे जटा-भारे = सटासमूहे । पशुपतेः = शङ्करस्य, जटाभारे, फेनपुञ्जधवला = फेनस्य (डिण्डीरस्य) पुञ्जः (समूहः), तेन धवला (शुभ्रवर्णा), गङ्गा=भागीरथी' इव । तथा विभावसोः = अग्नेः, शिखाकलापे = ज्वालासमूहे, फेनपुञ्जधवला=फेनपुञ्जः इव धवला, उपमा । क्षीराहुतिः = दुग्धाहुतिः, इव, उपमा । निपतन्ती = निपतनं कुर्वती सती, न भीता = न त्रस्ता । अत्राऽनेकोपमानामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

बहुलाज्येति । बहुलाः (प्रचुराः) ये आज्यधूमाः (घृतधूमाः), तेषां पटलं (समूहः) तेन मलिनीकृतः (मलीमसीकृतः) आश्रमः (तपस्विनिवासः) यस्य, तस्य, तादृशस्य भगवतः = ऐश्वर्य-सम्पन्नस्य, जाबालिमुनेरिति भावः, प्रभावात् = माहात्म्यात्, भीतं = त्रस्तम्, इव, उत्प्रेक्षा । रवि-किरणजालं=सूर्यरश्मिसमूहः, अपि, तपोवनम् = आश्रमस्थानं, दूरतः=विप्रकृष्टप्रदेशात् इव, परिहरति = परित्यजति । अनेनाश्रमो मलिनीकृतोऽहं मालिन्यं न्यवारयिष्यं चेत्तर्ह्ययमकोपिष्यदिति भावेनेति भावः । एते चेति । अत्र = अस्मिन् आश्रमे, पवनेत्यादिः० = पवनेन (वायुना) लोलः (चञ्चलः) पुञ्जी-कृतः (समूहीकृतः) शिखाकलापः (ज्वालासमूहः) येषां ते । एते = समीपवर्तिनः, आशुशु-क्षणयः = अग्नयः, दक्षिणाग्न्यादय इति भावः । रचिताञ्जलयः = विहितहस्तसंपुटाः इव, उत्प्रेक्षा । "अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसंपुटे कुडवेऽपि च ।" इति मेदिनी । एतत्प्रीत्या = एतस्य (जाबालिमुनेः), प्रीत्या (प्रेम्णा), मन्त्रपूतानि = मनुपवित्राणि, हवींषि = हव्यद्रव्याणि । चरुपुरोडाशादीनीतिभावः । गृह्णन्ति = स्वीकुर्वन्ति ।

तरलितेति । तरलितानि (चञ्चलीकृतानि) दुकूलवल्कलानि (क्षौमसदृशवल्कानि) येन सः । आश्रमेत्यादिः०-आश्रमे (तपोवनाऽऽवासे) यानि लताकुसुमानि (वल्लीपुष्पाणि) तेषां सुरभिपरिमल

(वृद्धावस्था) अतिशय बलवाली है, जो प्रलयकालकी सूर्यकिरणोंके समान दुःखसे देखे जानेवाले चन्द्रकिरणोंके समान सफेद केशोंवाले इन (मुनि) के जटासमूहमें शङ्करके जटाभारमें फेनोंसे सफेद गङ्गाके समान और अग्निके ज्वालासमूहमें फेनोंके समान सफेद दूधकी आहुतिके समान पड़ती हुई भी डरी नहीं । प्रचुर घृतधूमके समूहसे मलिन आश्रमवाले भगवान् जाबालिके प्रभावसे भीतके समान सूर्यकिरणसमूह भी तपोवनको दूरसे परित्याग करता है । इस आश्रममें वायुसे चञ्चल और इकट्ठे हुए ज्वालासमूहवाले ये निकटस्थित अग्निगण मानों अञ्जलि बांधकर इन (मुनि) की प्रीतिसे मन्त्रसे पवित्र हवियोंको ग्रहण करते हैं । इनके क्षौमके समान वल्कलको चञ्चल करनेवाला और आश्रममें लताओंके फूलोंके सुगन्धसे सुगन्धित तथा मन्द-मन्द चलनेवाला यह वायु मानों शङ्कायुक्त-सा होकर

र्पति गन्धवाहः। प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवन्ति तेजांसि। सर्वतेजस्विनामयञ्चाग्रणीः। द्विसूर्य्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं महात्मना। निष्कम्पेव क्षितिरेतदवष्टम्भात्। एष-प्रवाहः करुणारसस्य, सन्तरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृष्णालता-गहनस्य, सागरः सन्तोषामृत-रसस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य, अस्तगिरिरसद्ग्रहकस्य, मूलमुपशमतरोः, नाभिः प्रज्ञाचक्रस्य, स्थितिवंशो धर्म्मध्वजस्य, तीर्थं सर्वविद्यावताराणाम्, वडवानलो लोभार्णवस्य, निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागपल्लवस्य, मन्त्रः क्रोधभुजङ्गस्य,

---

=घ्राणतर्पणगन्धयुक्तः, मन्दमन्दचारी=अतिमन्थरचरणशीलः, गन्धवाहः=वायुः, सशङ्कः=शङ्कासहितः इव, उत्प्रेक्षा। भीत्येति शेषः। तादृशः सन्, अस्य=मुनेः, समीपं=निकटम्, उपसर्पति=उपगच्छति। अस्याश्रमदुकूलवल्कलसंचालनाद्भयोः सशङ्कत्वेनाऽतिमन्थरसंचरणं समुचितमिति भावः।

प्राय इति। प्रायः=बाहुल्येन, महाभूतानां=पृथिव्यादीनां पञ्चानामपि, बहिरिन्द्रियग्राह्य-विशेषगुणत्वं भूतत्वमिति नैयायिकाः। तेजांसि=महांसि, दुरभिभवानि=दुःखेनाऽभिभवितुं (पराजेतुम्) शक्यानि भवन्ति। अयं=निकटस्थः, मुनिः। सर्वतेजस्विनां=समस्ततेजःसंपन्नानाम्, अग्रणीः=श्रेष्ठः।

द्विसूर्यमिति। अनेन=समीपस्थितेन, महात्मना=महाऽनुभावेन, अधिष्ठितम्=आश्रितं, जगत्=भुवनं, द्विसूर्यं=द्वौ सूर्यौ (भास्करौ) यस्मिंस्तत्, सूर्यद्वयसहितम्, इव, आभाति=दीप्यते। उत्प्रेक्षा।

निष्कम्पेति। क्षितिः=पृथिवी। एतदवष्टम्भात्=एतस्य (अस्य, मुनेः) अवष्टम्भात् (आधारात्), निष्कम्पा=कम्परहिता, इव, स्थिरेति भावः। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

एष इति। एष=समीपतरवर्ती, मुनिरिति भावः करुणारसस्य=दयाजलस्य, प्रवाहः=ओघः। रूपकाऽलङ्कार एवं परत्राऽपि। संसारसिन्धोः=भवसागरस्य, संतरणसेतुः=पारगमनालिः, "सेतुरालौ स्त्रियां पुमान्" इत्यमरः। अयं मुनिस्तत्त्वज्ञानोपदेशेन साधकान् भवसिन्धुपारं नयतीति भावः। अयं क्षमाऽम्भसां=तितिक्षाजलानाम्, आधारः=आश्रयः, अयं, तृष्णालतागहनस्य=तृष्णा (विषयस्पृहा) एव लता (वल्ली) तद्गहनस्य (तद्वनस्य), परशुः=परश्वधः। रूपकाऽलङ्कारः। "तृष्णे स्पृहा-पिपासे द्वे" इति "गहनं काननं वनम्" इति चाऽमरः। यथा परशुर्लतां छिनत्ति तथैवाऽयं तत्त्वोपदेशेन विषयस्पृहां छिनत्तीति भावः। अयं सन्तोषाऽमृतरसस्य=सन्तोषः (सन्तुष्टिः, यदृच्छालाभेन परितुष्टिरिति भावः) एव अमृतरसः (पीयूषद्रवः), तस्य, सागरः=समुद्रः। सिद्धिमार्गस्य=सिद्धीनाम् (अणिमादीनाम्) मार्गस्य (पथः), मुक्तिमार्गस्य वा "उपदेष्टे"ति कृदन्तपदयोगे "कर्तृकर्मणोः कृतिः" इति कर्मणि षष्ठी। उपदेष्टा=उपदेशकः। असद्ग्रहस्य=अशुभग्रहस्य पापग्रहस्येति भावः। अस्तगिरिः=अस्तपर्वतः, पापग्रहस्य निवारणादिति भावः। उपशमतरोः=शान्तिवृक्षस्य, मूलं=बुध्नः, कारणमिति भावः। प्रज्ञाचक्रस्य=बुद्धिचक्रस्य, नाभिः=मध्यभागः। धर्मध्वजस्य=सुकृतपताकायाः, स्थितिवंशः=अवस्थानवेणुः, आधार इति भावः। सर्वविद्याऽवताराणां=सकलविद्याप्रवेशानां, तीर्थं=घट्टः, छात्राणां सकलान्वीक्षिक्यादिविद्याप्रवेशहेतुभूतोऽयमिति भावः। लोभाऽर्णवस्य=लिप्सासागरस्य, वडवाऽनलः=वडवाऽग्निः, लोभोपशमहेतुत्वादिति भावः। शास्त्ररत्नानां=वेदादिशास्त्रमणीनां, निकषोपलः=

इनके समीप आ रहा है। प्रायः पृथ्वी आदि महाभूतोंके तेज दुःखसे पराजयके योग्य होते हैं। ये (मुनि) तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ हैं। इन महात्मासे आश्रित यह जगत् मानों दो सूर्योंसे युक्त है। इनके अवलम्बनसे पृथ्वी मानों कम्पसे रहित हुई है। ये (मुनि) करुणाजलके प्रवाह हैं, संसाररूप समुद्रके पार जानेके लिए सेतु (पुल) हैं, क्षमारूप जलके आधार हैं, तृष्णारूप लताओंके वनके कुल्हाड़ी हैं, सन्तोषरूप अमृतरसके समुद्र हैं, सिद्धिमार्गके उपदेशक हैं, अशुभग्रहके अस्तपर्वत हैं। शान्तिरूप वृक्षकी जड़ हैं, बुद्धिरूप चक्रके नाभि (मध्यभाग) हैं, धर्मरूप पताकाके आधारवंश हैं, समस्त विद्याओंके प्रवेशके तीर्थ (घाट) हैं, लोभरूप समुद्रके वडवाऽग्नि हैं,

दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलाबन्धो नरक-द्वाराणाम्, कुलभवनमाचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम्, अभूमिर्मदविकाराणाम्, दर्शकः सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साह-चक्रस्य, आश्रयः सत्त्वस्य, प्रतिपक्षः कलिकालस्य, कोशस्तपसः, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य, प्रभवः पुण्य-सञ्चयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अरातिर्विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः, अननुकूलोऽभिमानस्य, असम्मतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य, अनभिमुखः सुखानाम् ।

शाणपाषाणः, वेदादिशास्त्रपरीक्षाहेतुत्वादिति भावः । "शाणस्तु निकषः कष" इत्यमरः । रागपल्लवस्य = रागः (विषयाऽभिलाषः) एव पल्लवं (किसलयम्) तस्य, दावाऽनलः = वनहुताऽशनः, रागनिर्वापणादिति भावः । क्रोधभुजङ्गस्य = कोपसर्पस्य, मन्त्रः = मनुभूतः, शान्तिकारकत्वादिति भावः । मोहाऽन्धकारस्य = अज्ञानतिमिरस्य, दिवसकरः = सूर्यः । सूर्योऽन्धकारमिवाऽयमज्ञानं निवारयतीति भावः । सर्वत्रैव रूपकं, तथैकस्य जाबालिमुनेर्विषयभेदेनाऽनेकधोल्लेखादुल्लेखाऽलङ्कारश्चेति द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

अर्गलेति । अयं नरकद्वाराणां = निरयप्रतीहाराणाम्, अर्गलाबन्धः = उद्घाटनप्रतिबन्धः, ज्ञानोपदेशेन नरकप्रवेशप्रतिरोधादिति भावः । आचाराणां = धर्माऽनुष्ठानानां, कुलभवनं = मूलगृहम् । मङ्गलानां = कल्याणानाम्, आयतनं = निकेतनम् । सकलमाङ्गलिककृत्याधारभूतत्वादिति भावः । त्रिष्वपि वाक्येषु रूपकोल्लेखयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

अभूमिरिति । मदविकाराणाम् = अहङ्कारविकृतीनाम्, अभूमिः = अस्थानम्, अहङ्काररहित इति भावः । सत्पथानाम् = उत्तममार्गाणां, दर्शकः = दर्शनकारकः, उपदेष्टेति भावः । साधुतायाः = सज्जनतायाः, उत्पत्तिः = उद्गमस्थानमित्यर्थः । उत्साहचक्रस्य=अध्यवसायचक्रस्य, नेमिः = चक्रधारा, उत्साहस्याधार इति भावः । "उत्साहोऽध्यवसायः स्यात्" इत्यमरः । चक्रधारा प्रधिर्नेमिः" इति यादवः । रूपकमलङ्कारः । सत्त्वस्य = सत्त्वगुणस्य, आधारः = आश्रयः । रजस्तमोगुणयोरभावादिति भावः । कलिकालस्य = चतुर्थयुगसमयस्य, प्रतिपक्षः = शत्रुः, सत्यत्रेताद्वापरयुगधर्माणां सततानुष्ठातृत्वेनेति भावः । तपसः = तपस्यायाः, कोशः = भाण्डागारम् । सत्यस्य = तथ्यस्य, सखा = मित्रं, सततसहचारित्वादिति भावः । आर्जवस्य = सरलतायाः, क्षेत्रं = केदारः, उत्पत्तिस्थानमिति भावः । ऋजोर्भाव आर्जवम्, अण् प्रत्ययः । पुण्यसंचयस्य = धर्मसमूहस्य, प्रभवः = उत्पत्तिस्थानम् । प्रभवति अस्मादिति प्रभवः, प्रोपसर्गपूर्वकात् "भू" धातोः "ऋदोरप्" इत्यप्प्रत्ययः । अध्यापनोपदेशनाद्याचरणात्पुण्यजननादिति भावः । मत्सरस्य = अन्यशुभद्वेषस्य, अदत्ताऽवकाशः = अदत्तः (अप्रत्तः) अवकाशः (स्थानम्) येन सः । स्वहृदये मत्सरस्याऽग्रहणादिति भावः । विपत्तेः = आपदः, अरातिः = शत्रुः, तपःप्रभावेण विनाशकत्वादिति भावः । परिभूतेः = तिरस्कारस्य, अस्थानम् = अपदम् । अभिमानस्य= अहङ्कारस्य, अननुकूलः = प्रतिकूलः, निवर्तकत्वेनेति भावः । दैन्यस्य = दीनतायाः, असंमतः = अनभीष्टः । रोषस्य = क्रोधस्य, अनायत्तः = न अधीनः, तस्य निग्रहादिति भावः । "अधीनो निघ्न आयत्तः" इत्यमरः । सुखानां = प्रमोदानाम्, अनभिमुखः = पराङ्मुखः, सतततपश्चरणेनेति भावः ।

शास्त्ररूप रत्नोंकी कसौटी हैं, विषयोंके अभिलाषरूप पल्लवके दावाऽग्नि हैं, क्रोधरूप सर्पके (वशकारक) मन्त्र हैं, मोहरूप अन्धकारके (हटानेके लिए) सूर्य हैं, नरकके द्वारोंके (बन्द करनेके लिए) अर्गलाबन्ध हैं, आचारोंके कुलभवन (मूलगृह) हैं, मङ्गलोंके गृह (आधार) हैं, मदके विकारोंके अभूमि (अस्थान) हैं, सन्मार्गोंके दर्शक (दिखलानेवाले) हैं, सज्जनताके उत्पत्ति-स्थान हैं, उत्साहरूप चक्रके नेमि (धार) हैं, सत्त्वगुणके आश्रय हैं, कलियुगके शत्रु हैं, तपस्याके कोश (खजाना) हैं, सत्यके मित्र हैं, सरलताके क्षेत्र हैं, पुण्यसञ्चयके उत्पत्ति-स्थान हैं, मात्सर्यको स्थान नहीं देनेवाले हैं, विपत्तिके वैरी हैं, तिरस्कारके स्थान नहीं हैं, अहङ्कारके अनुकूल नहीं हैं, (प्रतिकूल हैं)। दीनताके अभीष्ट नहीं हैं, क्रोधके अधीन नहीं हैं, ये सुखोंके सम्मुख नहीं हैं, (पराङ्मुख

अस्य भगवतः प्रभावादेवोपशान्तवैरमपगतमत्सरं तपोवनम्।

अहो! प्रभावो महात्मनाम्। अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तात्मानस्तिर्य्यञ्चोऽपि तपोवन-वसति-सुखमनुभवन्ति। तथा हि एष विकचोत्पलवन-रचनानुकारिणमुत्पतच्चारुचन्द्रकशतं हरिण-लोचन-द्युति-शबलमभिनव-शाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातपाहतो निःशङ्कमहिः। अयमुत्सृज्य मातरमजातकेसरैः केसरिशिशुभिः सहोपजातपरिचयः क्षरत्क्षीरधारं पिबति कुरङ्ग-शावकः सिंहीस्तनम्। एष मृणाल-कलापाशङ्किभिः शशिकर-

---

अस्येति। अस्य = संमुखस्थस्य, भगवतः = ऐश्वर्यसम्पन्नस्य मुनेः, प्रभावात् = अनुभावात्, एव, तपोवनम् = तापसाश्रयविपिनम्, उपशान्तवैरम् = उपशान्तं (दूरीभूतम्) वैरं (विरोधः) यस्मिंस्तत्। तथा च—अपगतमत्सरम् = अपगतः (विनष्टः) मत्सरः (अन्यशुभद्वेषः) यस्मिंस्तत्।

अहो इति। अहो = आश्चर्यम्। महात्मनां = महानुभावानां, प्रभावः = महत्त्वम्।

अत्रेति। हि = यस्मात्कारणात्। अत्र = इह, तपोवने, तिर्यञ्चः = पशुपक्ष्यादयः, अपि, शाश्वतिकं = सदातनं, शश्वद्भवः शाश्वतिकः, तम्। "कालाट्ठञ्" इति ठञ्, निपातनात् "इसुसुक्तान्तात्कः" इति कादेशः, "अव्ययानां भमात्रे टिलोपः" इति न। विरोधं = विद्वेषम्, अपहाय = त्यक्त्वा, उपशान्तात्मानः = उपशान्तः (उपशान्तिं गतः) आत्मा (स्वभावः) येषां ते, तादृशाः सन्तः। तपोवनवसतिसुखं = तपोवने (तपश्चरणविपिने) या वसतिः (निवासः), तस्य सुखम् (आनन्दम्), अनुभवन्ति = अनुभवविषयं कुर्वन्ति।

तथाहीति। एषः = समीपतरवर्ती, अहिः = सर्पः, आतपाहतः = आतपेन (सूर्यद्योतेन, घर्मेणेति भावः) आहतः (ताडितः, सन्तप्त इति भावः) सन्। विकचेत्यादिः० = विकचानाम् (विकसितानाम्) उत्पलानां (कुवलयानाम्) यत् वनं (विपिनम्), तस्य या रचना (निर्मितिः) तदनुकारिणम् (तद्विडम्बिनम्)। उत्पतच्चारुचन्द्रकशतम् = उत्पतत् (उद्गच्छत्) चारूणां (सुन्दराणाम्) चन्द्रकाणां (मेचकानाम्) शतं (समूहः), यस्मिंस्तम्। हरिणलोचनद्युतिशबलं = हरिणस्य (मृगस्य) लोचने (नेत्रे) तयोर्द्युतिः (कान्तिः), सा इव शबलम् (कर्बुरम्), अभिनवशाद्वलम् = नवतृणयुक्तभूभागम्, इव शिखिनः (मयूरस्य), कलापं (बर्हम्), निःशङ्कं = शङ्कारहितं, निर्भयं यथा तथेति भावः। विशति = प्रविशति।

अयमिति। अजातकेसरैः = अनुत्पन्नस्कन्धवालैः, केसरिशिशुभिः = सिंहशावकैः, सह = समम्, उपजातपरिचयः = उत्पन्नसंस्तवः, अयं = समीपवर्ती, कुरङ्गशावकः = मृगशिशुः, मातरं = स्वजननीम्, उत्सृज्य = विहाय, क्षरत्क्षीरधारं = क्षरन्ती (स्रवन्ती) क्षीरधारा (दुग्धसन्ततिः) यस्मात्, तम्। तादृशं सिंहीस्तनं = केसरिणीकुचं, पिबति = धयति।

एष इति। एषः = समीपतरवर्ती, मृगपतिः = सिंहः, मृणालकलापाशङ्किभिः = मृणालानां (बिसानाम्) कलापम् (समूहम्) आशङ्कन्ते तच्छीलास्तैः। तादृशैः द्विरदकलभैः = हस्तिशावकैः, आकृष्यमाणम् = अवकृष्यमाणं, शशिकरधवलं = शशिकरः (चन्द्रकिरणः) स इव धवलः (शुभ्रः),

---

है)। इन भगवान् (जाबालि) के प्रभावसे ही तपोवन विरोध और ईर्ष्यासे रहित हो गया है। अहो! महात्माओंका प्रभाव (कैसा है?)। इस (तपोवन) में तिर्यग्गण (पशु-पक्षी आदि) भी सनातन विरोधको छोड़कर शान्त स्वभावाले होकर तपोवनमें निवासके सुखका अनुभव करते हैं। जैसे कि—यह सर्प धूपसे सन्तप्त होकर विकसित कमलवनकी रचनाका अनुकरण करनेवाले उगे हुए सैकड़ों चन्द्रकों (पङ्खों) से युक्त मृगके नेत्रोंकी कान्तिके सदृश चितकबरे, और नये तृणयुक्त भूभागके समान मयूरके पङ्खमें निःशङ्क होकर प्रवेश कर रहा है। जिनके कन्धोंके बाल (केसर) उत्पन्न नहीं है ऐसे सिंहशावकोंके साथ परिचयवाला यह मृगका शावक दूधकी धाराओंको बहानेवाले सिंहीके स्तनको पी रहा है। यह सिंह मृणालसमूहकी शङ्का करनेवाले हाथीके बच्चोंसे खींचे गये

धवलं सटाभारम् आमीलितलोचनो बहु मन्यते द्विरदकलभैराकृष्यमाणं मृगपतिः। इदमिह कपिकुलमपगत-चापलमुपनयति मुनि-कुमारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि। एते च न निवारयन्ति मदान्धा अपि गण्डस्थलीभाञ्जि मदजल-पाननिश्चलानि मधुकरकुलानि सञ्जातदयाः कर्णतालैः करिणः। किं बहुना, तापसाग्निहोत्रधूमलेखाभिरुत्सर्पन्तीभिरनिशमुपपादितकृष्णाजिनोत्तरा-सङ्गशोभा फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतनास्तरवोऽपि सनियमा इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः। किं पुनः सचेतनाः प्राणिनः।

एवं चिन्तयन्तमेव मां तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायामेकदेशे स्थापयित्वा हारीतः पादा-वुपगृह्य कृताभिवादनः पितुरनतिसमीपवर्तिनि कुशासने समुपाविशत्। आलोक्य तु मां सर्व

तं, सटाभारम् = केशरसमूहम्, आमीलितलोचनः = निमीलितनयनः सन्, बहु = अधिकं, मन्यते = जानीते, कोपस्थान आद्रियत इति भावः। अत्र "शशिकरधवलम्" इत्यत्रोपमा, सटाभारे मृणाल-कलापभ्रान्त्या भ्रान्तिमानलङ्कारश्चेति द्वयोरङ्गाऽङ्गिभावेन सङ्करः।

इदमिति। इह = अत्र, तपोवने, इदं = समीपवर्ति, कपिकुलं = वानरसमूहः। अपगतचापलं = निर्गतचाञ्चल्यं सत्। स्नातेभ्यः = कृतमज्जनेभ्यः, मुनिकुमारकेभ्यः = तापसबालकेभ्यः, फलानि = सस्यानि, उपनयति = समीपं प्रापयति, समर्पयतीति भावः।

एत इति। एते = समीपतरस्थाः, करिणः = हस्तिनः, मदाऽन्धाः=मदमत्ताः, अपि गण्डस्थली-भाञ्जि=कपोलफलकश्रितानि, मदजलपाननिश्चलानि=मदजलस्य (दानसलिलस्य) पानं (धयनम्), तेन निश्चलानि (चाञ्चल्यरहितानि, स्थिराणीति भावः) तादृशानि मधुकरकुलानि = भ्रमरसमूहान्, संजातदयाः = समुत्पन्नकरुणाः, सन्तः। कर्णतालैः = श्रोत्रताडनैः न निवारयन्ति = नो दूरीकुर्वन्ति।

किं बहुनेति। बहुना = अधिकेन, किम्। अनिशं = निरन्तम्, उत्सर्पन्तीभिः = ऊर्ध्वं प्रसरन्तीभिः, तापसाऽग्निहोत्रधूमलेखाभिः = तापसानां (तपस्विनाम्) यानि अग्निहोत्राणि (समन्त्रा-ग्निहोमाः), तेषां धूमलेखाभिः (धूमरेखाभिः)। **उपपादितेत्यादिः०** उपपादिता (संपादिता) कृष्णाजिनम् (कृष्णसारमृगचर्म) एव उत्तरासङ्गः (प्रावारः) तस्य शोभा (कान्तिः) येषां ते। तथा फलमूलभृतः = सस्यकन्दधारिणः, वल्कलिनः = वल्कलयुक्ताः, निश्चेतनाः = अल्पचैतन्ययुक्ताः, अत्र ज्ञानरहिता इति व्याख्याऽनुपयुक्ता, यतस्तरवोऽन्तःसंज्ञा भवन्ति। तदुक्तं भगवता मनुना— "तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना। अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः" ॥ १–४९। इति। तादृशाः, अस्य भगवतः = जाबालेः, तरवः=वृक्षाः, अपि। सनियमाः=नियमसहिताः, इव, लक्ष्यन्ते = दृश्यन्ते, सचेतनाः = उत्कटचैतन्ययुक्ताः, प्राणिनः = जीवाः, मानवादय इति भावः। किं पुनः = पुनः किम्। अत्र "कृष्णाजिनोत्तरासङ्गशोभा" इत्यत्रोपमा, "सनियमा इवे"त्यत्रोत्प्रेक्षा चेत्यनयोरङ्गाङ्गि-भावेन सङ्करः।

एवमिति। एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण। चिन्तयन्तं=विचारयन्तम्, एव, मां, तस्यां = पूर्वोक्तायाम्, एव, अशोकतरोः = वञ्जुलवृक्षस्य, अधश्छायायां = निम्नवर्तिच्छायायाम्, एकदेशे = एकस्मिन् प्रदेशे,

चन्द्रकिरणके समान सफेद केसरसमूहको आंखोंको मूँदता हुआ आदर कर रहा है। यहां वानरोंका झुण्ड चञ्चलताको छोड़ता हुआ स्नान किये हुए मुनिकुमारोंको फल दे रहा है। ये हाथी मदसे मत्त होते हुए भी कपोलस्थलपर बैठे हुए मदजलके पानसे निश्चल भ्रमरसमूहको दयायुक्त होकर कर्णताडनोंसे नहीं हटा रहे हैं। अधिकसे क्या ? निरन्तर फैलती हुई तपस्वियोंके अग्निहोत्रकी धूमरेखाओंसे कृष्णसार मृगके चर्मरूप उत्तरीयकी शोभाको सम्पादित करते हुए फलमूल धारण करनेवाले वल्कलसे युक्त भगवान् जाबालिके अल्प चैतन्यवाले वृक्ष भी नियमयुक्तके समान देखे जा रहे हैं तो फिर चैतन्ययुक्त प्राणियोंका क्या कहना ?

ऐसा विचार करते हुए ही मुझको अशोक वृक्षकी उसी नीचेकी छायामें एक जगहपर रखकर हारीत पैरों-पर पड़कर पिता (जाबालि) को प्रणाम कर कुछ दूर रहते हुए कुशासनपर बैठे। मुझे देखकर सभी मुनियोंने

एव मुनयः 'कुतोऽयमासादितः शुकशिशुः' इति तमासीनमपृच्छन् । असौ तु तानब्रवीत्—'अयं मया स्नातुमितो गतेन कमलिनीसरस्तीर-तरु-नीड-पतितः शुक-शिशुरातपजनित-क्लान्तिरुत्तप्त-पांसुपटल-मध्यगतो दूर-निपतन-विह्वल-तनुरल्पावशेषायुरासादितः, तपस्विदुरारोहतया च तस्य वनस्पतेर्न शक्यते स्वनीडमारोपयितुमिति जातदयेनानीतः । तद्यावदयमप्ररूढपक्षति-रक्षमोऽन्तरिक्षमुत्पतितुम्, तावदत्रैव कस्मिंश्चिदाश्रमतरुकोटरे मुनिकुमारकैरस्माभिश्चोपनीतेन नीवार-कण-निकरेण विविधफलरसेन च संवर्द्धमानो धारयतु जीवितम् । अनाथ-परिपालनं हि धर्म्मोऽस्मद्विधानाम् । उद्भिन्नपक्षतिस्तु गगनतलसञ्चरणसमर्थो यास्यति यत्रास्मै रोचिष्यते । इहैववोपजात-परिचयः स्थास्यति ।'

स्थापयित्वा = निधाय, हारीतः = जाबालिपुत्रस्तन्नामा मुनिः, पितुः = जनकस्य जाबालिमुनेः, पादौ = चरणौ, उपगृह्य = स्पृष्ट्वेति भावः, कृताऽभिवादनः = विहितप्रणतिः, पितुः = जनकस्य, अनतिसमीप-वर्तिनि=नाऽतिनिकटवर्तिनि, कियद्दूरस्थ इति भावः । कुशासने = दर्भविष्टरे, समुपाविशत्=समुपविष्टः ।

आलोक्येति । माम्, आलोक्य = दृष्ट्वा, तु, सर्वे = समस्ताः, एव, मुनयः = तापसाः, अयं = निकटस्थः, शुकशिशुः = कीरशावकः, कुतः = कस्मात् स्थानात्, आसादितः = प्राप्तः, इति = एवम्, आसीनं = निषण्णं तं = हारीतम्, अपृच्छन् = पृष्टवन्तः ।

असाविति । असौ = हारीतः, तु, तान् = मुनीन्, अब्रवीत् = अवदत् । स्नातुं = निमज्जितुम्, इतः = अस्मात् स्थातुनात्, गतेन = प्राप्तेन, मया, कमलिनीत्यादिः० = कमलिनीसरः (पद्मिनीप्रचुरः कासारः) तस्य तीरतरुः (तटवृक्षः) तस्मिन् नीडः (कुलायः) तस्मात् निपतितः (स्रस्तः), आतपजनितक्लान्तिः = आतपेन (सूर्यद्योतेन) जनिता (उत्पन्ना) क्लान्तिः (ग्लानिः) यस्यः सः । उत्तप्तेत्यादिः० = उत्तप्तं (सन्तप्तम्) यत् पांसुपटलं (धूलिसमूहः) तस्य मध्यगतः (अन्तरप्राप्तः) । दूरेत्यादिः० = दूरात् (विप्रकृष्टप्रदेशात्) यत् निपतनम् (अवच्युतिः) तेन विह्वला (विक्लवा) तनुः (शरीरम्) यस्य सः । अल्पाऽवशेषायुः = अल्पम् (स्तोकम्) अवशेषम् (शिष्टम्) आयुः (जीवनकालः) यस्य सः । एतादृशः, अयं=सन्निकृष्टवर्ती, शुकशिशुः = कीरशावकः, तस्य = पूर्वोक्तस्य, च, वनस्पतेः = शाल्मलीवृक्षस्य, तपस्विदुरारोहतया = तपस्विभिः (तापसैः) दुरारोहतया (दुःखेनारोढुं शक्यतया), स्वनीडं = तस्य शुकशावकस्य आत्मकुलायम्, आरोपयितुं = स्थापयितुं, न शक्यते= न पार्यते । इति = अस्मात् कारणात्, जातदयेन = उत्पन्नकरुणेन सता, मया, आनीतः = प्रापितः ।

तदिति । तत् = तस्मात्कारणात्, यावत् = यत्कालम्, अप्ररूढपक्षतिः = अप्ररूढे (अनुत्पन्ने) पक्षती (पक्षमूले) यस्य सः । अतः अन्तरिक्षम् = आकाशम्, उत्पतितुम् = उत्पतनं कर्तुम्, अक्षमः = असमर्थः, तावत् = तत्कालम्, अत्र = अस्मिन्, एव, कस्मिंश्चित्—कुत्रचित्, आश्रमतरुकोटरे = मुनिवास-वृक्षनिष्कुहे, मुनिकुमारकैः = ऋषिबालकैः, अस्माभिः, उपनीतेन = समीपप्रापितेन, नीवारकणनिकरेण= मुन्यन्नलवसमूहेन, फलरसेन = सस्यद्रवेण, च, संवर्द्धयमानः = समेध्यमानः सन्, जीवितं = जीवनं,

---

"कहाँसे इस तोतेके बच्चेको पा लिया" इस प्रकार बैठे हुए उनसे पूछा । उन्होंने उन (मुनियों) को कहा— "स्नान करनेके लिए यहाँसे गये हुए मैंने कमलोंसे पूर्ण तालाबके किनारेपर स्थित पेड़के घोंसलेसे गिरे हुए, धूपसे ग्लानिसे युक्त, तपे हुए धूलिपटलके बीचमें रहे हुए, दूरसे गिरनेसे विह्वल शरीरसे युक्त और अल्पशेष आयु-वाले इस तोतेके बच्चेको पाया । तपस्वियोंसे उस पेड़में चढ़ना अशक्य होनेसे इसे उसके घोंसलेमें नहीं रख सकनेसे दयापूर्वक इसे यहाँ लाया हूँ । इसलिए पङ्खोंके उत्पन्न नहीं होनेसे जबतक यह आकाशमें उड़नेके लिए असमर्थ होगा तबतक आश्रमके पेड़के किसी कोटरमें मुनिपुत्र हमलोगोंसे लाये गये नीवार (मुन्यन्न) कणोंसे और फलके रससे बढ़ा जाता हुआ यह जीवनको धारण करे । क्योंकि अनाथोंका पालन करना हमारे सरीखे जनोंका धर्म है । पंखोंके उगनेपर और आकाशतलमें घूमनेमें समर्थ होकर जहाँ पसन्द हो वहाँ जायेगा । अथवा परिचय

इत्येवमादिकमस्मत्संबद्धमालापमाकर्ण्य किञ्चिदुपजात-कुतूहलो भगवान् जाबालि-रीषदावलितकन्धरः पुण्यजलैः प्रक्षालयन्निव मामतिप्रशान्तया दृष्ट्या दृष्ट्वा सुचिरमुपजातप्रत्य-भिज्ञान इव पुनः पुनर्विलोक्य 'स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते' इत्यवोचत् ।

स हि भगवान् कालत्रयदर्शी तपःप्रभावाद्दिव्येन चक्षुषा सर्वमेव करतलगतमिव जगदवलोकयति, वेत्ति च जन्मान्तराण्यप्यतीतानि, कथयत्यागामिनमप्यर्थम्, ईक्षण-गोचर-गतानाञ्च प्राणिनामायुषः संख्यामावेदयति ।

ततः सर्वैव सा तापस-परिषच्छ्रुत्वा विदित-तत्प्रभावा 'कीदृशोऽनेनाविनयः कृतः, किमर्थं

धारयतु = दधातु । हि = यस्मात् कारणात्, अनाथपरिपालनम् = अशरणसंरक्षणम्, अस्मद्विधानाम् = अस्मादृशानां, तपस्विनामिति भावः । धर्मः = आचारः । उद्भिन्नपक्षतिः = उद्भिन्ने (अभ्युद्गते) पक्षती (पक्षमूले) यस्य सः, तादृशः, तु, गगनतलसंचरणसमर्थः = गगनतले (आकाशतले) यत् संचरणं (संचारः) तस्मिन् समर्थः (शक्तः) सन्, यत्र = यस्मिन्, स्थाने, अस्मै = शुकशावकाय, रुचधातोर्योगे "रुच्यर्थानां प्रीयमाण" इति सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । रोचिष्यते = रुचिः (स्पृहा) उत्पत्स्यते, तत्रेति शेषः । यास्यति = प्राप्स्यति ।

इहैवेति । वा = अथवा, इह = अस्मिन्, आश्रमे, एव, उपजातपरिचयः = उपजातः (उत्पन्नः) परिचयः (संस्तवः अस्माभिरिति शेषः) स्थास्यति = स्थितिं करिष्यति । इत्येवम् = इत्यादिकम्, अस्मत्सम्बद्धं = मत्सम्बन्धविषयकम्, आलापम् = आभाषणम्, आकर्ण्य = श्रुत्वा, किञ्चित् = ईषत्, उपजातकुतूहलः = उत्पन्नकौतुकः, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, जाबालिः = तन्नामा ऋषिः, ईषत् = किञ्चित्, आवलितकन्धरः = आवलिता (परिवर्तिता) कन्धरा (ग्रीवा) यस्य सः । तादृशः सन्, पुण्यजलैः = पवित्रसलिलैः, मां, प्रक्षालयन् इव = प्रधावयन् इव, उत्प्रेक्षालङ्कारः । अतिप्रशान्तया = अतिशयशान्तियुक्तया, दृष्ट्या = नयनेन, सुचिरं = बहुकालपर्यन्तं, दृष्ट्वा = विलोक्य, उपाजातप्रत्यभिज्ञानः = उपजातम् (उत्पन्नम्) प्रत्यभिज्ञानं (तत्तेदन्ताऽवगाहि ज्ञानं, "सोऽयं देवदत्त" इत्याकारकम् इव) यस्य सः । तादृश इव । पुनः पुनः = भूयोभूयः । विलोक्य = दृष्ट्वा, अनेन = निकटवर्तिना, शुकशावकेन, स्वस्य = आत्मनः, एव, अविनयस्य = अशिष्टाचारस्य, फलं = भोगः, अनुभूयते = उपभुज्यते । इति = एवम्, अवोचत् = अवदत् ।

स हीति । हि = यतः, सः = पूर्वोक्तः, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, जाबालिमहर्षिः, कालत्रयदर्शी = भूतभवद्भविष्यत्समयद्रष्टा सन्, तपःप्रभावात् = तपस्यासामर्थ्यात्, दिव्येन = अलौकिकेन, चक्षुषा = नेत्रेण, सर्वं = सकलम्, एव, जगत् = लोकं, करतलगतं = हस्ततलप्राप्तम्, इव, अवलोकयति = पश्यति । अतीतानि = पुरा भूतानि, जन्मान्तराणि = अन्यानि जन्मानि, वेत्ति = जानाति । आगामिनं = भाविनम्, अपि, अर्थं = पदार्थं, कथयति = प्रतिपादयति । ईक्षणगोचरगतानां = नेत्रविषयप्राप्तानां, प्राणिनां = जीवानाम्, आयुषः = जीवितकालस्य, संख्यां = परिमितिम्, आवेदयति = ज्ञापयति ।

सर्वैवेति । श्रुत्वा = आकर्ण्य, जाबालिवचनमिति शेषः । विदिततत्प्रभावा = विदितः (ज्ञातः)

उत्पन्न होनेसे यहींपर रहेगा" इत्यादि मुझसे सम्बद्ध बातचीत सुनकर भगवान् जाबालिको कुछ कुतूहल हुआ । उन्होंने गरदनको कुछ मोड़कर अत्यन्त शान्त दृष्टिसे मानों मुझको पुण्यजलसे प्रक्षालन करते हुए बहुत समयतक देखकर मानों पूर्वज्ञान उत्पन्न हो गया हो, वारंवार देखकर—"अपने ही अशिष्ट आचारका फल यह अनुभव कर रहा है ।" ऐसा कहा । भूत भविष्यत् और वर्तमान तीन कालोंको देखनेवाले भगवान् (जाबालि) तपस्याके प्रभावके दिव्य दृष्टिसे समस्त जगत्को हथेलीमें रखे हुएके समान देख लेते हैं । ये अन्य जन्मोंके बीते हुए वृत्तान्तोंको जानते हैं । (ये) आनेवाले विषयको भी कहते हैं । (ये) नेत्रोंसे देखे गये प्राणियोंकी आयुकी संख्या बता देते हैं । जाबालिके प्रभावको जाननेवाली वह सभी तपस्वियोंकी सभा "इस (शुकशावक) ने कैसा अविनय (अशिष्ट

वा कृतः, क वा कृतः, जन्मान्तरे वा कोऽयमासीत्' इति कौतूहलिन्यभवत्, उपनाथितवती च तं भगवन्तम्-'आवेदय प्रसोद भगवन् ! कीदृशस्याविनयस्य फलमनेनानुभूयते, विहगजातौ वा कथमस्य सम्भवः, किमभिधानो वाऽयम्, अपनयतु नः कुतूहलम् । आश्चर्य्याणां हि सर्वेषां भगवान् प्रभवः ।'

इत्येवमुपयाच्यमानस्तपोधनपरिषदा स महामुनिः प्रत्यवदत्—'अतिमहदिदमाश्चर्य्यमाख्यातव्यम् । अल्पशेषमहः । प्रत्यासीदति च नः स्नानसमयः । भवतामप्यतिक्रामति देवार्च्चनविधिवेला । तदुत्तिष्ठन्तु भवन्तः, सर्व एव तावदाचरन्तु यथोचितं दिवस-व्यापारम् । अपराह्ण-समये भवतां पुनः कृत-मूलफलाशनानां विस्रब्धोपविष्टानामादितः प्रभृति सर्वमावेदयिष्यामि ।

तत्प्रभावः (जाबालिसामर्थ्यम्) यया सा । सर्वा = सकला, एव, सा = पूर्वोक्ता, तापसपरिषत् = तपस्विसभा, अनेन = शुकशावकेन, कीदृशः = किंविधः, अविनयः = अशिष्टाचारः, कृतः = विहितः, किमर्थं = किंप्रयोजनं, वा । क्व = कुत्र देशे, वा, कृतः = विहितः । वा = अथवा, जन्मान्तरे = अन्यस्मिन् जन्मनि, इतः पूर्वजन्मनीति भावः । अयं = निकटस्थः, शुकः, कः = किंजात्युत्पन्नः, आसीत् = अभवत्, इति = एवं, कौतूहलिनी = कौतुकयुक्ता, अभवत् = अभूत् । तं = पूर्वोक्तं, भगवन्तम् = ऐश्वर्य-सम्पन्नं, जाबालिं महर्षिम्, उपनाथितवती च = प्रार्थितवती च, उपनाथनप्रकारानाह—**आवेदयेति** । भगवन् = हे प्रभो ! आवेदय = ज्ञापय, अस्मानिति शेषः । प्रसीद = प्रसन्नो भव । अनेन = शुकशावकेन, कीदृशस्य = किंविधस्य, अविनयस्य = अशिष्टाचारस्य, फलं = भोगः, अनुभूयते = निर्विश्यते । अयं = शुकशिशुः जन्मान्तरे = पूर्वजन्मनिः, कः = किंजातीयः, आसीत् = अभूत् । वा = अथवा, विहगजातौ = पक्षिजातौ, अस्य = शुकशिशोः, कथं = केन प्रकारेण, संभवः = उत्पत्तिः, जात इति शेषः । वा = अथवा, अयं = शुकशिशुः, किमभिधानः = किंनामा, किम् अभिधानं (नाम) यस्य सः । अस्तीति शेषः । नः = अस्माकं, कुतूहलं = कौतुकम्, अपनयतु = दूरीकरोतु, भवानिति शेषः । हि = यतः, सर्वेषां = समस्तानाम्, आश्चर्याणां = विस्मयविषयाणां, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, भवान्, प्रभवः = उत्पत्तिकारणम्, अद्भुताऽर्थज्ञापनकारणमिति भावः ।

इत्येवमिति । तपोधनपरिषदा = तपस्विसभया, तपस्विमण्डलस्थैर्जनैरिति भावः । इत्येवम् = अनेन प्रकारेण, उपयाच्यमानः = प्रार्थ्यमानः, सः = पूर्वोक्तः, महामुनिः = महर्षिः, जाबालिः, प्रत्यवदत् = प्रत्यब्रवीत्, इदम्, आश्चर्यं = विस्मयोत्पादकवृत्तम्, अतिमहत् = अतिप्रचुरम्, आख्यातव्यं = कथनीयम् । अहः = दिनम्, अल्पशेषं = स्तोकाऽवशिष्टम् । नः = अस्माकं, स्नानसमयः = मज्जनकालः, प्रत्यासीदति = उपस्थितो भवति । भवताम् = युष्माकम्, अपि, देवाऽर्चनविधिवेला = देवाऽर्चनविधेः (सुरपूजनविधानस्य) वेला (कालः), अतिक्रामति = व्यत्येति । तत् = तस्मात्कारणात् । भवन्तः, उत्तिष्ठन्तु = उत्थानं कुर्वन्तु । सर्वे = सकलाः, एव, दिवसव्यापारं = वासरकृत्यं, यथोचितं = यथा-योग्यम्, आचरन्तु = कुर्वन्तु । अपराह्णसमये = प्रहरद्वयाऽनन्तरवर्तिकाले, पुनः = भूयः, कृतमूलफलाऽशनानां = कृतं (विहितम्) मूलफलयोः (शूरणादि--सस्ययोः) अशनं (भक्षणम्) यैस्तेषाम् ।

आचार) किया, किसलिए अथवा कहां किया ? यह पूर्व जन्ममें कौन था ? इस बातको जाननेके लिए कुतूहलसे युक्त हो गई और उसने भगवान् (जाबालि) से प्रार्थना की''—भगवन् ! प्रसन्न हों, बतलायें कि कैसे अविनयका फल यह अनुभव कर रहा है ? यह पूर्व जन्ममें कौन था ? अथवा पक्षिजातिमें इसकी उत्पत्ति कैसे हुई ? इसका क्या नाम है ? आप हमारे कौतूहलको हटा दें, क्योंकि सब आश्चर्योंके भगवान् कारण हैं ।

तपस्वियोंकी सभासे इस प्रकारसे प्रार्थना किये गये उन महामुनिने उत्तर दिया—यह आश्चर्यका उत्पादक वृत्तान्त अधिक रूपसे कहनेका योग्य है । दिन थोड़ा-सा बाकी है । हमलोगोंका स्नानका समय आ रहा है । आपलोगोंको भी देवताओंकी पूजाका समय बीत रहा है । इस कारण आपलोग उठें । सभीलोग दिनके कार्यको यथायोग्य कर लें । अपराह्णकाल (दिनके तीसरे प्रहर) में फल मूलको खाये हुए और विश्वस्त होकर बैठे हुए

योऽयं यच्च कृतमनेनापरस्मिन् जन्मनि, इह लोके च यथास्य सम्भूतिः। अयञ्च तावदपगतक्लमः क्रियतामाहारेण। नियतमयमप्यात्मनो जन्मान्तरोदन्तं स्वप्नोपलब्धमिव मयि कथयति, सर्वमशेषतः स्मरिष्यति' इत्यभिदधदेवोत्थाय समं तैर्मुनिभिः स्नानादिकमुचित-दिवस-व्यापारम् अकरोत्।

अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तः तमम्बर-तलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्। ऊर्ध्वमुखैरर्कबिम्ब-विनिहित-दृष्टिभिरूष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमान-तेजः प्रसरो विरलातपस्तनिमानम-

---

विस्रब्धोपविष्टानां = विस्रब्धम् (विश्वस्तं यथा तथा) उपविष्टानां (निषण्णानाम्) भवतां = युष्माकं, सकाश इति शेषः। आदितः प्रभृति = आरम्भात् आरभ्य, सर्वं = सकलं, वृत्तान्तमिति शेषः। आवेदयिष्यामि = ज्ञापयिष्यामि, अयं = शुकशावकः, यः, अस्तीति शेषः, अनेन = शुकशिशुना, अपरस्मिन् = अन्यस्मिन्, जन्मनि = जनने, यत् = कर्म, च, कृतं = विहितम्। इह = अस्मिन्, लोके = भुवने, यथा = येन प्रकारेण, संभूतिः = संभव उत्पत्तिरिति भावः। अयं=शुकशावकः, च, तावत् = तत्कालम्, आहारेण = भोजनेन, अपगतक्लमः = विगतग्लानिः, क्रियतां = विधीयताम्।

नियतमिति। नियतं = निश्चितं यथा तथा, मयि, कथयति = वदति सति, अयं = शुकशावकः, अपि, आत्मनः = स्वस्य, सर्वं = सकलं, जन्मान्तरोदन्तं = पूर्वजन्मवृत्तान्तं, स्वप्नोपलब्धं = स्वापप्राप्तम्, इव, अशेषतः = समग्रभावात्, स्मरिष्यति = स्मरणं करिष्यति, इति = एवम्, अभिदधत् = ब्रुवाणः, मुनिभिः = तापसैः, सह = समं, स्नानादिकं=मज्जनादिकम्, उचितदिवसव्यापारं = योग्यवासरकृत्यम्, अकरोत् = व्यधात्।

अनेनचेति। अनेन, समयेन = कालेन, मध्याह्नेनेति भावः। दिवसः = वासरः, परिणतः = परिणामं (परिपाकम्) गतः।

स्नानोत्थितेनेति। स्नानोत्थितेन=स्नानं कृत्वा कृतोत्थानेन, अर्घविधिः=पूजाविधानम्, उपपादयता= सम्पादयता, मुनिजनेन = तपस्विजनेन, क्षितितले = भूतले, यः = रक्तचन्दनाङ्गरागः, दत्तः = समर्पितः, अम्बरतलगतः = आकाशमण्डलप्राप्तः, रविः=सूर्यः, तं, रक्तचन्दनाङ्गरागं = लोहिताचन्दनदेहविलेपनम्, साक्षात् = प्रत्यक्षरूपम्, इव, उदवहत् = धृतवान्, उत्प्रेक्षा।

ऊर्ध्वमुखैरिति। ऊर्ध्वमुखैः = उन्नतवदनैः, अर्कबिम्बविनिहितदृष्टिभिः = अर्कबिम्बे (सूर्यमण्डले) विनिहिते (स्थापिते) दृष्टी (नयने) यैस्तैः। ऊष्मपैः = ऊष्माणं (सूर्यतापम्) पिबन्ति (धयन्ति) इति ऊष्मपाः, तैः। तपोधनैः = तपस्विभिः इव, तप एव धनं येषां तैः। परिपीयमानतेजःप्रसरः = परिपीयमानः (आस्वाद्यमानः) तेजःप्रसरः (आतपसमूहः) यस्य सः। तथाविध इव, उत्प्रेक्षा। अतएव विरलाऽऽतपः = विरलः (अल्पः) आतपः (द्योतः) यस्य सः तादृशः सूर्यः, तनिमानं = क्षीणत्वं, तनोर्भावस्तनिमा, तम्। "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इति इमनिच्प्रत्ययः। अभजत्= आश्रितवान्। सूर्यनिहितनयनैस्तपोधनैरूष्मणः पीतत्वात्सूर्यः सायंकाले क्षीणोऽभूदिति भावः।

आपलोगोंको शुरूसे लेकर सब कुछ विदित कराऊँगा कि "जो यह शुकशावक है, इसने पूर्व जन्ममें जो किया है, इस लोकमें इसकी जैसी उत्पत्ति हुई है।" तबतक यह भोजन देनेसे ग्लानिसे रहित किया जाय। निश्चित रूपसे यह भी अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्तको स्वप्नमें पाये हुएके समान सब पूर्णरूपसे स्मरण कर लेगा। ऐसा कहते-हुए मुनि (जाबालि) ने उठकर मुनियोंके साथ स्नान आदि दिनकी क्रियाओंको किया।

इस बीचमें दिन बीतने लगा। स्नानसे उठे हुए और पूजाविधि करते हुए मुनिजनने जमीनपर जो रक्तचन्दनका अङ्गराग समर्पण किया था उसे आकाशमण्डलमें प्राप्त सूर्यने मानों साक्षात् धारण किया। ऊपर मुँह करनेवाले और सूर्यमण्डलमें दृष्टि देनेवाले सूर्यकी धूपको पीनेवाले तपस्वियोंसे मानों तेजके पीये जानेसे सूर्य थोड़ीसी

भजत् । उद्यत्सप्तर्षिसार्थ-स्पर्श-परिजिहीर्षयेव संहृत-पादः पारावत-पादपाटलरोगो रविरम्बर-तलादवालम्बत । आलोहितांशु-जालं जलशयनमध्यगतस्य मधु-रिपोर्विगलन्मधुधारमिव नाभि-नलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्ष्यत । विहायाऽम्बरतलम् उन्मुच्य च कमलिनीव-नानि शकुनय इव दिवसावसाने तरु-शिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत । आलग्न-लोहितातपच्छेदा मुनिभिरालम्बित-लोहितवल्कला इव-तरवः क्षणमदृश्यन्त । अस्तमुप-गते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्णवतलादुल्लसन्ती विद्रुम-लतेव पाटला सन्ध्या समदृश्यत ।

उद्यदिति । उद्यदित्यादिः० = उद्यन् (उदयं प्राप्नुवन्) यः सप्तर्षिसार्थः (मरीच्यादिसप्तर्षि-समूहः) तस्य स्पर्शः (आमर्शनं, पादेनेति शेषः) तस्य परिजिहीर्षया (परिहर्तुम् इच्छया), इव उत्प्रेक्षा । अत एव संहृतपादः = संहृतः (सङ्कोचितः) पादः (चरणो रश्मिश्च) येन सः । सप्तर्षीणां पादेन स्पर्शनस्याऽयुक्तत्वादिति भावः । सप्त च ते = ऋषयः सप्तर्षयः, "दिक्संख्ये संज्ञायाम्" इति समासः । "सङ्घसार्थौ तु जन्तुभिः" इत्यमरः । पारावतपादपाटलरागः = पारावतस्य (कपोतस्य) पादः (चरणः) इव, पाटलः (श्वेतरक्तः) रागः (लौहित्यम्) यस्य सः । तादृशो रविः, अम्बर-तलात् = आकाशमण्डलात्, अवालम्बत = आलम्बितवान् । "पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशा ।" इत्यमरः । अत्र रश्मिचरणयोर्भेदेऽपि पादपदश्लेषेणाऽभेदाऽध्यवसायादतिशयोक्तिः, पारावतेत्यादावुपमा चेत्येतेषा-मङ्गाङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः ।

आलोहितेति । आलोहितांऽशुजालम् = आलोहितम् (ईषद्रक्तवर्णम्) अंशुजालं (किरणसमूहः) यस्य तत् । विगलन्मधुधारं = विगलन्ती (परिस्रवन्ती) मधुधारा (पुष्परसपङ्क्तिः) यस्मात् तत् । प्रतिमागतं = प्रतिबिम्बरूपेण पतितं, जलशयनमध्यगतस्य = सलिलशय्याऽन्तरप्राप्तस्य, मधुरिपोः = श्रीविष्णोः, नाभिनलिनम् = नाभिकमलम्, इव, अपराऽर्णवे = पश्चिमसमुद्रे, सूर्यमण्डलं = रविबिम्बम्, अलक्ष्यत = अदृश्यत । अत्र "नाभिनलिनम् इवे"त्यत्रोपमा ।

विहायेति । अम्बरतलम्=आकाशतलं, विहाय=परित्यज्य, कमलिनीवनानि = पद्मिनीविपिनानि, उन्मुच्य = विहाय, शकुनयः = पक्षिणः, इव, उत्प्रेक्षा । दिवसाऽवसाने = वासरसमाप्तौ, सायंकाल इति भावः । तरुशिखरेषु = वृक्षाऽग्रेषु, पर्वताऽग्रेषु = शिखरेषु, च रविकिरणाः = सूर्यरश्मयः । स्थितिम् = अवस्थानम्, अकुर्वत = कृतवन्तः ।

आलग्नेति । आलग्नलोहिताऽऽतपच्छेदाः = आलग्नाः (ईषत्सम्बद्धाः) लोहिताः (रक्तवर्णाः) आतपच्छेदाः (सूर्यद्योतखण्डाः) येषु ते । तादृशाः तरवः = वृक्षाः, मुनिभिः = तापसैः, आलम्बित-लोहितवल्कलाः = आलम्बितानि (कृतालम्बानि, निहितानीतिभावः) लोहितानि (रक्तवर्णानि) वल्कलानि (वल्कानि, वृक्षत्वग्वस्त्राणीति भावः) येषु ते, तादृशा इव, उत्प्रेक्षा, क्षणं = कंचित्कालं, "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया । "निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः ।" इत्यमरः । अदृश्यन्त = अलक्ष्यन्त ।

अस्तमिति । भगवति = ऐश्वर्यसम्पन्ने सहस्रदीधितौ = सहस्रांऽशौ, सूर्ये इत्यर्थः । अस्तं =

धूपवाले होकर क्षीणताको प्राप्त करने लगे । मानों उगते हुए सप्तर्षियों (मरीचि आदियों) पर पाद (चरण वा किरण)-के स्पर्शको छोड़नेकी इच्छासे पादों—(चरणों, किरणों) को सङ्कोचित करते हुए कबूतरके पैरसे गुलाबी वर्णवाले सूर्य आकाशमण्डलसे लटक गये । कुछ लाल वर्णवाले किरण समूहसे युक्त सूर्यमण्डल, जलशय्याके बीचमें प्राप्त विष्णुके पुष्परसधाराको बहाते हुए पश्चिम समुद्रमें प्रतिबिम्बित नाभि कमलके समान देखा गया । सायंकालमें सूर्यकी किरणोंने आकाशतलको छोड़कर और कमलिनीवनोंका परित्याग कर पक्षियोंके समान पेड़ोंके ऊपर और पर्वत की चोटियोंपर भी स्थिति कर ली । कुछ लाल धूपोंके खण्डसे युक्त वृक्ष, मुनियोंसे लटकाये गये लाल वल्कलों-से युक्तके तुल्य कुछ समय तक दिखाई पड़े । भगवान् सूर्यके अस्ताचल जानेपर सन्ध्या पश्चिम समुद्रसे उठती हुई

यस्यामावध्यमानध्यानम्, एकदेशदुह्यमाल-होमधेनु-दुग्धधाराध्वनितधन्यतरातिमनोहरम्, अग्नि-वेदि-विकीर्य्यमाण-हरित्कुशम् ऋषिकुमारिकाभिरितस्ततो विक्षिप्यमाण-दिग्देवता-वलि-सिक्थम् आश्रमपदमभवत्। क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवन-धेनुरिव कपिला परिवर्त्तमाना सन्ध्या तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते सवितरि शोक-विधुरा कमल-मुकुलकमण्डलु-धारिणी हंस-सितदुकूल-परिधाना मृणाल-धवल-यज्ञोपवीतिनी मधुकर-मण्डलाक्षवलयम् उद्वहन्ती कमलिनी दिनपति-समागम-व्रतमिवाचरत्। अपर-साग-

---

पश्चिमाऽचलम्, उपगते = प्राप्ते, अपराऽर्णवतलात् = पश्चिमसमुद्रभागात्, उल्लसन्ती = ऊर्ध्वं दीप्यमाना, विद्रुमलता = प्रवालवल्ली, इव, उत्प्रेक्षा। पाटला = श्वेतरक्ता, सन्ध्या = सायंवेला, समदृश्यत = समलक्ष्यत।

यस्यामिति। यस्यां = सन्ध्यायाम्, आश्रमपदस्य विशेषणानि—आबध्यमानध्यानम् = आबध्य-मानं (क्रियमाणम्) ध्यानं (चिन्तनं, परमात्मनि चित्तस्यैकतानताप्रवाह इति भावः) यस्मिंस्तत्, एकदेशेत्यादिः० = एकदेशे (एकभागे) दुह्यमानाः (क्रियमाणदोहनाः) या होमधेनवः (हवनाऽर्था गावः) तासां या दुग्धधारा (पयः सन्ततिः), तस्या ध्वनितेन (शब्दितेन) धन्यतरम् = (अतिशय-पुण्यवत्) अतिमनोहरम् (अतिशयचित्ताकर्षकम्) अग्निवेदीत्यादिः० = अग्निवेदौ (दक्षिणाग्न्यादि-परिष्कृतभूमौ) विकीर्यमाणानि (विक्षिप्यमाणानि) हरित्कुशानि (हरितवर्णा दर्भाः) यस्मिंस्तत्। ऋषिकुमारिकाभिः = तपस्विकन्यकाभिः, इतस्ततः = यत्र तत्र, विक्षिप्यमाणेत्यादिः० = विक्षिप्यमाणानि (परिकीर्यमाणानि) दिग्देवताभ्यः (इन्द्रादिदेवेभ्यः) बलिसिक्थानि (पूजान्नानि) यस्मिंस्तत्। तादृशम्, आश्रमपदं = मुनिवासस्थानम्, अभवत् = अविद्यत।

क्वाऽपीत्यादि। क्वाऽपि = कुत्रचित् स्थाने, विहृत्य = पर्यटनं कृत्वा। दिवसाऽवसाने = दिन-समाप्तिसमये, सन्ध्यायामिति भावः। परिवर्तमाना = प्रत्यागच्छन्ती, लोहिततारका = लोहिते (रक्तवर्णे) तारके (कनीनिके) यस्याः सा तादृशी, कपिला = कपिलवर्णा, तपोपवनधेनुः = आश्रम-स्य गौः, इव लोहिततारका = लोहिताः (रक्तवर्णाः) तारकाः (नक्षत्राणि) यस्यां सा, कपिला सन्ध्या = सायंवेला, तपोधनैः = तपस्विभिः, अदृश्यत = अलक्ष्यत। अत्र सन्ध्याधेन्वोरुपमानोपमेयभावे-नोपमाऽलङ्कारः।

अचिरेति। सवितरि = सूर्ये, अचिरप्रोषिते = तत्कालं गते सति, शोकविधुरा = मन्युविह्वला, कमलमुकुलेत्यादिः० = कमलमुकुलः (पद्मकुड्मलः) एव कमण्डलुः (करकः) तद्धारिणी (तद्धारण-शीला) हंसाः (मरालाः) एव सितदुकूलानि (श्वेतक्षौमाणि) परिधानम् (अधोंऽशुकम्) यस्याः सा। मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी = मृणालेन (बिसेन) धवलयज्ञोपवीतिनी (श्वेतयज्ञसूत्रसम्पन्ना)। मधुकरमण्डलाऽक्षवलयं = मधुकरमण्डलम् (भ्रमरसमूहः) एव अक्षवलयम् (रुद्राक्षमालाम्), उद्वहन्ती = धारयन्ती, कमलिनी = पद्मिनी, दिनपतिसमागमव्रतं = सूर्यसंगमनियमाचरणम्, आचरत् = अकरोत्, इव, उत्प्रेक्षा, रूपकं, तथा च कमलिनीदिनपत्योर्नायिकानायकव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिश्च, तथा चैतेषामलङ्काराणामेकाश्रयाऽनुप्रवेशरूपः सङ्करः।

प्रवाललताके समान गुलाबी देखी गई। जिस सन्ध्यामें आश्रमस्थान, किये गये ध्यानसे युक्त, एक स्थानपर दुही जाती हुई हवनधेनुको दूधकी धाराके शब्दसे अतिशय पुण्य सम्पन्न और अत्यन्त मनोहर, अग्निवेदिमें बिछाये गये हरे कुशोंसे युक्त और ऋषिकन्याओंसे यत्र-तत्र दिशाके इन्द्र आदि देवताओंको दिये गये बलिके अन्नसे युक्त हो गया। कहींपर घूमकर सन्ध्याकालमें लौटती हुई लाल आंखोकी पुतलियों वाली कपिल वर्णवाली तपोवनकी गायके समान दिनके अवसानमें लाल ताराओंसे युक्त पीली सन्ध्याको तपस्वियोंने देखा। सूर्यके कुछ ही पहले जानेपर शोकसे विह्वल, कमलके मुकुल (कली) रूप कमण्डलुको लेनेवाली हंसरूप सफेद वस्त्रको पहननेवाली मृणालरूप

राम्भसि पतिते दिवसकरे वेगोत्थितमम्भःशीकर-निकरमिव तारागणमम्बरम् अधारयत्। अचिराच्च सिद्ध-कन्यका-विक्षिप्त-सन्ध्यार्च्चन-कुसुम-शबलमिव तारकितं वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्व-विप्रकीर्णैः प्रणामाञ्जलि-सलिलैः क्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः।

क्षयमुपगतायां सन्ध्यायां तद्विनाश-दुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी तिमिरोद्गम-मभिनवमवहत्। अपहाय मुनि-हृदयानि सर्वमन्यदन्धकारतां तिमिरमनयत्। क्रमेण च रवि-रस्तं गत इत्युदन्तमुपलभ्य जातवैराग्यो धौत-दुकूल-वल्कल-धवलाम्बरः सतारान्तःपुरः, पर्य्य-

---

अपरेति। अपरसागराऽम्भसि = अपरः (पश्चिमः) यः सागरः (समुद्रः) तस्य अम्भसि (जले), पतिते = स्रस्ते, दिवाकरे = सूर्ये, अम्बरम् = आकाशं, तत्पतनात्, वेगेन (जवेन) उत्थितम् (कृतोत्थानम्), अम्भःसीकरनिकरम्=जलबिन्दुकणसमूहम् इव, तारागणं = नक्षत्रसमूहम्, अधारयत् = धृतवत्। उत्प्रेक्षालङ्कारः।

अचिराच्चेति। अचिरात् = अल्पकालेन, सिद्धकन्यकेत्यादिः० = सिद्धाः (देवयोनिविशेषाः) तेषां कन्यकाभिः (कुमारीभिः) विक्षिप्तानि (विकीर्णानि) यानि सन्ध्याऽर्चनकुसुमानि (सायंकाल-पूजनपुष्पाणि) तैः शबलम् (कर्बुरम्) इव, तारकितं = समुदिततारकम्, वियत् = आकाशं व्यराजत= अशोभत। अत्रोत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

क्षणेनेति। क्षणेन = अल्पकालेन, "अपवर्गे तृतीये"ति तृतीया उन्मुखेन = ऊर्ध्ववदनेन, मुनिजनेन = तपस्विगणेन, ऊर्ध्वविप्रकीर्णैः = उर्ध्वम् (उपरि) विकीर्णैः (विक्षिप्तैः), प्रणामाऽञ्जलि-सलिलैः = प्रणामार्थानि (नमस्कारप्रयोजनानि) यानि अञ्जलिसलिलानि (सम्पुटकरजलानि), तैः, क्षाल्यमानः = प्रक्षाल्यमानः, इव, अखिलः = समस्तः, सन्ध्यारागः = सायङ्काललौहित्यम्, अगलत् = विगलितोऽभवत्। उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः।

सन्ध्यायामिति। सन्ध्यायां = सायवेलायां, क्षयं = नाशम्, उपगतायां = प्राप्तायां सत्याम्। तद्विनाशदुःखिता = तस्याः (सन्ध्यायाः) विनाशः (क्षयः) तेन दुःखिता (दुःखयुक्ता), विभावरी (रात्रिः), कृष्णाऽजिनं = कृष्णसारमृगचर्म, इव, अभिनवं = नूतनं, तिमिरोद्गमम् = अन्धकारोदयम्, अवहत् = अधारयत्। उपमाऽलङ्कारः।

अपहायेति। तिमिरम् = अन्धकारः, मुनिहृदयानि = तपस्विचित्तानि, अपहाय = त्यक्त्वा, अन्यत् = अपरं, सर्वं = सकलं, वस्त्विविशेषः। अन्धकारतां = नेत्राऽग्राह्यताम्, अनयत् = प्रापयत्।

क्रमेणेति। क्रमेण = परिपाट्या, रविः = सूर्यः, अस्तं गतः = नाशं प्राप्तः, इति = इत्थम्, उदन्तं = वृत्तान्तम्, उपलभ्य = ज्ञात्वा, अमृतदीधितिः = सुधांऽशुः, चन्द्र इत्यर्थः। जातवैराग्यः = जातम् (उत्पन्नम्), वैराग्यं (विरक्तिः) यस्य सः। पक्षान्तरे—उत्पन्नाऽधिकरागः, विशिष्टो रागो

शुभ्र यज्ञोपवीतको धारण करनेवाली और भ्रमरसमूहरूप रुद्राक्षमालाको लेनेवाली कमलिनीने मानों सूर्यरूप पतिके समागमके लिए व्रतका आचरण किया। सूर्यके पश्चिम समुद्रके जलमें गिरनेपर आकाशने वेगसे उठे हुए जलकणके समूहके समान तारागणको धारण किया। थोड़े ही समयमें आकाश, सिद्धकुमारियोंसे बिखेरे गये सन्ध्याकी पूजाके पुष्पोंसे चित्रितके समान ताराओंसे युक्त हो गया। थोड़े ही समयमें ऊपर मुख किये हुए मुनियोंसे ऊपर प्रक्षिप्त प्रणामके अञ्जलिजलसे समस्त संध्याका राग (लालिमा) मानो प्रक्षालन किये गयेके समान हो गया।

सन्ध्याके क्षीण होनेपर मानों उसके विनाशसे दुःखित रात्रिने कृष्णसार मृगके चर्मके समान अन्धकारके नये आविर्भावको धारण किया। अन्धकारने मुनियोंके हृदयको छोड़कर और सबको अन्धकार भावको प्राप्त करा दिया। क्रमसे सूर्य अस्त हो गये ऐसे वृत्तान्तको प्राप्तकर चन्द्रमाने विशेष लालिमासे युक्त वा वैराग्ययुक्त होकर धोये हुए

न्तस्थिततनुस्तिमिर-तमाल-वृक्ष-लेखम्, सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम्, अरुन्धतीसञ्चरणपूतम्, उपहिताषाढम्, आलक्ष्यमाणमूलम्, एकान्तस्थितचारुतारकमृगम् अमरलोकाश्रममिव गगनतलम् अमृत-दीधितिरध्यतिष्ठत् । चन्द्राभरणभृतस्तारकाकपाल-शकलाऽलङ्कृतादम्बरतलात् त्र्यम्बकोत्तमाङ्गादिव गङ्गा सागरानापूरयन्ती हंस-धवला धरण्यामपतज्ज्योत्स्ना । हिमकर-

---

विरागः, "कुगतिप्रादय" इति समासः । विरागस्य भावो वैराग्यम् । धौतदुकूलेत्यादिः० = धौतदुकूलवल्कलम् (प्रक्षालितक्षौमवल्कम्) इव अम्बरं (वस्त्रम्) यस्य सः । पक्षान्तरे—धौतदुकूलवल्कलम् इव अम्बरम् (आकाशम्) यस्य सः । सताराऽन्तःपुरः = सतारम् (सप्रणवम्) अन्तःपुरं (हृदयमध्यम्) यस्य सः । प्रणववाच्यब्रह्मध्याननिष्ठ इति भावः । पक्षान्तरें—ताराः (अश्विन्यादयः) एव अन्तःपुराणि (लक्षणया अन्तःपुरस्थिताः स्त्रियः) यस्य सः । एतादृशः अमृतदीधितिः = सुधांशुः, चन्द्र इति भावः । पर्यन्तस्थिततनुः = पर्यन्ते (आकाशैकदेशे) स्थिता (विद्यमाना) तनुः (शरीरं, बिम्बम्) यस्य सः । तिमिरतमालवृक्षलेखं = तिमिरम् इव (श्यामेति शेषः) तमालवृक्षलेखा (तापिच्छतरुपङ्क्तिः) यस्मिंस्तम् । सप्तर्षिमण्डलाऽध्युषितं = सप्तर्षीणां (मरीच्यादिमहर्षीणाम्) यत् मण्डलं (समूहः) तेन अध्युषितम् (कृतनिवासम्), अरुन्धतीसञ्चरणपूतम् = अरुन्धती (वशिष्ठपत्नी) तस्याः सञ्चरणं (परिभ्रमणम्) तेन पूतम् (पवित्रम्), उपहिताषाढम् = उपहितः (सन्निहितः) आषाढः (पलाशदण्डः) यस्मिंस्तम् । आलक्ष्यमाणमूलम् = आलक्ष्यमाणानि (समन्ताद्दृश्यमानानि) मूलानि (वृक्षमूलानि) यस्मिंस्तम् । एकान्तस्थितचारुतारकमृगम्=एकान्ते (एकभागे) स्थिताः (विद्यमानाः) चारुतारकाः (चारु = मनोहरे, तारके = कनीनिके, येषां ते) तादृशाः मृगाः (हरिणाः) यस्मिंस्तम् । तादृशम् अमरलोकाश्रमं = देवलोकाश्रमम्, इव, गगनतलपक्षे—तिमिरतमालवृक्षलेखं = तिमिरम् (अन्धकारम्) एव तमालवृक्षलेखा यस्मिंस्तत् । सप्तर्षिमण्डलाऽध्युषितम्= सप्तर्षिमण्डलेन (सप्तर्षिसंज्ञकतारासमूहेन) अध्युषितं (कृतनिवासम्), अरुन्धतीसंचरणपूतम् = अरुन्धती (ताराविशेषः) तत्सञ्चरणपूतम् । उपहिताषाढम् = उपहिते (सन्निहिते) आषाढे (पूर्वाषाढोत्तराषाढे नक्षत्रे) यस्मिंस्तत् । आलक्ष्यमाणमूलम् = आलक्ष्यमाणं मूलं (मूलनक्षत्रम्) यस्मिंस्तत् । एकान्तस्थितचारुतारकमृगम् = एकान्तस्थितः चारुः (सुन्दरः) तारकमृगः (तारारूपं मृगशीर्षम्) यस्मिंस्तत् । एतादृशं गगनतलम्=आकाशमण्डलम्, अध्यतिष्ठत् = अधिष्ठितवान् । अत्रोपमाश्लेषयोरेकाश्रयाऽनुप्रवेशात्सङ्कराऽलङ्कारः ।

चन्द्राभरणभृत इति । चन्द्रः (इन्दुः) एव आभरणं (भूषणम्) तद् बिभर्ति (धारयति) तस्मात्, तारकेत्यादिः० = तारकाकपालशकलाऽलङ्कृतात् = तारकाः (नक्षत्राणि) एव कपालशकलानि (कर्परखण्डानि), तैः अलङ्कृतात् (भूषितात्) तादृशात् अम्बरतलात् = आकाशमण्डलात् । सागरान् = समुद्रान्, आपूरयन्ती = समन्ततः पूर्णान् कुर्वती, चन्द्रोदयेन समुद्रजलं वर्द्धत

रेशमी वल्कके समान वस्त्रवाले अथवा धोये हुए रेशमी वस्त्रके समान आकाशवाले होकर तारारूप अश्विनी आदि स्त्रियोंसे युक्त होकर अथवा—प्रणवयुक्त हृदय मध्यवाले होकर प्रान्त भागोंमें स्थित शरीरसे युक्त होकर, अन्धकार सरीखे तमाल वृक्षोंकी कतारवाले, कश्यप आदि सप्तर्षियोंसे निवास किये गये, अरुन्धती (वशिष्ठपत्नी) के सञ्चरणसे पवित्र, पलाशके दण्डसे युक्त, जिनमें जड़ें चारों ओर दिखाई देती थीं, जिसके एक भागमें सुन्दर आँखोंकी पुतलियोंवाले मृग रहते थे, ऐसे देवलोकके आश्रमके समान अन्धकाररूप तमाल वृक्षोंकी पङ्क्तियोंसे युक्त, सप्तर्षि नक्षत्रोंसे निवास किये गये, अरुन्धती (ताराविशेष) के सञ्चरणसे पवित्र जो, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्रसे युक्त है, जिसमें मूलनक्षत्र दिखाई देता है, जहाँ एक भागमें सुन्दर मृगशीर्ष नक्षत्र विद्यमान है ऐसे आकाशमण्डलमें स्थित की । चन्द्ररूप भूषणको धारण करनेवाले, तारा रूप कपाल खण्डोंसे अलङ्कृत, ऐसे आकाशमण्डलमें हंसके समान उज्ज्वल चांदनी, अर्धचन्द्ररूप भूषणको धारण करनेवाले ताराओंके समान कपाल-

सरसि विकच-पुण्डरीक सिते चन्द्रिका-जलपान-लोभादवतीर्णो निश्चलमूर्त्तिरमृतपङ्कलग्न इवाऽदृश्यत हरिणः। तिमिर-जलधर-समयापगमानन्तरम् अभिनव-सित-सिन्दुवार-कुसुम-पाण्डुरैरर्णवागतैरवगाह्यन्त हंसैरिव कुमुद-सरांसि चन्द्रपादैः। विगलितसकलोदयरागं रजनिकर-बिम्बमम्बरापगावगाह-धौत-सिन्दूरमैरावत-कुम्भस्थलमिव तत्क्षणमलक्ष्यत। शनैः शनैश्च दूरोदिते भगवति हिमततिस्रुति, सुधाधूलि-पटलेनेव धवलीकृते चन्द्रातपेन जगति, अवश्यायजलबिन्दु-

इति लोकप्रवादः। हंसधवला = हंसः (मरालः) इव धवला (शुभ्रवर्णा) ज्योत्स्ना = चन्द्रिका। चन्द्राभरणभृतः, तारकाकपालेत्यादिः० = तारकाः (नक्षत्राणि) इव यानि कपालशकलानि, तैः अलङ्कृतात्। त्र्यम्बकोत्तमाऽङ्गात् = त्र्यम्बकस्य (शङ्करस्य) उत्तमाऽङ्गात् (शिरसः) सागरान् आपूरयन्ती – स्वजलेन परिपूर्णान् विदधती, हंसधवला, गङ्गा = जाह्नवी, इव, धरायां = पृथिव्याम्, अपतत् = पतितवती। अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः।

हिमकरसरसीति। विकचपुण्डरीकसिते = विकचं (प्रफुल्लम्) यत् पुण्डरीकं (श्वेतकमलम्) **तदिव** सितम् (शुभ्रम्)। हिमकरसरसि = हिमकरः (चन्द्रः) एव सरः (कासारः) तस्मिन्। **चन्द्रिकाजलपानलोभात्** = चन्द्रिका (ज्योत्स्ना) एव जलं (सलिलम्) तस्य पानं (धयनम्) तस्मिन् लोभः (लोलुपत्वम्) तस्मात्। अवतीर्णः = कृताऽवतरणः, मध्यप्रविष्ट इति भावः। निश्चलमूर्तिः = निश्चला (स्थिरा) मूर्तिः (शरीरम्) यस्य सः। अमृतपङ्कलग्नः = अमृतम् (सुधा) एव पङ्कः (कर्दमः) तस्मिन् लग्नः (सम्बद्धः) इव, हरिणः = मृगः, अदृश्यत = अलक्ष्यत। अत्र रूपकमुत्प्रेक्षा च द्वयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्कराऽलङ्कारः।

तिमिरेत्यादिः। तिमिरम् (अन्धकारः) एव जलधरसमयः (वर्षाकालः) कृष्णत्वसाम्याद्रूपकमेतत्। तस्य अपगमः (निवृत्तिः) तदनन्तरम् (तदनु)। अभिनवेत्यादिः० = अभिनवानि (नूतनानि) सितानि (शुक्लानि) यानि सिन्दुवारकुसुमानि (निर्गुण्डीपुष्पाणि) तानि इव पाण्डुराः (शुभ्राः), तैः। अर्णवागतैः = जलाशयाऽऽयातैः, अर्णवशब्दो यद्यपि योगरूढ्या समुद्रवाचकस्तथाऽप्यत्र योगशक्त्या जलाशयवाचकः। हंसैः = मरालैः, इव, चन्द्रपादैः = इन्दुकिरणैः, कुमुदसरांसि = कैरवप्रचुरकासाराः, अवगाह्यन्त = आलोडयन्त, चन्द्रपादपक्षे अस्पृश्यन्त। अत्रोपमाऽलङ्कारः।

विगलितेति। विगलितः (विलयं प्राप्तः) सकलः (समस्तः) उदयरागः (उद्गमनसमयलौहित्यम्) यस्मिस्तत्। तादृशं रजनिकरबिम्बम् = चन्द्रमण्डलम्, अम्बरापगेत्यादिः० = अम्बरापगा (आकाशगङ्गा) तस्याम् अवगाहः (स्नानम्) तेन धौतं (क्षालितम्) सिन्दूरं (नागसम्भवम्) यस्य तत्, तादृशम्, ऐरावतकुम्भस्थलम् = ऐरावतस्य (इन्द्रहस्तिनः) कुम्भस्थलम् (मस्तकपिण्डः) इव, वर्तुलत्वस्योद्ध्वर्वत्वस्य च साम्यादिति भावः। तत्क्षणं = तत्कालम्, अलक्ष्यत = अदृश्यत।

शनैः शनैरिति। शनैः शनैः = मन्दमन्दम्। भगवति = ऐश्वर्यसम्पन्ने, हिमततिस्रुते = हिमततिं (तुहिनपङ्क्तिम्) स्रवतीति हिमततिस्रुत् तस्मिन्, तुहिनपरम्परास्राविणि, चन्द्रमसीत्यर्थः। दूरोदिते = विप्रकृष्टप्राप्ते सति सुधाधूलिपटलेन = अमृतपांसुसमूहेन, इव, चन्द्रातपेन = इन्दुप्रकाशेन, जगति =

खण्डोंसे अलङ्कृत शिवजीके शिरसे समुद्रोंको पूर्ण करती हुई हंसोंसे उज्ज्वल गङ्गाजीके समान पृथ्वीपर पड़ गई। विकसित श्वेत कमलके समान, सफेद चन्द्ररूप तालावमें निश्चल शरीरवाला मृग (कलङ्क) मानों चन्द्रिकाके जलपानके लोभसे अवतीर्ण होकर अमृत पङ्कमें लगा हुआ-सा दिखाई दिया। अन्धकाररूप वर्षाऋतुके जानेके अनन्तर नये और सफेद निर्गुण्डीके फूलोंके समान श्वेत वर्णवाले चन्द्र किरणोंने जलाशयसे आये हुए हंसोंके सदृश कुमुदोंसे पूर्ण तालाबोंमें अवगाहन किया। जिनकी उदयकालकी समस्त लालिमा दूर हो गई है ऐसा चन्द्र-मण्डल, आकाशमण्डलमें स्नान करनेसे धोये गये सिन्दूरवाले ऐरावत हाथीके कुम्भस्थलके समान उस समय दीख पड़ा। धीरे धीरे हिम पङ्क्तिको बहानेवाले भगवान् चन्द्रमाके दूर प्रदेशमें उगने पर चन्द्रमाके प्रकाशसे

मन्दगतिषु विघटमान-कुमुदवन-कषाय परिमलेषु समुपोढ-निद्रा-भरालस-तारकैरन्योन्य-ग्रथित-पक्ष्मपुटैरारब्ध-रोमन्थ-मन्थर-मुखैः सुखासीनैराश्रममृगैरभिनन्दितागमनेषु प्रवहत्सु निशामुख-समीरणेषु, अर्द्धयाममात्रावखण्डितायां विभावर्य्याम्, हारीतः कृताहारं मामादाय सर्वैस्तैर्महामुनिभिरुपसृत्य चन्द्रातपोद्भासिनि तपोवनैकदेशे वेत्रासनोपविष्टम् अनतिदूरवर्त्तिना जालपादनाम्ना शिष्येण दर्भपवित्र-धवित्र-पाणिना मन्दमन्दमुपवीज्यमानं पितरमवोचत्। 'हे तात ! सकलेयमाश्चर्य्यश्रवण-कुतूहलाकलित-हृदया समुपस्थिता तापसपरिषदाबद्धमण्डला

लोके, धवलीकृते = शुक्लीकृते सति, विघटमानेत्यादिः० = विघटमानानि (विकसन्ति) यानि कुमुदवनानि (कैरवसमूहाः) तैः कषायाः (तुवराः) परिमलाः (घ्राणतर्पणा गन्धाः) येषु तेषु, अवश्यायेत्यादिः० = अवश्यायस्य (हिमस्य) जलबिन्दुभिः (सलिलपृषतैः) मन्दा (मन्थरा) गतिः (गमनम्) येषां, तेषु। तादृशेषु सत्सु। समुपोढेत्यादिः० = समुपोढा (सम्यक् प्राप्ता) या निद्रा (स्वापः) तस्या भरः (अतिशयः) तेन अलसे (मन्थरे) तारके (कनीनिके) येषां, तैः। "आश्रममृगैः" इत्यस्य विशेषणम्, एवं परत्राऽपि। अन्योन्येत्यादिः० = अन्योन्यं (मिथः) ग्रथितानि (गुम्फितानि, मिलितानीति भावः) पक्ष्मपुटानि (नयनरोमसमूहाः) येषां, तैः। आरब्धरोमन्थ-मन्थरमुखैः = आरब्धः (उपक्रान्तः) यो रोमन्थः (चर्वितचर्वणम्) तेन मन्थरम् (अलसम्) मुखं (वदनम्) येषां, तैः। सुखासीनैः = सुखम् (सानन्दम्) आसीनैः (उपविष्टैः) तादृशैः आश्रममृगैः= मुनिनिवासस्थानहरिणैः, अभिनन्दितागमनेषु = अभिनन्दितम् (श्लाघितम्) आगमनम् (आगमः) येषां, तेषु, तादृशेषु निशामुखसमीरणेषु = प्रदोषवातेषु, प्रवहत्सु = प्रवात्सु सत्सु। विभावर्यां = रात्रौ, अर्द्धयामेत्यादिः० = अर्द्धयाममात्रम् (अर्द्धप्रहरमात्रम्) तेन अवखण्डितायां = प्राप्तखण्डनायां, व्यतीतायां सत्यामिति भावः। हारीतः = जाबालिमुनिपुत्रः, कृताहारं = कृतः (विहितः) आहारः (भक्षणम्) येन, तं, माम्, आदाय = गृहीत्वा, सर्वैः = सकलैः, तैः = पूर्वोक्तैः, मुनिभिः=तपस्विभिः, सहेति शेषः। चन्द्रातपोद्भासिनि = चन्द्रातपेन (इन्दुप्रकाशेन) उद्भासते (विद्योतते) तच्छीलः, तस्मिन्। तपोवनैकदेशे = तपोवनस्य (तपोविपिनस्य) एकदेशे (एकभागे), वेत्रासनोपविष्टं=वेत्रासने (वेतसविष्टरे) उपविष्टम् (निषण्णम्), अनतिदूरवर्तिना = अनतिदूरे (किञ्चित्समीपे) वर्तते (विद्यते) तच्छीलस्तेन। दर्भपवित्रधवित्रपाणिना = दर्भेण (कुशेन) पवित्रं (प्रयतम्) यत् धवित्रं (मृगचर्मनिर्मितं तालवृन्तम्) तत् पाणौ (करे) यस्य, तेन। "धवित्रं व्यजनं तद्यद्रचितं मृगचर्मणा।" इत्यमरः। जालपादनाम्ना = जालपादाऽभिधानेन, शिष्येण = विनेयेन, मन्दं = मन्थरं यथा तथा, उपवीज्यमानं = क्रियमाणोपवीजनं, तादृशं पितरं = जनकं, जाबालिमुनिम्। अवोचत् = अवादीत्।

हे तातेति। हे तात = हे पितः। आश्चर्येत्यादिः० = आश्चर्यस्य (अद्भुतवृत्तान्तस्य) श्रवणम् (आकर्णनम्) तस्मिन् यत् कुतूहलं (कौतुकम्) तेन आकलितं (व्याप्तम्) हृदयं (चित्तम्) यस्याः सा, तादृशी सकला (समस्ता) समुपस्थिता = समागता, इयं = सन्निकृष्टस्था, तापसपरिषत् = तपस्विसभा, आबद्धमण्डला = आबद्धं (रचितम्) मण्डलं (समूहः) यया सा, तादृशी सती, प्रतीक्षते =

अमृतके चूर्णपटलसे जगतके उज्ज्वल किये जानेपर विकसित होते हुए कुमुदवनके कषाय मनोहर गन्धोंके ओसकी जलबिन्दुओंसे मन्दगति हो जानेपर गाढ़ निद्राके आधिक्यसे अलसाई हुई पुतलियोंवाले परस्पर मिले हुए पलकोंवाले, आरब्ध जुगालीसे आलस्यपूर्ण मुखवाले और सुखपूर्वक बैठे हुए मृगोंसे अभिनन्दित आगमनवाले रात्रिके आरम्भकी हवाओंके बहनेपर, रातके आधा प्रहर मात्र व्यतीत होनेपर भोजन किये हुए मुझे लेकर हारीत सब महामुनियोंके साथ चन्द्रमाके प्रकाशसे प्रकाशित तपोवनके एक स्थानमें वेतके आसनपर बैठे हुए और कुछ समीपमें रहनेवाले और कुशसे पवित्र मृगचर्मसे बने हुए पङ्खेको हाथमें लेनेवाले जालपाद नामके शिष्यसे धीरे-धीरे पङ्खेसे झले जाते हुए पिता (जाबालि) के समीप जाकर बोले—हे पिताजी ! आश्चर्यजनक वृत्तान्तको सुननेमें कौतुकसे व्याप्त

प्रतीक्षते। व्यपनीतश्रमश्च कृतोऽयं पतत्रिपोतः। तदावेद्यतां यदनेन कृतमन्यस्मिञ्जन्मनि कोऽयमभूद्भविष्यति चेति। एवमुक्तस्तु स महामुनिरग्रतः स्थितं मामवलोक्य तांश्च सर्वानेकाग्रान्छ्रवणपरान् मुनीन् बुद्ध्वा शनैः शनैरब्रवीत्—'श्रूयतां यदि कौतूहलम्।

इति श्रीमहाकविबाणभट्टविरचितायां कादम्बर्यां कथामुखम्।

प्रतीक्षां कुरुते। अयं = सन्निकृष्टस्थः, पतत्रिपोतश्च = पक्षिशावकश्च, व्यपनीतश्रमः - व्यपनीतः (दूरीकृतः) श्रमः (खेदः) यस्य सः, तादृशः, कृतः - विहितः। तत् = तस्मात्कारणात् अनेन = पतत्रिपोतेन, यत्, कृतं = विहितं, तत् = वृत्तम्, आवेद्यतां = ज्ञाप्यताम्। अपरस्मिन् = अन्यस्मिन्, जन्मनि= जनने, अयं = पतत्रिपोतः, कः, अभूत् = अभवत्, भविष्यति च = भविता च। एवं = पूर्वोक्तप्रकारेण, उक्तः = अभिहितः, सः = पूर्वोक्तः, महामुनिः = महर्षिः, जाबालिरिति भावः। अग्रतः = पुरतः, स्थितम् = आसीनं, माम्, अवलोक्य = दृष्ट्वा, तान् = पूर्वोक्तान्, सर्वान् = सकलान्, मुनीन् = तापसान्, एकाग्रान् = अनन्यवृत्तीन्, श्रवणपरान् = आकर्णनतत्परान्, बुद्ध्वा = ज्ञात्वा, शनैः शनैः = मन्दमन्दं, अब्रवीत् = अगादीत्। कौतूहलं = कौतुकं, चेत् = यदि, तर्हीतिशेषः। श्रूयताम् = आकर्ण्यतां, भवद्भिरिति शेषः।

इति श्रीशेषराजशर्मप्रणीतायां नवचन्द्रकलाऽऽख्यायां कादम्बरीव्याख्यायां कथामुखम्।

चित्तवाली उपस्थित यह समस्त तपस्वियोंकी सभा मण्डल बांधकर प्रतीक्षा कर रही है। यह पक्षिशावक श्रमरहित किया गया है। इसलिए इसने जो किया उसे ज्ञापित कीजिए। दूसरे (पूर्व) जन्ममें यह कौन था? और कौन होगा?" ऐसा कहे गये उन महामुनि (जाबालि) ने आगे रहे हुए मुझे देखकर और सुननेके लिए तत्पर उन सब मुनियोंको एकाग्र जानकर धीरे-धीरे कहा—"कौतुक ही तो सुनो"।

इति कथामुख।

साहित्यपरीक्षोपयोगी ग्रन्थ

महाकविश्रीहर्षविरचितं

नैषधीयचरितं महाकाव्यम्

'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—आचार्य श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मीः'

संस्कृतके सुप्रसिद्ध षट्-काव्य और अन्यान्य महाकाव्योंमें भी नैषधीयचरितमहाकाव्य का स्थान सर्वोपरि है यह बात सर्वजन् सम्मत है। साहित्यशास्त्रके गुण, अलङ्कार, रीति, रस और ध्वनि आदिकी दृष्टिसे इसका स्थान अप्रतिम है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस काव्यमें अलङ्कार आदिके प्रदर्शनके प्रसङ्गमें यत्र-तत्र व्याकरक और दर्शन आदि शास्त्रोंके कई विषय अनूठे ढङ्गसे उपस्थित किये गये हैं। अतएव कहा भी गया है—"नैषध विद्वदौषधम्"। इसीलिए इसे "शास्त्रकाव्य" भी कहते हैं। इस महाकाव्यके उदयके अनन्तर संस्कृतके प्रसिद्ध और प्रौढ महाकाव्य किराताऽर्जुनीय तथा शिशुपालवध हतप्रभ हो गये हैं, अतएव कहा भी गया है—"उदिते नैषधे यानौ क्व माघः क्व च भारविः ?" वेदान्तमें खण्डनखण्डखाद्य के समान यह महाकाव्य भी असाधारण प्रौढ शैलीमें रचे जानेके कारण अत्यन्त दुरूह हो गया है। कवि तार्किक श्रीहर्षने स्वयम् इस महाकाव्य को "कविकुलाऽदृष्टाघ्वपान्थ" अर्थात् कवियोंसे अदृष्ट मार्गमें निरन्तर चलानेवाला कहा है। इसी कारण महोपाध्याय मल्लिनाथकी जीवातु और नारायणपण्डितकी प्रकाश व्याख्या और अन्यान्य विद्वानों की अन्यान्य व्याख्याओं की विद्यमानतामें भी यह महाकाव्य इदानीन्तन छात्रोंको अवगाहन करनेमें और परीक्षामें साफल्य प्राप्त करनेमें अत्यन्त कठिन बन गया है।

हमने इसी बातको लक्ष्य करके आधुनिक पद्धतिसे चन्द्रकला व्याख्या और हिन्दी अनुवादसे अलङ्कृत कर इस महाकाव्यका प्रथम भाग (१–९ सर्ग) प्रकाशित किया है। इसमें मूलपाठ, दण्डान्वय, व्याख्या अनुवाद और टिप्पणी इतने विषयोंका समावेश कर ग्रन्थको अत्यधिक सरल करनेका प्रयास किया किया है। यहाँपर स्थल-स्थल पर काव्यके मूल पाठके कतिपय पदोंकी आलोचना, तत्तत्पदोंकी व्याकरणाऽनुसार उत्पत्ति, कोशप्रमाण और अन्य व्याख्याओंकी आलोचना भी की गई है। मल्लिनाथजीकी "नाऽमूलं लिख्यते किञ्चिन्नाऽनपेक्षितमुच्यते।" अर्थात् अमूलक और अनपेक्षित कुछ भी नहीं कहा जाता है।" इस उक्तिको ध्यानमें रखकर इस व्याख्याकी अवतारणा की गई है।

हम आशा करते हैं कि उत्तररामचरित, प्रसन्नराघव, मालतीमाधव, रघुवंश (प्रथम सर्ग), मेघदूत, हितोपदेश-मित्रलाभः, तर्कसंग्रहः, स्वप्नवासवदत्ता आदि ग्रन्थों पर टीकाकारकी चन्द्रकला व्याख्याकी तरह नैषधीयचरित महाकाव्यमें भी प्रस्तुत चन्द्रकलाका समुचित प्रचार होगा। इसके अनुवादमें भी अनावश्यक विस्तारका परिहार का प्राञ्जल शैलीका अवलम्बन किया गया है।

प्रथम सर्ग ५–००, १–३ सर्ग १०–००
१–५ सर्ग १५–००, १–६ सर्ग २५–००

साहित्यदर्पणः

'शशिकला' हिन्दी व्याख्या सहित

व्याख्याकार—डॉ० सत्यव्रत सिंह

इसकी विमर्शाख्य विशद व्याख्या द्वारा विषय की दुरूह ग्रन्थियों का वस्तुतः सम्यक् समुन्मोचन बन पड़ा है। इसमें कहीं भी मूल की उपेक्षा हुई प्रतीत नहीं होती। आरम्भ में एक सौ पृष्ठों की विस्तृत भूमिका है जिसमें कुछ अलङ्कारों पर वैज्ञानिक शोध सम्बन्धी दृष्टिकोण, स्वरूप तथा परस्पर वैषम्य संकेतित हैं। अभिनव संस्करण। संपूर्ण ३५–००
१–६ परिच्छेद २२–५०, ७–१० परिच्छेद १२–५०

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, गोपालमन्दिर लेन, वाराणसी**